हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन

प्रथम भाग

(संस्कृति और इतिहास)

'विश्व भावनाओं ने मानव का सृजन किया है।'

Man interprets Man.
History interprets the Character of Man.
Culture is the History of Man, Literature, the History of Humanity
Man moves from breath to breath, so goes the History from Age to Age······the History of Thought from Man to Man.

जे० एन० चन्द्रा

प्रकाशक :—
चन्द्रा ब्रदर्स प्राईवेट लिमिटेड
१०५, ह्रीवटरोड,
इलाहाबाद।

सन् १९५६ ई०

मुद्रक :—
'स्वरूप प्रस्ताव'—प्रेम प्रेस, प्रयाग।
विषय—माधो प्रिंटिंग वर्क्स, प्रयाग।

समर्पण

'पग-पग को चरण-धूलि को'

'All events in this best of possible worlds are admirably connected. If a single link in the great chain were omitted, the harmony of the entire universe would be destroyed.'

—*Voltaire.*

हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन

प्रथम भाग

(संस्कृति और इतिहास)

'भारत के संविधान' द्वारा निर्धारित—

भारत की राजभाषा

'३४३ (१) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।'

(भारत का संविधान[1]—भाग १७ अध्याय १ अनुच्छेद ३४३ (१))

अष्टम अनुसूची

(अनुच्छेद ३४४ (१) और ३५१)

भाषाएं

१ असमिया
२ उड़िया
३ उर्दू
४ कन्नड़
५ कश्मीरी
६ गुजराती
७ तमिल
८ तेलुगू
९ पंजाबी
१० बंगला
११ मराठी
१२ मलयालम
१३ संस्कृत
१४ हिन्दी

---

१ 'संविधान' को अंगीकृत किया गया २६ जनवरी १९५० ई० को।

स्वरूप-प्रस्ताव

अभिनन्दन

चेतना की शंख-ध्वनि में और झन्कारों में

........विश्व प्रेम की....जग-मंगल की,

सम्प्रीति ने मंगला आरती उतारी है,

सखे !

.......तुम्हारी।

ओ मानव के 'सत्य', नारी के ओ 'मंगल' रूप !

जीवन सत्य है।

किन्तु 'सत्य' और 'साहित्य' की सुन्दर कृति 'मानव' है और 'नारी' मंगल की प्रेरणा।

हाँ, इस पुस्तक में गीता के दार्शनिक तत्त्वों का समावेश करा देने का मेरा प्रयास—सफल अथवा असफल—मेरे केवल इस विश्वास का परिणाम है कि विश्व का विराट रूप देखकर यदि अर्जुन गिड़गिड़ाने लगता है, तो लेखक यदि अपने व्यक्तित्व पर गर्व करे, अपनी लेखनी पर फूला न समाय, महत्वाकांक्षी बन कर जो मन आवे कह, सुन और कर डाले, तो कर 'डाले' पर विश्व के साहित्यिकों को देख कर, वह यह न भुला सकेगा कि वह 'पूर्ण नहीं, केवल 'अंश' है।

'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।'

—तुलसी

और भूलें ?—भूलें* और दोष इन पर न मेरा वश था, न है, न होगा। किन्तु भूलों एवं दोषों की ओर ध्यान आकर्षित करना तथा उन्हें सुधार लेना—यह मेरा अहो भाग्य होगा। मैं अति आभारी होऊँगा।

और अन्त में,

'तेरा तुझको सौंपते का लागत है मोर।'

—कबीर

विश्व के प्रति मेरी मंगल कामनायें रही हैं, रहेंगीं।

१ नवम्बर १९५६
१०५, हीवेट रोड
प्रयाग।

जे० एन० चन्द्रा
एडवोकेट

---

*"How Lucky I am,' said Confucious, 'whenever I make mistake, people are sure to discover it".

स्वाधीन चिन्तन

मानव का इतिहास केवल मानव ने नहीं लिखा है—'मंगल' और 'विध्वंस' दोनों ने लिखा है। केवल बसन्ती बयार ने नहीं लिखा है, ग्रीष्म की प्रचन्ड लू और शीत-काल की सनसनाती और कटकटाती हुई वायु के थपेड़ों ने भी लिखा है, कन्दराओं ने लिखा, पर्वत श्रेणियों ने लिखा, जलाशयों ने लिखा, जल-प्रपातों ने लिखा, जीव-जन्तुओं ने लिखा पशु-पक्षियों ने लिखा, बीज ने लिखा, पत्र, पुष्प, फल और फूल ने लिखा, तृण वीरुध और शाखाओं ने लिखा है, शून्य ने लिखा, रेखाओं ने लिखा, रथ ने लिखा, चक्र ने लिखा, सूर्य ने लिखा, चन्द्र ने लिखा, तत्त्व तत्त्व ने लिखा है, भूचालों ने लिखा है, हरहराते हुये सागर के संतरण ने लिखा है, अणु-कण ने लिखा, क्षण-क्षण ने लिखा, क्षण क्षण में लिखा है। एक ने लिखा, अनेक ने लिखा, सुख-दुख, प्रेम और वियोग ने लिखा और इन सब से परे विध्वंस की मंगल कणियों ने लिखा है।

इतिहास, दर्शन, साहित्य, कला, ज्ञान और विज्ञान ने यदि मानव को सचेत किया है, तो दर-दर की टक्करों और पग-पग की ठोकरों ने भी उसे सजग किया है, प्रेम की पीर ने किया है, दिल के दर्द ने किया है, तो शिराओं में दौड़ती हुई प्यास ने भी किया है, भूक ने भी, मानव की पुकार ने भी और 'अहंम' की हुँकार ने भी।

किन्तु, मानव सचेत रहा है—विध्वंस में मुस्कराते हुये 'मंगल' की प्रेरणा से।

मानव का विश्व एक है और विश्व का मानव एक है।

मानव ने चैन केवल विश्व-भावनाओं में पाया है।

इन्हीं विश्व भावनाओं की सरल एवं सरस व्याख्या साहित्य ने की है, साहित्य की सत्य ने, और सत्य की इसी जीवन ने, इसी जग ने।

साहित्य, चाहे वह कहानियाँ हों—प्रेमभरी, वियोगभरी, उमंगभरी, वैभव और विलासभरी, शृंगार में निद्रा का आलस्य लिए हुई, अनुभाव में पगों की थिरकन और उद्वेग में मन की सिहरन लिये हुई और चाहे वह काव्य हो—तरुण एवं कोमल, प्रिय एवं सुखद, भावनाओं से ओत-प्रोत, कल्पनाओं में अधीर और व्यथाओं से पीड़ित अथवा वह गम्भीर हो दर्शन के आदर्शों को लिए हुए; चाहें वह नाटक, निबन्ध, पद्य, गद्य अथवा समीक्षा हो—जीवन का हाहाकार लिए हुए, नारी और पुरुष, उनके समाज का, उनके वातावरण का, परिस्थितियों का, उनकी आकाँक्षाओं का हर्ष और विषाद लिए हुए, उनकी आशाओं में इसी जीवन के भावी स्वर्ग की कल्पना लिए हुए, उनकी निराशाओं में विश्व की ज्वालायें लिए हुए अथवा उनकी उद्विग्नता में तन मन की कृशता लिए हुए, पर यदि उनमें भाव

और विचारों की उदारता नहीं, उनमें विश्व की कल्याण भावना नहीं, सहज दृष्टि नहीं, सम और विषम की तुलना में सन्तुलन नहीं, तो वह साहित्य, चाहे किसी भाषा, देश अथवा जाति का हो, युग विशेष का हो—वह साहित्य, मैं नहीं कह सकता, वर्तमान का क्या भला कर सकेगा, पर निश्चय ही आने वाले मानव को, छोटे-छोटे बच्चों को, नन्हें-से फूल को, नन्हीं-सी बिटिया को, जीवन में इतना अवसर न दे सकेगा कि वे यह भी सोच सकें कि साहित्य में विष घोलते समय गये हुए मानव ने हमारा ध्यान न रक्खा और न रक्खा तो क्यों नहीं ? फिर, मानव जीवन से सिखेगा—सत्-असत् में तुलना नहीं, सन्तुलन है और वह विष 'स्व' का था।

बिगाड़नेवाला जी भर कर बिगाड़ ले, बनाने वाला बना ही देगा।—यही विश्व का मंगल रूप है :—

'अग्रसर है मंगलमय वृद्धि'।

—प्रसाद

विश्व की पग-पग भूमि का और इस भूमि की अनोखी घटना—मानव का, उसकी प्रत्येक हलचल का, उसके क्षण-क्षण का—इन सब का संकेत केवल लोकसंग्रह की ओर है—विश्व के मानव की एकता की ओर। मानव का विश्व-साहित्य केवल विश्व-भावनाओं में लीन है—मानव सुख के लिये—'मंगल' और 'कल्याण' के लिये।

किन्तु मानव आज भी विश्व भावनाओं को 'समन्वयवाद' कहकर टाल रहा है। बीसवीं शताब्दी का यह 'वाद' (ism) एक ऐसी घटना है जो 'सत्य' का अर्थ 'सन्देह' करती है और 'सम' का अर्थ 'विषम'। जो न देखती है, न देखने देती है। पर यह तो युग-युग की घटना है और भारत में कभी वह 'राम' और 'कृष्ण' रूप में रही है, 'शिव' और 'शक्ति' रूप में रही है, 'दुर्गा', 'तारा' और 'चण्डी' रूप में रही है; कभी 'पन्थ' रूप में—'नागपंथ', 'गोरखपंथ', 'नानकपंथ', 'कबीरपंथ', 'दादूपंथ', कभी 'मार्ग' रूप में–'वाममार्गी', 'सन्मार्ग', 'सत्पुत्रमार्ग', 'दासमार्ग' और कभी 'चार' रूप में–'सदाचार', 'योगाचार', 'भ्रष्टाचार' रूप में रही है; कभी 'यान' रूप में—'हीनयान', 'वज्रयान', कभी 'द्वैत' रूप में—'अद्वैत', 'विशिष्टाद्वैत', 'द्वैताद्वैत' और इसी प्रकार अन्य देशों में कभी 'परस्ती' रूप में—'बुतपरस्ती', 'अमरदपरस्ती' और कभी 'बाजी'—'हरकतबाजी', 'कबूतरबाजी', 'जुआबाजी', 'शराब-बाजी', इत्यादि रूप में और कहीं-कहीं 'इयिन' (ian)— सेकेटेरियन, 'कल' (cal) इत्यादि रूप में रही है, तो बीसवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य में यह 'वाद'—'रहस्यवाद', 'छायावाद', 'प्रगतिवाद', 'प्रयोगवाद', 'प्रतीकवाद, 'नारीवाद' इत्यादि रूप में यदि आई, तो कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं। किन्तु मंगलमय सूर्य उदय होता रहा है, रहेगा। और नजरे करम भी अल्लाह की हर जमाने में रही है, रहेगी और ग्रेस 'Grace—By the Grace of God' भी। और यह भी नहीं भुलाना चाहिये कि विषमता का ग्राहि असीम को सीमाओं में नाप रहा है—मानव को पल-पल उठा बिठा कर। पर, यह सब जानता मानव भी रहा है। और इस युग की विशेषता तो केवल इतनी रही है कि

मानो 'विद्या' में से 'विनय' निकल गई हो। विद्वत्ता तो नित्य और विद्या 'विनय' सम्पन्न होती है—'विद्याविनयसम्पन्नः'।

साहित्य-मन्दिर में केवल भावनाओं का पूजन होता है—भावना से, भय से नहीं। रम्भा और उर्वशी के समान कला नृत्य करती है किन्तु 'सम' और 'विषम' की अठखेलियों में जीवन अभिवादन के प्रति संकेत करके और मानवीय आकाँक्षाओं से ठेस खाकर जो पग उठता है वह पगध्वनियों में नहीं, जीवन की अन्तर्ध्वनियों में लीन हो जाता है.... उन श्री-चरणों की ओर।

साहित्य के इतिहास का युग विभाजन 'मानव' के आधार पर मैंने किया है। मानव कुछ भूलता है, कुछ याद करता है—बस, यही मानव का इतिहास है। 'दर्शन' की दृष्टि में वह 'कुछ' मानव का 'सत्यस्वरूप' है और साहित्य की दृष्टि में 'सम्प्रीति'। सम्प्रीति मानव और मानवता का सत्यस्वरूप है। जिस युग में मानव ने 'सम्प्रीति' को भुला दिया और नारी ने अपने 'मंगल' रूप को, वह युग साहित्य के इतिहास में 'विस्मृति' युग बन कर आया है और जब पुनः 'सम्प्रीति' और 'मंगल' की ओर वे दोनों बढ़े तो वह 'स्मृति' युग बन कर आया। गीता में भी अर्जुन कुछ भूला हुआ था जिस समय श्रीकृष्ण ने गीता का सम्वाद आरम्भ किया था और जिस दिन वह सम्वाद समाप्त हुआ था, अर्जुन ने कहा था —'स्मृतिर्लब्धा[१]'—'हाँ, मुझे याद आ गया।' अर्जुन ने अपने को भुला दिया था, चेत कराने पर उसने अपना सत्यस्वरूप देखा था। गीता वहीं समाप्त हुई थी और मेरे शब्दों में, बस, इतनी ही गीता है। इस प्रकार साहित्य के इतिहास का विभाजन चार युगों में हुआ—'परिचय युग', 'सम्प्रीति युग', 'विस्मृति युग' और 'स्मृति युग'। देश-देश का, देश-देश की भाषा का, मानव का साहित्य, दर्शन, ज्ञान और विज्ञान इन्हीं चार शब्दों में सीमित होकर रह गया। असीम सीमाओं में बँध गया, पर 'असीम' भी चुप नहीं बैठा। वह भी मानव को सुख-दुःख की परिधियों में उठा-बिठाकर पग-पग पर सीमाओं का उल्लंघन करता रहा और

'प्रत्येक बिभाजन बना भ्रान्त।'
—प्रसाद।

किन्तु इन सब में शेष रह गई एक लय—वह लय एक लहर है 'आनन्द' और 'मंगल' की, भाव-भाव में पल-पल के जीवन की। मानव 'केन्द्र' और 'परिधि' फिर स्वयं बन गया।

रचना शैली से भले ही यह दीखे कि यह पुस्तक 'कल्पना' अथवा 'भावुकता' में लिखी गई है पर क्षण भर सोचने से स्पष्ट हो सकेगा कि प्रयास यह है कि उसका एक-एक अक्षर, एक, एक पंक्ति अनुभूति की किसी टक्कर पर आधारित हो, जग और जीवन के कठोर सत्य पर आधारित हो, इतिहास के व्यापार तथ्य पर आधारित हो, साहित्य, दर्शन,

---

गीता १८।७३

ज्ञान और विज्ञान के तत्त्वों पर आधारित हो। यथासम्भव यथा-स्थान पर टिप्पणियों द्वारा इन आधारों को देने का मैंने केवल एक साहस किया है, किन्तु सत्य यह है वह साहस एवं प्रयास भी आधारित है, मेरी किसी लेखनी पर नहीं, किसी मंगलमयी प्रेरणा पर हो तो मैं नहीं कह सकता, पर निश्चय ही वह विद्वानों के भरोसे पर आधारित है।

> "This requires not deception but care to trace its connection .... since there is nothing new under the Sun."

और यदि कहीं पर वाद-वस्तु अथवा निर्णय-तथ्य (Facts-in-issue) पर मैंने अपना कोई अनुमान अथवा सुझाव दिया हो तो वह केवल मेरे तक ही सीमित है, विद्वजन स्वयं अपना मत निर्धारित कर लें, यदि उन्हें विषय-विशेष पर दिये हुए तथ्य (Facts) उचित जचें। यह मैं स्पष्ट कर दूं कि मैंने पाठक के किसी भी 'स्वातन्त्र्य' में हस्तक्षेप करने का कोई भी साहस नहीं किया है। मेरा विश्वास है कि पाठक के सम्मुख निष्पक्ष भाव से विषय विशेष पर दिये हुए तथ्य रख दिये जायें और दूर से पक्ष और विपक्ष दोनों के पक्ष में अपना मत अथवा विचार दे दिया जाये, उस विचार या मत को 'पाठक' पर ठूंसने का कोई 'प्रयास' या 'साहस' न हो तो पाठक अपने 'स्वाधीन चिन्तन' के आधार पर सत्य का निर्णय स्वयं कर लेगा। पांडित्व हो सकता है, पर ज्ञान की परिधि संकुचित नहीं है जो जान-बूझ कर भी सत्य को सत्य कहने को तैयार न हो। युद्ध तो केवल इस बात का रहा है, 'तू मेरी बात मान ले', बस!' और यह भी कैसे भुलाया जा सकता है कि 'भाव' और 'विचार' पर किसी भी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं जो वह दूसरों पर उन्हें ठूंस सके।

हाँ—भाषा में व्याकरण का अतिक्रमण निश्चय है, पर भाषा एवं शैली जीवन के स्वरों में हैं। उन स्वरों की साधना मैं कर सका हूँ या नहीं इस पर न मेरा कोई अधिकार था, न है, न होगा। और कहीं-कहीं खड़ी बोली के साथ-साथ ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग भी हो गया है जैसे 'सेज' और 'सिजड़ियाँ'। भाषा की अशुद्धियाँ भी हैं जैसे होते-हो-वाते' इत्यादि।

और हाँ, इस पुस्तक में उद्धत अंग्रेजी के अवतरणों अथवा अंशों में कहीं-कहीं उन अवतरणों के लेखकों के अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी अनुवाद करके उन्हें हिन्दी में दिया है—उन लेखकों से इसकी क्षमा के लिये विशेष प्रार्थी हूँ।

अनेक साहित्यों को एक ही सूत्र में बाँधने का मेरा प्रयास ठीक वैसा ही है जैसे 'पंगु चढ़े गिरवर गहन' पर आज का 'मानव' और 'युग' दोनों ही उसे बाँध चुके हैं, तो मैं अपना प्रयास कहूँ तो कैसे?

जे० एन० चन्द्रा
एम० ए०, यल० यल० बी०
एडवोकेट

निर्धनता को

'चिन्ता न कर पेट की'

—सूर

सूर और तुलसी !

मैं तुम्हें कहता हूँ, दूसरे को नहीं। दुःख···दारिद्र···और निर्धनता से तपे हुए तुम्हारे जीवन में अभिशापों की ढेरियाँ नहीं थीं। तुम्हारे त्याग और बलिदानों में शिथिल कामनायें नहीं थीं। तुम्हारी दरिद्रता में भीक माँगने का साहस नहीं था। तुम्हारी दया में धर्म हो अथवा न हो, किन्तु तुम्हारी सुहृदयता के अश्रु-कण न सूखे हैं, न सूखेंगे।

शेरीडन, डयुमा, गोल्डस्मिथ, बायरन, कूपर, डैफो, जानसन, स्पेन्सर (हर्बट स्पेन्सर) स्टील, बर्नस, स्काट, सैवेज, चैटरटन ! मैं तुम्हें कहता हूँ, दूसरे को नहीं। ऋण भुगतान के लिए धमकियों से भरे हुए वकीलों के नोटिसों ने क्षण भर को तुम्हें कँपा भले ही दिया हो···ऋण भुगतान की असमर्थता के कारण छः महीना के लिए कारागार में भेजे जाने पर, सैवेज ! वहीं तुम्हारी मृत्यु भले ही हो गई हो; ···चैटरटन ! १८ वर्ष की आयु में ही ऋण के कारण तुम्हें विष खा कर अपने जीवन का अन्त भले ही करना पड़ा हो; ··· सात पौंड चार शिलिंग (लगभग १०० रुपया) के ऋण का भुगतान, मिस्टर बर्नस ! तुम अपने जीवन में भले ही न कर सके हो; ···अपने महाजनों को हंस-हंस कर टालने में, शेरीडन महोदय⊙ ! तुम्हारा चातुर्य्य भले ही विश्व विख्यात हो ··पर तुम सब की निर्धनता ने मानवता का इतिहास रचा है। तुम्हारे निष्कपट, निश्छल, सरल और सत्यशील हृदय ने दंभ, पाखण्ड और अविश्वास को अपनाया नहीं, तुम धोका देने का साहस न कर सके···और तुम्हारी आँखों में यदि कभी आँसू आ गये थे तो पीड़ित मानवता की सिसकियों को देख कर।

⊙ 'It is not my interest to pay the principal nor my principle to pay the interest.'

Richard Sheridan

'हो सके तो पीड़ित मानवता के आँसू पोंछना'†—यही कह कर तुम सब* लोग चले गये ····· आज से बहुत समय पूर्व । किन्तु ······················?

---

†'तु० I shall wipe off every tear from every eye.'

—*Mahatma Gandhi*.

*1.	Richard Sheridan.	(1751—1816)
2	Alexander Dumas	(1802—1870)
3	Oliver Goldsmith	(1728—1774)
4	Byron	(1788 –1824)
5	William Cowper.	(1731 –1800)
6	Ben Johnson.	(1573—1637)
7	Defoe.	(1660—1731)
8	Herbert Spencer.	(1820—1903)
9	Richard Steele.	(1672—1729)
10	Robert Burns	(1759—1796)
11	Sir Walter Scott.	(1771—1832)
12	Thomas Chatterton.	(1752—1770)

पीड़ित मानवता को

किन्तु, मानवता आज भी पीड़ित है। आज भी दुखी है। 'स्व' और 'स्वार्थ' का त्राहि ममता की झोलियाँ भर रहा है...तृष्णा तपा रही है....पग-पग पर मन विचलित हो रहा है और क्षण-क्षण में युग का स्वर विकृत.............।

अतृप्ति से जर्जर, मलिन विचारों से अभिभूत, अविश्वासों से परितप्त...विग्रह और विकल्प की विषमता में घिरा हुआ दानव मानव बनने का क्षण-क्षण में दिखावा करता है, किन्तु विफल।

पीड़ित मानवता के आँसू केवल परस्पर के विश्वास ने पोंछे हैं...पोंछेगा। तिलमिला, तिलमिला कर रह गई है दानव की बहिर्मुखी प्रतिभा।

साहित्य †........................'श्रद्धा-सत्यं'*।

---

† साहित्य = स + हित अर्थात् हितसहित।

*'श्रद्धा सत्यं'

—मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक २ खंड १ मंत्र ७

'उससे ही (परमात्मा से ही)......श्रद्धा[1], सत्य[2]......यह सब भी उत्पन्न हुये हैं।

[1]'सत्वानरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत'—गीता १७।३ अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है, वह स्वयं भी वही है अर्थात् सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है।'

[2] 'सत्य'—'सत्यं भूतहितं प्रोक्तम्' अर्थात् 'जो प्राणियों के लिये हितकर हो उसे सत्य कहते हैं।"

—श्वेताश्वतरोपनिषद् (शंकर भाष्य) अध्याय १ मन्त्र १५

सौजन्यता को

'सूर्य्य का प्रकाश लेकर, अन्तर्ध्वनियों में मुझे आप प्रतिध्वनित करते रहे हैं।'

"You seemed to reverberate upon me with the beams of the sun."

Howell.

वह ध्वनि सत्यलोक से आती है। सत्पथ का मार्ग भी सत्यलोक से आता है, सत्यलोक को जाता .....कीर्त्ति-लोक होता हुआ।

यह सत्यलोक इसी पृथ्वी पर हैं—एक नहीं, अनेक और अनेक में एक। प्रत्येक 'पुस्तकालय', प्रत्येक 'वाचनालय' एक सत्यलोक है और प्रत्येक 'सत्कृति', एक सत्य-श्री।

इन सत्यलोकों के अध्यक्षों में उदारता निवास करती है। सौजन्यता उनके जीवन का लक्ष्य है और सहयोग वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अपने पुस्तकालय में श्रेष्ठ, मौलिक एवं नवीन कृतियों की ओर विद्यार्थी का ध्यान आर्कषित करके वे पथ-प्रदर्शन भी करते हैं—यही उनका इस लोक का धन है।

ऐसी सौजन्यता एवं उदारता को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

पुस्तक की रचना सामग्री के लिए और अध्ययन के सहयोग के लिये मैं विशेष रूप से आभारी हूँ इनका :—

(१) बरेली कालिज लाइब्रेरी, बरेली (Bareilly College Library, Bareilly.) और उसके अध्यक्ष।

(२) मेरठ कालिज लाइब्रेरी, मेरठ (Meerut College Library Meerut.) और उसके अध्यक्ष।

(३) इलाहाबाद विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, इलाहाबाद (Allahabad University Library, Allahabad.) और उसके अध्यक्ष।

(४) पब्लिक लाइब्रेरी, इलाहाबाद (Public Library, Allahabad.) और उसके अध्यक्ष।

(५) देहली पोलीटेक्नीक लाइब्रेरी, देहली (Delhi Polytechnic Library, Kashmirigate, Delhi.) और उसके अध्यक्ष।

(६) नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता (National Library, Calcutta.) और उसके अध्यक्ष।

(७) के० आर० कामा ओरियन्टल इन्स्टीटयूट लाइब्रेरी, बम्बई (K. R. Coma Oriental Institute Library, Fort, Bombay.) और उसके अध्यक्ष।

उन समस्त ऋषियों, लेखकों, कवियों, गुणीजनों, विद्वानों एवं गुरुजनों के प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि भेंट करता हूँ—जो विश्व आराध्य रहे हैं और जिनके संचित धन को दोनों हाथों मैंने इस पुस्तक* में लुटाया है।

स्वर्गीय पिता जी का मंगलमय आशीर्वाद मेरे साथ सदैव ही रहा है।

और 'माता' के प्रति आदरसूचक शब्द केवल एक है मेरे पास 'मां'।

जिन्होंने मुझे पुत्रवत पाला, मेरा लालन-पालन किया, मुझे बड़ा किया, दुलार दिया, शिक्षा दी और जो मेरे सदैव ही शुभ-चिन्तक रहे हैं—रहेंगे, उन अपने मामा जी श्री राम स्वरूप तथा अपनी मामी श्रीमती रामकली देवी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करने में मुझे लज्जा नहीं आती—उनके उपकार-ऋण को किन्हीं शब्दों, अर्थों अथवा भावों में मैं चुका नहीं सकता, किन्तु, उन्होंने तो मुझे बालकों का-सा स्नेह सदैव ही दिया है—देंगे।

मातृ तुल्य भाभी श्रीमती सूर्य्यमणी धर्मपत्नी श्री ब्रजलाल इलाहाबाद का आभारी सदैव ही रहा हूँ, रहूँगा।

आभारी मैं अपनी श्रीमती—चन्द्र कुमारी का भी हूँ—जिन्होंने मेरी इस पुस्तक के रचना-काल में सहानुभूति एवं शान्तिपूर्ण वातावरण उत्पन्न करके नारी के मंगल रूप की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया था।

और, अन्त में, आभारी मैं उन सबका भी हूँ जिनसे जीवन निर्वाह में भरोसा, विश्वास आशा, एवं साहस बटोरा है, बटोरूँगा।

'यहीं बटोरा, यहीं लुटाया। और मैं स्वयं, फिर वही..........?'

ओ सत्यलोक के परम प्रकाशी!

पुनः पुनः नमस्कार।

ओ जग-जीवन के आभार-व्यवहार!

.....**विदा।**

* 'पुस्तक' से मेरा आशय इस पुस्तक के सम्पूर्ण खंडों से है।—ले०

प्रज्ञा†

विद्वानों* के प्रति

आप ही प्रणाम और स्तुति के योग्य हैं ।[1]
आप उत्तम, महाधिकारी, पुण्यशील एवं विश्व-पूज्य हैं ।[2]
आपके बचन में मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती है ।[3]
आपका सख्य हमारे लिये मंगलमय हो ।[4]

ओ मंगल के आलोक !

········विदा ।

"Use it, O, Scholar, ere thy day be spent.
The Learner dieth, Learning never dies".
'अथर्ववेद संहिता'—*By W. D. Whitney.* (*Editor's Preface*).

---

१ 'एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।'
अथर्व० २. २. १
अर्थात्, 'एकमात्र परमात्मा ही प्रणाम और स्तुति के योग्य है ।'
२ 'कंचिद्विद्वत्तंम महाधिकारं पुन्यशील विश्व संमान्यं ।'
सायणाचार्य्य
३ भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।'
ऋ० १०. ७१. २
४ 'अस्मे ते सन्तु सक्या शिवानि ।'
ऋ० ७. २२. ९.

*विद्जन सब के बीच से द्वेष को हटाकर 'सहृदयता और संमनस्कता' का प्रसार करते हैं ।

अथर्ववेदीय संज्ञान-सूक्त (पैप्पलाद–संहिता ५, १९)
(देखिये :—वैदिक साहित्य, पृ० ४२१)

†बुद्धि, विवेक, सरस्वती ।

गीता

सखे !

'सांख्य' और वेदान्त' के दार्शनिक तत्त्वों के समावेश में 'जीवन' निर्माण के जिन दार्शनिक तत्त्वों का समावेश किया था वे देश और काल के नियंत्रण में व्यक्ति[१] विशेष की धारणायें नहीं, दो[२] परस्पर विरोधी विवेचनाओं की अमर कृतियाँ नहीं, 'कर्म', 'ज्ञान' और 'भक्ति' के सामंजस्य की व्याख्यायें नहीं,—वे मानव संस्कृति की अमर ऋचायें हैं।

मानव शेष है, रहेगा।

हे सखे ! 'तुम' और 'वे'[३] एक हो।

विदा,

......तुम्हारा

---

१ 'The message of Gita is not sectarian or addressed to any one particular School of Thought. It is universal in its approach..'

Discovery of India.
By Jawahar Lal Nehru

२ 'साँख्य' was considered as principal opponent of 'वेदान्त'

Prof. R. D. Ranade.

३ 'वे' से मेरा तात्पर्य 'मानव' से है।—ले०

विश्व-धारिका

'ओं भूः भुवः स्वः'

विश्व तीन[1] लोकों का है—"भूः"—'पृथ्वी', 'भुवः'—'अन्तरिक्ष' और 'स्वः'—'द्युलोक'। किन्तु, विश्व-धारिका एक[2] है —'किरण'[3]।

ओ साहित्य की स्वस्ति-श्री !

.....विदा।

'Vision....................of Love, Life and Literature,

...*Of Perfection.*'

---

१ 'त्रयो वा इमे लोकाः'—
शतपथ १. २. ४. २०
'पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः'
शतपथ ११. ५. ८. १

२ ऋ० १. १६४. २

३ ऋ० १. ८४. १५

अर्थात् :—'इस गतिशील चन्द्रमण्डल में अन्तर्हित जो तेज है वह 'आदित्य किरण' ही है ऐसा जाना।'

नोट :—'किरण' की विस्तृत व्याख्या के लिए लेखक की 'रेखा और कण' में 'सत्य' शीर्षक 'पत्र' देखिए।

अस्तित्व

"सुनत सुमंगल बैन..............।
........तुलसी भरे सनेह-जल[1] ।।"
—तुलसी।

'Thanks to the human *heart* by which we live.'
Wordsworth.

---

१ अयोध्याकाण्ड ।

प्रेरणा

ओ अपरिचित विश्व के विश्व पथिक !

सूने संसार के सूने चित्रपट पर यों ही अनेक चित्र आते और विलीन हो जाते हैं··············सदैव के लिये।

पर,

....रह जाती है·····सूनी रेखा,

······'किरण' !

तुम्हारी······प्रे···र···णा की।[1]

·····विदा।

"And what we call inspiration[2] is the development of reason ...... No genuine inspiration ever contradicts reason."

विवेकानन्द

---

१ तु० 'Inspiration despels inertia.'

२ लेखक की 'रेखा और कण' से।

अनुभूति-योग

'....अनुभव* काहु न पेख'
—विद्यापति

किन्तु 'सत्य, 'सौन्दर्य्य और 'साहित्य में जो अक्षय है, श्वासों के व्यवधानों में व्यस्त, प्राणों की ममता में छिपी हुई··········

·····क्षण, क्षण

······में

वह······

··········आज

पथ-प्रशस्त की······प्रेरणा है।

एक वह प्रेरणा है,

ओ विकल प्रेम के चिन्तित स्वर!

और, जीवन में एक.....'विश्वास'।

विदा।

....

'... .... *but* must live by *faith*'. *Luther*.

"When a man resteth and assureth himself upon divine protection, he gathereth a force and faith which nature in itself cannot obtain."

Bacon

*·········The observations should be oblique, rather than direct······ ···should be made not *during* but *immediately after* the appropriate experience."

'The Principles of Psychology' By Herbert Spencer
Vol. II, पृ० २४२

मानव

ओ मानव[1] के सौन्दर्य !
उस दिन···जब स्पंदित विश्व तुझे खोज रहा था,
मानवीय आकांक्षाओं से अनुप्राणित मन अधीर था।

'सत्य' और 'अहिंसा' के नीरव तटों से टकरा कर, समष्टि में कल्याण की भावना लेकर जो प्रतिध्वनि विलीन हो गई थी, जीवन के आंतरिक समत्व में, अब, वह शेष है।

और शेष है—शेष और परिशेष की अन्तर्ध्वनियों में.......
.....'विश्व-प्रेम की', 'जग-मंगल की'
...वह
......अन्तिम झंकार।[2]

विदा!
ओ विश्व के करुण स्वर!
विदा।

......तुम्हारा*

'The Story····not of one Country or of one Race'·
That story is the story of Man

---

[1] "The men of real power are always men of *one idea* who send all the force of their being along one time".

Emerson

[2] गाँधी जी 'मानव रूप' में।

* लेखक की 'रेखा और कण' से।

नारी

"....और

...वह

देखो !

क्षीर-नीर की विभा-अंक में,

जड़-चेतन में.....लोक-लोक में,

सखे !

जीवन की......

.....वह

...अमर ज्योति।

सूने जग के सूने पथ में, सखे ! सिहर* उठे हैं,

अब,

.......वे

.....प्राण।

× × × ×

किन्तु, विश्व को विधान और विश्व-विधाता को 'मंगल' नारी⊙ ने दिया है अपने सुहाग से लेकर†।

....

And *here* is the story of Woman :-

"Live and living will itself be transformed in Light."

Li Hong Chung

---

* 'तु० 'चकई री चल चरन सरोवर जहाँ न प्रेम-वियोग'—सूर

⊙ 'युग युग और सम्प्रीति युग की नारी' शीर्षक लेख स्वाधीन चिन्तन, भाग २ में विस्तृत व्याख्या देखिए।

† लेखक की 'रेखा और कण' से

जीवन

जीवन के मूल-मन्त्र दो हैं—'तपस्या' और 'श्रद्धा'।

'तपस्या' से भाग्य बनता है, 'श्रद्धा' से भगवान मिलता है।

'साधना' तपस्या को बल दे देती है, 'त्याग' साधना को अविचल बना देता है।

अमरत्व की कामनायें तपस्वी के मन को स्पर्श नहीं कर पाती हैं। 'साधना' मुड़कर पीछे नहीं देख पाती है, 'त्याग' किसी से पथ नहीं पूछता और 'श्रद्धा' सत्य का साथ नहीं छोड़ पाती है।

प्रेम प्रवाहित करता है... जीवन बहता है... तट-मंगल की ओर।

और,

यह है जीवन का मधुर संगीत,
'क्यों बहते हो ? हे नीर' ! *

And *here* is of Man,
Of his Love, Life and Literature,
Of his World,
With Philosophy of Man, not of one Thought, or of one Age,
Thrown through Literature, not of one Language,
Or of one Country, or of one Race,
Through Love of All,
Life Retold,
And Beyond Transcedented,
Based on Works of History, of Philosophy, of Literature,
Of Science and of Language,
And on Works, not on one Culture or on one Civilisation,
And above all on Interpretations of Man,
And All in terms of Peace with All, with Message of Man
For the Age,
For the Ages to Come.
And written in the Language ⊙ of Man,
In the Language of his *heart*, of his *Love*, *Life* and *Literature*.

---

* लेखक की 'रेखा और कण' से।

⊙ मानव-भाषा से मेरा आशय मानव-जीवन की भाषा से है केवल हिन्दी भाषा से नहीं।—ले०

हिन्दी साहित्य का इतिहास
(६८६ ई०—२० वीं शताब्दी)

नारी के अंचल के छोरों में बंधी हुई मंगल की भावनाओं ने विश्व के आकर्षण को रचा था—पुरुष के लिये, उन दोनों के लिये, किन्तु उस आकर्षण में कृत्वाभिमान में मिटे हुए अस्तित्व को लेकर 'श्री', 'विजय' और 'कीर्त्ति' पुरुष को मोहित कर ले गई।

निश्चछल नारी विश्वासों की पग-ध्वनियों में कुछ कह नहीं सकी।

'चेतना', 'सम्प्रीति' और 'मंगल' का इतिहास यों आरम्भ हुआ था।

हिन्दी साहित्य अपनी परम्परा[1] से साम्य और उसका आधार लेकर चला है। वह परम्परा विश्व-भावनाओं की थी—'चेतना', 'सम्प्रीति' और 'मंगल' की—'मानव-दर्शन' की . . है . . . और . . . होगी।

विश्व-साहित्य और उसका इतिहास परिपूर्ण है हिन्दी साहित्य की मंगलवाणी से.......इन शब्दों में :—

'अभिसिक्त वरदारों की मंगलवाणी विश्व का कल्याण कर रही है, करेगी, नारी का श्रृंगार और मानव का राजतिलक कर रही हैं, करेगी।'

---

१ स्वाध्यायोऽध्येतव्य :

—जैमिनि

अर्थात्, अपनी परम्परागत किसी भी एक शाखा का अध्ययन करना श्रेय है।

हिन्दी साहित्य की परम्परा—'समष्टि' की है।—लेखक

परम्परा—

ऋषि-भूमि की विचार-धारा का सूक्ष्म 'मानव-दर्शन'—सूत्र केवल संकेत-मात्र।—ले०

प्रण्वतत्त्व ओंकार. . वेद . . . इतिहास और पुराण . . . ब्राह्मण . . . आरण्यक . . . उपनिषद् . . . रामायण . . . महाभारत . . . गीता . . . सूत्र . . . स्मृतियाँ . . . वेदांग . . . कपिल . . . पतंजलि जैमिनि . . . गौतम . . . कणाद . . . . वेदान्त . . . . . भगवान बुद्ध . . . . महाबीर स्वामी . . . अशोक, महेन्द्र-स्थविर (२५९ ई० पू०—२९९ ई० पू०) . . . अश्वघोष (ईसा की प्रथम शताब्दी) नागार्जुन (ईसा की द्वितीय शताब्दी) . . कालिदास . . . भवभूति . . . दण्डी . . . . . . भारवि माघ . . . जगद्गुरु श्री शंकराचार्य (६८६ ई०) . . . पुष्य . . . (७१३ ई०)—सरहपा . . . (७५०—८०६ ई०) यामुनाचार्य . . रामानुजाचार्य . . . निम्बार्काचार्य्य . . . नरपति . . . . चन्द . . . . जगनिक माधवाचार्य . . . नामदेव . . . राभानन्द . . . विद्यापति . . . कबीर . . . चण्डीदास . . . रैदास . . जयदेव नानक . . . वल्लभाचार्य्य . . . . सूर . . चैतन्य . . जायसी . . मीरा . . . नरसी . . तुलसी . . दादू . . . नरोत्तम . . . रहीम . . रज्मनामा (महाभारत) ... सीरुल-अकबर (उपनिषद्) . . . केसव . . रसखान सेनापति . . . सुन्दर . . . नाभादास . . . तुकाराम . . . . क्रमशः ?

परिचय युग
(६८६* ई०—१३६० ई०)

सत्-पथ को भुलाकर, सम और विषम में उलझ कर मानव अपनी शक्ति को धरता[1] था, किन्तु विवश था। यह विवशता राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा किसी अन्य प्रकार की हो तो मैं नहीं कह सकता पर वह विवशता मानव की मानव के प्रति विश्वासों की निश्चय थी।

मानव का गौरव अग्रसर था... मिलकर 'एक' होने को।

विश्व का मानव अपना-अपना परिचय दे रहा था, नारी भी मौन न थी।*

'Man as man had little significance then in the Middle Ages' ⊙

D. R. Bhandari.

---

*जगद्गुरु श्री शंकराचार्य का जन्म ६८६ ई० में माना जाता है।

देखिये :—'हिन्दी-विश्व-कोष'—'अक्षर 'श' के अन्तर्गत 'शंकराचार्य्य'।

नोट :—अन्य विद्वानों ने श्री शंकर का काल ७८८ ई०—८२० ई० का माना है। —ले० *देखिये :—'इतिहास' शीर्षक लेख, स्वाधीन चिन्तन, प्रथम भाग

१—देखिए :—हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग २

नोट :—जिस प्रकार जन्म के साथ मृत्यु उत्पन्न हो जाती है ठीक उसी प्रकार 'सम' के साथ 'विषम' अथवा 'विषम' के साथ 'सम' उत्पन्न हो जाता है। भारत में प्रथम पदार्पण अरब-यवनों ने ६६४ ई० में किया था... एक आक्रमणकारी के विजय-घोष में 'स्व', 'स्वत्व', 'स्वार्थ', 'अभिमान', 'अविश्वास', 'भय' और 'आतंक' की यदि विषमता लेकर, तो संतुलन में युग की अनेकानेक विश्व-मंगल-विभूतियों में से श्री शंकर ६८६ ई० में भारत में उत्पन्न हो गये—'चेतना', 'सम्प्रीति' और 'मंगल' लेकर। सम और विषम में तुलना नहीं, सन्तुलन है। युग युग में तलवार एक ही रही है, हाथ बदलते रहे हैं। फिर वही हाथ मिलने को बढ़ा है—बढ़ेगा।—ले०

⊙—**विश्व-इतिहास का मध्य-युग (५०० ई०—१४९२ ई०)—ले०**

सम्प्रीति युग
(१३६० ई०—१६६० ई०)

सम्प्रीति-युग ने विश्व का मानव-मंगल काव्य रचा है।

. . . .

अपने जीवन की प्रथम रश्मि से पूंछ लेना?
विश्वासों में टटोलना, संघर्ष में देखना?
पीड़ित मानवता की सिसकियों में सुन लेना?
जीवन के हर्ष-विषादों में खोज लेना?

सुनहली आशाओं की अठखेलियों में उलझ न जाना।
वेदनाओं की टीस सह लेना, किन्तु चुप होकर।
भूलना नहीं, विश्व-भावनाओं की ओर झांक लेना।
देखना! अतीत की मधुर स्मृतियाँ तुम्हें व्यग्र न कर सकें।
उद्विग्न मत होना। प्रतीक्षा तुम्हें तपा न सकेगी, चिन्ता घुला न सकेगी और निराशा तुम्हें रुला न सकेगी।
कर्त्तव्य की बलिवेदी पर ठिठुक न जाना।
और, सुख की मधुर कल्पनाओं में भुला न देना :—
मानव का 'सत्य' और नारी का 'मंगल' रूप।
किन्तु, मानव का मंगल-काव्य उन्होंने रचा है जिनके जीवन में अपना 'मंगल' कोई नहीं था।

'Inner is ringing and shall ever ring true.'

देखिये :—हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग २

विस्मृति युग
(१६६० ई०—१८३३ ई०)

और......वह सिहरन......जो अधरों पर थिरक गई थी?

यौवन की प्याली से छन-छन कर जो मदिरा ढल रही थी......ऐश्वर्य और वैभव की विलास अरुणिमा......वह मधुर-रति थी।

अन्त:पुर की सूनी मधुशाला में जो प्रतीक्षा थी....वह पार्थिव जीवन की ममता थी।

कटाक्ष के वाणों में जो निर्भीकता थी....वह हिलती हुई सत्ता की निर्भरता थी।

किन्तु जीवन की उस शिथिलता में, पतनोन्मुखी भावनाओं में युग ने 'नारी' को यदि अधिष्ठात्री बना लिया हो तो मैं कह नहीं सकता, पर निश्चय ही रस-राजत्व में लिप्त और आकांक्षाओं से अतृप्त 'श्री', 'विजय' और 'कीर्त्ति' पुरुष को मोहित कर ले गई। वह 'श्री' चंचल थी, वह 'विजय' मदभरी और वह 'कीर्त्ति' केवल मोहक।

भविष्यत् की प्रतीक्षा करता हुआ अतिक्रमण युग का साहस था। शौर्य-बल-विक्रम-वीर्य और प्रताप में नहीं, लोक-प्रकम्पन शब्दों मे था, पर मन ही मन हताश था...खिन्न। नख-शिख-कुच-कटि वर्णन युग का रस-तत्त्व हो, तो हो, पर प्रत्येक 'ध्वनि' में एक चिन्तित स्वर था......प्रत्येक 'अलंकार' केवल जी का एक बहलाव था.....और प्रत्येक 'गुण' मानों विकल और अस्तित्व-विहीन-सा। फिर उठ न सकी थी वह...शेष-शक्ति...देश की।

श्रृंगार के माधुर्य्य में पुरुष अस्तित्व खोजता था तो समर्पणशील नारी युग के सामर्थ्यहीन पुरुष को साधना की शक्ति दे देती थी......अपने साहस को बटोर कर...... किन्तु विवश......?

फिर, आवेश की थपकियों में युग के 'पुरुष' ने 'सम्प्रीति' को भुला दिया और मन की उमंगों में युग की 'नारी' ने अपने 'मंगल' रूप को।

किन्तु, मन की प्रत्येक प्रतिक्रिया में विद्रोह की भावना लेकर जो अग्रसर था.....वह नारी का गौरव था।

अस्तित्व-विहीन पुरुष को मंगल की ओर ले जाने वाली शक्ति नारी थी, है और होगी।

स्मृति युग
(१८३३ ई०*—२० वीं शताब्दी)

'शची की अमरावती तुम बिन शोभा नहीं पाती'!

'किन्तु, नाथ! शची की अमरावती किसी ने देखी नहीं, पर इस अंचल[1] की शोभा तुमसे है।'[2]

'Men and women together compose the fullness of humanity.'
Hippel.

---

१ **'सोहे न बसन बिना बर नारी'**

—तुलसी

२ देखिये—**हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ५**

*नोट :—'विस्मृति-युग' का आरम्भ मैंने १६६० से किया है। इससे लगभग ५५ वर्ष पूर्व १६०५ ई० में अकबर महान का शासन काल समाप्त हो चुका था। १६०५ से १६२७ ई० तक जहाँगीर और १६२७ से १६६० ई० तक शाहजहाँ ने मुगल-साम्राज्य का परिचालन किया। मई १६५९ से १७०७ ई० तक औरंगजेब ने साम्राज्य की बागडोर संभाली। औरंगजेब के पश्चात् लगभग ५४ वर्ष तक साम्राज्य की सत्ता हिलती रही। १७६१ से १८५८ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन रहा। किन्तु १८३३ में विश्व की विराट भूमि में—ब्रिटिश साम्राज्य में एक महान घटना—घटी। वह घटना मानव के इतिहास की एक उत्सव-घटना—थी—विश्व-भूमि से 'दासता'[3] का निर्वासन हुआ। हिन्दी साहित्य के इतिहास में १८३३ ई० में 'पद्माकर'—रीति-युग के अंतिम कवि—की मृत्यु हुई थी। पद्माकर का जन्म बाँदा में १७५३ में हुआ था और मृत्यु कानपुर में १८३३ ई० में। १८३५ ई० में विश्व इतिहास में 'Socialism' 'समाजवाद' शब्द का प्रथमवार प्रयोग हुआ था—अपने समाज को पहिचानना 'स्मृति-युग' का प्रथम चरण था।— ले०

३ Act Abolishing Slavery in the British Empire was passed in 1833. (देखिये :—इस पुस्तक का पृ० २६०)

साहित्य सन्देश

ओ मानव की अमर कहानी !
ओ पथ-पथ के अनुराग-विराग !
ओ सुखद विश्व के सुन्दर सार !

और,

ओ जीवन के हर्ष-विषाद !
यह है वह......विश्व-विश्व का प्रणय-सन्देश :—

—'समदृष्टिने', 'समदर्शनम्'। और विषम का विध्वंस ?—विध्वंस तो केवल 'मंगल' लिये आता है, अपने लिये नहीं।

ओ मानव के शेष[१] !
विदा !

Not the Atomic Rays[२] but Cosmic Rays of 'समदृष्टिने".
Will bring Glory, Peace and Happiness
To the Suffering Humanity,
To Man,
To his Love, Life and to his Literature,
Aud above all to his Oneness,
To the Creator of Man,
The One.
And In No Age Has Ended The *Glory* That Was Of Man,
In No Age or Ages To Come That Will end.
Thus and thus alone........thus the Story ends *not*.

---

१ 'Perhaps there are greater souls than Shakespeare and greater minds than Plato waiting to be born.' *Will Durant*

२ विज्ञानवेत्ता आइन्स्टीन ने अपनी मृत्यु से थोड़े ही समय पूर्व यह शब्द कहे थे :—

'I made one great mistake when I signed the letter to President Roosevelt recommending that atomic bombs be made.'

Albert Einstein · THE LEADER. July 7th. 1955 पृ० ५

उत्तरदायित्व

ओ जीवन के सारथी !

वर्तमान तुम्हारा स्यंदन है, और निश्चय ही भविष्य की डोरी तुम्हारे हाथ है।

फिर, उत्तरदायित्व किस पर ?

विदा,

. . . तुम्हारा

. . . .

'The future I may face, now I have proved the past.'

Browning.

पूर्वजों का मंगल-आशीर्वाद

"लो ! यह तुम्हारी अक्षय निधि है। यह तुम्हारे जीवन को सुन्दर, यशस्वी दिव्य, और पावन बनावेगी।"

A Joy *profound*.........and...........*forever*,

But.. ....'how careful should an author be of not committing anything to print that may corrupt *posterity*.'

—*Addison*.

साहित्य की स्वस्ति-श्री

और

यों

आरम्भ होता है

'चेतना'.

'सम्प्रीति'

और

'मंगल'

का

इ...ति...हा...स

With life[1] retold Hindi Literature has *immortalised* Man, a man full of faults, yet truely *humane*.

It *presents* a continuity of life—life as a whole—a *Child*, a *Youth*....a *Man* grown up.

And *presents* Woman in her *elements*.

It lays hands on all that is *rough* in life.

But harmonises *Life* with *Diversity*,

Diversity with *Unity*,

Unity with *Diversity*,

All in One............. One in All.

And

Creates a better world to live.............*live so well on*..

Thus..*begins*.............The History of Man,

The Philosophy of Life,

The Literature of Love,

The Art of *living*....The Science of the lived...the living...and yet to live,

.........*in a word*.....*begins the History of Humanity*.

---

१ देखिए :—लेखक की 'रेखा और कण'

संदर्भ-संकेत

ऋ०	ऋग्वेद
अथर्व	अथर्ववेद
मनु०	मनुस्मृति
दत्त	Epoch of Indian History (Ancient India) By R. C. Dutta.
लूकस	A Short History of Civilization. By Henry S. Lucas.
स्वेन	A History of World Civilization By James Edger Swain.
बार्नस	A Survey of Western Civilization. By H. E. Barnes.
राइट	Alexander The Great. By F. A. Wright.
मैसपीरो	Dawn of Civilization of Egypt and Chaldia. By G. Mespero.
वेल्स	Outline of History By H. G. Wells.
बनर्जी	The Age of the Imperial Guptas. By Profe. R. D. Bannerji.
ल्यो हुबरमैन	Man's Worldy Goods. By Leo Huberman.
श्री गंगानाथ झा	Hindu Law in Resources. By Ganganath Jha.

P. K. Acharya. Elements of Hindu Culture and Civilsation.
By P. K. Acharya.

तु०	तुलना
पृ०	पृष्ठ
टि०	टिप्पणी
पृ०—टि०	इस पुस्तक के पृष्ट तथा टिप्पणी

निर्देशन

साहित्य की पृष्ठ-भूमि—

संस्कृति और सभ्यता

'अग्रसर है मंगलमय वृद्धि'

—प्रसाद।

इतिहासवेत्ताओं के मत में आज से लगभग १५०,००० वर्ष पूर्व से मानव की कहानी आरम्भ होती है। इसमें से लगभग १३०,००० वर्ष 'पूर्व-पाषाण-काल'[१] के थे। इस काल में मनुष्य केवल भोजन और स्वरक्षा की समस्या में ही व्यस्त था। नग्न प्रकृति से युद्ध लेना ही उसकी दिनचर्य्या थी। रक्षा हेतु उसके पास अस्त्र-शस्त्र भी नहीं थ। पत्थर ही उसके जीवन का सहचर था। किन्तु आवश्यकता हेतु, पत्थर से ही उसने 'बाण' और 'भाले' बना डाले।

'पूर्व-पाषाण-काल' के पश्चात् लगभग १०,००० वर्ष के काल को इतिहासवेत्ताओं ने 'नवीन अथवा उत्तर पाषाण काल'[२] कहा है। इस युग में मनुष्य ने अग्नि का प्रज्वलित करना सीखा......पत्थर से ही, पत्थर-पत्थर की रगड़ से। कन्दराओं में रहना इसी युग में आरम्भ हुआ। कन्दराओं की दीवारों पर चित्रकारी भी इसी काल में आरम्भ हुई। मनुष्य जिन जानवरों को देखता था, भोजन अथवा स्वरक्षा हेतु जिन जानवरों को मार डालता था उन्हीं के चित्रों से अपनी कन्दराओं की दीवारों को सुशोभित[३] कर लेता था। इस काल की विशेषता केवल इस बात में थी कि चित्रकारी एवं घोष द्वारा मनुष्य ने अपने विचारों एवं इच्छाओं को प्रकट करना सीख लिया था।

धीरे-धीरे मनुष्य का ध्यान 'कृषि' की ओर गया। यह ईसा के ७ या ८ हजार वर्ष पूर्व की बात है। मनुष्य तो अब भी अहेरी के ही रूप में था, किन्तु स्त्रियों ने 'बीज' एवं

---

१. Paleolithic

२. Neolithic

३. "Thus we have pictures from that time of bears, sheep, deer, gazelles, oxen, buffaloes, and rhinoceroses, as well as lions, panthers, jackals and hyenas."

—*A Short History Of Civilization.*
By Henry S. Lucas. पृ० ४०

उसके द्वारा 'अन्न'[1] की उत्पत्ति का पता लगा लिया। कृषि आरम्भ हुई। मनुष्य के सामाजिक जीवन का आरम्भ, यदि इस युग से कहा जाये, तो मनुष्य के इतिहास-क्रम में कोई विशेष अन्तर होने की सम्भावना नहीं। कृषि के कारण मनुष्य को अनिवार्यरूपेण छोटे-छोटे गाँव बना कर, हिल-मिल कर ही रहना पड़ा। कृषि के साथ 'गोधन' अथवा पशुओं का पालना भी उसकी आवश्यकताओं का एक अंग हो गया। और ज्यों-ज्यों मनुष्य का जीवन सुव्यवस्थित होता गया वह सभ्यता की ओर अग्रसर होता गया। धीरे-धीरे उसने ताँबा, सोना, चांदी, लोहा, टीन इत्यादि धातुओं को खोज निकाला और उन्हें अपने काम में लाना आरम्भ किया। अन्न धन को सुरक्षित रखने के लिये मिट्टी के बर्तन, चढ़ने के लिये 'रथ', नदियाँ पार करने के लिये नौकाएँ और पहिनने के लिये सोने, चाँदी के 'आभूषण' गढ़ डाले। धातुओं द्वारा 'अस्त्र-शस्त्र' एवं औजारों को भी तैयार कर डाला। इसी युग में मनुष्य संसार की उस 'हरित भूमि' में जा जाकर बस गया जहाँ से संसार के इतिहास में संस्कृति एवं सभ्यता का इतिहास आरम्भ होता है। अब मनुष्य शासक बनने की इच्छा से प्रेरित हुआ। वह समृद्धिशाली बनने की ओर अग्रसर हुआ।

भू-चित्र के पूर्वी गोलार्द्ध में स्थित अफ्रीका, योरुप तथा एशिया में हरित भूमि वाले स्थान 'नील नदी' की घाटी में 'मिश्र', टिगरिस[2] और युफरेट्स[3] (दजला और फरात) नदियों की घाटी में 'मेसोपोटामिया', सिन्धु नदी की घाटी में उत्तरी भारत, उसकी 'गङ्गा' और 'ब्रह्मपुत्र' की हरित भूमि तथा 'हांगहो',[4] 'यांग्टसी'[5] तथा 'सी'[6] नदियों की घाटी में स्थित चीन की हरित भूमि थी। यही स्थान, विश्व के इतिहास में, संस्कृति एवं सभ्यता के उद्गम एवं केन्द्र बने। मिश्र, मेसोपोटामिया, तथा भारत और चीन की संस्कृतियों और सभ्यताओं की नीव पड़ी। इन्हीं संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के विस्तार, सम्पर्क अथवा संसर्ग में आने के कारण एशिया माइनर में 'अरब' और 'फारस' तथा योरुप में 'ग्रीक' तथा 'रोम' की सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु इनमें से मिश्र, मेसोपोटामिया और विशेषकर भारत की संस्कृति एवं सभ्यता के प्रादुर्भाव के विषय में उपरोक्त कथन पाश्चात्य विचारों से अभिभूत विद्वानों के मत का है, उनकी तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के इतिहास[7] का नहीं।

---

१. 'अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति।'
(तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली, द्वितीय अनुवाक १)

अर्थात्, सब प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर अन्न से ही जीते हैं।

तु० गीता ३/१४

२/३. The Tigris-Euphrates. ४. Hwang Ho. ५. Yangtze.
६. Si ७. देखिये *Centres of Ancient Civilization* By H. D. Daunt.

'संस्कृति' अथवा 'सभ्यता' को परिभाषा द्वारा सीमित करना उनके तत्त्वों से अधिक दूर हो जाना-सा प्रतीत होता है। इतिहासवेत्ताओं ने भी इनके अर्थ और आशय[१] का ही बोध कराया है। किन्तु इतना अवश्य है कि मनुष्य संस्कृति में अपना 'गौरव' देखता है, और सभ्यता में 'मान'।

आर्य सभ्य थे, इसीलिये न, कि उनकी दृष्टि में 'दस्यु' असभ्य थे। दस्यु ऐसा ही सोचता था।

दस्यु असभ्य थे। वे बर्बर थे। वे पराजित थे। वे काले थे। उनमें न आर्यों का-सा 'कृषि'* का ज्ञान था और न किसी देवता की पूजा का ही ज्ञान। किन्तु उनमें भी सत्ता के लिये संघर्ष था। जीवित रहने की इच्छा उनमें भी उतनी ही प्रबल थी जितनी आर्यों में। उनके पास भी 'नगर' अथवा 'दुर्ग' एवं प्रचुर सम्पत्ति थी। ऋग्वेद की ऋचाओं में उनके 'पुरों[२]'—'नगर' अथवा 'दुर्ग'—का वर्णन मिलता है। उनकी सम्पत्ति के पीछे आर्यगण

---

१. "Civilization is a social order promoting cultural creation. There is no racial condition to civilization. It may appear on any continent and in any colour at Peking or Delhi, at Memphs or Babylon, at Revenna or London, in Peru or Yucatan. It is not the great race that makes the civilization. It is the great civilization that makes the people, circumstances, geographical and economic create a culture and culture creates a type. Civilization is not something inborn or imperishable, it must be acquired anew by every generation."

—Will Durant

"Culture primarily aims at the refinement of natural intelligence and capacities to its fullest growing power. It is revealed in the individual and social responsibilities and obligations spontaneously... ...."

"Civilization......aims......at making the man happier, nobler and better off."

—P. K. Acharya

२. 'पुरो विभिन्दन्नचरद्विदासी' ऋग्वेद १. १०३. ३

*'क्षेत्रस्य पूतिना वयं हितेनेव जयामसि गामश्व पोषियत्ना स नो मृलातीदृशे'

ऋ० ४. ५७. १

अनुवाद :

"We will till this field with the Lord of the Field,
May He nourish our horses, May he bless us therebv."

सदैव ही पड़े रहे। वे प्रार्थना करते थे, 'हे इन्द्रदेव ! दस्युओं का नाश कर दो ताकि हम उनकी सम्पत्ति परस्पर बांट[१] लें।' आर्य्यों के इन्द्र, वरुण, मित्र, आदित्य, वायु, मारुत, अग्नि, रुद्र, बृहस्पति, और यम इत्यादि देवताओं को न मानने अथवा आर्य्यों के समान 'यज्ञ' न करने के ही कारण ऋग्वेद की ऋचाओं में 'दस्यु' 'कृष्ण त्वच,'[२] 'अमानुषिम,' 'अयज्यून'[३], 'अदेव्यु,' 'अकर्मा'[४], 'अनास', 'अव्रत'[५], 'अब्रह्म'[६] तथा अन्य ऐसे ही शब्दों द्वारा उसे अनिष्ट भूत का रूप दिया है।

आर्य्यों के रथ, अश्व, धनुष, वाण, और कवच से दस्यु परास्त हुआ, फिर, वह घोर वनों, निर्जन कन्दराओं, 'शिफायाः[७],' 'अंजसी'[७], 'कुलिशी',[७] 'वीरपत्नी'[७] इत्यादि नामक नदियों तथा उनके कूल-कछारों में जा छिपा।

किन्तु, प्रतिक्रिया में, दस्यु भी समय और अवसर पाकर, आर्य्यों पर आक्रमण करता था और जहाँ तहाँ उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देता था। 'कुयवस्य'[८] तथा 'यो'[९] नामक दस्युओं के नाम से वैदिक काल के आर्य्यगण भयभीत रहते थे। दस्युओं को समूल नष्ट करने की इच्छा से प्रेरित आर्य्यगणों ने उन वनों, कन्दराओं, नदियों एवं कुल-कछारों को भी छान[१०] डाला। दस्यु को नष्ट कर दिया। और वन-भूमि को कृषि योग्य बना लिया। उपनिवेश बसा लिया।

---

१. ऋग्वेद ८. ४०. ६

२. 'त्वचेकृष्णा' ऋ० १. १३०. ८ (इन्द्र कृष्णत्वचा को फाड़ डालते हैं।)

३. ऋ० ७. ६. ३ (जो यज्ञ न करता हो)

४. 'अकर्मा दस्युरभि' ऋ० १०. २२. ८ (बिना धर्म-रीतियों के)

५. 'अव्रतम्' ऋ० ६. १४. ३ (जो आर्य न हो)

६. 'मायावानब्रह्मा' ऋ० ४. १६. ६ (जो ब्राह्मण नहीं)

७. ऋ० १. १०४. ३ व ४ (नदियों के लिये देखिये 'वैदिक साहित्य' पृ० २८७)

८/६. ऋ० १. १०४. ३. ४

१०. "Forests were explored and cleared ; swamps and rivers were crossed ; strong fastnesses were taken ; and the offending chief and his 'fleet and godless army' were at last haunted down and exterminated."

—*Epochs of Indian History* (*Ancient India*)
By R. C. Dutta   पृ० १५

नोट : "Mention is often made in ऋग्वेद of 'सप्त सिन्धु' (seven rivers) which in one passage at least is synonymous with the country inherited by the Aryan Indians. In the Avesta (अवस्ता पारसियों का धर्म-ग्रन्थ) also Hapta-Hindu occurs to mean only that part of Indian territory

वैदिक काल की सभ्यता 'गृह', 'यज्ञ', 'ग्राम','गो', और 'कृषि' से आरम्भ होती है और 'गृहपति[१]', 'यज्वय', अथवा 'ब्राह्मण', 'ग्रामणी[२]', और 'राजन्' में विकसित और फलित होती है। 'पितृ'[३], अर्थात् 'रक्षक', गृह का 'गृहपति'[४] होता था। गृह की समस्त सम्पत्ति पर उसका सम्पूर्णतः अधिकार होता था। गृह का प्रत्येक जन उसकी आज्ञा में होता था। गृहिणी केवल अर्द्धाङ्गिनी ही नहीं, प्रत्युत यज्ञ इत्यादि कर्मों में भाग भी लेती थी। स्वयंवर[५] होते थे किन्तु विवाह एक संस्कार[६] था, संविद[७]नहीं। विधवा[८] विवाह भी हो सकता था। स्वर्ण, हीरक, अथवा आभूषण उस काल के धन के अन्तर्गत नहीं थे। आर्य्यों का धन[९] था–गोधन[१०],अश्व,सन्तान तथा भोग-सामग्री। गौ[११]द्वारा वे क्रय-विक्रय अथवा विनिमय भी

---

which lay in the Eastern कबुलिस्तान। If 'seven' was used for a definite number, it would comprise the काबुल, सरस्वती and the five rivers of the Punjab."

History of Sanskrit Literature
—By Macdonnell. पृष्ट १४१

१. ऋ० ६. ५३. २

२. ऋ० १०. ६२. ११

३. 'पितृ' meant primarily protector in संस्कृत as well as in Latin and Greek, whereas fatherhood was conveyed by an entirely different word 'ganitri' in संस्कृत, 'genitor' in लैटिन and 'gennetae' in ग्रीक."

Aryan polity
पृ० ६

४. ऋ० ६. ५३. २

५. "A girl generally selected her own husband and her parent's wishes were for the most part respected."

—श्री दत्त, पृष्ट २३

६. ऋ० १०. ८५. ४२ से ४७

७. 'Contract. (As in Mohammedan and Christian Law)

८. "Widows could remarry after the death of the husbands."

—श्री दत्त, पृष्ठ २३

९. Wealth is the index of the state of society.

"The Aryana had gold, jewels, and ornaments but these are not specifically mentioned as wealth."

Aryan polity
पृ० ३१

नोटः—ऋ० १. ७३. १ में 'धन' को 'रयिर्न' कहा गया है।

१०/११. 'क इमं दशभिर्ममेन्द्र क्रीणाति धेनुभिः' (ऋ० ४. २४. १०.)

करते थे किन्तु उनकी मुद्रा थी निष्क[१]। वे ग्राम बनाकर रहते थे और ग्राम का स्वामी ग्रामीण[२] कहलाता था। भूमि पर व्यक्तिगत[३] अधिकार को भी 'धन' ही मानते थे। 'भू' का पति 'भूपति' होता था, और ऋग्वेद में म० ६ अ० ८ सू० ४ में 'विशो[४] राजानमुप'— 'विशो' का अर्थ 'प्रजा' से ही है—ऐसा वर्णन है। इस प्रकार राज्य व्यवस्था भी थी। कर[५] व्यवस्था भी। किन्तु यह बात नहीं कि वैदिक काल के आर्य्य 'संघ'[६], 'गण'[७], 'स्वराज' तथा 'वर्ग'[८] राजनीति अथवा शासन से परिचित नहीं हों। सभा[९] और समिति[१०]—यद्यपि यह प्रजापति की दो दुहितायें अथवा पुत्रियाँ थीं तथापि 'जनहित' पर वाद-विवाद वहीं होता था। सभा में भद्र पुरुष और समिति में भद्र पुरुषों में राजा स्वयं सुशोभित होता था।

यज्ञ उनका कर्म था—नित्य का कर्म। पूजन प्रकृति का होता था किन्तु भय से नहीं, भावना से। उनका 'ब्रह्म' अथवा 'ॐ' अनेक रूप, अनेक नाम का था—सत्य और नित्य।

अर्थात् यह कौन पुरुष है जो हमारे इन्द्र (इन्द्र की मूर्ति) को गायों से मोल ले रहा है ?

१. ऋ० ८. ४७. १५
२. ऋ० १०. ६२. ११
३. Right to land.
४. ऋ० ६. ८. ४
५. राष्ट्र (Under राष्ट्र are included—produce from crown lands——tithe.) (ऋ० ७. ६. ५)
६. Federation.
७. Republic (ऋ० १०. १७३. १) 'स्वराज' ऋ० १. ३६. ७
८. Party Politics.
९. "सभा is mentioned in ऋ०६. २८. ६ as an assembly and hall or meeting place for social intercourse and discussion of public matters. Several verses go to point to the ऋग्वेद की सभा as Council of Elders or Nobles."

—*Element of Hindu Culture and Sanskrit Civilization.*
By P. K. Acharya. पृ० १३५

१०. "समिति was attended by the King (ऋ० ६. ६२. ६.) The King is said to meet the समिति with power invincible and capturing their minds and their resolutions. It is also stated in ऋग्वेद that concord between the King and समिति was essential for the prosperity of the realm."

वही, पृ० १२३

वह एक[१] ही था, किन्तु एक में अनेक भी था और अनेक में एक। मूर्ति पूजन नहीं होता था किन्तु[२] मूर्तियाँ होती थीं। उनका सम्मान भी होता था। उनकी सीता[३] (हल) उन्हें अन्नधन देती थी। जौ और गेहूँ उनके अन्न[४] थे। दूध, दही,[५] घी[६] से वे जीवन में शक्ति का संचय करते थे और उस शक्ति को आह्लादित अथवा उन्मादित कर देती थी उनकी सुरा[७]--'सोमरस'[८]। वस्त्रों का बुनना एवं सीना पिरोना वे भली भाँति जानते थे। अनेक प्रकार के सोने, चाँदी, हीरे, रत्न, हाथीदाँत, हड्डियों और कौड़ियों के आभूषण वे धारण करते थे। कर्ण-शोभना[९], निष्कग्रीवा,[१०] वक्ष-रुक्म, मणिग्रीवा[११] इत्यादि उनके

---

१. "यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवाना नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥"
—ऋग्वेद १०. ८२. ३ (मन्त्र)

अंग्रेजी अनुवाद —

"He who has given life, He who is the Creator, He who knows all the place in this universe, He is one, although, He bears the names of many gods. Other beings wish to know Him."

नोट :—"This is the earliest indication of Hindu monotheism, that monotheism which has continued to be the true religion of the Hindus for over three thousand years."

—*Epochs of Indian History* पृ० ३४
By R. C. Dutta

२. देखिये टि० १०।११, पृ० ५

३. ऋ० ४. ५७. ६

अंग्रेजी अनुवाद :—

"O' fortunate Sita (Furrow) proceed onwards, we pray unto thee. Do thou bestow on us wealth and an abundant crop."

Translated by Shri Dutta.

४. "In the Vedic period wheat and barely (yava) was the principal produce of the field."

P. K. Acharya पृ० ५२

५. 'दधि' ऋ० ८. २. ६

६. 'घृत' ऋ० १. १३४. ६

७. तु० सुरा—इसे पारसियों के ग्रन्थ 'अवस्ता' में 'हुरा' कहा गया है।

८. ऋ० २. ३. ६

६. ऋ० ८. ७८. ३ (कान के बुन्दे) कंकरण (ऋ० १. १६६. ८)

१०. ऋ० २. ३३. १० (गले का हार) नूपुर (ऋ० ५. ५४. ११)

११. ऋ० १. १२२. १४ (हार)

आभूषण थे। रहने के लिये गृह[१], प्रासाद, विशाल भवन और यज्ञों के लिये यज्ञशालाओं का वे निर्माण करते थे। दुर्गों में पत्थर का प्रयोग करते थे। सहस्र स्तम्भ वाले भवनों का वर्णन भी ऋग्वेद में आता है। यज्ञों के लिये समय निश्चित करने की खोज में नक्षत्रों एवं ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था। वैद्यक[२] का ज्ञान उन्हें भली भाँति था। अश्वनी, वरुण और रुद्र वैद्यक के देवता थे। मल-मूत्र नहीं, जड़ी-बूटियों[3] का प्रयोग औषधियों में होता था। वैदिक युग का धर्म अर्थात् व्यवहार अथवा विधि (Law) श्रुति[४] में अंकित था। श्रुति वेद का रूप है। वेद नित्य हैं। उनमें उनकी अनुभूतियाँ‡ सूत्र-बद्ध थीं और सूत्र संचित थे—कण्ठ में। अंकित थीं ऋचायें—स्वर और छन्द* में। अन्त्येष्ठि उनका अन्तिम कर्म था।

---

१. वैदिक युग से पूर्व भी :—

"Of the Indus civilization covering the period from B. C. 3250 to 2750 the buildings discovered at Mohenjo-daro, Harappa and other places in Sindh along the Indus comprise dwelling houses, shrines and public baths. The houses vary from the smallest ones of two rooms to the large ones of 85 feet frontage and 97 feet depth with wide entrance hall, and doorway, porter's lodge, 32 feet square courtyard, surrounded by chambers on both ground and upper floors. Such houses were paved with burnt bricks of nearly 27 feet long......"

P. K. Acharya. पृ० ७१

२. "Since many gods अश्वनी, वरुण और रुद्र are frequently called physicians........."

अश्वनी (ऋ० ८. १८. ८)
वरुण (ऋ० १. २३. ४)
रुद्र (ऋ० २. ३३. ४/७)

३. ऋ० १०. ९७. २२ the ब्राह्मण are also said to administer plants with healing effect."

Aryan Polity पृ० २०

४. मनुस्मृति २/७ 'श्रुति वेद है'—मिताक्षरा।
‡'सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति'—मनु।

नोट :—"अग्निहोत्र तथा अन्य ऐसी ही विधियों के लिये 'श्रुति' ही एक महान सन्देश एवं प्रेरणा है"—वीरमित्रोदय-परिभाषा पृ० ८—२५

*छन्द के नाम इस प्रकार थे—विराड्गायत्री, निवृद्गायत्री, निचृज्जगती, जगती, भूरिक्पङ्क्तिः, आर्षी त्रिष्टुप् इत्यादि इसी प्रकार अनेक नाम हैं।

स्वर—षड्जः, ऋषभः, गान्धारः, मध्यमः, पंचमः, धैवतः, निषादः।

सा—रे—गा—म—प—ध—नी

दस्यु मिट गया। किन्तु आर्य्यों के प्रति दस्यु की प्रतिशोध भावना नहीं मिटी। वह आर्य्य-आर्य्य के परस्पर के वैमनस्य में जा निकली। 'दासा[1] च वृता'—अर्थात् 'दस्यु' हो अथवा 'आर्य्य' अथवा 'और आर्य्य हो', 'हे इन्द्र! हे वरुण! उनका नाश कर दो और 'सुदास' की रक्षा करो'—से स्पष्ट है फिर आर्य्य-आर्य्य परस्पर लड़ने लगे। अकेले 'सुदास' नृप के विरुद्ध 'दश राजानुः'[1]—दश आर्य्यवीर खड़े हो गये। 'सुदास' विजयी हुआ। आर्य्य-आर्य्य के परस्पर के बैर-विरोध की भावनाओं के इतिहास का सूत्रपात हुआ। एक नवीन युग की घोषणा हुई। आर्य्यों का वह उपनिवेश अर्थात् 'सारस्वत प्रदेश' अथवा 'कुरुक्षेत्र'[२] जो श्री दत्त के अनुसार ईसा के लगभग २००० वर्ष पूर्व और श्री रंगाचार्य्य के अनुसार लगभग ४५०० वर्ष पूर्व आर्य्यों की सभ्यता ने दस्यु की बर्बरता को मिटा कर बसाया था छूट गया। वे[3] आगे बढ़े। ईसा के लगभग १४०० वर्ष पूर्व गंगा और यमुना के तट पर

---

१. ऋ० ७.८३.७ (यह दाशराज्ञ युद्ध कहलाता है)

२. "It has been concluded in the first Volume (of History of Pre-Musalman India by V. Rangacharya) that the original home of the आर्य्यगण lay in the area in which included काश्मीर, अफगानिस्तान and lands on both sides of the हिन्दूकुश। The geographical data afforded by the ऋग्वेद show that they spread themselves throughout the पंजाब and then passed on south-eastwards as far as गंगा and southwards as far as the sea.

............the main centre of the Rg-Vedic civilization lay in the plain of कुरुक्षेत्र and further west."

History Of Pre-Musalman India. Vol. II. (Vedic India) पृ० १६०

By V. Rangacharya.

३. "Vedic Aryans were split up into numerous tribes and were conscious of their unity in race, language and religion. The tribe, in fact, was the political unit well organised."

History Of Sanskrit Literature पृ० १५७—१५८

By Macdonnell

आ बसे। उनमें से कुरु, पाँचाल, मत्स्य, यादव और सूरसेन प्रमुख थे। ईसा के १४००—१००० वर्ष पूर्व के काल में कौशल, विदेह और काशी में, गंगा और गंडक के तट पर वे बस गये। यह देश 'आर्यावर्त्त'[१] कहलाया।

इतिहास की रेखायें बदल गईं। 'कुरु' और 'पांचाल' अपने-अपने क्षेत्रों—हस्तिनापुर और कम्पिल—में रहने लगे। एक नई सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु वैदिक काल के आर्य्यों की सभ्यता से हट कर। समाज में एक वर्ण-व्यवस्था आ गई, धर्म में एक निष्ठा और राजनीति में प्रभुत्व। वैदिक काल का 'ब्रह्म' अर्थात् प्रत्येक आर्य्य जो यज्ञ करता हो—इस काल का 'ब्राह्मण' अर्थात् जिसका एक मात्र कार्य्य केवल 'यज्ञ' करना अथवा कराना ही था—हो गया। ब्राह्मण जाति बन गई। वैदिक काल का 'वीसा' वैश्य और 'दस्यु' शूद्र बन गया। राजसत्ता, वैदिक काल ही में सुदास जैसे शक्तिशाली राजा के हाथ में पहुँच चुकी थी। इस काल में भी राजसत्ता केवल उन्हीं के हाथ रही जो उसे अपने धनुष और बाण के आधार पर रख सके। वे क्षत्रिय कहलाये। धर्म-क्षेत्र में वैदिक काल की उस भाव-सत्ता[२] का जिसका संकेत ऋग्वेद के मण्डल १० सूत्र ८२ में मिलता है, रूप निखर गया। वह भाव-सत्ता वैदिक काल में भी अनेक नाम, अनेक रूप की थी और आज भी है। 'चर और अचर में एक ही तत्त्व की प्रधानता है, उसी में सृजन, लय और प्रलय होती है,'—यही वह अनुभूति थी। यह अनुभूति ऋषियों की थी, उन ब्राह्मणों[२] की नहीं, जो क्षत्रिय राजाओं की राज एवं मान-सत्ता और उसमें निहित अपनी मान-सत्ता की वृद्धि हेतु पूजन की रीति एवं विधि में ही फँस कर रह गये। फलतः वेद व्याख्या में अथवा भाष्य रूप और उस भाव-सत्ता की अनेक नाम, अनेक रूप व्याख्या में ऋषियों ने 'ब्राह्मण', 'आर-

---

१. "The land of five rivers... Indus (together with झेलम, चुनाव, रावी, व्यास, सतलज), सरस्वती near कुरुक्षेत्र and थानेश्वर, गंगा (ऋ० ६. ४५. सू० ३१) यमुना, ब्रह्मपुत्र (ऋ० ५. ५२. सू० १७) was the earliest home of the Aryan settlers in India ; and it would seem that the settlers along with five rivers gradually formed themselves into five tribes or nations."

"It was these पंच जन of simple, bold, and enterprising Aryans, living by agriculture and by pastures on fertile banks of the Indus, and its tributaries which spread their civilization from हिमालय to कन्याकुमारी" ('पंच जन', ऋ० ६. ११. ४)

A History of Civilization in Ancient India. Book I, Ch. V.
By R. C. Duta पृ० ६२—६३

२. ऋ० १०. ७०. ७　　तु० "उपरोहिती कर्म अति मन्दा।
वेद पुराण स्मृति कर निन्दा॥"—तुलसी।

ण्यक,' तथा 'उपनिषद्'[1] इत्यादि वेदमार्ग रच दिये। उस भाव-सत्ता का कोई भी नाम हो सकता है और रूप भी कोई, किन्तु उस भावसत्ता के अनेक नामों में एक नाम 'आनन्द'[2] भी बताया है। 'ब्रह्म,'[3] 'अन्न,'[4] 'मन'[5], 'प्राण,'[6] 'विज्ञान'[7] और इस 'प्रकार' के अनेक नाम ऋषियों ने बता डाले।

और जब १६ वीं अथवा १७वीं शताब्दी के प्रमुख पाश्चात् विद्वान बेन जानसन[8] (१५७३ ई—१६३७ ई०) के मुख से यह शब्द सुने :—

"All human race from China to Peru
Pleasure, however, disguised, persue."

भावार्थ : 'चीन से पेरु तक सम्पूर्ण मानव जाति आनन्द के पीछे पड़ी हुई है, वह आनन्द कितना ही छिपा हुआ क्यों न हो ?'

और १८ वीं अथवा १६ वीं शताब्दी, में जेरमी बेनथाम[9] (१७४८—१८३२ ई०) के 'उपयोगितावाद'[10] में अथवा उसके 'Principles of Morals and Legislation' में यह शब्द :—

"The aim of human society is the greatest happiness of the greatest number."

'मानव समाज का उद्देश्य अधिक से अधिक व्यक्तियों के बड़े से बड़े सुख का है,'

और राबर्ट ओविन के 'समाजवाद' के यह शब्द सुने :—

"The primary and necessary object of all existence is to be happy."

---

१. शापनहार (१७८८-१८६०) जर्मन दर्शनवेत्ता 'उपनिषदों' के विषय में कहता है:—

"From every sentence deep, original and sublime thoughts arise and the whole is pervaded by a high and holy and earnest spirit. Indian air surrounds us and the original thoughts of kindered sprits ......it has been the solace of my life ; it will be the solace of my death.'

—Schopenhauer. (1788—1860 A. D.)

२. "आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।"

—तैत्तिरीयोपनिषद् (षष्ठ अनुवाक, श्लोक १)

अर्थात्, 'आनन्द से ही सब प्राणियों की उत्पत्ति, उसी में लय और प्रलय होती है।'

३. ४ ५. ६. ७ देखिये 'ब्रह्मान्दवल्ली', 'भृगुवल्ली'—तैत्तिरीयोपनिषद्

८. Ben Jonson (1573—1637)

६. Jeremy Bentham. (1748—1832)

१०. 'Utilitarianism-"that identified moral value with usefulness."

'सम्पूर्ण सत्ता का मौलिक एवं आवश्यक उद्देश्य सुखी होना है',[१]

और १६ वीं एवं २० वीं शताब्दी के मनोवैज्ञानिक युग में जब यह अनुभव [२] किये गये– पशु-पक्षियों में—

"A lost sheep is manifestly unhappy until it again finds the flock."

"Among horses, pleasuarable excitement spreads, as every hunting field show."

"The quacking of the ducks which is significant of satisfaction comes and goes in chorus; when one sets the example, the rest follow."

"In a rookery the cawing rises into bursts of many voices and .. ..the like holds with the screaming of parrots and macaws.

"Dogs........ ....will display joy on seeing a smile (of his master).

—भेड़, घोड़े, बत्तख, कौआ, और कुत्ते—यह सब भी सुख की लालसा में हैं। एक खोई हुई भेड़ जब तक अपनी अन्य भेड़ों के झुन्ड में पुनः न चली जाये तो उसे चैन नहीं पड़ता। अश्व हरे भरे स्थलों को देख कर हिनहिनाने लगते हैं। बत्तखें भी एक के पीछे हो लेती हैं—मग्न हो कर। कौआ भी काँव-काँव में ही आनन्द पाता है। तोता भी इसी प्रकार पढ़ने में सुख पाता है :—

—और 'अचर' में भी यह अनुभव हुये :—

"A sea Cathedral......Even the music is there in the sea in time of calm and soft murmer."

"Posies with fleming hearts."

"Sexuality of plants."

---

१. Robert Owen (1771—1858 A. D.) Owen in an 'Essay on the Formation of Character.'

२. *The Principles of Psychology*. Vol. II पृ० ५६१, ५६४
By Herbert Spencer. (1820—1903 A. D).

नोट : यह वाक्य (पृ० ११ पर 'जब' से) 'जब' अर्थात् क्रियाविशेषण-उपवाक्य के रूप में आरम्भ हुआ है, पर वाक्य बड़ा होने के कारण, इसका प्रधान-वाक्य (Principal Clause) 'तो' से अगले पृ० १३ पर दिया गया है"—ले०

भावार्थ:—[1] सागर में भी, जब वह शान्त होता है, एक संगीत होता है—सम्भवतः गम्भीर और प्रशान्त बहते हुये सागर में। पौधों में भी भोग के सुख की इच्छा है।

इस प्रकार, यदि यह सब कुछ है,......'तो' यह किसी आश्चर्य का कारण नहीं और यदि इन अनुभूतियों को किसी देश, जाति अथवा पुरुष ने निजी सम्पत्ति मान लिया हो, अथवा इनमें गौरव अथवा विशेषता देखी हो तो मुझे आपत्ति ही क्या[1]? इन अनुभूतियों का आनन्द उन्होंने तो उठाया ही होगा, किन्तु इन्होंने यह भी स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि इन ऋषियों की वह 'आनन्द' की अनुभूति सत्य थी, है और रहेगी।

उस भाव-सत्ता का दूसरा नाम 'सत्य' बताया है। श्रुति यदि 'वेद-स्वरूप' है, तो स्मृति 'सत्य-स्वरूप'। अन्तर केवल इतना ही था कि 'स्मृति' पुरुषकृत[2] थी। मनु पुरुष थे—'भारतीय इतिहास के आदिपुरुष[3]।' मनुस्मृति[4] केवल धर्म, व्यवहार अथवा विधान को ही नहीं, प्रत्युत जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्रों पर प्रकाश डालती है और माननीय थी उस युग में सम्पूर्ण आर्यावर्त्त* में। 'श्रुति', 'स्मृति', और 'सदाचार' आर्य्य अथवा मानव धर्म के आधार थे, आज भी हैं—कोई माने या न माने, सम्भवतः इस विचार से कि युग बहुत आगे बढ़ चुका है और विधान प्रगतिशील होता है। किन्तु स्मृतियों की सर्वमान्यता अथवा सर्वमाननीयता तभी हो सकती थी जब स्मृतिकार को वेदों का यथेष्ट ज्ञान हो; वह

---

१. *The Modern Marvels Encyclopedia.* पृ० ५६५
By John R. Crossland.

२. "Inasmuch as these स्मृतियाँ have emanated from human authors, and are not eternal like वेद."

Hindu Law in its Resources.
By Ganga Nath Jha. (Introduction) पृ० ३

३. 'कामायनी' का 'आमुख', पृ० ४

४. "They (मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियाँ) deal in fact with all departments of man's activity; they treat of life as one organic whole; a more or less full account being found of all such subjects as Cosmology, Theology, Philosophy, Anatomy, Physiology, Diplomacy, Kingship, Economics, the Duties of Subjects and so forth." श्री झा पृ० १६

"मनुस्मृति on one side as having authority over entire आर्यावर्त्त*"
तन्त्रवार्तिक—कुमारिल भट्ट (Translation) पृ० २४४

*'आर्यावर्त्त...' 'the land of the Aryan.........the tract between हिमालय and विन्ध्य-पर्वत-श्रेणियाँ from eastern to western sea."

Hindu Classical Dictionary By Dowson. पृ० २४

शीलयुक्त हो, उसके विचारों में पक्षपात[1] अथवा किसी भी प्रकार का क्षयकारी भाव न हो।

मनु ने इसी आशय को 'तद्विदाम्', 'शील', और 'साधुनाम्' विशेषणों द्वारा व्यक्त किया है। इतना ही नहीं, सत्य उनका धर्म था और शील उनका सौन्दर्य !

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

—मनु २।६

'तद्विदाम्', 'शील' तथा 'साधुनाम'—इन तीनों विशेषणों से युक्त जो पुरुष, ऋषि अथवा महात्मा होता था वही 'स्मृति' रचने की क्षमता रखता था क्योंकि न उसमें पक्षपात होता था, न अपना कोई स्वार्थ ही और न कोई लगाव अथवा लोभ। 'जन-कल्याण' इन तीनों शब्दों का 'सारांश' है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा बना हुआ कानून आज बना, कल टूटता नहीं। इन्हीं गुणों से युक्त ऋषियों ने स्मृतियाँ रची थीं और जहाँ जिन स्मृतियों में दृष्टिकोण संकीर्ण हो गया है (जैसे बौधायन की स्मृति) वहीं वह उस अंश तक विफल रही है और न जन-कल्याण ही हो सका है और न मानव समुदाय उससे आकर्षित ही हुआ। स्मृतियाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशों की भिन्न भिन्न मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु रची गईं—सामाजिक बन्धनों की सीमाओं को निर्धारित करने के लिये। उस युग में विधि (Law) का उद्देश्य 'सत्य' को परखना था। विधि[2] का अर्थ 'धर्म' था और 'धर्म' का अर्थ 'सत्य'। 'धर्म' का अर्थ किसी धर्म-विशेष का नहीं था।

समाज यदि 'वर्ण'[3] द्वारा व्यवस्थित था, तो कौटुम्बिक जीवन 'आश्रम' द्वारा। बालक

---

१. "Recollection during the state of mind when it is calm, free from all disturbing influences of love, hatred and so forth, that is, 'Conscientious Recollection."　—श्री गंगा नाथ झा, पृ० २६

"The sources of law are श्रुति, स्मृति, सदाचार with regard to these three there is unanimity among all old authorities."　वही पृ० २२

नोट: स्मृतियों के लिये देखिये Prof. Jolly's Tagore Law Lectures. III

२. "To describe the *truth* was the end and object of law and *law* was described as *truth*."

३. "वर्ण in ऋग्वेद merely distinguished the आर्य्य and अनार्य्य and nowhere indicates separate sections in the Aryan Community."

—ऋ० ३. ३४. सू० ६

तु० "वर्ण" means the class, a group more or less clearly defined,

के चरित्र तथा जीवन निर्माण में गर्भाधान से उपनयन * (दसों संस्कारों) तक माता पिता का उत्तरदायित्व होता था। इसके पश्चात बालक स्वयं अपने जीवन को सुचारु रूप अथवा ढङ्ग से चलाने में उत्तरदायी हो जाता था। ब्रह्मचर्य्य अथवा वेदव्रत के जीवन को पार कर, गृहस्थ जीवन का उपभोग कर, वानप्रस्थ और दानप्रस्थ के पश्चात् सन्यास धारण करना मनुष्य के जीवन का सम्पूर्ण उपभोग था। इस प्रकार संसार के भोग की भी व्यवस्था थी और आत्मतुष्टि की भी। जीवन केवल चिन्ताओं के ही लिये नहीं था—चिन्ताओं से विमुक्त उसमें आशा भी थी और तृष्णा, मोह और ममता से दूर—निर्लिप्तता भी थी। उस आर्य्य-काल में मानव जीवन की ऐसी ही व्यवस्था थी—शान्त और गम्भीर। उस युग में चिन्तायें नहीं थीं, तो इसका कारण केवल इतना था कि उनके पास भूमि यथेष्ट थी, और बीसवीं शताब्दी की चिन्तायें—मानसिक, आर्थिक, भौतिक तथा अन्य प्रकार की—ऐसी हीं—तो केवल इसलिये हैं कि मानव के पैरों से चप्पा-चप्पा भूमि निकल चुकी है। इसीलिए आज चारों ओर 'सहसत्ता'—सह-अस्तित्व की भावनायें मानव को उद्वेलित कर रही हैं। मानव विवश आज दो पग भूमि में जीवन निर्वाह करने के लिये तैयार है, यदि उसे वह दो पग भी भूमि मिल सके। जब तक भूमि रही पश्चिमी संसार की लगभग सभी जातियाँ —इङ्गलिश, फ्रेंच, पुर्त्तगीज, डच, स्पेनिश—उपनिवेशों का निर्माण करती चलीं गईं, किन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आज मध्य एशिया से न कोई मनुष्य ही निकल कर आता है, न उपनिवेश ही बसते हैं।

जीवन की ऐसी ही व्यवस्था को गति देने के लिये शासन व्यवस्था भी आर्य्यों की अपने ढंग की थी। शासन शासित के लिये था—शासक के लिये नहीं। 'शतपथ ब्राह्मण' में 'राजन' की शक्ति से परे कुछ भी नहीं'—ऐसा वर्णन आता है, किन्तु, इस विचार में राजन की शक्ति का अर्थ—

---

vaguely hereditary. This grouping originally intended to serve political ambitions, was afterwards transformed into those legal fictions the four castes ('चतुर्वर्ण') whereas जाति would mean real caste, strictly hereditary and obstinately exclusive. The class serves political ambitions', while caste obeys strict scruples, and traditional customs."

Senart (Cited by Masson-oursel Grabowska and Stern)

Ancient India and Indian Civilization. पृ० ८३

*यज्ञोपवीत, जनेऊ

१. Co-Existence.

२. "Indian politics consist, not in a doctrine of the State, but in an art of Government the keystone of which is formed by the education of the prince."

Ancient India. पृ० ६५

By Masson-Oursel Grabowska, and Stern.

'परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई'
—तुलसी

का नहीं था, प्रत्युत उसका अर्थ था—मंत्रियों का 'सिखावन' मानकर प्रजा का पालना। यही कारण है कि युवराज, राज्यपुत्र अथवा राज्य के उत्तराधिकारी को राजनीति अथवा 'राजधर्म' की शिक्षा दी जाती थी–इस विचार से कि प्रजा का उसे ध्यान हो—'मन में मनोरथ की भाँति'। वह 'विशपति', 'गोपजनस्य' (प्रजा) का 'राज्यकृत्त' (रक्षक) होता था। 'राजसूय' और 'अश्वमेध' यज्ञों द्वारा उसके आधिपत्य और विजय की घोषणा होती थी।

'ब्राह्मण', 'आरण्यक', 'उपनिषद्', 'पुराण', 'इतिहास', 'व्याकरण', 'काव्य', 'महाकाव्य' (रामायण और महाभारत) 'नाटक', 'धर्मशास्त्र', 'नीतिशास्त्र', 'शिल्पशास्त्र', 'अर्थ-शास्त्र' और 'स्मृतियों' में उस युग का साहित्य और कला का सौन्दर्य्य बिखरा हुआ है। यज्ञों में मन्त्रों के शुद्धोच्चारण में 'व्याकरण' की रचना हुई। 'यज्ञ-शालाओं' एवं 'वेदियों' के निर्माण में 'अंक' और 'रेखागणित' का ज्ञान हुआ था। डा० थीबाट का कथन'[1] है कि वह समस्त ज्ञान-विज्ञान जो प्राचीन भारतीय धर्म से संबन्धित था निश्चय ही भारतवासियों ने प्राप्त किया था। यही प्राचीनतम सभ्यता थी।

फिर, वह सभ्यता भी टिक न सकी, टिकी रही वह भावसत्ता सद्भावनाओं में। सुकर्म, सद्भावनाओं और पुन्य के साथ-साथ कुकर्म, दुर्भावनाये तथा पापवृत्ति भी अपना महत्व रखती हैं। वैदिक काल के आर्य्यों में भी वे मानवीय दुर्बलताये थीं जो जुआ[2], क्रोध[3], मदिरा[4] और सद्-असद्[5] की विचारहीनता द्वारा होती हैं। वैदिक काल में भी भाई-भाई को पथ भ्रष्ट कर देता था। स्वप्न में भी उन्हें पाप घेरे रहता था। वैर-विरोध, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्द्धा और कटुता का वर्णन ऊपर हो ही चुका है। कौरवों के कुचक्र एवं षडयन्त्र में वे सब दुर्भावनाये प्रतिफलित हुईं। फलतः वह सब एक महायुद्ध का कारण हो गया। वह महायुद्ध,* सम्भवतः, ईसा के १४३२ वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र में समाप्त हुआ। धर्म ने अधर्म पर विजय पाई थी। वह धर्म-युद्ध था। 'धर्म' का अर्थ यहाँ किसी धर्म विशेष से नहीं, वरन 'मानवधर्म' से है। गीता में इसी 'मानव-धर्म' की व्याख्या की है। गीता का धर्म 'मानव' है और मानव का 'धर्म'—'कर्त्तव्य'।

---

१. श्री दत्त, पृ० ६२ Dr. Thibaut

२. ३. ४. ५. ऋ० ७. ८६. ६ *महाभारत (२७ अक्टूबर १४३२ ई० पू०)
अंग्रेजी अनुवाद

"O वरुण ! all this पाप is not wilfully committed by us. Error or wine, (मदिरा) anger (क्रोध) or dice (जुआ) or even thoughtlessness (सद्-असद् की विचारहीनता) has begotten sin. Even an elder brother leads his younger astray. Sin is begotten even in our dreams."

Translated in **R. C.** Dutta's *History of Ancient India.*
पृ० २८

मिस्र

भारत के इतिहास के आदिकाल का पुरुष काला था, तो मिस्र के इतिहास के आदिकाल का देश काला[1] था। वह देश उस युग में 'किमिट' (Qimit) और उसके निवासी रोमट् (Romitu) कहलाते थे। नील नदी उस समय 'आईयोमा' (Ioma) कहलाती थी। किन्तु यह बात नहीं कि वहाँ का पुरुष काला[2] न हो। मिस्र की घाटी के आदि पुरुष कौन थे, कब और कहाँ से आये—यह न उस युग का मिस्रनिवासी जानता था और न इस युग का इतिहास[3] ही। किन्तु नील नदी के तट पर वे बसे थे। उनकी भाषा सामी भाषा के ढंग की थी। वे कृषि करते थे। किन्तु इतिहास बताता है कि वे मनुष्य बर्बर[4] थे। वे नंगे रहते थे; पर, हाँ कुछ उच्च जन पशुओं की खालें[5] पहिनते थे, विशेष कर त्योहारों पर। स्त्रियाँ[6] भी पुरुषों के-से ही ढंग पर, पहिले तो केवल कछनी लगा लेती थीं, किन्तु बाद में कुचों से लेकर एड़ियों तक को ढक लेती थीं। स्त्रियों का आदर और सम्मान होता था, किन्तु, पिता-पुत्री के सम्बन्ध[7] का भी पूर्णतः निषेध नहीं था। भ्राता और भगिनी का विवाह संबंध

---

१. "The Egyptians called themselves Romitu, Rotu, and their country, Qimit, the black land." —श्री मैसपीरो, पृ० ४३

२. "At birth the skin is white, but darkens in proportion to its exposure to the sun." —वही पृ० ४७

३. "What were the people by whom it (मिस्र) was developed, the country whence they came, the races to which they belonged, is today unknown." —वही पृ० ४५

४. "The first Egyptians were semi-savages." —वही पृ० ५२

५. "The men went about nearly naked except the nobles who wore panther's skin, sometimes thrown over shoulders, sometimes drawn round the waste and covering the lower part of the body, the animal's tail touching the heal behind."

—Wilkinson, *Manners and Customs*. Vol. I, Ed. 2nd पृ० २५६/२०२

६. "The women were at first contented with a loin-cloth like that of the *men*; it was enlarged and lengthened till it reached the ankle below and the bosom above." —श्री मैसपीरो, पृ० ५७

७. "A union of father and daughter, however, was perhaps not wholly forbidden." —वही पृ० ५०

नोट : "Artaxerxes married two of his own daughters."

Plutarch. Artaxerxes. Art, 27

प्रचलित[1] था। माता के नाम पर वंश चलता था। पुरुष अनेक स्त्रियाँ रख सकता था। वे समाज बनाकर रहते थे। उनके छोटे-छोटे राज्य[2] थे–एडफू (Edfu), डेन्डेरह (Denderah), निखैबिट, बूट, सिऊट, थिनिस, खनूमू, सइस, ब्यूबेस्टिस इत्यादि। प्रत्येक राज्य का एक देवता होता था। उसका पुजारी यूबू (Uibu) कहलाता था। धनुष और बाण उनके भी पास थे। व्यापार 'विनिमय' से होता था।

किन्तु उनके *जीवन की, उनके समाज की, धर्म, राजनीति और कला की, उनकी संस्कृति और सभ्यता की सबसे जटिल समस्या—उनकी 'नील' नदी थी।

नील नदी का उद्‌गम स्थान क्या था—यह उस युग का मिस्रनिवासी न जानता था, और न वह उसके वश की थी, ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार आज के युग का पुरुष अमरीका की एक मील गहरी नदी कालोरैडो[3] को अपने वश में करना नहीं जानता है। वह केवल एक भावना करता था कि नील नदी सीधी स्वर्ग[4] से आई है। नील नदी की धारा का वेग इतना प्रबल था और उसका रव इतना घोर कि उसके तट के मिस्रनिवासी बहुधा बधिर हो जाते थे। 'नील' उनका देवता[5] भी था। वे उसका आह्वान मंत्रों द्वारा करते थे। उसके

---

१. "The union of brother and sister seems to have been regarded as perfectly right and natural," —श्री मैसपीरो, पृ० ५०।५१

नोट: "The marriage of Osiris with his sister, Isis is well known.'

२. Nekhabit, Buto, Siut. Thinis, Khnumu, Sais, Bubastis.

*"They (Egyptians) proclaimed themselves the most ancient of mankind." —वही पृ० १५५

३. "The Colorado River in the south-western portion of the United States of America........ —the World's Most Terrible River, terrible in its fury and in its cruelty, so terrible, indeed, that in course of history, since it was discovered in the year 1540, few men have succeeded in navigating its dangerous waters and many have perished in vain attempts to conquer it———At its source it is 14,000 feet above sea level, which means that in the course of its journey to the ocean the water in this mighty river has to fall over two and a half miles. Think of it. *Two and a half miles.*"

—*The Modern Marvels Encyclopedia*
By John R. Crossland, पृ० १६

४. "The Nile was said to have its source in Paradise." पृ० २०

५. "Hapi (Nile), father of the gods, lord of sustenance, who maketh food to be, and convereth the two lands of Egypt with its products; who giveth life, banisheth want, and filleth the granaries to overflowings." —श्री मैसपीरो, पृ० ३७

दोनों तट देवियाँ थीं। वे उसे पुल्लिंग में सम्बोधन करते थे। अनेकानेक देवताओं की भावना उनमें इस नील नदी के कारण ही उत्पन्न हुई थी। उनका भय और भूतवाद इसी के कारण था। उनके देवता 'ओसिरिस[१]', 'खुनूम्',[२] 'हरशफीत्'[3] नील नदी के जीवनप्रद शक्ति के अवतार थे। 'ओंबस'[४] तथा 'फायूम' नगरों में मगर-मच्छ की पूजा होती थी जैसे बंगाल में। नागों (यूरेअस[५]) का भी पूजन होता था। 'एपिस' नामक बृषभराज की पूजा विशेष रूप से होती थी। 'पिट'[६] देवता का रूप बृषभराज था, 'एमन-रा'[७] का भेड़ और 'होरस'[८] का रूप मनुष्य का रूप था जिसके सर पर बाज स्थित था। वे वृक्षों को भी पूजते थे क्योंकि वे (साइकामोर्स[९]) रेणुका में, सम्भवतः, जादू द्वारा उत्पन्न हो जाते थे। नील नदी के जल के कारण उनमें हरियाली आ जाती थी। प्रकृति का प्रत्येक साधारण-सा नियम कौतूहल, आश्चर्य तथा भय का कारण था।

उनकी परलोक भावना भी एक विचित्र थी। उनकी दृष्टि में 'आत्मा' एक 'पक्षी', 'मधु-मक्खी', 'पिपीलिका', 'तितली' तथा 'छाया' थी। वे मृत्यु में विश्वास नहीं करते थे*। उनके विचार से 'भौतिक शरीर' की रक्षा परलोकगत आत्मा की शान्ति विशेषरूप से वाँछनीय थी। मृत-शरीर की रक्षा का प्रचार बढ़ा। मरण के उपरान्त शव का अन्त्येष्टि-संस्कार बड़ा ही गम्भीर और सारपूर्ण हो गया। 'पिरामिड'[१०] तथा 'स्फिंक्स'[११] बन गये। 'स्फिंक्स' एक विचित्र वस्तु है। सम्भवतः सूर्यनारायण की एक मूर्ति है। उस विशालकाय मूर्ति का सर और धड़ तो मनुष्य के-से हैं पर नीचे का भाग सिंह का है। 'पिरामिड' में शव सुरक्षित रूप से रख दिया जाता था। 'उसकी शान्ति भंग करने वाला व्यक्ति आकस्मिक तथा दुःखद मृत्यु का शिकार होता था'—ऐसा उनका विश्वास था।

मृत-आत्मा की स्वर्ग-यात्रा इससे भी अद्भुत थी। 'मृत्यु' के उपरान्त आत्मा अपने देवता 'ओसिरिस' के समीप जाती है। मार्ग बड़ा ही कठिन है। पृथ्वी को छोड़ कर, नील नदी की घाटी की ओर पीठ करके, हाथ में छड़ी लेकर, वह उत्तर की ओर स्थित पर्वत पर चढ़ती है। उसको पार करके वह एक मरुभूमि में पहुँचती है। (यह पहाड़ और मरुभूमि मिस्र में हैं)। वहाँ से कोई 'पक्षी', 'मधुमक्खी', 'तितली' उसके साथ हो

---

१. "Osiris. २. Khnumu, ३. Harshafitu.

४. "Ombos and Fayum worshipped a crocodile under the name of Sobku."

५. Uraeus. ६. Ptah. ७. Amen-Ra: ८. Horus.

९. Sycamores — श्री मैसपीरो, पृ० १०२

१०. Pyramid (चतुष्कोण स्तूप) ११ Sphinx

*"So men did not die in Egypt. They thought that life once began might go on indefinitely." —वही पृ० १११

लेती है। वह साईकोमोर्स वृक्ष के पास आती है जो जादू द्वारा उत्पन्न हो जाता है। वहाँ उस वृक्ष से 'न्युट',[१] 'हैथर'[२] तथा 'नीट'[3] इत्यादि नामक देवियाँ उसे खाना पानी देती हैं। इस स्थान पर से आत्मा अब एक पैर भी उस ओर नहीं रख सकती है जिस ओर से आई है। इसके आगे आत्मा को विषैले तथा भयंकर सर्पों तथा भयानक पशुओं का प्रदेश मिलता है और उसके आगे उष्ण जल की धारायें। वह अपने देवता का नाम स्मरण करती हुई उन कठोर यातनाओं को झेलती है। इसके पश्चात् आत्मा को 'हैथर'' अर्थात् 'गाय' मिलती है जो उसे अपने कन्धों पर (सींगों पर नहीं) 'खा'[४] नामक सरोवर (झील) तक ले जाकर छोड़ आती है। वहाँ से 'थोट'[५] नामक देवता अथवा 'वह नौका जो स्वर्ग और धरातल के मध्य चलती है' ले जाती है। आगे एक परोक्ष व्यक्ति उस आत्मा का नाम पूछता है। आत्मा नाम बताती है। वह यह भी पूछता है, 'वह कौन है?' आत्मा उसका नाम* बताती है।

अपने किये हुये कर्मों को स्वीकार करती है और अन्त वह 'ओसिरिस' के सम्मुख होती है। वहाँ पर ४२ निर्णायक उसके पापों का निर्णय करते हैं। न्याय की तराजू में वह डोरी जिससे पलड़े लटकते हैं 'तत्स'[६] कहलाती है। एक पलड़े में 'सत्य', दूसरे पलड़े में 'आत्मा' का 'हृदय' रक्खा जाता है। फिर तौला जाता है। हृदय में कोई दोष नहीं था, अतः सत्य का पलड़ा ठीक उतरा[७]। उसे स्वर्ग दिया गया। किन्तु स्वर्ग का उपभोग करके आत्मा पुनः[८] पृथ्वी पर आ जाती है और अपने देशवासियों के साथ पृथ्वी पर ही आनन्द भोग करती है।

---

१. Nuit २. Hathor, ३. Nit ४. Kha ५. Thot

*'The Spine of the Jackal Uapuaitu is thy name.'

६. "The cords which suspend the scales are made of alternate *cruces ansatae* and *tats*." —श्री मैसपीरो, पृ० १६०

७. "Truth squates upon one of the scales; Thot, ibis-headed, places the heart on the other, and always merciful, bears upon the side of Truth...He affirms that the heart is light of offence;...He pronounces the judgment......heart has been weighed in the balance...... found true." —वही, पृ० १६१

८. "after having ascended into heaven and there sought congenial asylum in vain, forsook all havens which it (आत्मा) had found above, and unhesitatingly fell back upon earth, there to lead a peaceful, free and happy life in the full light of day, and with the whole valley of Egypt for a paradise." —वही, पृ० २००

आत्मा की उपरोक्त स्वर्ग-यात्रा* इतिहास की दृष्टि 'से' अथवा 'में' भले ही प्रमाणित हो या न हो, अथवा सारहीन हो, इस युग की धर्म-भावना की दृष्टि में वह ढोंग भले ही हो, किन्तु परलोक भावना में निहित 'मोक्ष' का अर्थ तो स्पष्ट कर देती है। इसी पृथ्वी पर रह कर जीवन का उपयोग अथवा उपभोग 'मोक्ष' है। यही 'आनन्द' है—वही 'आनन्द' जो भारतीय मनीषा की दृष्टि में था। 'मिस्र' और 'भारत' के 'आनन्द' दो नहीं हैं, और न उनके दो अर्थ ही हैं।

न्याय के पलड़ों की कल्पना अथवा भावना करने वाले युग अथवा मानव को, यदि कोई बर्बर कहे, तो मैं नहीं समझ सकता कि 'सभ्य' का फिर क्या अर्थ होगा? भावना इन पलड़ों की आज से लगभग ५ या ६ हजार वर्ष पूर्व भी वैसी ही थी जैसी आज भी है। न्याय सत्य को तोलता है, सत्य न्याय को। पर सत्य और न्याय दोनों ही कठोर हैं। और नहीं कठोर है कोई तो वह 'दया' है। किन्तु दया का अर्थ 'अन्याय' नहीं है। 'न्याय' अधिकार हैं, 'दया' भिक्षा। सर्वशक्तिमान को 'दयालु' कहा गया है, तो केवल इसलिये कि वह मार भी सकता है, जिला भी सकता है। उसकी शक्ति के सम्मुख किसी दूसरे की शक्ति चलती नहीं। यदि शासन[1] को प्रशासन[2] का गर्व है, तो शासित[3] को 'न्याय'[4] का। न्याय को गर्व है अपने 'सम' का। युधिष्ठिर का सब कुछ चला गया, किन्तु न्याय नहीं गया, धर्म नहीं गया। और 'जब-जब होय धर्म की हानी',...विद्वानों का ऐसा मत है, तब तब कोई महापुरुष अवतीर्ण हो मानव-मानव के बीच केवल न्याय कर देता है।

उस डोरी का भाषानुवाद करने में मैसपीरो महोदय ने '*alternate cruces ansatae* and *tats*' शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ भी हो 'alternate' शब्द से इतना तो स्पष्ट ही है कि वह डोरी 'बटी' हुई थी। वह दो डोरों की 'बटी' हुई थी या तीन की यह कहना तो दुर्लभ है, पर कम से कम दो डोरे थे—'*cruces ansatae*,' और '*tats*'। हृदय जैसी कोमल तथा हल्की वस्तु के तोलने के लिये उस तराजू की डोरियाँ 'टाट' की

---

१. शाशन = सरकार
२. प्रशासन = हुकूमत
३. शासित = प्रजा
४. The Scales of Truth

नोटः मिस्र' में 'तत' (Tat) और 'दीदू' (Didu) के गण्डा-ताबीज होते थे। 'तत' और 'दीदू' द्वारा देवताओं के चिन्हों का बोध भी होता था।

नोटः 'Tat' शब्द का अर्थ 'हाथ से बनाना' और Tatting शब्द का अर्थ 'लैस' —सोने, चाँदी, सिल्क अथवा सूत के धागे से बनी हुई लैस—फीता का है।

*आत्मा की स्वर्ग-यात्रा का पूर्ण विवरण यहाँ स्थानाभाव के कारण नहीं दिया गया है। मैसपीरो महोदय की पुस्तक में १८३ से २०० पन्नों तक इसका वर्णन है। ले०

नहीं होगीं। 'तत' 'tat' शब्द में 's' लगे होने के कारण 'तत्स' का अर्थ मैं यह करूँ कि भारतीय मनीषा के 'तत्' और 'ansatae' शब्द को 'ॐ-सत्' पढ़ कर अथवा मान कर मैं यह कहूँ कि वह डोरी दो डोरों की थी—अथवा तीन की—ॐ-तत सत् रूपी तीन डोरों की—तो मैं अपने मस्तिष्क की खोज को प्रोत्साहन दे सकता हूँ, पर मानव का क्या भला होगा यह मैं स्वयं नहीं जानता।

यहाँ मेरा यह विषय नहीं है कि उपरोक्त 'तत्स' शब्द के आधार पर मैं यह प्रमाण दे रहा हूँ कि मानो पाश्चात् विद्वानों का यह कथन[1] कि 'भारतीय संस्कृति अथवा सभ्यता अर्थात् आर्य्य संस्कृति अथवा सभ्यता की अपेक्षा 'मिस्र' की संस्कृति एवं सभ्यता प्राचीनतम हैं'—असत्य 'था' अथवा 'है', किन्तु भारतीय दर्शन के 'तत्' और 'सत्' के चिन्मय रूप की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करके मैं यह कहूँ कि गीता के सत्रहवें अध्याय के अन्त में 'ऊँतत्सत्' (गीता १७।२३) के प्रसंग में २५ वें[2] श्लोक में 'तत्' शब्द की व्याख्या करते हुये स्पष्टतः यह कहा गया है कि इसके (तत्) के उच्चारण से फल की अभिसन्धि न कर, मोक्ष की इच्छा करने वाले यज्ञ, तप, दान इत्यादि अनेक प्रकार की क्रियायें करते हैं, तो यह विद्वान् ही निर्णय करेंगे कि इस 'तत्' और उस 'तत्स' में कितना अन्तर रह जाता है? 'सत्य' और 'हृदय' दो पलड़ों में बैठते हैं—पर डोरी 'तत्स' की है। किन्तु कौन कहे कि डन्डी, डोरी और पलड़ों में किसका मूल्य अथवा महत्त्व अधिक है? ॐ-'तत-सत्—यह शब्द तीन हैं पर अर्थ एक है, भाव एक है, आशय एक है। वही तोलने वाला, वही तराजू, वही डन्डी, वही डोरी, वही पलड़ा, वही हृदय और वही सत्य है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता प्राचीनतम है अथवा 'मिस्र' की, अथवा 'मेसोपोटामिया' की—यह न मेरा विषय था, न है, न होगा।

---

१. तु० "The plausibility of the theory of comparative antiquity (भारतीय सभ्यता प्राचीनतम है) is upheld, as has been already said by the study of comparative history of the ऋग्वेद, the सिन्धु, मेसोपोटामिया and मिस्र civilization. Incalculable harm has been done by almost all the English and American scholars in assuming arbitrarily the earliest dates for Egypt or Mesopotamia...dates going back to B. C. 5,000 at least and the latest date for ancient India on the ground that India borrowed from them."

The History Of Pre-Musalman India
Vol. II (Vedic Period) By V. Rangacharaya पृ० १४५

२. "तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपः क्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥"

—गीता १७।२५

मिस्रवासियों में योगाभ्यास का अच्छा ज्ञान था। मैडम ब्लैवाट्स्की (Madame Blavatsky) ने अपने गवेषणापूर्ण 'Secret Doctrine' नामक ग्रन्थ में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। किन्तु उनकी भैरव-भावना भी बड़ी ही बढ़ी-चढ़ी थी। भूतवाद उनके जीवन का एक अंग था। उनकी यह भावना धर्म के कारण नहीं, भय के कारण थी। प्रकृति उन्हें भयभीत रखती थी। उनकी दृष्टि में संसार की उत्पत्ति कुछ ऐसे तत्त्वों में हुई है जो पूर्व[1] स्थित थे। उनके देवता 'रा' (Ra) सूर्यदेव की उत्पत्ति कमल[2] से हुई है—ऐसा विचार हेलियोपोलिटन[3] लोगों का था। मनुष्य[4] और पशुओं की उत्पत्ति भी नील नदी से हुई। भय और भेद की भावनाओं ने उनके जीवन में 'भूत-वाद' लाकर खड़ा कर दिया था। अतः वे यज्ञ करते थे—बलि[5] देकर। पहिले वृद्धावस्था को प्राप्त राजा[6] की बलि दी जाती थी, बाद में, जब यह भावना जनता को अच्छी न लगी, तब राजा के स्थान पर जनता में से ढूढे हुये किसी व्यक्ति[7] की बलि दी जाने लगी, जब वह भी अच्छा न लगा, तब 'पशु' की बलि दी जाती थी और अन्त में यहाँ भी 'पत्र

---

१. ".....Creation was only a bringing of pre-existent elements into play. The latent germs of things had always existed, but they had slept for ages and ages in the bosom of the Nu, of the dark waters. —श्री मैसपीरो पृ० १२७

२/८ "According to version most widely received, he had suddenly cried across the waters, "Come unto me!" and immediately the mysterious lotus had unfolded its petals, and Ra had appeared at the edge of its open cup as a disk, a new born child." —वही पृ० १४०

३. नोट : 'Heliopolis' के रहनेवाले Heliopolitan कहलाते थे।

४. "The mud of the Nile, heated to excess by the burning sun, fermented and brought forth the various races of men and animals by spontaneous generation." —वही पृष्ठ १५६

५. "The prince was the high priest.. He went out into the fields to lasso half-wild bull, bound it, cut its throat, skinned it, burnt part of its carcase in front of his idol and distributed the rest among its assistants with plenty of the cakes, fruits, vegetables and wines." —वही पृ० १२२

६. "Ritual killing of the king...which took place in Egypt and Sumer.

७. "Instead of king a victim was found to take his place.',

Growth of Civilization.
By W. S. Perry, पृ० १६६

और पुष्प' चढ़ाये जाने लगे। भूतवाद द्वारा ही उनमें वैद्यक की विद्या का ज्ञान हुआ, उसके द्वारा ही ज्योतिष का ज्ञान और यह सब ज्ञान थोट (Thot) ने दिया था जो उनके पौराणिक इतिहास का राजा अथवा ऋषि था। मनुष्य और पशु का मूत्र भी औषधि का काम करता था। किन्तु एक ओर उनकी यह भैरव भावना है और दूसरी ओर उनके देवता सूर्य की उत्पत्ति के विषय में यह भावना—'वह *शिशुरूप से उत्पन्न हुआ है'—यह देख कर आश्चर्य होता है कि 'भारत' और 'मिस्र' की भावनाओं में कैसा अद्भुत साम्य है। श्वेताश्वतरोपनिषद् के अध्याय २ के मन्त्र १६ की व्याख्या में 'स एव जातः शिशुः'—'वह शिशुरूप से उत्पन्न हुआ है'—परमात्मस्वरूप के वर्णन में ऐसी भावना स्पष्ट आई है।

विद्वानों का मत है कि इतिहास की प्रथम निश्चित वर्ष[१] ४२४१ ई० पू० है। 'मिस्र' में ३६५ दिवस का वर्ष आरम्भ हुआ'—पाश्चात् विद्वानों का ऐसा कथन है, किन्तु ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के अनुसार यह श्रेय भारत को है, पर श्रेय किसी को भी हो, कल्याण मानव का है। इन मिस्रवासियों ने 'कागज', 'कलम', 'रोशनाई' का भी आरम्भ किया। गणित,[२] रेखा-गणित—इन सब का ज्ञान इन्होंने किया था किन्तु गणित में 'शून्य'[३] के लिये मिस्र और विश्व 'भारत' का आभारी है। मिस्र के उस युग का साहित्य 'पिरामिड'[४], पाठ्य पुस्तकों, 'कफन'[५] तथा मृतक' की पुस्तकों[६] में सुरक्षित है। ध्यान रहे, मिस्रवासियों का ऐसा विश्वास था कि आत्मा शरीर समेत जाती थी।

मिस्र के इतिहास में प्रथम बार ईसा के लगभग ४००० वर्ष पूर्व 'ऊपरी' तथा 'निचले' मिस्र का एकीकरण हुआ। अन्त में राजाओं की ईर्ष्या,[७] द्वेष, स्पर्द्धा, तथा कटु-कटुता ने मिस्र सभ्यता को वैसे ही समाप्त किया जिस प्रकार इन अवगुणों ने उस युग के भारत की सभ्यता को समाप्त किया था। मिस्र 'असीरिया' अथवा 'कैल्डीय' साम्राज्य का एक अंग हो गया, और जब 'कैल्डीया' को फारस ने विजय किया तो 'मिस्र' भी ईसा के ५२५ वर्ष पूर्व फारस द्वारा परास्त हुआ और उसका अंग हो गया।

---

१. "History's certain date...4241 B.C. (पर अब ४२३६ ई०पू० मानते हैं

History of Egypt By James Henry Breasted. पृ० ५६७)

२. "In Arithmetic the Egyptians used a decimal system without our zero."
—श्री लूकस प० ६१

३. "The figure 'O' seems to have been invented by the scholars of India and not by the Arabs as is usually asserted.

*(देखिये टि० २/८, पृ० २३)
—वही, पृ० २६३

४. Pyramid Texts, ५. Coffin Texts, ६. Book of the Dead.

७. "The majority of them did little more than appear upon the thrones......far from being regularly constituted sovereigns, they appear rather to have been a series of Pretenders, mutually jealous of and deposing one another.........rivalries of usurpers......who seized the crown without being strong enough to keep it."
—श्री मैसपीरो, पृष्ठ ५३४

मेसोपोटामिया

नील नदी के समान दजला-फरात नदियाँ न भयंकर थीं, न भेदनीय, न भयप्रद अथवा भयदायक ही। इस घाटी (मेसोपोटामिया की घाटी) के दो प्रदेश 'सुमेर' और 'अक्कद' मिल कर बेबोलोनिया कहलाये। न्यू बेबीलोनिया अथवा कैल्डीया वह प्रदेश कहलाया जिसमें 'सुमेर', 'अक्कद','असीरिया', 'डैमस्कस' तथा 'पैलिस्टाइन' सम्मिलित थे। इस घाटी में तीन प्रकार की सभ्यताओं का प्रादुर्भाव हुआ—'सुमीरीय', 'असीरी' तथा 'कैल्डीय' और ईसा के लगभग ५३९ वर्ष पूर्व, जब फारस ने कैल्डिया पर विजय प्राप्त कर ली, यह सभ्यतायें भी आईं और चली गईं।

इस घाटी के निवासियों की दृष्टि में, उनकी पौराणिक कथाओं के आधार पर, संसार की उत्पत्ति 'जल' से हुई, सम्भवतः, इसी आधार पर कि 'जल'[1] सदा रहने वाला है—'अप एव ससर्जादौ'। जापान में भी पौराणिक कथाओं के अनुसार संसार की उत्पत्ति 'जल' से बताई गईं है। एक भाव और भी है। भगवान ने 'इच्छा' की—'एकोऽहम्। बहु स्याम्' अर्थात्, 'मैं अकेला हूँ, अनेक बन जाऊँ'। इस विचार से उसने सृष्टि की रचना की 'इदं सर्वं जगत यदिदं किंचन,' और 'सारी सृष्टि को अपना रूप दे डाला'—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अथवा 'सोऽहमस्मि' की स्थापना हुई। इस घाटी में भी कुछ[2] ऐसा ही हुआ और

---

१ वैदिक निघण्टु में 'सन्' शब्द 'जल का पर्याय' माना गया है, और वहाँ पर टीकाकार लिखते हैं कि 'जलं सर्वदा विद्यमानम् प्रलयेऽपि नाशाभावात्,' अर्थात् जल का कभी (प्रलय काल में भी) 'अभाव' नहीं होता। ले०

२ "In the time when nothing which was called heaven existed above, and when nothing below had as yet received the name of 'earth', Apsu, The Ocean, who first was their father and Chaos-* Tiamat, who gave birth to them all, mingled their waters in one, reeds which were not united, rushes which bore no fruit. Life germinated slowly in this inert mass, in which the elements of our world lay still in confusion: when at length it did spring up, it was but feebly and at rare intervals, through the hatching the divine couples devoid of personality and almost without form............Each of them duplicated of himself,........ Anu into Anat, Bel into Belit, Ea into Damkina. Other divinities sprang from these fruitful pairs, and the impulse once given, the world was rapidly peopled by their descendants."

श्री मैसपीरो, पृ० ५३७।५३८

*'प्रसाद' जी ने ऐसे ही भाव को कामायनी में 'विराट् आलोड़न' द्वारा व्यक्त किया है। देखियेः—'चिन्ता सर्ग'। ले०

जापान[1] में भी। 'प्रसाद जी' के यह शब्द,* 'जल-प्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी प्राचीन घटना है, जिसमें मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। यह इतिहास ही है'—भी कुछ इसी भाव के पर्याय हैं और मनु और श्रद्धा का कथानक भी। संसार की रचना[2] किन्हीं तत्वों—जल, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी—से हुई हो, किन्तु मनुष्य का शरीर 'पंच तत्वों'[3] से बना है—इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

---

१ "The creation myth starts with a pre-existing universe likened to an ocean of mud vield in darkness.........Izangi, The Male who invites and Izanami, The Female who invites were ordered by gods of heaven to descend to earth and create the land."

The World's Religions.
By J. N. D. Anderson.   पृ० १४०।१४१

२ "The origin of the universe is still the subject of debate among astronomers and probably will be for centuries to come. In recent years many scientists have agreed with the American astronomer, George Camow, in thinking that there was a moment of creation when a relatively small mass of unknown composition exploded with inconceivable violence and in the course of 15 minutes the various atoms that now compose the universe were formed. This was about 5,000 million years ago. Since then the atoms have accumulated into stars and galaxies which are still rushing away from each other at enormous speeds..... ...at that rate these explosions can account for the formation of all the elements that are known to exist on earth and in the stars.........and is taking place amongst steadily as great stars explode and their energy is converted into matter. So creation goes on."

By Dr. Gerald Wendt. in his Science Notes from 300 odd scientific addresses and discussions at the British Association for the Advancement of Science held at Oxford in September 1954 and which was attended by leading scientists from France, Switzerland, Italy, Sweden, Canada. United States, The West Indies, India, Pakistan, Ceylon, Australia, New Zealand, South Africa, and Gold Coast of Africa."   The LEADER WEEKLY, Sunday, October, 17, 1954, पृ॰ ६

३ 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा।
पंच रचित यह अधम सरीरा॥' —तुलसी

*कामायनी, 'आमुख,' पृ० ४

यदि मिस्रवासियों ने आत्मा की स्वर्गयात्रा द्वारा 'स्वर्ग' की खोज की, तो इस घाटी के निवासियों ने 'जीवन के प्रदेश'[१] की खोज की। पहुँचे दोनों एक ही निष्कर्ष पर—वह निष्कर्ष इसी पृथ्वी पर का 'आनन्द' है। वह जीवन का प्रदेश 'बेबीलोन'[२] था।

भारत के-से 'महाभारत' अथवा 'रामायण' महाकाव्य के समान इस घाटी के 'गिलगेमिस' महाकाव्य[३] में 'जीवन के प्रदेश' की खोज का बड़ा ही रोचक वर्णन आता है। 'गिलगेमिस' अमर बनने की भावना से प्रेरित अपने दादा शमशनापिशटिम[४] के पास जो अंतरिक्ष में रहता था गया। अपने आने का कारण बताया। इस पर उसके दादा ने उत्तर दिया, 'मृत्यु का कारण जानने की आवश्यकता नहीं'। 'मृत्यु होगी ही—ऐसा जानों।' 'उसे हंसते-हंसते ग्रहण करो'। किन्तु गिलगेमिस समझा कि उसके दादा उसे ऐसा उपदेश कर रहे हैं कि मानो वह अकर्मण्य[५] हो जाय। उस पर उसे सन्तोष न हुआ। तब उसके दादा ने उसे 'जीवन बूटी' Arad-Eka[६] दी, किन्तु वह उसे रख नहीं सका। अपने देश को लौटते समय उसने एक कुये पर जल की इच्छा से पानी भरना आरम्भ किया। इतने में एक सर्प आया और जीवन बूटी को छीन ले गया। वह हताश हो गया। वह अपने देश आया। तब उसने अपने मित्र एबानी* की अंत्येष्टिक्रिया की। एबानी की मृत्यु को ही देख कर गिलगेमिस के हृदय में मृत्यु का भय उत्पन्न हुआ था। इसी कारण उसमें अमर बनने की भावना उत्पन्न हुई थी। वह एबानी की आत्मा के पीछे प्रत्येक देवता के पास भटका और अन्त में 'यम' (Nergal) देवता के पास गया। उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

---

१ 'The voyage in search of the country of life'. श्री मैसपीरो, पृ० ५३५

२ 'Babylon, the residence of life.' वही, पृ० ५६२

३ 'Gilgames Epic.'

४ 'Shamashnapishtim answers him stoically that death follows from an inexorable law, to which it is better to submit with good grace.........However long the time we shall build houses, however long the time we shall put our seals to contracts, however long the time the brothers shall quarrel with each other...we shall not be able to portary any image of death............the day of death remains unknown to him.'' वही, पृ० ५८५

नोट: 'शमशनापिशटिम' और भारत के 'मनु' द्वारा संसार की उत्पत्ति एवं जलप्लावन की कथा मूलतः एक-सी है। ले०

५ 'Gilgamash thought that his forefather is preaching resignation.'' वही, पृ० ५८६

६ 'Arad-Eka, this plant is a plant of renovation by which man obtains life.'' वही, पृ० ५८७

*Eabani,

एवानी की आत्मा निकल कर आई। उसने गिलगेमिस को दिखाया, 'देखो ! यहाँ केवल उन्हीं को आनन्द मिलता है जो रणक्षेत्र[1] में लड़ते-लड़ते मरे हों।" तब सैबित्* ने कहा, 'जाओ, जीवन के प्रदेश के लिए भटको नहीं, पेट भरो और 'आनन्द'[2] करो।'

कदाचित् यही कारण है की 'जन्म' और 'मृत्यु' के विषय को लेकर कोई दृष्टिपात नहीं करता। यह कथानक रोचक हो अथवा सत्य, किन्तु यह जीवन अभिवादन के प्रति उस संघर्ष[3] की ओर एक संकेत अवश्य करता है जिसको इतिहास ने 'सत्ता,' विज्ञान ने 'आकर्षण-विधान[4],' और साहित्य ने 'जीवन'[5] बताया है अथवा इन तीनों ने मिलकर जिसे

---

१ "Those only enjoy some happiness who have fallen with arms in their hands."
श्री मैसपीरो, पृ० ५८६

२ "O Gilgamesh ! why dost thou run in all directions ?
The life that thou seekest thou wilt not find.
When the Gods created mankind,
They determined death for mankind;
Life they kept in their hands.
Thou, O, Gilgamesh fill thy belly,
....
Day and night be joyous and content !
Enjoy the wife lying in thy bosom."

The Civilization Of Babylonia and Assyria
By Jastrow, Morris. पृ० ४६२-४६३

३ "Man has inherited from his prehuman ancestors a number of instincts which still underlie the life and activity, both of individuals and of associations of man."

........such instincts bid man shun death and strive to keep themselves alive. But from the very beginning of life upon the earth every step upward has been brought in a grim struggle for food and survival......through death of countless individuals and extinction of whole race... . It was a process of whole sale sacrifice...of incalculable suffering and agony...creatures praying upon creatures ...race upon race."

A Brief History of Civilization. पृ० ४६
By J. S. Hoyland.

*Sabitu.

४ तु० 'Newtonian Laws of Gravitation.' Newton (1642—1727)

५ तु० "Nor love thy life, nor hate ;
But what thou livest live well, how long or short."
Milton.

पुरुष[1] कहा है।

'भाग्य की खोज में' 'ग्रहों' की खोज इस घाटी के मानव ने की। 'खगोलस्थित-ग्रह और भूगोलस्थित प्राणियों का कितना घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध है,—यह बताया। इस खोज में वे इस निष्कर्ष को पहुँचे कि 'सूर्य्य' तथा 'चन्द्र' जो दिवारात्रि के शासक हैं—वे ही भाग्य के लिखे का निरूपण करते हैं। जो उनकी गति[2] को सृष्टि के आदिकाल से सावधान करते चले आ रहे हैं—वे 'ग्रह' हैं। उनके 'नवग्रह' नहीं, पंच ग्रह थे—मेरीडैच (Merodach), ईश्तर (Ishtar), नीनीब (Ninib), नरगल (Nergal) तथा (Nebo) नेबू। यही आज के योरुप में क्रमशः जुपीटर (Jupiter) (बृहस्पति), (Venus) (बुद्ध), सैटर्न (Saturn) (शनि), मार्स (Mars), (मंगल), तथा मरकरी (Mercury) (शुक्र) कहे जाते हैं[3]।

---

१ 'पौरुषं नृषु'—पौरुष में पुरुष का व्यक्तित्व है।

२ उस युग में यह विश्वास था कि 'सूर्य्य' घूमता है'। किन्तु 'सूर्य्य नहीं, पृथ्वी घूमती है'—यह ज्ञान मानव ने १६ वीं शताब्दी में कोपरनीकस (Copernicus), ब्रूनो (Bruno) तथा गलीलियो (Galileo) द्वारा प्राप्त किया। ले०

३ "The heavenly bodies capable of explaining them, the real interpreters of destiny, were at first the two divinities who rule the empires of night and day......the moon and the sun; afterwards there took part in this work of explanation the five planets which we call Jupiter, Venus, Saturn, Mars, and Mercury, or rather the five gods who actuate them, and who have controlled their course from the moment of creation............Merodach, Ishtar, Ninib, Nergal, and Nebo."

श्री मैसपीरो, पृ० ६६६

तु० "ध्रुवबद्धं नक्षत्रं नक्षत्रैश्च ग्रहाः प्रतिनिबद्धाः।
ग्रहबद्धं कर्मफलं शुभाशुभं सर्वजन्तूनाम् ॥"

अर्थात्, नक्षत्र ध्रुव से बंधे हुये हैं और नक्षत्रों के द्वारा ग्रह बंधे हुये हैं।
उन सूर्य्य आदि नवग्रहों के आधीन सारे अच्छे-बुरे कर्म फल हैं
जिनका अनुभव प्राणीमात्र करते हैं।

नोट—: मेसोपोटामिया की घाटी में मानव का अनेक देवताओं में विश्वास था। ले०

उनके मन्दिर 'विश्व व्यवस्था'[१] की कल्पना के आधार पर थे। यह मन्दिर जनता के दान[२] से बनाये जाते थे। उनमें मूर्तियों का पूजन होता था और शृंगार[3] कुछ इस ढंग का जैसे भारत में हिन्दुओं के मन्दिरों में होता रहा है। वे व्रत एवं तप भी करते थे। और अपने शव की अन्त्येष्टिक्रिया अपने नगर से दूर स्थान पर करते थे। अन्त में यह सभ्यता भी ५३६ ई० पू० फारस द्वारा समाप्त हुई। फिलस्तीन की यहूदी सभ्यता भी 'जेरुसलम', 'इजरेल' और 'जूडा' में ही संकुचित होकर रह गई।

इस प्रकार फारस ने मिस्र, सुमीरीय, असीरी, कैल्डिया अथवा मेसोपोटामिया की सभ्यताओं का अन्त किया और काल पाकर 'फारस' की सभ्यता का अन्त 'ग्रीक' (यूनान) ने और 'ग्रीक' की 'रोम' ने और 'रोम' की सभ्यता का अन्त 'जर्मन' की बर्बर जातियों ने किया—सभ्यता और असभ्यता अथवा बर्बरता का संघर्ष एक ओर चलता रहा और दूसरी ओर एक एक देश—'मिस्र,' 'कैल्डिया', 'ग्रीक' तथा 'रोम'[४]—की भूमि उनके पैरों से निकलती रही। कहते सब यही रहे, "यह भूमि हमारी है!" पर भूमि......? सभ्यता ने बर्बरता की और बर्बरता ने सभ्यता की कहानी लिखी है—पर अक्षर कुछ काले हैं, कुछ सुनहले, किन्तु, विवश, लिपि-बद्ध करती चली जा रही है—स्वस्ति-श्री—मानव की।

---

१ "The temples were miniature reproductions of the arrangements of the universe." श्री मैसपीरो, पृ० ६७४

२ "Donations to the temple were nothing more than voluntary restitutions, which the gods consented to accept graciously."

वही पृ० ६७८

३ "The images of the gods were clothed in vestments, they were annoiated with odoriferous oils, covered with jewels, served with food and drink; and during these operations the divinities themselves, above in the heaven or down in the abyss, or in the bosom of the earth, were arrayed in garments, their bodies were perfumed with unguents. and their appetites fully satisfied ; all that was further required for this purpose was the offering of sacrifices together with prayers and prescribed rites."

वही, पृ० ६७६/६८०

४ नोट—४१० ई० तक के रोम

चीन

'ह्वांगहो', 'यांगटीसी', तथा 'सी' नदियोंकी घाटीमें स्थित चीन की हरित भूमि के निवासियों को अंग्रेज इतिहासकारों ने 'काले बाल[१]' वाली जाति कहा है। किन्तु उनका हृदय तो बड़ा ही स्वच्छ था। आक्रमण और विजय की भावनाओं से प्रेरित होकर नहीं, शान्ति[२] के आधार पर उन्होंने अपना देश बसाया था। कदाचित् यही कारण है कि चीन देश, समय और शत्रुओं के आघातों से सदैव ही अपनी सत्ता को बचाता रहा है।[3]

इस हरित भूमि के निवासी कौन थे और कहाँ से आये–इसके उत्तर में इतिहास केवल इतना बताता है कि वे ईसा के लगभग २३००वर्ष पूर्व उस प्रदेश से आये जो कि कैस्पियन सागर के दक्षिण में था। प्रो० टेरन[४] Terrien de Lacouperie के विचार में ही नहीं, वरन

---

१ "Black haired races."

The Story Of the Nations, '*CHINA*.' पृ० ५
By Prof. Robert K. Douglas.

२ "Throughout their whole history they have shown a marked capacity for acquiring territory and this rather by peaceful methods of settling on the neighbouring lands than by invasion and conquest."

वही, पृ० २

३ "Of all the Empires of Antiquity China alone has preserved its existence in defiance of the disintegrating effects of time and assaults of her enemies." वही पृ० १

४ "........ and it was reserved for Prof. Terrien-de-Lacouperie to establish with incontestable proofs the theory that they (people of China) had migrated eastward from a region on the south of Caspian Sea about 2300 B. C. In support of his proposition Prof. Terrien was able to show a marked connection between many of the primitive written characters of the language of Akkadia and China, as well as a marked affinity between the religious, social, and scientific institutions and beliefs of the two peoples—...canals and artificial waterways of China suggest a striking likeness to the canals with which the whole of Babylonia must have been as characteristic a feature of country as similar works are of Chinaat the present day."

नोट : इस 'तथ्य' से मेरा कोई सरोकार नहीं। ले० वही पृ० ३

उन्होंने सिद्ध भी किया है कि वे दजला-फरात नदियों की घाटी में स्थित अक्कद के निवासियों से मिलते जुलते थे। अक्कद जाति और चीन जाति की धार्मिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक संस्थाओं एवं विश्वासों में एक महत्त्वपूर्ण साम्य था और चीन के इतिहासकार प्रोफेसर राबर्ट के० डगलस की दृष्टि में यदि वे मेसोपोटामिया[१] से आकर पीली नदी (Yellow River) के तट पर बस गये हों, तो कोई यह असम्भव नहीं। प्रोफेसर टेरन का उपरोक्त कथन सत्य हो अथवा असत्य, किन्तु विश्व की एकता एवं एकरूपता में इससे कोई विशेष अन्तर नहीं आता।

'प्रज्ञा', 'अरूप', अथवा 'निराकार', 'सत्कर्म' और 'शील' की भावनाओं से चीन आज से नहीं, अपने इतिहास के आदिकाल से अनुप्राणित रहा है, रहेगा। भारत में हिन्दी-साहित्य में महात्मा कबीर ने जिसे 'सहज भाव' कहा था, चीन में उसी भाव को महात्मा ल्यो Lao ने 'प्रज्ञा'[२] कहा है। महात्मा बुद्धने सत्कर्म का[३] और महात्मा कन्फ्यूशियस ने चीन को 'शील[४] का आदर्श दिया था। उनके शूं शिंग 'Shu Ching' अर्थात् 'Book of History' 'इतिहास'[५] की पुस्तक'में 'एक' ही की महानता का प्रदर्शन है। इसी ने आकाश और पृथ्वी बनाये और सब सृष्टि। वह 'एक' तुलसी के—'बिन पद[६] चले सुने बिन काना—'

---

१ "There is nothing improbable in the supposed movement of the Chinese tribes from Mesopotamia to the banks of Yellow River."
पृ० ४

The Story Of the Nations, 'CHINA'
By Prof. Robert K. Douglas.

२ 'True knowledge is attained only through intuition.'
Lao-tse.

३ "Right Action !" (महात्मा बुद्ध)

४ "Virtue" (महात्मा कन्फ्युशियस)

५ "In the earliest of ancient records, the Shu Ching, Book of History, it is interesting to note that the first reference to God is the term, Shang Ti. In these writings we are ushered at one step into the presence of a religion in which there is One God supreme over all in heaven and earth, all other spirits being subordinate to Him."

The Original of China.
By J. Ross.

६ "We look for Him and see Him not. He is invisible. We listen for Him and hear Him not, for He is inaudible. We grope after Him and grasp Him not, for He cannot be grasped............

के भाव का-सा है। उनके जीवन का आधार नैतिक बल था और, सम्भवतः, है। विकारों को न उनके व्यक्तिगत जीवन में ही और न उनके इतिहास में ही स्थान था। सातवीं शताब्दी में उनकी पूजा के भाव से यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार की उत्पत्ति के पूर्व सब कुछ अंधकारमय[१] था, न सूर्य्य था, न चन्द्रमा, न पंच तत्त्व' किन्तु 'वह' था। समस्त संसार उसके नाम में 'आनन्द' उठाता है। चीन देश के इस पूजन के भाव में 'उसके' नाम से, कोई आनन्द उठाये अथवा नहीं, किन्तु इतना अवश्य है कि जीवन में शान्ति और आचरण में शील 'आनन्द' के भाव के ही पर्याय हैं।

इतिहास की दृष्टि में उपरोक्त 'भारत', 'मिस्र', 'मेसोपोटामिया' तथा 'चीन' की रूपरेखायें, प्राचीन सभ्यताओं के आदिकाल की हों अथवा प्रौढ़काल की, सत्य हों अथवा असत्य, किन्तु उनसे कुछ ऐसा प्रतीत होता है—वे सब एक ही कहानी कह रहे हैं, एक ही-सी भाषा में, एक-ही-से भाव में, और 'एक' ही की। और सत्य यह भी है कि यदि काल अपने चक्र में किसी को मिटा नहीं सका है, तो वह केवल 'अनुभूति' है—उनकी जो देश, युग, जाति, पुरुष अथवा वर्ग-विशेष के पुरुष की निजी सम्पत्ति नहीं थे। वे विश्व के थे, विश्व उनका था। उनका युग न प्राचीन था, न मध्य और न आधुनिक। वे संसार से चले भले ही गये—भौतिक शरीर से, किन्तु वे उस पथ को आलोकित कर गये जिस पर प्रत्येक देश, युग, जाति, पुरुष अथवा वर्ग-विशेष के पुरुष का जीवन आरूढ़ है———'मंगल' की ओर :—

"अग्रसर है मंगलमय वृद्धि"

—प्रसाद।

इस प्रकार 'एक' पर जो 'अनेक' का निर्माण हुआ है—साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, कला, आविष्कार, ऐश्वर्य्य, वैभव, राष्ट्र, साम्राज्य, युग अथवा मानव

....

"He is the form of formless.

Nameless......He is the origin of Heaven and Earth."

Lao-tse in *Tao-Te-Ching (Cannon of Reason and Virtue)*.

१ "Of old, in the beginning, there was a great chaos without form and dark. The five elements had not begun to evolve, nor the sun and the moon to shine...Thou, O, Spiritual Sovereign comest forth in Thy presidency......

......All human beings, all things, on the earth rejoice together in the Great Name."

"*The Meaning of the Term Shang Ti.*"

By Evan Morgan,

द्वारा, वह यदि भव्य है, तो निश्चय ही सभ्य है। और उस सभ्यता में यदि कोई असभ्य है, तो केवल—वह मन की भटकना[1] है जो जीवन को लिये-लिये फिरी है युग-युग से। निष्कर्ष केवल इतना है कि प्रत्येक देश ने, प्रत्येक जाति ने, प्रत्येक पुरुष ने, प्रत्येक युग के 'मानव' ने अपने-अपने वृत्त में, अपनी-अपनी भाषा, अपने-अपने भाव में 'अनेक' और 'अनेक' में 'एक' तथा 'एक' में 'अनेक' की ही व्याख्या की है, कर रहा है, करेगा।

जिन सभ्यताओं[2] अथवा संस्कृतियों का वर्णन ऊपर किया गया है वे सब-की-सब आर्य्य संस्कृति एवं सभ्यता की शाखा[3] मात्र हैं—यह विद्वजन जाने। किन्तु वे मानव संस्कृति और सभ्यता की शाखा-मात्र निश्चय हैं—न आर्यों की, न अनार्यों की।

---

१ 'एक' में 'अनेक' और 'अनेक' में 'एक' के सार-तत्त्व को न समझने तक ही संसार मे उलझन-सी दीखती है। ले०

तु० 'सन्तौ धोखा कासूं कहिये।
गुनमै निरगुन, निरगुनमै गुन, बाट छाँडि क्युं बहिये।।'

—कबीर

२ देखिये :—'आर्यों का आदि देश'—सम्पूर्णानन्द।

३ मोहेंजोदड़ों सभ्यता के सम्बन्ध में सिन्धु घाटी के सुप्रसिद्ध अन्वेषक एवं इतिहासकार जान मार्शल ने निम्न बात कही है :—

"मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा, दोनों के बारे में एक बात जो बिल्कुल स्पष्ट है जिसके बारे में कोई गल्ती नहीं हो सकती वह यह है कि जो सभ्यता अब तक खोजी गई है वह कोई नई या हाल की सभ्यता नहीं प्रतीत होती; वरन एक ऐसी सभ्यता थी जो युगों-युगों पुरानी थी जो भारतीय भूमि पर ही विकसित हुई थी और जिसके पीछे शताब्दियों का मानव-प्रयास छिपा है। पंजाब, सिन्ध यदि भारत के और हिस्से नहीं, तो एक विकसित और आश्चर्यजनक रूप से सम्पन्न एवं समान अपनी निजी सभ्यता का उपभोग कर रहे थे, जो मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यता से बहुत कुछ मिलती भी थी परन्तु बहुत मानो में उनसे ऊँची भी थी।"

'आर्थिक समीक्षा', नवम्बर ७, १९५४, पृ० १४

नोट—उपरोक्त अवतरण में 'बहुत मानों में उनसे ऊँची भी थी'—इन शब्दों में **निहित** विचार से मेरा अपना कोई आशय नहीं। —ले०

मनुष्य, साधारणतः, एक सामाजिक व्यक्ति है। उसे अपने विकासक्रम में समाज से प्रेरणा मिली है। धीरे-धीरे उसमें राष्ट्र निर्माण की भावनाओं का बीज अंकुरित हुआ, वह मानवीय आकाँक्षाओं में फूला फला, और साम्राज्य-लिप्सा में मर मिटा, उसकी दुनिया संकुचित हो गई—यह उसके इतिहास की कहानी है। किन्तु मानवीय आकाँक्षायें भी तो मनुष्य की वृत्तियों का एक अंग हैं। वृत्तियों से मेरा तात्पर्य गीता में कहे हुये—'प्रकृति गुणों में वर्त रही है'—अर्थात् सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये गये हैं—अथवा मनुष्य के 'सतो', 'रजो' तथा 'तमो' गुण से नहीं, वरन बीसवीं शताब्दी के मनोविज्ञान द्वारा प्रमाणित उन वृत्तियों[1] से है जो श्रेय तथा हेय, उत्कृष्ट एवं निकृष्ट अथवा भले और बुरे सभी प्रकार के विचारों को जन्म देती हैं और उनके द्वारा क्रियाओं को सत्तात्मक रूप देती हैं। इस दृष्टि से न मानवीय आकाँक्षायें ही हेय हैं और न राष्ट्र निर्माण अथवा साम्राज्य भावना ही। हेय है लिप्सा। कीर्ति उस भावना में श्रेय है। और अपकीर्ति किस देश, जाति, युग अथवा पुरुष से किस युग में सही गई है ? राष्ट्र आये और चले गये, साम्राज्य बने और बिगड़ गये किन्तु शेष रह गई उनकी कीर्ति उस संघर्ष में। इतिहास साक्षी है।

मनुष्य अथवा वर्ग विशेष का मनुष्य, अपने उस क्रम में, अपनी सत्ता के प्रत्येक व्यापक क्षेत्र—सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, धार्मिक अथवा आर्थिक अथवा अन्य क्षेत्रों में अपनी साधनाओं और सिद्धियों के आधार पर यदि अपने को सभ्य कहे, तो इसमें किसी को आपत्ति ही क्या ? और यदि किसी को आपत्ति हो भी सकती है, तो उन पूर्वजों को जो सत्-पथ को प्रदीप्ति कर गये थे और चलते-चलते कह गये थे :—

"लो, यह तुम्हारी अक्षय निधि है। वह तुम्हारे जीवन को सुन्दर, यशस्वी, दिव्य और पावन बनावेगी।"

—वह उनके जीवन की सद्-अनुभूति थी जो सभ्यताओं में 'संस्कृति' बनकर आई है।

सभ्यताओं और संस्कृतियों में, जो समाज में 'एकता,' राजनीति में 'सह-सत्ता', धर्म में 'सहिष्णुता' और 'अर्थ' में जो 'सहायता' बनकर आई है, इतिहास में जो 'यर्थाथता' और युग-युग की 'प्रेरणा' बनकर आई है; जो साहित्य में 'क्षमता,' भाषा में 'सरसता', विज्ञान में 'ज्ञान' और कला में 'सौन्दर्य' बनकर आई है; जो आविष्कारों में 'उपकारिता' और उप-

---

१ "Instincts are innate and inherited tendencies which are the essential springs or motive powers of all thoughts and actions, whether individual or collective and are basis from which the character and the will of the individuals and of nations are gradually developed."

Social Psychology. पृ० १६

By Mc Dougall

कारिता में 'सम्पत्ति' बनकर आई है, जो रण-क्षेत्र में 'विजय' और विजय में 'कीर्ति' बनकर आई है, और ध्वंस में जो 'अहंकार-शून्य शक्ति' बनकर आई है, वह आर्य संस्कृति है।

—और संघर्ष में 'जीवन' और जीवन में जो 'साधना' बनकर आई है, जो वृत्तियों में 'सद्—भावना', आचरण में 'शील' और 'विनय' बनकर आई है—वह मानव संस्कृति है।

—और देश-देश में मानव की 'सत्य-साधना', संसार में 'लोकसंग्रह की भावना', और विश्व में 'मंगल' की कामना लेकर जो आई है—वह संस्कृति केवल भारत की ही नहीं, विश्व की सम्पत्ति थी, है और रहेगी।

———

साहित्य का युग—

इतिहास

"तुलसिदास कह चिद्‌विलास जग बूझत बूझत बूझै।"
—तुलसी (विनय पद, १२५)

'*Wave follows upon wave.*'

"History is not a mere sequence of events but is the activity of the *Idea* or *Spirit*, struggling to be born, endeavouring to reveal itself through events."

Dr. S. Radhakrishnan

"History teaches us of growth and progress and of possibility of an infinite advance of man."

Jawahar Lal Nehru.

"Fact of progress is written on plain and large on the page of history ; but progress is not a law of nature.......The ground gained by one generation may be lost by the next. The thoughts of men may flow into the channels which lead to disaster and barbarism."[१]

"He (Historian) should recognize in the development of human destinies the play of the contingent and the unforeseen."

Fisher.

"There is no nation good enough to govern another nation."

President Abraham Lincoln.

History of Europe By the Rt. Hon. H. A. L. Fisher

साहित्य का युग—

इतिहास

'......... जग बूझत बूझत बूझै' ?

—तुलसी।

आर्यावर्त्त के भू-चित्र की रेखायें जो ईसा के १४०० वर्ष पूर्व से ईसा के १००० वर्ष पूर्व विदेह की सीमाओं को स्पर्श करके रुक[१]-सी गईं थीं, ईसा के १००० वर्ष पूर्व से ३२० वर्ष पूर्व, मगध, अंग, बंग, कलिंग, सौराष्ट्र[२], मालवा और उज्जयिनी होती हुईं नर्वदा और कृष्णा के मध्य 'आन्ध्र' को अंकित करती हुईं, 'कृष्णा' के दक्षिण चोला, चेरी और पाण्ड्या पर विलोम विन्दु की छाया छोड़कर विलीन हो गईं। वे राज्य स्थापित हो गये। वे हिन्दू[३] राज्य थे। विदेह अर्थात् उत्तरी बिहार की मान-सत्ता दक्षिणी बिहार अर्थात् 'मगध' में जा बसी। कौशल[४] ने काशी को, फिर कौशल और काशी को मगध[५] ने जीत लिया। इस प्रकार आर्य्यों के कौशल, काशी और विदेह का महत्त्व जाता रहा।

---

१ 'In the Epic Age the Vedehas had established their kingdom in तिरहुत or उत्तरी बिहार which was then the extreme limit of Hindu colonization."

श्री दत्त, पृ० ७४

२ 'गुजरात (सौराष्ट्र) was early colonized by Hindus. मालावा too was early hindunized and the Kings of उज्जयिनी were reckoned among the civilzed Hindu powers of the Rationalistic Age." (1000-320 B. C.)

वही, पृ० ७६

३ "Thus by fourth century before Christ, the whole of India, except deserts and wild tracts, was the seat of powerful Hindu Kingdoms or of Kingdoms that have received Hindu culture and Hindu religion."

वही पृ० ७७

४ "At an early date 'कौशल' had conquered smaller state 'काशी'।

Short History of India, By V. Smith पृ० ५७

वैदिक काल के 'सूक्त', और महाकाव्य काल के 'मन्त्र' इस हिन्दू-युग के 'सूत्र' बन गये। मनु के मानव-धर्म-शास्त्र की, यदि परम्परा में नहीं, तो निश्चय ही उसकी व्यवहारिकता में, इस काल में, 'श्रुति-सूत्र', 'कल्प-सूत्र', 'योग-सूत्र', 'धर्म-सूत्र', 'गृह्य सूत्र'[१] इत्यादि ऋषियों ने रच डाले और रच डाले वेदांग भी— 'शिक्षा', 'कल्प',* 'व्याकरण', 'निरुक्त', 'छन्द', 'ज्योतिष'। यही ६ वेदांग हैं। यह स्पष्ट हो चुका है कि इस काल में विदेह की सीमायें उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत तक बढ़ चुकी थीं। इसी प्रकार विदेह के पश्चात् अथवा विदेह के आगे स्थापित भारत के विभिन्न खण्डों में बसे हुये मनुष्य की अनेक आवश्यकताओं —धार्मिक, समाजिक, वैधानिक, व्यवहारिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आर्यावर्त्त की माननीय मनुस्मृति की व्यवहारिकता में अनेक स्मृतियाँ[३] इस काल में रच दी गईं। 'आश्रम' के आधार पर जीवन विभाजन की व्यवस्था तो महाकाव्य काल में हो ही चुकी थी। इस हिन्दू-काल में कौटुम्बिक जीवन को अनेक संस्कारों[४] द्वारा व्यवस्थित कर दिया गया। गर्भाधान से उपनयन (दश संस्कार) तक बच्चे के जीवन एवं चरित्र निर्माण का उत्तरदायित्व माता-पिता पर होता था और उसके पश्चात् स्वयं वह अपने उत्तरदायित्व को

---

१. 'मनु and others are the expounders of law; the authors of the गृह्यसूत्र are the expounders of the practical application of the Law.''

देवल (Translation).

२. ''As the community expanded and inhabited diverse and remote tracts of the land—such expansion being indicated in the वेद itself, which speaks for instance, of the eastward march of the '*Vaishvanara fire*' to the borders of the country of the विदेह,—their needs became diverse; and the wise men found out that the same body of laws could not, with benefit, be applied to all, This gave rise to a large number of स्मृतियाँ being compiled and promulgated to suit the needs and conditions of the several peoples.''

'तन्त्रवार्त्तिक'—कुमारिल भट्ट (Translation. p. 154—168).

३. 'मनु', 'विष्णु', 'यम', 'वशिष्ठ', 'दक्ष', 'संवर्त', 'शत्तप', 'पराशर', 'आपस्तम्ब', 'शंख-लिखित', 'हारीत', 'अत्रि', 'याज्ञवल्क्य', 'व्यास', 'उशनस्' 'कात्यायन', 'बृहस्पति', 'नारद', 'कश्यप', 'गर्ग', 'भृगु', 'बौधायन', 'भारद्वाज', 'जाबाल', 'विदुर', 'पुलस्त्य', 'सत्यव्रत,' 'वैशम्पायन', 'प्राचेतस', इत्यादि स्मृतियाँ। देखिये : Prof, Jollys, Tagore Law Lectures. Lect, III. (२८, ३६ अथवा ४८ स्मृतियाँ हैं)

४. गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, विष्णुवलि, निष्क्रमण, कर्णवेध, उपनयन, वेदव्रत, विवाह, महायज्ञ, अन्त्येष्टि, श्राद्ध, इत्यादि संस्कार हैं।

नोट :—'उपनयन' का अर्थ 'वेदाध्ययन के लिये गुरु के समीप कुमार को ले जाने का, भी करते हैं। देखिये : *पृ० १५ भी।

*Ritual, रीति व विधि।

समझता था। इस प्रकार के व्यवस्थित जीवन को सुचारु रूप अथवा ढंग से चलाने में आचार[१] और सदाचार[२] को भी 'धर्म' मान लिया गया था।

जीवन व्यवस्था के अनेक संस्कारों में विवाह[३] संस्कार बड़े ही महत्त्व का था। 'ब्रह्म' 'दैव', 'आर्ष', 'प्रजापत्य', 'असुर', 'गाँधर्व' और 'पैशाच'—इन आठ प्रकार के विवाहों की व्यवस्था थी। किन्तु इन सब में एक 'ऐहिक' और दूसरा 'धार्मिक' संस्कार-तत्त्व होना आवश्यक रहा है—सदैव ही। धर्मशास्त्र के अनुसार 'ब्रह्म', 'दैव', 'आर्ष', 'प्रजापत्य' विवाहों में 'कन्यादान' 'ऐहिक' तत्त्व है और मन्त्रों सहित 'पाणिग्रहण' तथा 'सप्तपदी' धार्मिक

---

१ Custom.

२ 'Practice of Good Men.'

'When we find that certain actions are performed by good men and we cannot atttribute them to such preceptible motives as greed or passion they should be accepted as 'धर्म' and the reason for this is that when good men regard certain acts as धर्म, the very fact of their being good men and learned, coupled with fact that the act in no way proceeds from any such motive as greed or passion, is a proof of the fact that the act must have some basis in the वेद" ।

तन्त्रवार्त्तिक, कुमारिल भट्ट (Translation p. 182—183).

३ "In the first four (ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य) the essence of the marriage is the transfer of dominion by gift (कन्यादान) The transference therefore of the dominion over the girl is by the parent to the bridegroom by gift. In the आर्ष rite no doubt, there is a small consideration for giving of the girl but it is so insignificant that it may be ignored and may be treated as not forming the consideration for the transfer of the dominion over the girl. In the असुर form the dominion is acquired by purchase while in the गांधर्व form it is the mutual consent of the maiden with her lover, In the राक्षस form the dominion is obtained by stealth......From the above examination of स्मृतियों and commentaries, it is obvious that there are really two essential elements necessary to constitute a valid marriage under Hindu Law according to शास्त्र, one a secular element (ऐहिक तत्त्व) viz. gift of the bride or कन्यादान in the four approved forms (ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य) the transference of dominion for consideration in असुर form and mutual consent or agreement between the maiden and the bridegroom in गांधर्व form. These must be supplemented by the actual performance of the

संस्कार-तत्त्व। 'सप्तपदी' (सात भाँवरें) के बिना विवाह 'संस्कार' नहीं, और न 'कन्यादान' बिना ही। बचे हुये ४ प्रकार के—'असुर', गांधर्व', 'राक्षस' और 'पैशाच' विवाहों में भी ऐसे ही ढंग की व्यवस्था थी। हाँ, शूद्रों[१] के लिये मन्त्रों की आवश्यकता नहीं थी।

जीवन की उस व्यवस्था के लिये उनके धर्म की आधार-शिला मानव की कल्याण-भावना थी जिसकी अभिव्यक्ति उनके त्याग, सेवा, तप, दान, बलिदान और शील के आचरण में होती थी। और :—

'कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा॥'

—पराशरस्मृति (१/२०)

कल्प कल्प में[२] 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'महेश्वराः' उत्पन्न और क्षय होते हैं और 'श्रुति' 'स्मृति' और 'सदाचार' के विधायक भी'—पराशर मुनि का ऐसा विश्वास था। यह पराशर मुनि (सम्भवतः ईसा के १३९१—५७५ वर्ष पूर्व के काल में हुये थे) वह हैं जिनके विषय में वीरमित्रोदय[३] का कथन है कि कलियुग में इन्हीं के द्वारा चलाया हुआ धर्म चलेगा।

---

marriage by going through the forms prescribed by ग्रह्यसूत्र of which essential elements are 'पाणिग्रहण' and 'सप्तपदी'। In the case of राक्षस and पैशाच form also, there should be a marriage rite in the form prescribed by शास्त्र। This is the religious element. Both the secular and religious elements are essential to the validity of a marriage.

The 'गांधर्व' form of marriage is no exception to the rule."

ALL INDIA REPORTER. 1954, MADRAS, P. 657/665

Deivani Achi and another *vs.* Chidamabram Chettiar and others

तु० 'पाणिग्रणिका मन्त्राः नियतं दारलक्षणम्।
तेषा निष्टा तु विज्ञेया विद्वद्भि सप्तमे पदे॥'—मनु

नोट :—श्रीराम के विवाह में तुलसी ने 'पाणिग्रहण', 'कन्यादान', और 'भावरें, (सप्तपदी)—यह सब दर्शाया है। देखिये: 'बालकाण्ड'। राधा के विवाह में 'सूर' ने यह 'संस्कार' नहीं दिये हैं। ले०

१ शूद्रोऽप्यवंविधः कार्यो बिना मन्त्रेण 'संस्कृतः'—यम

२ कल्प—ब्रह्मा का एक दिन अर्थात्, ४३२८००००० वर्ष।

३ "The धर्म for men in the 'सतयुग' are other than those in 'त्रेता' and द्वापर and in the कलियुग also they are different, the धर्म of each युग being in the keeping with the distinctive character of the age."

तु० मनुस्मृति ११—८५   —पराशर (Translation)

तु० "बीरमित्रोदय-परिभाषा भाग, पृ० ४९ explains this to mean that the 'धर्म' peculiar to each 'युग' differs on account of the difference in the capacities of the men called upon to observe those 'धर्म'।"

सत्ययुग में 'मनु' द्वारा, त्रेता में 'गौतम' द्वारा और द्वापर में 'शंख-लिखित' द्वारा चलाया हुआ धर्म चला था। यदि वह कथन सत्य है तो निश्चय ही 'मनु', 'गौतम', 'शंख-लिखित' तथा 'पराशर' की स्मृतियों में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के लिये निर्देशित धर्म[1] की व्याख्या दी हुई थी और है। इस सब का अर्थ सीधे सादे शब्दों में केवल इतना है कि युग-युग के निर्माण के साथ मानव को नवीन विधानों[2] की आवश्यकता हुई और मानव ने अपनी आवश्यकताओं हेतु तथा परस्पर के सम्बन्धों की सुव्यवस्था हेतु नवीन विधानों का आयोजन किया और उन्हें रच डाला है।

इतना अवश्य है कि युग-युग के धर्म की व्याख्या में 'स्व' और 'स्वत्व' को न कोई स्थान था, न है, न होगा। यद्यपि इस युग में 'ब्रह्मा', विष्णु' और 'महेश्वराः' की भावना हो चुकी थी तथापि वेदमन्त्रों सहित यज्ञों का विधान तो था ही—विधि और रीति में कर्मकाण्ड की भौतिकता लेकर। पाणिनि[3] के व्याकरण का मूल कारण मन्त्रोंका शुद्धोच्चरण था—इतिहास ऐसा बताता है पर इस प्रकार के उच्चारण का भी मूल कारण था—'स्वर,' 'व्यंजन' और 'अक्षर'[4] का ज्ञान जो 'भावना' को गति दे, 'कर्म-काण्ड' को नहीं।

यज्ञों के लिये समय निश्चित करने के लिये जिस ज्यौतिष का भाग्य उदय हुआ था वह ज्यौतिष तो 'पराशर' और 'गर्ग' के साथ चली गई। ऐसा ही कुछ हुआ 'चरक'

---

१. सत्य-युग का धर्म **'तप'**, त्रेता का **'विद्योपार्जन'**, द्वापर का **'यज्ञ' (बलिदान)** था। कलियुग का धर्म **'दान'** है। कलियुग के धर्म के लिये देखिये:—पराशर स्मृति १।२३

तु० 'तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र दिये दान'

—तुलसी

२ "The law of every country is the outcome and result of the economic and social conditions of that country, as well as the expression of its intellectual capacity for dealing with these conditions. When new relations between men arise, or when old relations begin to pass into new forms, law is called in to adjust them."

Studies in History and Jurisprudence. Vol. II By Bryce. पृ० ३४६

३ "The right pronunciation of words and correct construction of the sentences were considered essential to the proper performance of the religious sacrifices, and the constant attention which was bestowed on this subject led to the investigation of the science of grammar earlier perhaps in India than any where else." दत्त, पृ० ६३

४. **'अक्षरमम्बरान्तधृतेः'** ॥

—वेदान्त-दर्शन, अध्याय १. पाद ३, सूत्र १०

अर्थात् 'अक्षर' शब्द परमब्रह्म परमात्मा का ही वाचक है क्योंकि उसको आकाश-पर्यन्त सम्पूर्ण जगत को धारण करने वाला बताया गया है।

तु० **'प्रणवःसर्ववेदेषु'**, गीता ७।८. अर्थात्, 'सम्पूर्ण वेदों में ओंकार (ॐ) हूँ'

और 'सुश्रुत के आर्य्युर्वेद'[1] के ज्ञान अथवा 'विज्ञान' को। 'रेखा'[2] और शून्य[3] ने यदि 'यज्ञों' को अपना आधार माना था, तो 'रेखा और 'शून्य' को एक अंग मान कर भारतीय दर्शन आया था—पराशर के गुरु महामुनि कपिल के 'सांख्य' द्वारा—'एक' के आधार पर 'अनेक' और 'अनेक' के आधार पर वेद के 'एक' (अद्वैत, एकेश्वरवाद) की व्याख्या करने को।

हिन्दु-युग (ईसा के लगभग १०००—४०० वर्ष पूर्व) को श्री दत्त ने अपने शब्दों में 'मनन' अथवा 'कारण युग भी कहा है। आर्यकाल[4] में 'ऋग्वेद संहिता' और उसके पश्चात् 'ब्राह्मण' और 'ब्राह्मण' के पश्चात् आरण्यक और उपनिषदों की रचना सम्भवतः इसी क्रम[5]

---

१. 'The science is known as आर्य्युर्वेद in India, but the earlier works on the subject are lost, and the two most important works which are now extant, and known by name of चरक and सुश्रुत do not probably date before the Christian era." दत्त, पृ० ६५

२. 'Geometry is popularly believed to be a Greek science, and Pythagoras is said to have discovered its first crude rules in the sixth century. But the शुल्व सूत्र are older than Pythagoras, and the rules framed in the 'महाकाव्य काल' are older than the 'शुल्व सूत्र' and there can be little doubt from the facts ascertained by Von Schrader and other scholars that Pythagoras borrowed his knowledge of Geometrical rules as well as many other ideas from India." वही, पृ० ६५

३. 'Decimal notation 'शून्य' (O) was not known to the Greek or the Romans; the world owes it to the Hindus. From them the Arabs learnt it, and introduced it to Europe." वही, पृ० ६५

४. वैदिक युग और कुरु, पाँचाल, काशी, कौशल और विदेह राजाओं का युग ईसा के लगभग ४५०० वर्ष पूर्व से १००० वर्ष पूर्व तक का था। ले०

५. "As the Vedic hymns grew ancient, ritual developed and theological inquiry awoke...Then arose what is called the 'ब्राह्मण ग्रन्थ' portion of वेद। Later on, in the आरण्यक ग्रन्थ and उपनिषद् which formed the part of collective ब्राह्मण, a further development took place, but principally in the philosophical direction."

Introduction to "*Hindu Classical Dictionary*." पृ० ११

By Jonh Dowson.

तु० उपनिषद ११ हैं। नाम इस प्रकार हैं :—

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, एतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, और श्वेताश्वतर।

से हुई थी। उनकी परम्परा एवं उनके आधार पर जीवन के नैतिक पक्ष की व्याख्या में कपिल का 'सांख्य-दर्शन,' पतञ्जलि का 'योग-दर्शन,' गौतम का 'न्याय,' जैमिनि की 'पूर्व-मीमांसा' और कणाद का 'वैशेषिक-दर्शन' चिन्तन[१] द्वारा ज्ञान की उपलब्धि के साधन बन कर आये। कपिल का सांख्य अथवा 'प्रकृति' और पुरुष तत्त्व'—जो प्रकृति द्वारा मन, बुद्धि, अहंकार की उत्पत्ति बताता है, प्रकृति को अनादि एवं नित्य मानता है और जो 'पुरुष' को 'एक' ही नहीं, अनेक मानता है, और उसे भी अनादि और नित्य मानता है और 'प्रकृति और पुरुष के संयोग से रचा हुआ यह शरीर तथा प्राण अथवा समस्त दृश्य जगत है'—ऐसा मानता है; पतञ्जलि का 'योग-दर्शन' योग द्वारा अर्थात् चित्त की निरोधवृत्ति, 'यम[२]', नियम[३], प्राणायाम, ध्यान, धारणा, आसन और समाधि द्वारा 'आत्मा' का 'परमात्मा' में लीन होना बताता है; गौतम का 'न्याय-दर्शन' सम्मानता, निष्कर्ष, साक्षिता द्वारा आत्मा की नित्यता को प्रमाणित करता है; जैमिनि का 'कर्म-मार्ग' और कणाद का 'अणुवाद'—यह सब व्याख्या तो करते हैं—'परम' की, 'आत्मा और परमात्मा की' किन्तु कहने, सुनने और करने में कठिन। यह सब 'पूर्ण' को 'अपूर्ण' और 'अपूर्ण' को 'पूर्ण' करने में संलग्न थे। पर वह 'साध्य' क्या है जिसके लिये चिन्तन हुआ, मनन हुआ, योग साधे गये, कर्म किए गये, अणु-परमाणु में खोज की गई? इसकी ओर ध्यान आकर्षित किया था 'व्यास' के वेदान्त-दर्शन ने—'उत्तर मीमांसा' ने—ऋग्वेद की अनेक रूप, अनेक नाम की 'भाव-सत्ता'[४] की ओर संकेत करके। वह 'एक' ब्रह्म है। 'वेदान्त' को 'ब्रह्म-सूत्र' कहा गया है। 'ब्रह्म' के विषय में उस युग के विभिन्न मतों में समन्वय द्वारा व्यास ने 'वेदान्त में ब्रह्म का निरुपण किया है' और ऐसा[५]

---

१ "The main subject of संहिता consists of injunctions of sacrificial acts and the several details bearing of those acts ... ब्राह्मण ग्रन्थ contains explanations of and speculations on the injunctions contained in the संहिता and is on that account regarded in the light of 'Supplement' and it has been held that considerable time must have elasped between the two ; ... later on, when the tendency to philosophise and to look into the innermost import of the the things set in, there came the उपनिषद्।" गङ्गानाथ झा (इन्ट्रोडक्शन पृ० १।२)

२ 'अहिंसा', 'सत्य', 'अस्तेय', 'ब्रह्मचर्य', और 'अपरिग्रह'—यम हैं।

३ शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, तथा ईश्वर-प्रणिधान—नियम हैं।

४ देखिये:—टि० १, पृ० ७ तथा **वेदान्त-दर्शन**, प्रथम अध्याय, पाद, १,२,३,४

५ "The साँख्य' philisophy of 'कपिल' whose date is probably the seventh century B. C. is, says Davies, the 'earliest recorded system of philosophy" and the latest German Philosophy of Schopenhaur and Hartmann is, according to same writer "a reproduction of the philosophic system of कपिल in its materialistic part, presented in a more elaborate form, but on the same fundamental lines." दत्त, पृ० ६६

करने से वेदान्त ने सांख्य का खण्डन किया हो अथवा साँख्य[1] ने उसे अपना विरोधी माना

---

१ 'साँख्य' was considered as principal opponent of 'वेदान्त'

Prof. R. D. Ranade.

तु० "The earliest सूत्र साहित्य thus was practically co-eval with the Brahmanic and Upanishadic literature."

History of Pre-Musalman India, Volume II पृ० ६२

By V. Rangacharaya.

नोटः श्री वी० रंगाचार्य कृत History of Pre-Musalman India II (Vedic India) के आधार पर वैदिकसाहित्य का रचना काल के लिये देखिये पृ० ६१ से १५६ तक।

१ ऋग्वेद (श्री 'तिलक' के मत में ४५०० ई० पू०) ४५०० —२५०० वर्ष ई० पूर्व।
२ सामवेद २५००—२००० वर्ष ई० पूर्व।
३ यजुर्वेद २५००—२००० वर्ष ई० पूर्व।
४ अथर्ववेद १०००— वर्ष ई० पूर्व।
५ ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषद् २५००—१००० वर्ष ई० पूर्व।
६ रामायण (वामन सोम नारायण दलाल के आधार पर) २३७० वर्ष ई० पूर्व।

(*History of India* By Dalal, पृ० १६६)

७ महाभारत १४३२ ई० पू०
नोट : युधिष्ठिर का राज-सूय यज्ञ १४३८ ई० पू० में।
किन्तु, अन्य विद्वानों के मत में युधिष्ठिर का राजतिलक ३१३८ ई० पू० में।
श्रीकृष्ण की मृत्यु और राजा परीक्षित का राजतिलक १३८८ ई० पू० में।

इस प्रकार इन 'तिथियों' के विषय में विद्वानों के मत अनेक हैं किन्तु सुनिश्चित कोई भी नहीं है। अतः 'वैदिक सभ्यता' के लिये ऐतिहासिक दृष्टि से कम से कम लगभग २००० वर्ष ई० पू० के काल को 'आधार' मानने वाला विचार सुस्थिर-सा स्पष्ट नहीं हो पाता है। ले०

तु० "Nevertheless, we have now such likely evidence of relations between Ancient India and Western Asia penetrating as far west as Asia Minor in the second millenary B. C., that Vedic culture can be traced back at least to the second millenary B. C."

History of Classical Sanskrit Literature.
By Krishnamachariar पृ० ३०६

हो, तो हो, किन्तु सत्य तो यह है कि उन सब का आशय एक ही था। वे सब 'एक' ही का बोध कराते रहे अपने-अपने क्षेत्रों में लग्न और अग्रसर—केवल उसी 'एक' की ओर।

नोट :—किन्तु, 'वैदिक साहित्य' ('ऋक्', 'यजु', 'अथर्व', 'सामवेद', 'ब्राह्मण', 'आरण्यक', 'उपनिषद्', 'सूत्र' इत्यादि) अथवा 'महाकाव्य काल' के साहित्य के रचना-काल को सुस्थिर एवं सुनिश्चित करने के लिये गीता के—'वे योगीजन काल तत्त्व को जाननेवाले हैं'—गीता ८।१० के सत्य को परखना पड़ेगा। ले०

तु० "Whether the Vedic hymns were composed 1000 or 1500 or 3000 years B. C. no power on earth will ever determine."

Prof. Max Muller in his Gifford Lecture
On "Physical Religion" in 1889.

८ सूत्र–'गृह्य-सूत्र', 'धर्म-सूत्र', 'श्रुति-सूत्र', 'कल्प-सूत्र' इत्यादि — १००० ई० पू०—४०० ई० पूर्व

९ वेदांगः(शिक्षा, कल्प, छन्द, निरुक्त, व्याकरण, ज्यौतिष) — १००० ई० पूर्व—४०० ई० पूर्व

१० मनुस्मृति — १४०० वर्ष ई० पूर्व
(श्री कोलब्रुक (Colebrook) के आधार पर) — १२८० वर्ष ई० पूर्व
(श्री विलियम जोन्स (William Jones) के आधार पर) — ६०० वर्ष ई० पूर्व
(श्री इलफिन्स्टन (Elphinston) के आधार पर) — ७००–६०० वर्ष ई० पूर्व

११ गौतम
१२ आपस्तम्ब
१३ बोधायन
१४ वशिष्ठ
} स्मृतियाँ — ७००--६०० वर्ष ई० पूर्व

(रंगाचार्य्य, पृ० ६२)

१५—गीता (देखिये गीता-रहस्य)

१६ पतञ्जलि का योग-सूत्र — २०० वर्ष ई० पर्व

नोट : 'इतिहास' और 'पुराण' का उल्लेख 'ऋग्वेद' में आ चुका है।

१७ विष्णु
१८ कात्यायन
१९ नारद
२० याज्ञवल्क्य
२१ बृहस्पति
} स्मृतियाँ — ईसा की प्रथम ५०० वर्ष के काल में

(आर० सी० मौजूमदार के आधार पर Ancient India, पृ० ४६६)

और उधर आर्यों का वह 'सारस्वत-प्रदेश'* (पंजाब) जो पीछे छूट गया था...? साम्राज्य सुरक्षा अथवा लिप्सा से प्रेरित रूस[1] की ओर जाता हुआ ईरान का दारायूस (डेरियस) महान जो उस समय ईरान जैसे विशाल साम्राज्य[2] की सीमाओं को केन्द्रित कर रहा था, जिस साम्राज्य में मिस्र, बेबीलोनिया, कैल्डिया, अफगानिस्तान, पश्चिमी तुर्किस्तान, मीडिया, बल्ख, बुखारा तथा पार्थिया जैसे वैभव-शाली देश सम्मिलित हो चुके थे, आर्यों के 'सारस्वत-प्रदेश' अथवा सिन्धु घाटी की खोज में भारत भी आ निकला[3]। पंजाब ने उसे 'कर' देना स्वीकार किया, इतना ही नहीं वह दारायूस के साम्राज्य का एक 'अंग' अथवा 'प्रदेश' बना—इतिहास ऐसा बताता है किन्तु, उसने, ईरान को कर देना बन्द कब कर दिया अथवा ईरान

---

१ "Darius I had already made plans for an expedition into Europe, aiming not Greece. . .He wanted to strike at South Russia which he believed to be the home country of Scythian nomads who threatened his northern and north-eastern frontiers." वेल्स, पृ० ३०७

*प्रसाद जी ने 'सारस्वत-प्रदेश' शब्द का ही 'कामायनी' में प्रयोग किया है।

देखिये :—'इड़ा सर्ग' —ले०

नोट :—जिस प्रकार आज के युग में भारत में 'गंगा' को मान प्राप्त है उसी प्रकार वैदिक युग में 'सरस्वती' को मान प्राप्त था। ऋग्वेद (२, ४१, १६) में उसे मातृगण, नदियों और देवों में श्रेष्ठ कहा गया है'। इसके तट पर अनेक 'यज्ञ' और 'युद्ध' हुये थे। सम्भवतः, इसीलिये पंजाब को 'सारस्वत प्रदेश' कहा गया है।—ले०

२ "The Empire of Darius I was larger......it included all Asia Minor and Syria, that is to say, the ancient Lydian and Hittite Empires, all the old Assyrian and Babylonian Empires, the Egypt, the Caucasus and Caspian regions, Media, Persia, and it extended, perhaps, into India to the Indus." राइट पृ० ७४

नोट: फारस के साम्राज्य का काल ५३८ ई० पू० से ३३१ ई० पू० का था।

"Cyrus had founded the Persian Empire, Darius the Great (521......485 B. C.) achieved the more difficult task of giving it a permanent organization." वेल्स पृ० ३०६

नोट: यह फारस-साम्राज्य काईरूस (साइरस) ने ५३८ ई० पू० स्थापित किया था।

३ "As regards the expedition of Darius I, however, we have certain knowledge for two inscriptions at Persepoils tell us that in 518 B. C. the Great King came over the mountains, subdued the plain country and added all the western Punjab to his Empire. This is confirmed by Herodotus, who says, that 'India' was the last of the twenty satrapies which Darius organized and its early tribute amounted to over a million pounds sterling (लगभग १,४०००० रुपये) paid in gold dust (Herodotus III p. 94) But of Southern India, this Historian expressly says that it was never subject to Darius, nor does he mention the Ganges." (Herodotus. III. 94) वही, १९०, १९१

का आधिपत्य उस पर से उठ कब[1] गया—इतिहास यह नहीं बताता । यह खोज ईसा के लगभग ५०० वर्ष पूर्व उनके सेनापति स्काईलैक्स[2] ने की थी।

भारत और ईरान तो इतने पर ही सन्तुष्ट हुये, किन्तु ग्रीक ईरान से उलझ गया। दारायूस (५२१—४८५ ई० पू०) की साम्राज्य सुरक्षा अथवा लिप्सा ग्रीक देश की स्वतन्त्र सत्ता के लिये एक महान समस्या बन गई। एजिन सागर[3] के तट पर एक ओर बसी हुई 'लीडिया' को ईरान ईसा के लगभग ५४६ वर्ष पूर्व ले ही चुका था। उसे चिन्ता हुई उस सागर के तट के दूसरी ओर बसे हुये 'ग्रीक' देश की। लीडिया की ग्रीक जातियों (यूनानियों) ने ईरान का आधिपत्य स्वीकार किया था, किन्तु विवश होकर। ईरान के प्रति उनकी विद्रोह भावना नहीं मिटी थी। अतः ऐथिन्स[4] से मिलकर उन्होंने लीडिया की राजधानी 'सारडिस'[5] को जला डाला। दारायूस ने उनका दमन किया। उन्हें 'लेड' के युद्ध में ईसा के ४९५ वर्ष पूर्व परास्त किया। 'केवल ऐथिन्स को ही अधीन कर लेने से समस्त ग्रीक देश उसके अधीन हो जायेगा' —ऐसा विश्वास अब दारायूस का हो गया था। किन्तु दारायूस का यह विश्वास और वह सब ईरान और ग्रीक के पारस्परिक वैमनस्य एवं उनकी वैर-भावना का एक महान कारण हुआ। यह वैर-भावना ग्रीक के ट्राय[6], 'मेराथान[7]', 'थर्मापोली[8]', 'सैलामिस' 'प्लैटोया[9] तथा 'माईकेल' के युद्धों में प्रतिफलित हुई। किस दृढ़ता एवं वीरता से ग्रीक देश ने ईरान के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की—यह ग्रीक के इतिहास, साहित्य और कला में मिलेगा[10]।

---

१. "The Persians probably ruled Indus region for many years, but how and when they lost control of it is not known."
Short History Of India. *By* Vincent Smith. पृ० ५७

२. Skylax. ३. Aegean Sea. ४. Athens. ५. Sardis.
"The twistings and turnings of the story, which included the burning of Sardis by Ionians and the defeat of a Greek fleet at the battle of Lade." (495 B. C.) वेल्स, पृ० ३१०

६. Troy, ७. Marathon (490 B. C.) ८. Thermopylae and Salamis (480 B. C.) ९. Plataea and Mycale (479 B. C.).

१०. Homer (800 B. C.) की *'Illiad'* और *'Odyssey'* (महाकाव्य)
Hesiod (750-700 B. C.) की *'Works and Days,'* *'Theogony'*
ग्रीक के इतिहासकार, 'Herodotus' (d 424 B. C.) की The *'Histories.'*
नोटः—हेरोडोटस 'इतिहास' का पिता (Father of Histories) कहलाता है।
Thucydides (d 400 B. C.) की *'Peloponnesian Wars'*, (431-411 B. C.)
Xenophon (d 355 B. C.) की *'Hellenica'*, *'Anabasis'*
Aeschylus (d 456 B. C.) की *'The Persians'*.
Sophocles (d 406 B. C.) की *'Oedipus Tyrannus'*, *'Antigone'*
Pindar (521—441 B.C.) के वीरगाथा-काव्य (Lyrics)—को देखिये। ले०

ग्रीक देश ने अपनी स्वतन्त्रता को तो ईरान से बचा लिया, किन्तु जो वैर-भावना ईरान के प्रति छिपा रक्खी थी, दारायूस के लगभग २०० वर्ष बाद, ग्रीक देश के मेसेडोन[१] के राजा सिकन्दर में वह महत्वाकांक्षा बन कर आई। ग्रीक की छिन्न-भिन्न शक्ति को बटोर कर सिकन्दर ने ईरान के साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर उसे ग्रीक साम्राज्य का एक अंग बनाया। ग्रीक की स्वतन्त्रता के अपहरण की भावना का मूल्य ईरान ने इस प्रकार चुकाया था। ध्यान रहे, बेबीलोन साम्राज्य (६०६—५३६ ई० पू०) का बिनाश 'ईरान' (फरास) ने किया था, 'ईरान' के साम्राज्य (५३६-३३१ ई० पू०) का 'ग्रीक' ने।

पर भारत में सिकन्दर क्यों आया[१]—इतिहास ने अनेक कारण बताये। अपनी महत्वाकांक्षा[२] की पूर्ति के लिये; सम्भवतः इसलिये कि भारत का 'पजांब' ईरानी साम्राज्य का एक अंग रह चुका था—दारायूस के ईरानी साम्राज्य का। कदाचित्, वह सागर[३] की खोज में था जो हिन्दुकुश पर्वत के पास ही कहीं बहता था। सम्भवतः, स्वर्ग[४] की लालसा से[५] फिर उसके हेराक्लीज तथा डायानिसीज़ भी तो जिस ओर गये वह भी जावेगा? वह केवल घुमक्कड[६] था। किन्तु इतिहास के बताये हुये कारणों में से कोई भी कारण अथवा वे सब ही कारण सत्य हों अथवा मन माने, तो अब इतिहास की शृङ्खला में कोई अन्तर नहीं आता। निश्चय तो केवल इतना है कि जिधर उसकी दुनिया ले गई वह चला गया। उसके शब्द है :—

---

१. Macedon. (सिकन्दर की राज-शक्ति का काल ३३६—३२३ई० पू० था।—ले०)

२. "Tha Indian expedition has seemed to some historians........ as an insatiate desire for further conquests."		राइट, पृ० १८६

नोट :—सिकन्दर भारत में ३२६ ई० पू० आया था। —ले०

३. "In India, if anywhere, the problem of Ocean which for long has vexed geographers could be solved."		वही, पृ० १८६

तु० "...He was able to disclose the false belief that ocean lay close to the Hindu Kush."		वही, पृ० १८६

४ "........so that at last he might be worthy of a great seat in heaven."		वही, पृ० १८६

५ "Heracles and Dionysus had both ventured into the strange land which lay east of the great mountains, and where they had gone, he must go also."		वही, पृ० १८६

६ "And now begins a new phase in the story of Alexender. For the next seven years he wandered...in the north and east what was then the known World. At first it was a pursuit of Darius. Afterwards it became......?.. ......a wild-goose chase, it seems to aim at nothing in particular and to get nowhere."		वेल्स, पृ० ३६०

"This ball,' said Alexander to the Persians, 'is the world, and I am the stick that will move it as it wishes."

अर्थात्, 'अलेक्जेन्डर (सिकन्दर) ने फारसवासियों से कहा, यह गेंद संसार है और मैं छड़ी हूँ जो इसे ढुलकावेगो जैसा यह चाहेगी।'

जैसा 'यह चाहेगी' में निहित है सिकन्दर के जीवन की सत्यता। उसमें केवल महत्वाकांक्षा ही नहीं, आक्रमण की भावना ही नहीं और न वह रौद्र रूप ही छिपा है जिसने ग्रीक को मान और ईरान को अपमान दिया था, जिसने भारत में 'मालव[२] जाति के नगर के किसी भी जन, बच्चा, स्त्री, पुरुष को जीवित न छोड़ा था, वरन उन शब्दों में उस महान प्रेरणा का एक संकेत भी है—जीवन के विश्वासों की सत्यता का। 'तुलसी' ने इसे यों व्यक्त किया है :—

'कवनिव सिद्धि कि बिनु विश्वासा।'

(उत्तर काण्ड)

---

१ "When the Persian ambassadors paid the visit to his (Alexander) father's court which is recorded by Plutarch, they brought with them as presents suitable to a young prince a stick and a ball. When it was presented to Alexander, he remarked as above."

नोट :—यह खेल 'पोलो' था। —ले० राइट, पृ० ४६

"In the old days *polo* was a game of courts and kings. It is considered to have been played as early as 500 B. C. From Persia it spread to China in the east and Egypt in the west. The word 'Polo' or 'Polu' is considered to be of the Tibetan origin, meaning a ball made of willow on account of the need for lightness. It is the oldest *stick* and *ball* game in the world ... Firdausi referred in his *Shahnama.* Sultan Qutb-uddin Aibak died as a result of a polo accident in 1203 A. D. Akbar played an outstanding game himself .. The first polo club was formed in 1859 in England, the first recorded match played in 1871 between 9th Lancers and 10 Hussars on the Hunslow Heath ... The first inter-regimental polo tournament was held in India in 1877."

From *Pakistan Quaterly*, October, 1955.
"Polo ... World's Oldest Stick and Ball Game"

२ "The Malvas, recognising the king (Alexander) by his shining armour shot him through the breast ... Then, infruiated by the sight of their wounded leader, whom they believed to be dead, the soilders burst into the town aud spared no one, man, woman, and child.'

(नोट : यह मालव जाति पंजाब क्षेत्र की थी। ले०) राइट, पृ० २१०।२११

उसका कहना है, मेरे पिता[१] ने मुझे जीवन किया, किन्तू जीवन का उपभोग कैसे हो—'यह मुझे अरस्तू ने सिखाया।'

सम्भवतः, अरस्तू ने उसे सिखाया था कि वह संसार रुपी गेंद को ढुलकावेगा जैसा वह चाहेगा। किन्तु सिकन्दर यह भी जानता था कि संसार रूपी गेंद ढुलकेगी ही, और वह ढुलकावेगा भी किन्तु जायेगी वह उसी ओर जिधर वह जाना चाहती है। कदाचित यही कारण है कि उसके संदर्भ में एक 'विश्वास'—'आत्म-विश्वास,' उसके कौशल में एक 'अव-हेलना' और उसकी महत्वाकांक्षा में एक 'शील'[२] भी था। यही थी अपूर्ण मानव की वह 'पूर्ण शक्ति'[३] जिसमें अपना 'बल' नहीं, न अपना 'वश' ही! न था, न है, न होगा।

किन्तु मानव सदैव ही सशक्त रहा है और रहेगा—निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिये। मानव की शक्ति, उसका वातावरण, उसका उत्थान और पतन और उसका चरित्र–[४] यह सब मिल कर लक्ष्य* को निर्धारित नहीं करते, लक्ष्य उन्हें निर्धारित करता है। यह लक्ष्य भी वह शक्ति है अथवा गीता के शब्दों में उसे 'विभूति' कह लीजिये जो मनुष्य के सशक्त होने का प्रमाण है। और लक्ष्य भी सशक्त है केवल इसलिये कि वह मनुष्य में 'एक' ही है, दूसरा नहीं। इस लक्ष्य की अनेक रूप व्याख्या है। 'सशक्त' ने इसे 'प्रेरणा' और 'हताश' ने इसे 'भाग्य' कहा है। किन्तु न कोई सशक्त है, न हताश। सम्भवतः, इसीलिये 'तुलसी' ने सीधे सादे शब्दों में यों कह दिया था :—

'तरनी चलत अगम जल देखे।'

(लंका काण्ड)

अगम जल देखकर नौका चलती है। 'विभूति' प्राप्त होने पर ही मनुष्य चमकता है।

---

१ "My father gave me life ... but Aristotle tought me how to live." राइट, पृ० ४५

तु० "Bad luck" retorted Alexander, 'is another word of lack of courage.'

२. "I freely forgive my enemies, because I take pleasure in exercising humanity, none in cruelty."

Zeenut-ul Tuarikh.

(Cited by John Malcolm in his Histoy of Persia)

३ The marsh round Babylon is in spring the home of malaria and a mosquito did to his weakened frame what all the warriors of Asia had been unable to accomplish and Alexander died. (323 B.C.)

नोट : मृत्यु के समय सिकन्दर की आयु ३३ वर्ष की थी। –ले० राइट, पृ० २३७

४ तु० "*Talent* is nurtured in solitude, and *character* is formed in stormy blows of the world." Goethe

*Mission of Life.

सिकन्दर की शक्ति के विषय में ऐरियन[1] का भी ऐसा ही विश्वास था। कदाचित् यही कारण है कि सिकन्दर भूमन्डल में यत्र-तत्र ग्रीक की सीमाओं को तो बना सकता था, किन्तु, उन्हें व्यवस्थित कर उनमें भ्रातृत्व[2] नहीं स्थापित कर सकता था और साईरस की बनाई हुई ईरान भी सीमाओं को व्यवस्थित करके दारायूस न उन्हें सुरक्षित ही रख सकता था। मानव शक्तिशाली होता हुआ भी इस प्रकार शक्तिहीन है।

उस युग के ईरान, ग्रीक[3] और भारत को उसने केवल इतना ही बताया था कि वे सब एक ही भूमण्डल के भाग अथवा अंश हैं, अपने-अपने में पूर्ण नहीं, और न पूर्ण ही है वह शक्ति—कृत्वाभिमान में मिटे हुये मानव की जो 'उसकी' खोज में निरन्तर रही है, रहेगी। यहाँ 'उसकी' से मेरा आशय 'विभूति'[4] से है।

दारायूस आया और चला गया, सिकन्दर आया और चला गया, किन्तु शेष रह गई एक व्यस्त अव्यवस्था—ईरान, ग्रीक और भारत में। उस अव्यवस्था में एक उत्पीड़न था—साम्राज्य सुरक्षा अथवा लिप्सा की मानवीय आकांक्षाओं में दलित जन-साधारण की सत्ता का जो, सम्भवतः, इतिहास का विषय कभी न बन सकी अथवा इतिहास ने जिसे अपने पृष्ठों में स्थान देने की असमर्थता, आज से नहीं, युग-युग से प्रगट की है। जन-साधारण की

---

१ नोट :—ऐरियन Arrian,

सिकन्दर महान की 'जीवनी' पर की रचनाओं के विशेषज्ञ एव प्रमुख लेखक Plutarch, Curtius, Diodorus तथा ऐरियन महोदय हैं। ले०.

सिकन्दर के विषय में ऐरियन (Arrian) का विश्वास था .—

"I myself hold that it was not without divine intervention that such a man, who was like no ordinary mortal, was born into the world."

Arrian in his 'Anabasis.' **Bk. III**

२ "Charles the Great, when he eastablished the Holy Roman Empire, made a gallant attempt in the right direction, thc French Revolution, when it proclaimed Liberty, Equality, Fraternity paid lip service to the idea; the Catholic Church had aways cherished the project of a universal faith. But.........who shall put into effect his (Alexandcr's) dream of Brotherhood of Man?" राइट, पृ० २६१/२६२

३ "It must be remembered that to the Greeks of Alexander's time the word, 'India' meant only the mountains of the north-west frontier and the plains through which the 'Indus' and its tributaries flow.........that knowledge they derived from Persian sources."

वही पृ० १६०

४—देखिये :—गीता, अध्याय १० (**विभूति-योग**)

कहानी, इतिहास ने नहीं, उसके हृदय ने लिखी है। जिससे उसे सान्त्वना मिली वही उसका 'धर्म' अथवा 'इतिहास' बन गया।

ईरान और ग्रीक की वह वैर-भावना जो सिकन्दर में महत्वाकांक्षा बन कर आई थी, वही, ग्रीक के विजयी होने पर, ग्रीक और ईरान में ऊँच[१] और 'नीच' का भाव बनकर आई। यह भावना भी कुछ ऐसी ही थी जैसी भारत में आर्यों की दस्यु के प्रति। जन-साधारण के हृदय को मान और अपमान की ठोकरों ने केवल ठेस ही नहीं पहूँचाई थी, उसे जीवन के प्रति हतोत्साहित भी कर दिया था। किंतु 'ग्रीक' विजयी था।

ग्रीक विजयी था और कदाचित् यही कारण है कि उसके साहित्य में एक 'विजय-घोष' था और कला में प्रफुल्लित मन का एक उल्लास[२]। उसके दर्शन में एक

---

१ "The Macedonians considered themselves to be as superiors to the Persians in the ordinary affairs of life as they had shown themselves to be on the battle field. One Macedonian is worth ten Persians, they said to themselves; and by constant repetition the assertion in their minds become a proved fact. The Greeks were somewhat more reasonable but they also stood on their dignity as free men.. .... and were inclined to think of the Persians as barbarians marked out by nature to be slaves. As far the Persians themselves even they had their grievance; they had been the ruling caste of Asia and were now put to the level with Babylonians, Syrians, Bactrians, and all the other peoples outside the pale. The situation which Alexander had to face was much the same as that which holds today in India, where Brahmans consider themselves superior to all other Indians, the Indo-Europeans consider themselves superior to any sort of Indian whatsoever, and the British consider themselves superior to everyone."

राइट, पृ० १६०

"......they (Macedonians) were by no means as willing to share their tents with Persian men as they were to share their beds with Persian women."

वही, पृ० २३१

२ "The excitement and misfortunes which has attended the war had worked a great change in Athenians. This was communicated to their works of art which now manifested an expression of stronger passion and of deeper feeling."

History of Greece.
By William Smith. पृ० ५७८

प्लायनवृत्ति[1] थी—या नहीं, यह तो वेल्स महोदय अथवा वे विद्वजन जाने जो 'इतिहास' अथवा 'दर्शन' के पंडित हैं अथवा हों। किन्तु इतना अवश्य है कि सुकरात[2] के विचारों की सत्यता तब किसने परखी ? उसे तो विष[3] का प्याला ही पिलाया। प्लेटों[4] के दार्शनिकतत्त्व 'सत्यं', 'शिवं', 'सुन्दरम्' की अनुभूति में यदि वह 'शिवं' की अपेक्षा 'सत्यं' एवं 'सुन्दरम्' को गौण स्थान देता था अथवा उन्हें 'शिवं' से सम्बन्धित कहता था, अरस्तु[5] उसके 'विचार-सिद्धांत' से केवल इसलिये असहमत था कि उसकी दृष्टि में प्रत्येक वस्तु के दो तत्त्व हैं—

---

१. "The general drift of thought in the concluding year of the fourth century B. C...The ordinary man prefers easy ways so long as they may be followed, whether they end at last in a cul-de-sac...... Finding the stream of events too powerful to control at once, the generality of philosophical teachers drifted in those days from the scheaming of model cities and the planning of new ways of living into the elaboration of beautiful and consoling systems of evasions."

बेल्स पृ० ३३३

२. 'Life,' said Socrates, 'was deception;' only the soul lived.' "I know that I know nothing." *Socrates* (d 399 B. C.)

३. "Socr ates most inveterate enemy was a certain Anytus... Through him it was that Socrates was at last prosecuted for 'corrupting the youth of Athens, and condemned to death by drinking a poisonous draught made from hemlock." (399 B. C.) वेल्स पृ० ३२६

४. "The Idea of the 'Good is the highest of these ideas. All others such as the 'True' and the 'Beautiful' are closely related to it."

Plato (427—347 B. C.)

५. "*Aristotle* rejected Plato's teaching about 'Ideas . He held that each thing has at least two elements, 'matter and form '

तु० "The Greaks were brought by their religion into harmony with the world."

Lewes Dickinson

(*Cited by Barnes*) बार्न्स पृ० १२६

नोट :—'ग्रीक दर्शन' के लिये देखिये :—

प्लेटो (*Plato*) (अफलातून) (४२७—३४७ ई० पू०) की *The Dialogues, Apology* और *The Republic* तथा अरस्तू (Aristotle) (३८४—३२२ ई० पू०) की *The Organon, Ethics, Politics, Poetics, Rhetoric* और *Constitution of Athens* इत्यादि।

एक रूप, दूसरा पुद्गलपदार्थ, तो क्या उनके विचारों की आधार-सत्ता—'एकता' में 'अनेकता' और 'अनेकता' में 'एकता'—भी भ्रमति थी ? वह सत्य थी, है और रहेगी। उसके निजी विचारों में, अथवा एक दूसरे के विचारों में अन्तर केवल इतना ही था जो 'नामदेव' की इस पंक्ति में इस प्रकार व्यक्त है :—

'जल ते तरंग तरंग ते है जल, कहन सुनन को दूजा।'

—नामदेव

किन्तु, न उपदेश ने, न चिन्तन ने, और न तर्क ने जन-साधारण को अपनाया है और न जन-साधारण ने उन्हें ही। जन-साधारण के क्षुभित हृदय की व्याख्या 'दर्शन' ने नहीं, उन छोटी-छोटी बातों ने की थी, की है, और करेगीं जो किसी के मुँह पर बरबस आ गईं थीं, उन भावों ने की है जो स्वतः किसी के हृदय में उमड़ पड़े थे—अपने को भुलाकर और उन आँखों ने की है जिनमे नीर था, विषमता नहीं।

भारत में उस समय वह युग था जब 'इफीएल्टस'[१] के रूप में 'शशिगुप्त'[२] जैसे व्यक्ति भी थे जो सिकन्दर को बैक्ट्रीया से भारत का मार्ग दिखा कर ले आये थे। उस समय मगध के शिशुनाग[३] वंश का इतिहास ईसा के लगभग ३७० वर्ष पूर्व समाप्त हो चुका था। मगध पर नन्दवंश का अंतिम राजा शासन करता था, किन्तु मगध शक्तिहीन

---

१. Ephialtes.

नोट : "Herodotus (Book VII, p. 213—218) tells the story of how a Greek traitor, Ephialtes, helped the Persian invaders at the battle of Thermophylae (480 B. C.) When the Persian King, Xerxes, had begun to dispair of being able to break through the Greek defence, Ephialtes came to him and on being promised a definite payment, told the King of a pathway over the shoulder of the mountain to the Greek end of the Pass. The bargain being clinched Ephialtes led a detachment of the Persian troops under General Hydarnes over the mountain pathway. Thus taken in the rear, the Greek defenders, under Leonidas, King of Sparta, had to fight in two opposite directions within the narrow pass. Terrible slaughter ensued and Leonidas fell in the thick of the fighting."

२. "While he (Alexander) was wintering in Bactria, he had been joined by an Indian chief from गांधार named Sasigupta...and from him he learned something of the political conditions then existing in the Punjab."

राइट, पृ० १६४

३. "Sisunag dynasty......came to a close about 370 B. C."

दत्त, पृ० ७५

था। जन-साधारण के लिए न राज्य का ही सुख था और न अपने बल का भरोसा ही। पथ बिहीन थे...पथ-प्रदर्शक।

इस प्रकार जन-साधारण के लिये पराजित 'ईरान'[१] में ग्रीक की अपमान की ठोकरों[२] में, विजयी 'ग्रीक' में पारस्परिक द्वन्द, ईर्ष्या, द्वेष, विद्वेष और स्पर्धा के संघर्ष तथा राज्य-विपल्व में, और विक्षुब्ध भारत की पथ-बिहीनता[३] में कुछ ऐसी ही लज्जाजनक अव्यवस्था थी जो व्यस्त तो थी, किन्तु अभावों में, जो व्यवस्थित तो थी, किन्तु विधानों में, जो जानती तो थी, किन्तु मन में और जो चुप थी, किन्तु भय से। उस अव्यवस्था में मान-सत्ता और जाति-भेद का एक 'त्राहि' था, मानवता का एक 'चीत्कार', और अविश्वासों का एक 'अंधकार'[४]।

---

१. "From the conquest of Alexander until the elevation of Artaxerxes (Ardisher Babigan), for above five centuries, the Persians were a subjected, if not an oppressed, race."

The History of Persia By John Malcolm. पृ० ५०

नोट—रोम और यूनान के लोग 'Ardisher Babigan' को 'Artaxerxes' कहते थे। —ले०

२. (After the death of Alexander) "...for the next thirty years every thing was in turmoil. Battles followed upon battels, thousands after thousands of men were slain, while his Generals contented one against the other for the mastry ; and in the struggle his (Alexander) ideal of a World Empire was hopelessly shattered."

राइट, पृ० २५६

तु० "The story (of Greece) became a story of a barbaric autocracy in confusion." वेल्स, पृ० ३६७

३. "The advent of Gautam Buddha was the revolt of humanity against the superstition of the Brahman priest and asceticism of Brahman sage."

History of India

By J. Talboys Wheeler. पृ० ६४

४. "अंग-बंग-कलिंगेषु सौराष्ट्र-मगधेषु च।
तीर्थयात्रा बिना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति ॥"

बोधायन स्मृति (६०० ई० पू०)

तु० "He who visited the Arattas (of the Punjab), the Karaskaras (of suthern India), the Pundras (of north Bangal), the Sauviras (of south Punjab), the Vangas (of East Bengal), the Kalingas (of South Bengal and Orissa) or Pranunas, shall offer a sacrifice."

(Translation)

मनुष्य मनुष्य को छू[1] कर नहा लेता था। कुछ ऐसी ही अव्यवस्था को इतिहास ने 'असमानता' अथवा 'अन्याय' कहा है और गीता के वक्ता ने अपने शब्दों में यों कहा है :—

"...जब-जब होय धर्म की हानी[2]।"

सम्भवामि युगे-युगे..............................।"

और वह आया भी। ईसा के लगभग ६०० वर्ष पूर्व ईरान में 'जरथूस्त्र'[3] और लगभग इसी समय भारत में 'महावीर'[4] और 'महात्मा बुद्ध'[5] और चीन में 'महात्मा कन्फ्युशियस'[6] और युगे-युगे के प्रमाण में, जरथूस्त्र, महावीर बुद्ध, और कन्फ्युशियस के

१, "A Brahman runs away from a चाण्डाल for fear of contamination."

Early History of India

By N. N. Ghosh. पृ० ८८

२. 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

—गीता ४।८

अर्थात्, 'साधुओं की रक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए तथा धर्म का पुनरुद्धार करने के लिये मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ।'

३. 'जरथूस्त्र' का अर्थ है 'सुनहरी रोशनीवाला'—'Golden Light.' 'महात्मा जरथूस्त्र के आविर्भाव काल के विषय में बहुत बड़ा मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि आप ईसा के ६०० वर्ष पूर्व हुये थे।" श्रीमाधव। ७०० ई० पू० भी कहते हैं।

४. "महावीर प्रभू ईसा से ५६६ वर्ष पूर्व बिहार प्रान्त के वैशाली नगरी के क्षत्रिय-कुन्ड ग्राम नामक विभाग में 'कोल्लंगी नामक 'उप-विभाग' में जन्मे थे।"

'भगवान महावीर का आदर्श जीवन'

—मुनि श्री चौथमल द्वारा रचित पृ० १३६

५. "Buddha was born about 563 B. C. near Kapilvastu."

The date of the birth of Gautam is very uncertain. The question is discussed in the Max Muller's *History of Sanskrit Literature* पृ० २६३—२७३

नोट: महात्मा बुद्ध का जन्म ५६३ ई० पू० और मृत्यु (निर्वाण) ४८३ ई० पू० का माना जाता है। इस प्रकार उनकी आयु ८० वर्ष की थी। उन्होंने २६ वर्ष की आयु में निर्वाण-प्राप्त के लिये गृह त्याग किया था, इसके पश्चात् ६ वर्ष का भिक्षुक जीवन बिताया। तत्पश्चात् उन्हें उस ज्ञान की प्राप्ति हुई जिसकी खोज में वे थे। जीवन के बचे हुये ४५ वर्ष उन्होंने 'आर्य-सत्य' द्वारा मानव के पथ-प्रदर्शन में बिताये। —ले०

६. "Confucius was born in 551 B. C. in the State of Lu.... **the country was then ruled by the House of Chou, the third and**

लगभग ६०० वर्ष बाद, योरुप में 'महात्मा ईसा'[1] और उनसे भी लगभग ६०० वर्ष बाद, अरब में 'मोहम्मद'[2] साहिब के आविर्भाव में—यदि उनके रूप में वह आया हो, तो मैं कह नहीं सकता, किन्तु, उनके मन में[3], वचन में, और कर्म में तो निश्चय ही 'वह' आया। उनके सरल भावों की कोमल भाषा में 'वह' पला, जो भाव उनकी सुनने वालों के

---

longest historical dynasty (1027...256 B. C.) and consisted of small and semi-independent States, each of which was governed by a ruler paying fealty to the central authority. The non-chinese tribes living beyond the outer frontiers were regarded and referred to as 'barbarians' ......the political oranzintion was feudal and aristocratic and the States, while yielding nominal allegience to the 'Son of Heaven', as the sovereign of the Suzerain State was called, were often at war among themselves, each striving for the ascendency, either for themselves or for their own particular clique of princes."

The World's Religion. पृ० १६२

By J. N. D. Anderson

नोट : कन्फ्युशियस का युग ५५१—४७६ ई० पू० का था। —ले०

१. महात्मा 'ईसामसीह' का जन्म विक्रम सम्बत ५७ में माना जाता है। —ले०

नोटः इसीलिए बिक्रम सम्बत् में से ५७ घटाने पर सन् ईस्वी का पता लग जाता है।

२. "Born about 570 A. D. at Mecca. some scholars think considerably later *e. g.* 580 A. D."

३. "Ideal (is) the Thought, Ideal the Word, Ideal the Deed.

....

Salutation unto Ye, O' Sacred Gaoas."

(१२—३)

The Divine Songs of ZARATHUSHTRA, पृ० ३१

By Irach J. S. Taraporwala. *गाथा

"......amid the general confusion into which the Empire (persain Empire) had been thrown the worship established by Zoroster had been neglected, and the nation was distracted, by a thousand schisms."

History of Persia. पृ० ७४

By John Malcolm.

तु० महात्मा बुद्ध का भी आदर्श 'मन', 'कर्म', 'वचन' का था ठीक ईरान के जरथुस्त्र के आदर्श के समान। —ले०

तु० महात्मा 'ईसामसीह' का महान सन्देश सार्वभौम भ्रातृभाव 'Universal Brotherhood' का है। यही आदर्श अथवा सन्देश महात्मा 'मोहम्मद' साहिब का था।—ले०

हृदय में उतर गये थे उनमें 'वह' बड़ा हुआ, मानव की श्री-वृद्धि में 'उसे' प्रेरणा मिली, और जो वे कर गये थे उसमें 'उसने' दुनियाँ देखी और दुनियाँ ने 'उसे' देखा। विश्व के प्रति उनकी मंगल कामनाओं में केवल उनके ही जीवन का नहीं, प्राणीमात्र के हृदय का 'वह' आदर्श बना—वह आदर्श...'भ्रातृत्व का,' 'मन', 'वचन', 'कर्म' का जो सुरक्षित है और रहेगा—'तुलसी' की इन पंक्तियों में :—

'राम सखा ऋषि बरबस भेंटे।'

अथवा

'सखा परम परमारथ येहू।
मन कर्म वचन राम पग नेहू॥'

(अयोध्या काण्ड)

तुलसी के 'बरबस' शब्द में 'भ्रातृत्व' की शीलता और सत्यता छिपी हैं और 'येहू' शब्द में 'मन', 'वचन', 'कर्म के आधारों की सत्यता—मानव और उसके विश्वासों की 'एकता'—छिपी है।

वे धर्म[1] के देवता थे—यह धर्म वाले जाने। किन्तु वे न्याय के देवता अवश्य थे। कर्त्तव्य-पथ द्वारा निर्वाण का सन्देश लेकर महात्मा महावीर और बुद्ध ने 'कर्म', 'सत्य' और 'अहिंसा' का निर्देशन किया; ईरान के महात्मा जरथूस्त्र ने और चीन के महात्मा कन्फ्यूशियस[2] ने 'परोकार' और 'शील' का और योरुप में महात्मा ईसा ने और अरब में मोहम्मद साहिब ने 'भ्रातृत्व' अथवा 'भ्रातृ-भाव' का जिसने युग-युग को आलोकित किया है, करेगा। न्याय किसी धर्म विशेष का नहीं, प्राणीमात्र का है। वे प्राणीमात्र के थे, प्राणीमात्र उनका था।

इस प्रकार ईरान, यूनान और भारत में जन-साधारण के हृदय का भार हलका हुआ था। यह कल्पना अथवा भावना नहीं—इतिहास है—सत्य और कठोर।

---

१ 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका सीधा-सादा अर्थ 'धारण करना है'—जिससे सबका धारण होता है वहीं 'धर्म' है। —ले०

२ "I have not seen one who loves virtue as he loves beauty (or sexual pleasure)". says Confucious.

Opp. cit. Bk. 17 and XV 12,

तु० "Virtue alone is happiness below.,,

—*Pope.*

तु० "The great Shang Ti has conferred even upon people a moral sense."

Religious Beliefs of the Ancient Chinese.

By F. Wei

पर, मानव ने, फिर, क्या किया ?—इतिहास यह फिर बताता है।

सिकन्दर की मृत्यु (ईसा के लगभग ३२३ वर्ष पूर्व) के पश्चात् 'ईरान'[१] ५०० वर्ष के लिये निष्चेष्ट हो गया, और 'ग्रीक'[२] विश्रृंखल। भारत में 'मगध' कर्मशील हो आगे बढ़ा। मगध साम्राज्य स्थापित हुआ। बुखारा, काबुल, कंधार, यद्यपि भारत के अधीन[३] नहीं थे, तथापि उसका आधिपत्य वे स्वीकार करते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य ने यह साम्राज्य स्थापित किया था, उसे व्यवस्था दी थी, भारत को शासन दिया था और कौटिल्य ने अर्थशास्त्र। बौद्ध धर्म की श्री-वृद्धि हुई—पाली भाषा में। अशोक 'सत्य' और 'अहिंसा' का प्रतीक बन कर आया। साम्राज्य को श्रेय दिया अशोक की 'अहिंसा' ने और उसे सुरक्षित रक्खा उसके 'सत्य' ने। यह 'सत्य' और अहिंसा' आज[४] भी अनाश्रित, हताश और पीड़ित मानवता के पथ का निर्देशन कर रहे हैं—भारत, लंका, जावा, सुमात्रा, तिब्बत, चीन, जापान, बर्मा, श्याम और मंगोलिया में[५]। आज वही 'अहिंसा' राजनिति में 'सह-सत्ता' है, । और उसी अर्थ में।,

अशोक की मृत्यु (ईसा के लगभग २२२ वर्ष पूर्व) के पश्चात मौर्य्य साम्राज्य, फिर,

---

१ "From the death of Alexander till the reign of Artaxerxes (Ardisher Babigan) is near five centuries that the whole of that remarkable era may be termed a blank in the eastern history."

History of Persia. पृ० ६८
By John Malcolm

२ "...... at last from the confusion (after the death of Alexander) three storng Kingdoms emerged. Macedonia, Egypt, and Syria, whose rulers during the third century B. C. endeavoured, how ever imperfectly, to carry on his (Alexander's) work of civilization."

राइट, पृ० २५६

३ "...........other countries not actually subjugated by Asoka, neverthless owned the suzerainty of the great Fmperor,—Bactria, (Bukhara), Kabul, and Kandhar......belong to this class, as we learn from Asoka's edicts."

दत्त, पृ० ११५

४ "Prime Minister (of India), Mr. Nehru said, (at Saigaon on October, 31, 1954, while on China Tour) "the only alternative peaceful co-existence meant an attempt to crush an ideology of Government that one does not like which means war on world scale."

The LEADER dated November 2, 1954 पृ० ५

५ बौद्ध धर्म की सीमाओं के लिये देखिये एच० जी० वेल्स द्वारा रचित 'The Outline of History' के पृ० ४०१ पर 'मानचित्र'।

टिक नहीं सका था। उस साम्राज्य का एक सेनापति पुष्पमित्र[१] मगध का शासक बना। किन्तु वह सेना का संचालन कर सकता था, शासन का नहीं। काण्व आये और गये। और इस प्रकार उत्तरी बिहार अर्थात् 'तिरहुत' की मान-सत्ता जो दक्षिणी बिहार अर्थात् 'मगध' में जा बसी थी, ईसा के लगभग २६ वर्ष पूर्व, उत्तरी भारत को छोड़कर, दक्षिणी भारत के आन्ध्र देश[२] में जा बसी अथवा यों कहिये 'मगध' ने आन्ध्र' देश को अपना बिजेता स्वीकार कर लिया था—श्री-विहीन होकर। मगध पर उन्होंने शासन किया ईसा के लगभग ४३० वर्ष बाद तक—किन्तु निष्प्रभ होकर। वहीं से समाप्त होता है 'मगध' की मान-सत्ता का इतिहास, सम्भवतः, सदैव को।

ईरान के देखते-देखते, उधर, योरुप में, ग्रीक (यूनान) साम्राज्य की विशृंखलता को मिटाकर, लगभग ठीक उसी समय (ईसा के लगभग २७ वर्ष पूर्व) जब भारत में 'मगध ने श्री-बिहीन होकर 'आन्ध्र' देश को अपने विजेता स्वीकार किया था, 'रोम[३] साम्राज्य' स्थापित हुआ था—सम्राट द्वारा नहीं, गणतन्त्रवाद[४] द्वारा। यहीं से (ईसा के २७ वर्ष पूर्व)

---

१ "The dynasty of Chandragupta ended about forty years of Asoka's death (in 222 B. C.). Pushpmitra, who was a general under the Maurya King, founded a new dynasty......Pushapmitra's dynasty ruled in Magadha for over a hundred years and then another short-lived dynasty (Kanava) ruled from 71 to 26 B. C."   दत्त, ११८

२ "That Andhra nation had risen to fame and power in the Dekhan......and Andhra conquerers now came to Magadha and ruled that Kingdom and the best part of India for four centuries and a half, from 26 B. C. to A. D. 430."   वही, पृ० ११८

३ "Then there arose a little cloud in the WEST a cloud called ROME which spread and spread until it covered the whole sky, Macedonia felt the might of Roman broad sword at Cynoscephalae in 197 B. C.......Syria was compelled to acknowledge the defeat at Magnesia in 190 B. C., and when Carthage and Corinth were both destroyed in 146 B. C, Rome became the mistress of the Mediterranean World."   राइट, २२७

४ "This new Empire unlike all the preceding empires was not the creation of a great conquerer—it was made by a Republic."   वेल्स, पृ० ४११/४१२

तु० "The Roman Empire established by Augustus in 27 B. C. was of the first importance in the history of civilization."

लूक्स, पृ० २००

राजनैतिक क्षेत्र से, बिदा होती है प्राचीन पूर्वी दुनिया--मिस्र,[१] सुमेर, बेबीलोनिया, कैल्डिया, पैलिस्टाइन, कारथेज, कारिन्थ और ग्रीक की--खिन्न होकर।

गण राज्य की स्थापना 'रोम'[२] तथा 'कारथेज'[३] में हुई थी, सम्भवतः, उन्हीं विचारो के

---

१ Egypt, Sumer, Babylonia, Chaldea, Palestine, Corinth, Carthage, Greece.

२ "Management of the vast Roman empire was vested in the senate and the emperor . . . Theoretically, Augustus was but an officer in the Roman State ; but the accumulation of so many powers made him the first and most powerful and influential citizen of Rome, a position reflected in the title of '*princeps*' now accorded him . . . . We shall ordinarily refer to it, however, as the 'empire."

लूकस, पृ० २०३

तु० "To quote the words of Augustus himself he handed over the Republic to the control of the Senate and the people of Rome."

ROMAN EMPIRE from 29 B. C. To A. D. 476.

By H. Stuart Jones. पृ० २१३

"But this empire was . . . a political structure differing very profoundly in its nature from any of the Oriental empires that had proceded it."

बेल्स पृ० ४११

. . . But while the seat of power was in the West, which enjoyed a vast preponderance of military force, the centre of gravity in industry andcommerce lay in the East."

३ " . . . the two great republicans of the Western Mediterranean, Rome and Carthage. Their State (Rome) was in the fifth century B. C., a republic of the Aryan type very similar to a Greek aristocratic republic."

वेल्स, पृ० ४११/४१८

तु० "Aristotle speaks of Carthage having 'king' and the name as given to the chief magistrates of the city often occurs in history. But they were not kings in the common sense of the terms. They did not resemble, for instance, kings of Eastern World, of Assyria, Persia, Egypt, . . . In Carthage the dignity in the family was 'elective.' They succeed to throne by election, not by seniority."

CARTHAGE. *By Alfred J Church.* पृ० १०२/१०३

नोट :—कारथेज सामी-भाषा वादी फोनेशियन जाति का उपनिवेश था।—लें०

आधार पर जिन पर ग्रीक में और 'ग्रीक'[१] के उपनिवेश 'करिन्थ' में हुई थी। अथवा यह विचार ऋग्वेद में आये हुये 'राजानं वृणाना'[२]—नृप निर्वाचन का स्पष्टीकरण था। उस विचार का आधार था—निर्वाचन अथवा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन का संचालन। गणतन्त्रवाद का यही अर्थ[३] है।

उस युग के ग्रीक का उपनिवेश 'कारिन्थ'[४] जो भू-मध्य सागर के तट पर बसा हुआ था, फोनेशियन जाति का 'कारथेज'[५] जो उत्तरी अफरीका के समुद्र तट पर बसा हुआ था, व्यवसाय क्षेत्र में, समुद्र तट पर बसे होने के कारण, वही महत्व रखते थे जो भारत में ईसा के

---

१ "Cypseclus (Greek King of Rome) grew up a fine young man and entered political life as champion of the people, the '*demos*' as the Greek would say and was, therefore, a democratic politician. A politician is a person versed in the science of government from the Greek words, 'polis, a 'city', politics, a citizen."

ROME *By Arther Gilman.* पृ० ४०

२ 'ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन्'

अनुवाद   ऋ० १०. १२४. ८

"Mention is made of choosing a king and yet they are spoken of as smitten with fear."

Aryan Polity पृ० ४५

३ 'REPUBLIC . . . A State in which the supreme power rests in the people and their elected representatives or officers as oppossed to one governed by a king or the like."

—"विधि-शब्द सागर" श्रीजगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित।

४ "The city of Corinth in Greece was one of the most wealthy and enterprising on the Mediterranean in its days and at about the same time the Rome is said to have been founded, it entered upon a new period of commercial activity and foreign colonization." पृ० ३८

ROME *By Arther Gilman.*

५ "Carthage . . . (meaning new town) was built in a little bay of the great natural harbour . . . to be found along the whole of north coast of Africa, which is now called 'Bay of Tunis'. "But where wealth accumulates, men decay."

CARTHAGE *By Alfred J. Church,* पृ० १२/१२५

पूर्व की शताब्दियों में 'बैरेस'[१] अथवा बुद्ध-काल में श्रावस्ती[२] अथवा ईसा के बाद किसी समय तक 'गुजरात'[३] महत्व रखता था। वे बड़े धनाढ्य थे, अपेक्षा में रोम इतना धनाढ्य नहीं था क्योंकि रोम समुद्र तट से दूर[४] था। कारथेज की भाषा 'सामी' और 'रोम की भाषा 'लेटिन' थी। रोम की दृष्टि सदैव ही कारथेज पर लगी रहती थी। रोम साम्राज्य की सीमायें उस समय तक पूरी नहीं हुई जब तक रोम ने 'कारिन्थ' और 'कारथेज' ले नहीं लिया था। यह दोनों[५] ईसा के १४६ वर्ष पूर्व रोम ने लिये थे। प्युनिक के युद्धों में (२६४—१४६ ई० पू०) यह लिये गये थे।

कदाचित्, यही कारण है कि वह इतिहास जो ईरान और ग्रीक के लिये 'विजयी' और विजयी के विधानों मे 'पराजित' का इतिहास था, जिसने 'ऊँच' और नीच होने की

---

१ "Strabo (भूगोलवेत्ता) (India. Sec. 4.) "The yearly voyages undertaken by the Roman merchants between Egypt and Western India were sufficiently described by Pliny (VI–26). The voyage outlasted for about 70 days, that is, 30 days from Egypt to Ocelis, the mordern Gelha on the north-west corner of Arbia, and 40 days from Ocelis to Muziris, probably, the modern Manglore on the western coast of India..... ...Muziris was undesirable an account of the distance from roadstead to the port, which rendered it necessary to carry all cargoes for loading and discharging on board canoes, Barace, probably, mordern Baroach (बरोच) was thus considered a more convenient port."

History of India. पृ० २०५

By J. Talboys Wheeler.

नोटः—'स्ट्रैबो' नामक भूगोलवेत्ता ने सिकन्दर के युग के भूगोल की रचना की।-ले०

२ देखिये :—**'ललितविस्तर'** । यह 'श्रावस्ती' नगरी राजा श्रावसत ने बसाई थी। इससे पहले यह 'सहेत-महेत' कहलाती थी। यह व्यापार का बड़ा केन्द्र था। बड़ी ही धन-सम्पन्न नगरी थी। यह नगरी उत्तर-प्रदेश में गोंडा और बहराइच के निकट थी।—ले०

३ "Morco Polo writes, 'the people of Gujrat were famous, as they are now, for their inland trade and embroidered leather work. They made beautiful cushions embroidered with gold. ......silver and wire.'"

Morco Polo, Book III. Chap. 26. *History of India* पृ० ३६३/३६३

Referred By J. Talboys Wheeler.

नोटः—देखिये ह्वानचांग (६२९—६४४ ई०) की 'गुजरात' यात्रा। —ले०

४ "Rome was......the most ancient as the most remote from sea to the cities of Latium."

ROME *By Arthur Gilman.*

५ "Corinth and Carthage fell to Rome in 146 B. C. after three **Punic Wars** (264-146 B. C.)

कहानी कही थी, वही रोम साम्राज्य में 'धनी'[१] और 'निर्धन' अथवा जन-साधारण का इतिहास है जो निर्धन की नहीं, धनी उच्च वर्ग के अधिकारों की व्याख्या करता है—गर्व-पूर्ण। इस प्रकार 'गणतन्त्रवाद' की विचार धारा का सूत्रपात करके आरम्भ होता है जन-साधारण की राजनैतिक अथवा भौतिक सत्ता का इतिहास—शक्ति के विश्वास और संकल्प में और आरम्भ होती हैं पश्चिमी दुनियाँ—व्यवधानों के विग्रह और विकल्प में। क्या हुआ, यदि रोम साम्राज्य अथवा रोमराज्य का जन-साधारण इतिहास की दृष्टि से अपने गणतन्त्रवाद में असफल[२] रहा? वह निरुपाय हो गया। एक बार, पुनः धनी शक्तिशाली सम्राट[३] बन गया—गणतन्त्रवाद की छाया में। पर जो गया सो गया, किन्तु जो[४] आ रहा है

---

१ "This community (Romans) followed the usual traditions of a division into aristocratic and common citizens who were called in Rome "patricians" (धनी) and "plebeians" (निर्धन)..... ...the slaves or outlander had no more part in the state than he had in Greece."

वेल्स पृ० ४१९

२ "The day (13th January, 27 B. C.) was celebrated as a festival in the Roman Calendar, and the coins were struck which designated Augustus "the champion of the liberties of the Roman people." But on the day which saw these liberties restored they were resigned once and for all into the hands of their restorer."

"By a decree of Senate and people Augustus was immediately invested with powers which were not indeed singly lacking in constitutional precedent, but were sufficient to make him supreme ruler of the State, although the nominal independence of the Republic and its governing body, the Senate, was retained."

ROME From 27 B. C. TO 476 A. D. पृ० ४

By H. Stuart Jones.

३ "By natural and imperceptible degree the idea of the god-emperor came to dominate the whole Romanized world." वेल्स पृ० ४७६

४ "Co-existence' means different things in Britain and Russia. To Britishers, for example, it means that nations should not actively interfere in each other's internal affairs ; to the Russians it means that they should not do this in violant, forcible or obviously dangerous ways.........that on the whole the Western Countries ought not to do it *at all*."

CO-EXISTENCE: RUSSIAN INTERPRETATION.

By Christopher Maythew M. P.

The LEADER September 9, 1954. पृ० ४

अथवा जो आवेगा वह निश्चय ही जन-साधारण का युग होगा—राष्ट्र अथवा साम्राज्य का नहीं।

यदि रोम साम्राज्य का जन-साधारण[1] ही नहीं रहा, तो वे सम्राट और वह साम्राज्य ही कहाँ रहा? हाँ, रह गया सत्ता का क्रम-शेष और अपने-अपने विनाश अथवा 'ह्रास'[2] का वह सन्देश जिसे 'मिस्र' ने 'बेबीलोनिया' से कहा था, मिस्र और बेबीलोनिया ने 'ईरान' से कहा था, 'मिस्र,' 'बेबीलोनिया' और 'ईरान' ने 'ग्रीक' से कहा था, जिसे इन सबने और 'पैलिस्टाइन', 'फोनेशिया', 'कारथेज' और 'कारिन्थ' ने 'रोम' से कहा था और रोम साम्राज्य ने.............................'जर्मनी की बर्बर जातियों' से और कही भी सब ने एक ही बात[2]—'यह भूमि हमारी न हुई'। सम्भवतः संसार के ऐसे ही क्रम को दृष्टि में रख कर सांख्य ने 'जगत' को 'अनादि' कहा है और 'प्रसाद जी' ने 'नित्य'। किन्तु, संसार रूप भी बदलता है—शत-शत।

'वह रूप बदलता है शत शत'

(कामायनी —दर्शन सर्ग)

निष्कर्ष केवल इतना है यदि रोम 'विजय' कर सकता था, तो वह विजित भी हो सकता था। यही क्रम देश-देश की सत्ता के साथ रहा है।

---

१ "Membership in social group was determined by the amount of wealth that one possessed......The wealthy dissociated themselves from public responsibilities and lived in luxury......In contrast the condition of the masses was deplorable......Most of the people lived in very undesirable homes......They did not have adequate food and were without police protection......The middle class was crushed in an effort to support the unemployed. This was one of the basic causes for the decay of the Roman State.' स्वेन, पृ० १७६/१०७

२ प्राचीन पाश्चात्य विश्व के यह ४ साम्राज्य थे जिनका 'ह्रास' निम्नलिखित क्रम में हुआ था—एक का दूसरे के द्वारा :—

१—बेबीलोन साम्राज्य	(६०६—५३६ ई० पू०)
२—फारस साम्राज्य	(५३६—३३१ ई० पू०)
३—ग्रीक साम्राज्य	(३३१—१६८ ई० पू०)
४—रोम साम्राज्य	(१६८ ई० पू०—४७६ ई०)

नोट :—इन साम्राज्यों के उत्थान और पतन के विषय में बाइबिल (Bible) में एक बड़ा ही रोचक एवं गम्भीर वर्णन आता है—'भविष्यवाणी' के रूप में :—

बेबीलोन के राजा 'नेबूकडनेज़ार' (Nebuchadnezzar) को एक 'स्वप्न' हुआ—मानो स्वप्न में उससे कोई कह रहा है, 'ओ राजन्! तुमने देखा!! देखो! इस महान्

मूर्ति को—'इसकी आकृति को'। मूर्ति का शीश 'सोने' का था, उसकी छाती तथा भुजायें 'चाँदी' की थीं, उदर तथा जांघें' ताँबे की थीं, उसकी टांगें 'लोहे' की और चरण 'लोहे' और 'मिट्टी' के थे। 'तुमने देखा! एक पत्थर जो मूर्ति के चरणों पर पड़ा था बिना हाथ लगाये ही कट गया'। फिर 'लोहा', 'मिट्टी', 'सोना'—यह सब टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गये। वायु उन टुकड़ों को उड़ा ले गई। किन्तु उन टुकड़ों के लिये कोई स्थान नहीं प्राप्त हुआ ····· और वह पत्थर जिसने मूर्ति के चरण दबा डाले थे एक विशाल पर्वत हो गया और सम्पूर्ण पृथ्वी को भर डाला। शीश जो सोने का था वही 'बेबीलोन' साम्राज्य था, छाती और भुजायें जो 'चांदी' की थीं वही 'फारस' साम्राज्य था, 'जंघा' 'ग्रीक साम्राज्य और 'पैर' जो लोहे के थे वही 'रोम साम्राज्य था।

रोम साम्राज्य के ह्रास (४७६ ई०) के पश्चात् सम्पूर्ण योरुप में आज तक कोई साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ। रोम के ऐसे टुकड़े हुये थे जो आज तक मिलकर एक नहीं हुये—प्रयत्न अनेक हुये—८वीं शताब्दी में चार्लमैगने (Charlemagne) द्वारा, १६वीं शताब्दी में चार्ल्स पंचम (Charles V) द्वारा, १८वीं शताब्दी में लुइज चौदहवें (Louis XIV) द्वारा, १६ वीं शताब्दी में 'नैपोलियन' (Napoleon) द्वारा और २० शताब्दी में 'कैसर' (Kaiser) (प्रथम महायुद्ध) 'द्वारा' तथा 'हिटलर' (Hitler) द्वारा (द्वितीय महायुद्ध)। —ले०

बाइबिल के शब्दों में यह 'स्वप्न' इस प्रकार था :—

"Thou, O! King, sawest, and behold A GREAT IMAGE. This great image whose brightness was excellent, stood before thee; and the form thereof was terrible. This image's head was of fine gold his breast and his arms of silver, his belly and his thighs of brass, his legs of iron, his feet part of iron and part of clay. Thou sawest till that a stone was cut out without hands, which smote the image upon his feet that were of iron clay and brake them to pieces. Then was the iron, the clay, the brass, the silver and the gold, broken to pieces together, and became like the chaff of the summer threshing floors; and the wind carried them away, that no place was found for them: and the stone that smote the image became a great mountain, and filled the whole earth."

Daniel 2 : 31-35.

बाइबिल के शब्दों में वे 'राज्य' मिलाकार एक नहीं होंगे :—

"But they shall not cleave one to another."

Daniel 2 : 41—43,

किन्तु, बाइबिल की 'भविष्यवाणी' यह है:—

"For unto us a Child is born ......the government shall be upon His shoulder and his name shall be..... ....The PRINCE OF PEACE." Of the increase of his government and peace there shall be no end, upon the throne of David, and upon His kingdom, to order it and to establish it with judgment and with justice from henceforth even for ever."

Isaiah 9 : 6, 7.

रोम के ह्रास पर योरुप में अनेक जातियाँ इस प्रकार हो गईं :—

Alemanni	(जरमन जाति)
Franks	(फ्रान्सीसी)
Burgundians	(स्विट्जरलैन्ड तथा फ्रांस के लोग)
Suevi	(पुर्त्तगाल के लोग)
Anglo-Saxons	(अंग्रेज जाति)
Visigoths	(स्पेन के लोग)
Lombards	(इटैली के लोग)

साम्राज्यों की 'सदृश्यता' की व्याख्या के लिये देखिये :—

'बेबीलोन' साम्राज्य के लिये	Jeremiah 51: 37 Isaiah 13 : 19-20	
'फारस' साम्राज्य के लिये	Daniel	8 : 20
'ग्रीक' साम्राज्य के लिये	Daniel	2 : 39
'रोम' साम्राज्य के लिये	Daniel	2 : 40

एडवर्ड गिब्बन (१७३७—१७६४) ने अपनी पुस्तक में इस 'संदर्भ' को यों व्यक्त किया है :—

"The images of gold or silver or brass, that might serve to represent the nations and their kings were successively broken by the iron monarchy of Rome."

Gibbon's History of the Decline and Fall of the Roman Empire
Chap. 38. Para 1.

नोट : बाइबिल का '*Old Testament*' १०००—६५० ई० पू० में लिखा गया।—ले० देखिये:—

"Old Testament began to be committed to writing between 1000 950 B. C."

Bible and its Background By Archibald Robertson
Thinker's Library Series. 19.

ईसवी ३७२ में हूणों ने जिन्हें इतिहास एशिया के स्टेप्पीज के निवासी (मूलतः बर्बर जाति) बताता है, योरुप और एशिया के भू-मंडलों में बर्बरता करना आरम्भ कर दिया था। एक टोली[१] योरुप पहुँची और रोम राज्य में बर्बरता करना आरम्भ कर दिया। पर यह 'हूण' और 'रोम'—दोनों ही परास्त हुये—जर्मनी की बर्बर जातियों द्वारा। हूणों को ४५१ ई० में चैलन्स[२] के युद्ध में परास्त किया और रोम साम्राज्य का सूर्यास्त हुआ ४७६ ई० में।

जिस समय भारत में अशोक[३] 'सत्य' और 'अहिंसा' द्वारा मानवता की व्याख्या कर रहा था, ठीक उसी समय रोम 'दासों' के जीवन से खेल खेल रहा था। यह 'दास' वे व्यक्ति थे जिन्हें व्यापार[४] की वृद्धि में धनिकों ने 'निर्धन' बना दिया था, जिन्हें राजनैतिक अव्यवस्था ने समाज में 'नीच' बना दिया था और जिन्हें युद्धों[५] ने असहाय और निरुपाय बना दिया था। जिन्हें उस युग के मनुष्य के-से कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं थे, केवल इसलिये कि वे 'दास'[६] थे। रोम समाज के जन-साधारण[७] की निर्धनता के कारण भी

---

१ "The West Goths (a German race) marched from one end of the Empire to the other . . . through Greece, across Italy - sacking Rome in 410, and finally settling in Spain."   स्वेन, पृ० २६१

२ Battle of Chalons (fought in 451 A. D.)

३ "... ... In the third century B. C. when King Ashoka was ruling in India in light and gentleness, the Romans were reviving an Etruscan sport, the setting-on of slaves to fight for their lives."

पृ० ४४६

४ "... ... As business developed, a new use was found for gladiators as armed retainers ; rich men would buy a band, and employ it as a bodyguard or hire it out for profit at the shows."

वेल्स, पृ० ४५०

५ "To begin with, while wars were frequent, the gladiators were prisoners of war. They came with their characteristic national weapons, tattooed Britons, Moors, Scythians, Negroes, and the like ...... Then criminals of the lower classes condemned to death were also used."   वही, पृ०, ४५०

६ "... ...gladiators were used as 'material for the vivisectors of the Museum at Alexandria.'   वही, पृ० ४५०

७ "The patricians made a mean use of their political advantages to grow rich through the national conquests at the expense not only of the defeated enemy but of the poorer plebeian whose farm had been neglected and who had fallen into debt during military service."   वही, पृ० ४२१

वे 'धनी' ही थे जो समाज में ऊँचे थे, उनकी नैतिकता का अर्थ 'अमानुषिकता' था और 'अमानुषिकता' का अर्थ उनकी जलती हुई लोहे की शलाखें[1] बतावेंगी जो दास की चीत्कार ध्वनि में—प्रतिध्वनियों में क्षण भर को बुझ जाती थीं—दुःखी होकर।

रोम धन-धान्य से पूर्ण एवं समृद्धिशाली देश था। धन की प्रचुरता 'आनन्द' और 'प्रमोद' को उत्साहित करती है और उसका अभाव उत्साहित करता है गम्भीर चिन्तन को। आनन्द और प्रमोद रोम का जीवन था और विलास एवं अत्याचार उस जीवन का एक आवश्यक अंग। गम्भीर चिंतन के लिये न उनके पास यथेष्ट समय ही था, न इच्छा ही, और, सम्भवतः, न आवश्यकता ही थी। धन था, किन्तु आत्मा नहीं। फिर, आत्मा की नित्यता का विषय ही क्या ! उनके 'आनन्दवाद'[2] में जीवन एक आकस्मिक[3] घटना थी जो अणु-परमाणु के मिल जाने से घट गई थी अर्थात् 'जीवन' बन गया था। धन के मद से चूर्ण, अत्याचार और नृशंशता के विचारों से अभिभूत उन्हें कौन समझा सकता था कि क्रोध बुद्धि का विनाश करता है, जीवन क्षण भंगुर है, न सदैव वे ही जीवित रहेंगे और न उनके दास ही और क्षमा दया का मूल है ? मनुष्य-मनुष्य की समानता का ज्ञान उन्हें कैसे कराया जावे ? यही समस्यायें उनके 'दर्शन' की आधार बनीं। कैटो[4] (Cato) ने 'सद-चरित्र' की व्याख्या की। सिसेरो[5] (Cicero) ने 'मनुष्य की समानता' पर अपने दार्शनिक विचार प्रगट किये। ल्युक्रीटिअस[6] (Lucretius) ने अणु-परमाणु द्वारा जीवन संकलन की व्याख्या की। उसे तो मृत्यु तक का भय नहीं रह गया था। सेनका[7] (Seneca) ने जीवन की 'क्षण-भंगुरता'

---

१. "Gladiators who objected to a fighting for any reason were driven on by whips and hot irons." वेल्स, पृ० ४४६

"so long as pain was inflicted, Roman morality, it would seem, was satisfied." वही पृ० ४५०

२. Epicureanism.

३. "life is but an accidental combination of atoms, there can be no immortal soul, no gods, and no eternally existing Ideas as Plato taught." लूकस, पृ० २०८

४. Cato (234-149 B. C.) का आदर्श था *'Right conduct*·····is conducive to happiness.' अर्थात्, सद्चरित्र सुख का मार्ग है।

५. Cicero (106-43 B. C.) ने *'On Old Age*, तथा *'On the Nature of Gods*, *'On the State'*, *'On the Laws'* इत्यादि की रचना की।

६. Lucretius (99—55 B. C.) ने *'On the Nature of Things'* पर विचार प्रगट किये।

७. Seneca (4 B. C.—95 A. D.) के विषय थे :—*'On Anger'*, *On the Brevity of Life*, तथा *'On Clemency.'*

'क्रोध' और 'क्षमा' को अपना दार्शनिक विषय बनाया। इस प्रकार रोम के दर्शन ने ग्रीक-दर्शन को अपनाया हो, अथवा उसके समान सूक्ष्म भावों अथवा विचारों की व्याख्या भले ही नहीं की हो, किन्तु उसने अपने 'युग' को 'विधि'[१] (Law) की प्रेरणा देकर 'युग' पर से अमानुषिकता का कलंक तो निश्चय ही मिटा दिया था।

जीवन का 'सत्य' इन पंक्तियों में छिपा कर मरक्युस[२] (Marcus) विश्व को साधारणतः और रोम को विशेषतः दे गया था...'मनन' करने को :—

"Of that lyre of life
Whereon Himself, the master harp-player
Resolving all its mortal dissonance
To one immortal and most perfect strain,
Harps without pause, building with song the world."

भावार्थः—

जीवन की उस वीणा के विषय में ?....उसे 'वह' स्वयं बजाता है······'वह' जो परम-वादक है, परम-संगीतज्ञ है। 'वह' सम्पूर्ण लौकिक विकृत स्वरों को एक ही अलौकिक स्वर में साधकर उन्हें स्वरित कर देता है······एक ऐसे स्वर में जो सर्वथा परिपूर्ण है·········अभिसिक्त है।··· 'वह' बिना रुके हुये ही बजाता हुआ चला जा रहा है······संगीत ध्वनि के साथ विश्व रचता हुआ।

और यह 'भावना' 'प्रसाद जी' की इन पंक्तियों में प्रस्फुटित भावना' के साथ अमर रहेगी :

"अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य—भेदिनी सत्ता-चित;
टठराज स्वयं थे नृत्य-निरत,"

---

१ "In theory, at least, Roman Law compiled the control of the State by popular consent." स्वेन पृ० १६६

नोट "The famous Code of Roman Law was compiled by scholars under Justinian I, who ruled the Eastern Empire from 527 to 565 A. D.

२ "Marcus Aurelius (121—180 A. D.) रोम का सम्राट था उसने 'चिन्तन' को अपना विषय बनाया और "*Meditations.*" की रचना की। रोम की विशेषता रोम के विधि (Law) में है। अत्याचारों के दमन करने के लिये उन्होंने कानून बनाया था। Justinian ने उनका कानून (*Corpus Juris Civilis*) बनवाया था। *Theodosian Code* इससे पहले ४३८ ई० में बन चुका था। —ले०

और

'विद्युत कटाक्ष चल गया जिधर
कम्पित संसृति बन रही उधर'

(कामायनी—दर्शन-सर्ग)

'प्रसाद जी' की भी 'चेतना' के अनन्त परमाणु बिखर कर, क्षण, क्षण बनते, क्षण क्षण में विलीन होते हैं। सम्भवतः, यही अर्थ है विज्ञान के 'So creation goes on'[1] का तथा मरक्युस (Marcus) के 'Harps without pause' का।

ग्रीक विजयी था। रोम भी विजयी था। किन्तु दोनों की विजय भावनाओं में एक महान अन्तर था। ग्रीक ईरान के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिये लड़ा था और साम्राज्य स्थापित हुआ था ईरान के चुकाये हुये प्रतिशोध की भावना के मूल्य से। रोम ने युद्ध किया—ग्रीक को देखकर और साम्राज्य स्थापित किया था—'मान'[2] के लिये। अथवा यों कहिये, पश्चिमी भू-मध्य सागर[3] पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये साम्राज्य बना था। सम्भवतः, यही कारण है कि ग्रीक के साहित्य में यदि एक 'विजय-घोष' था, तो रोम के साहित्य में एक 'मान-घोष'। उनकी कला में, यदि प्रफुल्लित मन का एक 'उल्लास' था, तो इनकी कला में 'धन'[4] का आभास। इन्होंने साहित्य का निर्माण तो किया—किन्तु भाव को भाषा में छिपाकर और मन को मान में बहलाकर। ओविड[5] (Ovid) की रचना '*Art of Love*' साक्षी है। किन्तु ऐसा साहित्य तो उन लाड़िले नवयुवकों को सुखी कर सकता था

---

१ देखिये पृ० २६, टि० २

२ "In many respects, Roman civilization belongs to the Hellenistic classification, a continuation of Greek culture with modifications typical of the Romans. One of the most striking examples of this was the organization of a great Empire built on a precedent established by the Macedonians." स्वेन, पृ० १६१

३ "A war between Rome and Carthage was inevitable. They represented two rival civilizations, each ambitious to accomplish the same thing ... the domination of the Western Mediterranean."

वही पृ० १६४

४ "Roads, aqueducts, bridges, public bathrooms, and palaces figured much more prominently than shrines and temples. In sculpture Romans aimed at the immortalization of individuals rather than the perfection of type produced purely for the sake of art or beauty."

वही १७७

५ "*Ovid* (43—17 B. C.) wrote *Art of Love*...neglects society's easy morality and lack of serious purpose. (लूकस) "But it caused him to spend 10 years in exile.'' वही, १८२

जिन्होंने जीवन के कोलाहल को दूर से हट कर देखा था। अतएव उनके साहित्य की सत्यता तो होरेस[१] (६५—८ ई० पू०), सिसैरो[२] (१०६—४३ई०पू०), तथा वर्जिल[३] (७०—१६ ई० पू०) की नित्यता में छिपी थी।

वर्जिल का यह विश्वास,

"God's temple is the earth, the sea, the air, the sky, the pure in heart."

अर्थात्, ईश्वर का मन्दिर पृथ्वी है, सागर है, वायु है, आकाश है और वे जिनका हृदय स्वच्छ है,

—'तुलसी' की इन पंक्तियों में घुल-मिल कर,

'काम क्रोध मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिनके कपट न दंभ न माया।*'

(तुलसी—अयोध्या काण्ड)

आज भी शशक्त कर रहा है और मान दे रहा है वर्जिल को नहीं, उसके युग को, उसके रोम को। कदाचित् वर्जिल के 'Pure in heart' का अर्थ यही था। उसका महाकाव्य 'अनीड' (Aeneid) को तुलसी के महाकाव्य 'रामायण' की तुलना में कौन कह सकता है—'को कासे घाट'? दोनों का एक ही ध्येय था—जीवन में साहस और आशा का संचार करना।

उस दिन[४] भारत के प्रधान मन्त्री जब पीकिंग (पेकिंग) यात्रा में गए हुए थे, तब उनके स्वागत में चीन के प्रधान मन्त्री श्री चौ-एन-लाई ने कहा था, 'चीन और भारत के बीच शान्तिपूर्ण निर्वाह और मैत्रीपूर्ण सहयोग निश्चय ही एशिया के अन्य देशों और सारे संसार के देशों के बीच परस्पर शान्तिपूर्ण निर्वाह की सुविधा पैदा कर देगा[५]।" 'एशिया के अन्य देशों और सारे संसार के देशों के' शब्दों में निहित 'विश्व-भावना' उस मिट्टी की थी जो चीन की है। चीन विश्व के इतिहास का शान्ति पर्व रहा है—इतिहास ऐसा बताता है।

---

१ *Horace* (65—8 B. C.) ने *Satires and Lyrics* (Odes and the Epodes) लिखे।

२ *Cicero* (106–43 B. C.) ने लेटिन गद्य की रचना की।

३ *Vergil* (70-19 B. C.) 'the *Voice of Rome*' कहलाता था। उसने महाकाव्य '*Aeneid*' की रचना की। उसके *Georgics* में ग्रामीण जीवन का चित्रण है।

४ २७ अक्टूबर १६५४

५ **'आर्थिक-समीक्षा,** ७ नवम्बर १६५४ में 'सम्पादकीय अग्रलेख, पृ० ३ से।

***'तिनके हृदय बसहु रघुराया॥'**

पश्चिमी-विश्व में मिस्र को लेकर जिस बेबीलोनिया अथवा कैल्डिया के साम्राज्य को कैल्डिया ने स्थापित किया था उसे 'ईरान' ने, जिसे ईरान ने उसे 'ग्रीक' ने, जिसे 'ग्रीक' ने उसे रोम ने और जिसे रोम ने स्थापित किया था उसे जर्मनी की बर्बर जातियों ने समाप्त किया था—गर्वपूर्ण। पश्चिमी संसार के इतिहास की यह कहानी लगभग १०८२[१] वर्ष की है।

'सर्व-सम्पन्न[२] होते हुये भी उनके जीवन में उद्वेग[३] क्यों नहीं था ? इस शंका के समाधान में अनेक 'कारणों' पर दृष्टिपात करते हुये वेल्स महोदय ने चीन की भाषा[४] तथा उसकी जटिलता को तुलनात्मक दृष्टि से एक कारण पाया, किन्तु इससे भी परे, उस युग के चीन में, उनके मत में, जीवन सन्तोषमय[५] था। शान्ति और सन्तोष में पला हुआ जीवन भय और भेद[६], मान और अपमान[७], धन और निर्धन[८] की अभ्यर्थनाओं[९] में

---

१ बेबीलोनिया का साम्राज्य ६०६ ई० पू० स्थापित हुआ था और रोम साम्राज्य का अन्त ४७६ ई० में, इस प्रकार १०८२ वर्ष हुये।—ले०

२ "The urbanity, the culture and the power of China under the early Tang rulers are in so vivid a contrast with the decay, disorder and the divisions of the Western World, as at once to raise some of the most interesting questions in the history of civilization.'

वेल्स पृ० ५८१

३ "Why does not she (China) to this day dominate the world culturally and politically.' ?

"Many people are disposed to find that operating cause, which has, inspite of her original advantages, retarted China so greatly during the last four or five centuries in the imprisonment of the Chinese mind in a script and in an idiom of thought, so elaborate and so difficult that the mental energy of the country has been largely consumed in acquiring it."

वही, पृ० ५८३

४ 'The peculiarities of Chinese language and script.'

'There is much that is plausible in this explanation.'

वही, पृ० ५८६

५ "The very success and early prosperity and general contentment of China in the past must have worked to justify in that land, all the natural self-complacency and conservatism of our species."

वही, पृ० ५८३

६ 'नील' व दजला और फरात' की घाटियों की 'भय और भेद' की भावनायें।

७ ग्रीक और ईरान की 'मान और अपमान' की भावनायें

८ रोम की 'धन और निर्धन' की भावनायें।

९ स्वागत

उन्मुख[1] होता भी तो कैसे[2] ? उनके देश की भौगोलिक[3] स्थित भी उस शान्ति और सन्तोष के वातावरण की एक कारण थी। किन्तु जहाँ शान्ति और सन्तोष का निवास होता हैं वहीं अशान्ति और असन्तोष के कारण भी होते हैं। चीन का कोयला[4], लोहा और तेल ऐसे ही कारण थे—दूसरों के लिये असन्तोष के कारण।

ईसा के लगभग ३००० वर्ष पूर्व से आरम्भ हो कर जो इतिहास ईसा के लगभग १७६६ वर्ष पूर्व समाप्त होता है वह चीन के पौराणिक शासकों का इतिहास है। उनसे लगभग साढ़े छः सौ वर्ष के शांग वंश (Shang Dynasty) के शासन के पश्चात् चौ वंश (Chou Dynasty) ईसा के ११२२-२२५ वर्ष पूर्व के काल में राजराजेश्वर प्रजा के दुःख-सुख[5] को बांटता रहा, किन्तु इसके पश्चात् जो युग आरम्भ होता है उसमें छोटे-छोटे स्वतन्त्र-सत्तात्मक राज्य स्थापित हो गये थे जिनका एक मात्र कार्य्य पारस्परिक वैर-विरोध ही था। अन्त में शीहांगटी (Shih Huang Ti) के शासन काल (२२१-२१० ई० पू०) के पूर्व में एक बार पुनः चीन देश व्यवस्थित हुआ। वूटी (Wu Ti)

---

१ उत्सुक, प्रवृत्त

२ "So that China went on age by age, and still goes on without any such boredom, servitude and indignity, and misery as underlay the rule of the rich in the Roman Empire and led at last to its collapse.'
वेल्स, पृ० ५८६

३ "China has been rather well isolated from the rest of the world by the physical features of the western frontier. Broad desert wastes and high mountains there make formidable barriers. The northern boundary is not so well protected; therefore, a Chinese Emperor built a great wall (in 200 B. C.) to keep out the Mongolian invaders. One of the approaches to China was through Gobi desert and Kalgan gap.........Another contact was along Wei Ho———into Western Turkestan."
स्वेन, पृ० २१५

४ "China has great quantities of natural resources———coal iron, and oil———which were not important in the classical period, but have become the source of attraction in the modern times."
वही, पृ० २१४

५ "The Emperor was— —prospering and suffering with them. People and emperor alike feasted in years of plenty ; in years of famine they starved together on equal terms."
वही, पृ० २१६

का शासन काल (१४०—८७ई० पू०) चीन का 'स्वर्ण युग' था और लगभग १०५८ वर्ष पश्चात् सम्पूर्ण चीन देश पर मंगोलिया[१] का आधिपत्य हो गया था।

उस स्वर्ण-युग में भी,

'भर पेट भोजन मिल गए तो भाग्य मानो जग गए।[२]'

के आधार पर चीन के कृषक ने अपना निर्वाह कर लिया था—जीवन की भर्त्सनाओं में मन को समझा कर। भविष्यत्[३] की प्रतीक्षा में वह कराह उठा था—मूक हृदय का भार लेकर। किन्तु, वह कृषक भी, यदि विश्वास करता था तो केवल इन शब्दों में—'हरि इच्छा बलवान'[४]। वे शब्द सम्वेदनमय थे और आज भी हैं। उनसे आश्रय मिलता था और आज भी मिलता है—केवल चीन में ही नहीं, भारत में भी और केवल भारत और चीन में ही नहीं, विश्व के कोने-कोने में :—

"मोर दास कहाय नर आसा।
करै तो कहहु कहा विस्वासा॥"

(तुलसी—उत्तर काण्ड)

किन्तु 'हरि इच्छा' अथवा 'लोक-संग्रह' में विश्वास हो सकता है तो केवल या तो अपने को भुलाकर या अपने को जानकर। हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, मान, अपमान

---

१ "In 1279 A. D. the last Sung prince was murdered and the whole of China passed under the control of the Mongols." स्वेन पृ० २१८

२ "By the time of Wuti (140--87 B.C.), however, the old nobility ceased to be important . . . but the mercantile and industrial magnate soon won favour among the rulers. The lot of the peasants was generally miserable. The typical peasant was a resigned and needy insect interested in little more that enough to eat. He was as much a part of nature as the soil that he tilled and the animals that he kept."

वही, पृ० २१६

३ But we, ceaseless toilers in the king's service,
Cannot even plant our millet and rice.
... ...
O thou distant and azure Heaven !
When shall all this end ?"

वही, पृ० २१६

४ "Heaven was not considered a place but the Will of God' (हरि इच्छा) or as more correctly interpreted the Order of the World. (लोक-संग्रह)

वही, पृ०, २२४

अथवा सुख, दुख में 'अप्रभावित' अथवा 'समभाव' होना द्वन्दरहित होना है। यही अर्थ है, 'अपने को भुलाने' का 'अथवा' 'अपने को जानने का'। यह 'अप्रभावित', 'समभाव' अथवा 'द्वन्दरहित' 'मनुष्य स्वयं' भी हो सकता है और 'हरि इच्छा' से भी। यदि मनुष्य को स्वयं होना है, तो 'यश' का त्याग कर दे। न यश की इच्छा होगी, न दुख होगा। और यह भी भुलाना न चाहिये कि यश का त्याग कर देने पर चारों ओर विमल यश छा जाता है किन्तु 'यश' की प्राप्ति हो और भावनायें मुखरित न हों-यह तनिक दबे मुंह कहना पड़ता है। पर 'यश' भी तो 'विभूति' का भोग है। विभूतिवान पुरुष का संसार में कोई कुछ बिगाड़ नही पाता है—न बिगाड़ सकेगा, भले ही कोई उसे मानी कहे या अभिमानी। और यश...!

'......यश होत होत ही होय'[१]

—रहीम

इस प्रकार यदि कोई जीवनर को जान ले, तो निश्चय ही वह 'मृत्यु' को पहिचान ले। कन्फ्युशियस का भी ऐसा ही विश्वास था। यश के त्याग की बात स्वर्ण-युग से बहुत पूर्व, ईसा के लगभग १२५० वर्ष पूर्व, यू-ट्सी Yu Tze[3] ने कही थी। मनुष्य स्वयं[४] 'हरि' हो जावेगा—यह ल्यो-ट्सी (Lao-tse) ने बताया था। मनुष्य के सतो, रजो, तमो गुणों की भाषा में 'हरि-इच्छा का क्या अर्थ है—यह भी उसने बताया था। 'प्रकृति को अपना कार्य्य करने दो'—ऐसा उनका विश्वास था। ऐसे ही दार्शनिक तत्त्वों के आधार पर चीन ने 'आश्रय', 'आशा' और 'साहस' बटोरा था।

रम्य प्रकृति में चीन की कला अपने देश की सुलभ अनुभूति थी। चीन की दीवार (१२५० मील लम्बी) उस कला की एक अभिव्यक्ति है। काव्य और कला का अर्थ वहाँ 'स्वान्तायः सुखाय' था।

"गगन मण्डल में उड़ता हुआ एक गौरवर्ण का व्यक्ति मेरे राज भवन में आया। उस व्यक्ति की ग्रीवा में सूर्य्य का प्रकाश था" - यह स्वप्न पूर्वी हान वंश के चीन सम्राट मिंग टी

---

१ **"यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय।**
बैर, प्रीति, अभ्यास, यश, होत होत ही होय॥"

—रहीम

२ "So long as thou dost not know life, how canst thou know death ?" —*Confucius.*

३ "As early as 1250 B. C. Yu Tze expressed a profound philosophy in these words, 'He who renounces fame has no sorrow.'

—*Yu Tze*

४ "When merit hath been achieved take it not unto thyself. If thou dost not take it unto thyself behold it can never be taken from thee." —*Laotse.*

ने अपने शासन काल (५८—७५ ई०) की ७वीं वर्ष में देखा था। प्रातःकाल सम्राट ने अपने राज्य के विद्वानों से इस स्वप्न के सन्देश का आशय जानने की इच्छा प्रगट की। फूई (Fu-yee) नामक विद्वान ने समाधान कहते हुये कहा,—'वह भगवान् बुद्ध थे'। सम्राट इस उत्तर से इतना प्रभावित हुआ कि उसने तुरन्त १८ विद्वानों की एक मंडली को भारत भेजे जाने का आदेश दिया कि वे भारत जाकर बौद्ध धर्म व ग्रन्थों तथा भिक्षुकों को भारत से चीन में लावें। दो वर्ष के पश्चात् चीन के विद्वानों की यह मंडली मध्य एशिया के यहूची-प्रदेश (Yueh-chi) में 'महा काश्यप मातंग' तथा 'धर्मरत्न' से मिली। उन्होंने इस मंडली को भगवान् बुद्ध की प्रतिमा भेंट की। बौद्ध धर्म के अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ भी भेंट किये। दो भिक्षुक भी श्वेत अश्वों पर भेजे गये। यह ईसवी ६४ की बात है। इसी वर्ष यह अमूल्य भेंट चीन देश पहुँची। चीन और भारत का यह सम्पर्क इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया। उस समय चीन के वाई (Wei) प्रदेश की राजधानी लोयांग (Lo-yang) थी। इसी राजधानी में भारत के बौद्ध महात्माओं की वह अमूल्य भेंट पहुँची थी। इसी नगर के पश्चिमी द्वार के निकट उन दोनों भिक्षुकों के लिये सम्राट ने 'श्वेताश्व-विहार' बनवा दिये। उसके पश्चात् बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद चीनी भाषा में हुये। धर्मरत्न, धर्मकला, धर्मसत्य धर्मभद्र नामक अनुवादकों ने बौद्ध धर्म के अनेक ग्रन्थों (प्रातिमोक्ष, धर्मगुप्तनिकाय-कर्माण) का अनुवाद चीनी भाषा में किया। फिर भारत से अनेक भिक्षुकगण चीन गये। चीन से भारत भी आये। प्रथम चीनी महात्मा जो भारत आये चू-शी-शिंग (Chu-Shih Shing) थे। यह २६० ई० में चीन छोड़कर खोतान आये थे। इन्होंने चीनी 'प्रज्ञासूत्रों' की प्रतिलिपि की थी।

हान-वंश (२०६ ई० पू० से २२१ ई०) के पतन के पश्चात् चीन देश तीन राज्यों में विभक्त हो गया—वाई (Wei), वू (Wu) और शू (Shu) राज्यों में। इन तीनों वंशों के पश्चात् पाश्चात्य् शिन (Western Tsin) वंश का सूर्य्य उदय हुआ। इस वंश का शासन काल केवल ५२ वर्ष का था—२६५ से ३१७ ई० तक का। इस काल में 'प्रज्ञा साहित्य' की उन्नति हुई। 'चतुर्-सूत्त' का अनुवाद चीनी भाषा में हुआ। 'प्रणय-मूल-शास्त्र-टीका', 'सत्-शास्त्र', 'द्वादश-निकाय-शास्त्र', 'महाप्रज्ञापारमिता' इत्यादि ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। यह अनुवाद कुमारजीव ने किये थे। कुमारजीव कश्मीर निवासी ब्राह्मण बुद्धयशस् के शिष्य थे। इनके पिता भारतीय कुमारायण थे और माता चीन प्रदेश के कूचा के राजा की बहिन थी। इनके विषय में एक विचित्र कहानी है। चीन के सम्राट ने कूचा के राजा से कुमारजीव को मांगा पर जब उसने देने से इन्कार किया तो उन दोनों में एक युद्ध हुआ और अन्त में कुमारजीव को बन्दी करके चीन की मुख्य राजधानी 'चागान' में लाया गया। इनको राजगुरु की पदवी दी गई। इनके लिये एक विशाल भवन का निर्माण किया गया जिसमें लगभग ३००० शिष्य उनके प्रवचनों को सुनते थे। आठ सौ विद्वानों के साथ कुमारजीव ने अनुवाद किये थे। नागार्जुन के शून्यतावाद पर इनके अनुपम ग्रन्थ हैं। माध्यमिक तथा योगाचार के सिद्धान्तों को चीन में इन्होने प्रवेश कराया। महायान के संस्थापक अश्वघोष की जीवनी भी इन्होने रची।

चीन के दक्षिण में प्राच्य शिन (Eastern Tsin) के उदय काल में 'नानकिंग' भारतीय विद्वानों का केन्द्र बन गया। यहाँ 'धमरत्न' ने आगम साहित्य के लगभग ११० संस्कृत ग्रन्थो का अनुवाद चीनी भाषा में किया। वास्तव में उत्तरी तथा दक्षिणी चीन में यह युग 'आगम साहित्य' का युग था। भारतीय दर्शन का आरम्भ 'संघदेव' ने किया। 'श्रीमित्र' (जो एक तांत्रिक था) ने 'महामायूरीविद्याराज्ञी' की रचना की। लंका का 'धर्मपद' नामक ग्रन्थ ब्राह्मण कुलोद्भूत द्वारा चीन पहुँच चुका था।

पर वास्तव में भारतीय 'दर्शन-शास्त्र' को चीन पहुँचाने वाला व्यक्ति संघदेव था। बुद्धभद्र ने इस कार्य्य को आगे बढ़ाया। यह बुद्धभद्र कपिलवस्तु के थे। यह चीनी यात्री फाहियान के अनुरोध पर चीन गये और वहाँ 'अवतंसक सम्प्रदाय' के प्रवर्तक बने।

तिब्बत, मङ्गोलिया, मन्चूरिया, कोरिया और जापान में भी बौद्ध धर्म अमृत की दो बूँदें ढालता रहा।

भारत, चीन और जापान का यह सम्पर्क सद्भावनाओं सहित और सुदृढ़ होता ही रहा। बौद्ध संस्कृति और साहित्य का दीपक जलता ही रहा—पूर्वेशिया में।

इतिहास का चिरन्तन सत्यः—

—मानव

ओ आलोक-तिमिर के मङ्गल दीप !

त्रस्त विश्व को मानवता के असंख्य चीत्कारों में 'त्राहि' बरदानों से जब अपनी झोलियाँ भरता है...मानव के अभिशापों से तब सत्य-चिरन्तन झरता है।

मानव के अभिशाप शापित को मङ्गल के बरदान बनकर आये हैं क्योंकि मानव में अभिशाप की भावना नहीं होती। उसमें प्रतिशोध नहीं भड़कता। उसकी 'हाय' किसी की बुराई नहीं चीत पाती। 'बुराई से बदला बुराई नहीं ले पाती, क्रोध क्रोध को शान्त नहीं कर पाता, बैर बैर से नहीं मिट पाता'[3] यह एक छोटी-सी कहानी है, किन्तु मानव का इतिहास बनकर आई है।

इसे ऋजुकुला के तट पर सुनिये :—

ऋजुकूला के तट पर बसे हुये जृम्भक ग्राम में परमआत्मज्ञान प्राप्त करके अथवा कषाय रूपी सर्प—अर्थात् 'हिंसा' का भाव, क्रोध, मान, माया, लोभ को वश में करके महावीर स्वामी ने स्वात्मानुभव अर्थात् अपने रूप का अनुभव किया था। "सब जीवों को अपने समान समझो और किसी को कष्ट न पहुँचाओ"—यही वह अनुभूति थी जो उनके जीवन की थी और जो उनके युग में मानवता के चीत्कार में कंपते हुये मनुष्य को 'अभय' का वरदान बन कर आई थी। जैनियों के २४[1] तीर्थकारों में महावीर प्रभु अन्तिम तीर्थकार थे जिनके विषय में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी का ऐसा कथन है :—

> "गौतम बुद्ध महावीर स्वामी का शिष्य था जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्धधर्म की स्थापना के प्रथम जैन धर्म का प्रकाश फैल रहा था।"[2]

---

१ जैनियों के २४ तीर्थकार यह हैं :—

१	श्री ऋषभदेव जी	२	श्री अंजितनाथ जी	३	श्री सम्भवनाथ जी
४	श्री अभिनन्दन जी	५	श्री सुमतिनाथ जी	६	श्री पद्मप्रभु जी
७	श्री सुपार्श्व जी	८	श्री चन्द्रप्रभु जी	९	श्री सुविधिनाथ जी
१०	श्री शीतलनाथ जी	११	श्री श्रेयाँस जी	१२	श्री वासुपूज्य जी
१३	श्री विमलनाथ जी	१४	श्री अनन्तनाथ जी	१५	श्री धर्मनाथ जी
१६	श्री शान्तिनाथ जी	१७	श्री कुन्थुनाथ जी	१८	श्री अर्हनाथ जी
१९	श्री मल्लिनाथ जी	२०	श्री मुनि सुव्रत जी	२१	श्री नेमिनाथ जी
२२	श्री नेमीनाथ जी	२३	श्री पार्श्वनाथ जी	२४	श्री महावीर स्वामी

२ तु० "जैनधर्म के प्रवर्तक या संस्कर्ता महावीर स्वामी (निगण्ठ नातपुत्त) बुद्धदेव के पूर्ववर्ती थे।" 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० २१३

३ बुद्ध जी का उपदेश।—ले०

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, और अपरिग्रह—यही जैन मुनि के परमव्रत हैं और यही धर्म के मूल हैं। जैन तीर्थंकारों के लिये श्रुतियों और स्मृतियों में भी स्थल-स्थल पर आदरयुक्त एवं आदरसूचक उदगार दृश्यमान होते हैं। नवमें तीर्थंकार 'सुविधिनाथ' के समय में शौंडिल्य, याज्ञवल्क्य और पैप्लादि ऋषियों ने हिंसात्मक वेदों की रचना की थी। 'आचारवाद' इस धर्म का आधार था और है। ग्रीक तथा रोम के समान राज्यबल द्वारा नहीं, आत्मबल द्वारा 'अत्याचारों' पर विजय पाई थी।

विद्वानों ने स्वामी महावीर की 'अहिंसा' तथा महात्मा बुद्ध जी की 'अहिंसा' में भी अन्तर बताया है। एक का आधार अर्थात् महावीर प्रभु की 'अहिंसा' का आधार 'जीव-रक्षण' है, अर्थात्, सभी जीव समान हैं और दूसरी अर्थात् महात्मा बुद्ध जी की अहिंसा का आधार 'आत्मभोग' अर्थात 'दया और सहानुभूति' है।[1] पर वास्तव में अन्तर तो कुछ भी नहीं—इन आधारों के न अर्थ में, न भाव में। यदि किसी को दुःखी देखकर अपनी आत्मा रो उठे तो निश्चय ही उस दुःखी की रक्षा का भाव हृदय में उठेगा और यदि अपनी आत्मा न रोई, तो नहीं। दुःखी के दुःख को हरने अथवा उसकी रक्षा करने में 'रक्षा' तो होगी ही, किन्तु आत्मा को सन्तोष भी होगा। पर इन दोनों के अर्थ अथवा भाव में, यदि कोई अन्तर रह जाता है, तो निष्काम भावना का। निष्काम भावना के बिना 'जीवरक्षण' अथवा 'आत्म-भोग' दोनों ही निर्मूल हैं। 'जीवरक्षण' और 'आत्मभोग' दोनों ही का आधार 'दया' है और दया धर्म का मूल है। 'दया' के भाव में न जैन, न बौद्ध, न हिन्दू, न ईसाई, न मुस्लिम, और न किसी अन्य धर्म विशेष के आधार का चिन्तन है। 'दया' धर्म का आधार हो सकती है, धर्म 'दया' का नहीं।

सत्य तो यह है 'धर्म' का अर्थ 'कर्त्तव्य-भावना' है और यही अर्थ है 'जीव-रक्षण' और 'आत्म-भोग' का। इस प्रकार 'जीवरक्षण', 'आत्मभोग', 'दया', 'सहानुभूति', 'धर्म' और 'मनुष्यता' 'स्व' के संदर्भ सहित अवतरणों में पर्यायवाची अर्थ और भाव के मापक हैं,—किसी धर्म विशेष के 'सिद्धान्त' अथवा 'आदर्श' नहीं। महावीर स्वामी ने राजगृह (नालन्द), श्रावस्ती, वैशाली, बंगाल और बिहार में 'लोकहित' और 'लोक-कल्याण' की भावनाओं को ही 'लोक-मंगल' का साधन बताया था, किन्तु यह दीक्षा किसी क्षेत्र विशेष में सीमित होकर नहीं रह गई है। यह दीक्षा विश्व का कल्याण कर रही है, करती रहेगी। 'राज श्रेणिक' (बिम्बिसार), 'नन्दिवर्द्धन', 'चण्ड', 'प्रद्योतन', 'चेटक', 'उदयन', 'प्रसन्नचन्द्र',

---

१ विद्वानों (अर्नेस्ट लायमेन जर्मनी) का कथन है :—

"अहिंसा के विषय में दोनों (बुद्ध और महावीर) की आज्ञाएं समान हैं परन्तु उनकी भावनाओं में अन्तर है। श्री महावीर की भावना 'जीवरक्षण' की है इसलिये सभी जीव समान हैं। इस प्रकार सृष्ट जगत से सम्बन्ध जोड़ कर पाँच महाव्रत का उपदेश करते हैं। बुद्ध आत्मभोग के आधाररूप दया और सहानुभूति की भावना को सम्बंधित कर दुःख का उपदेश करते हैं। इस प्रकार महावीर की 'अहिंसा' बुद्ध की अहिंसा से आगे बढ़ जाती है।"

'बुद्ध और महावीर' शीर्षक लेख से **'जैन युग'**, गुजराती, अंक ८, पुस्तक १

'अदीनशत्रु' प्रभृति इनके शिष्य थे। यह स्वयं शिष्य थे...अपने 'स्याद्वाद'[१] सिद्धान्त के और व्याख्या भी की केवल 'एक' ही की—'तदेवैकं परं बीजं'[२]--वही 'एक बीज' है।

अब उसे लुम्बिनी के शालवन में सुनिये :—

'जगत को सार-सून्य[३] और नश्वर मान कर' अथवा 'वस्तु मात्र क्षणिक और दुःख रूप है',—ऐसा विश्वास लेकर अथवा दिलाकर सारनाथ नामक रमणीक वन में 'धर्म-चक्र—प्रवर्तन' द्वारा महात्मा बुद्ध ने 'संसार' के क्षणिक पदार्थों की तृष्णा ही दुःख का कारण अथवा मूल है, तृष्णा का नाश होने से दुःखों का अन्त होता है और अहंम भाव और रागद्वेष के हटने से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है'—ऐसा उपदेश दिया था। तृष्णा के अस्तित्व को मिटा कर नहीं, उसे मानकर जीवन के संचालन हेतु आर्य्यअष्टांगमार्ग[४] की व्याख्या की थी। यही बौद्ध धर्म बना जो पाली भाषा और साहित्य के त्रिपिटक[५]—सुत्त, विनय और अभिधम्म त्रिपिटक—में सुरक्षित है।

---

१ 'अनेकान्तवाद'

नोटः अनन्त धर्मों में विरोध नहीं है, यह बात स्याद्वाद से ही जानी जाती है। सब धर्मों का अधिक से अधिक ७ प्रकार से विवेचन किया जा सकता है! १ स्यादास्ति, २ स्यान्नास्ति, ३ स्यादस्तिनास्ति ४ स्यादवक्तव्य, ५ स्यादस्ति अवक्तव्य ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य ७ स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य।' जैन-दर्शन में इन्हें **'सप्तभंगी'** न्याय कहते हैं।

२ तु० "The philosophical catagories of the Jainism resemble the materialistic principles of the 'वैशेषिक' school of thought who adopted atomic theory to explain creation without the agency of a personal god."

Elements of Hindu Culture and Sanskrit Civilization. पृ० १७३
By P. K. Acharya

३ तु०

"उमा कहहुं मैं अनुभव अपना।
सत्य हरि भजन जगत सब सपना॥"

—तुलसी

४ १ सत्य विश्वास, २ नम्र वचन, ३ उच्च लक्ष्य, ४ सदाचरण, ५ सद्वृत्ति, ६ सद्गुणों में स्थिर रहना, ७ बुद्धि का सदुपयोग, ८ सद्-ध्यान।

५ 'विनय पिटक' की रचना ३०० ई० पू० की मानी जाती है। इसमें भिक्षुओं और संघों के आचारों का वर्णन है। 'सुत्तपिटक' की रचना २५० ई० पू० की मानी जाती है। इसके पाँच भाग अथवा निकाय हैं—मज्झिमनिकाय, दीर्घनिकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तरनिकाय, खुद्दकनिकाय। 'अभिधम्म पिटक', सम्भवतः, सुत्तपिटक के पश्चात् का संकलन है। इसके ७ भाग हैं—विभंग, धातुकथा, पुग्गलप्रज्ञपति, कथावत्थू, यमक, पट्ठान, धर्मसंगणि। 'जातकों' में बुद्ध जी के पूर्व जन्म की कथाओं का उल्लेख है। —लें०

किन्तु, अमर जीवन की खोज में महात्मा बुद्ध जी के जन्म (५६३ ई० पू०) से भी लगभग ४००० वर्ष पूर्व से वैदिक-चिन्तन 'आत्मा' और 'परम-आत्मा' (ब्रह्म) की जिज्ञासा में लीन होता हुआ चला आ रहा था—'वह निर्विशेष है, निर्विकार है, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी, सबके कर्मों का अधिष्ठाता, सर्वथा विशुद्ध, और गुणातीत है'[1]—वैदिक-चिन्तन में ऐसा वह 'ब्रह्म' था...'एक ही 'आत्मा' विश्व में रमी हुई है'—ऐसी वह धारणा थी। पर आश्चर्य यह है कि ऐसे चिन्तन में भी शूद्रों के प्रति एक क्षोभ...महाक्षोभ...एक अनर्थ था मानों शूद्रों की आत्मा उस विश्व में रमी हुई आत्मा (ब्रह्म) से भिन्न हो। 'स्मृतिओं' में शूद्र के लिये वेद के श्रवण, अध्ययन तथा अर्थज्ञान का निषेध किया गया है[2]'—ऐसी भावना स्पष्ट आई है। 'मनु'[3] तथा 'पराशर'[4] स्मृतियों में शूद्रों के प्रति यह क्षोभ स्पष्ट रूप से मिलता है।

पर प्रश्न केवल इतना था (है) कि जब एक ही 'आत्मा' विश्व में परिपूर्ण है तो शूद्रों की आत्मा का उस आत्मा से भिन्न होने का कारण कोई खोजे भी तो नहीं मिल पाता था और है। निश्चय ही यह युग का चीत्कार था—आत्मा की आत्मा के विरुद्ध एक पुकार थी जिसके करुण स्वर को सुन कर न 'ब्रह्म' ही बैठा रह सकता था, न 'आत्मा' ही उस आर्द्रता को सह सकती थी। स्पष्टतः प्रतिक्रिया में 'ब्रह्म' और 'आत्मा' दोनों ही को अपना अस्तित्व मिटा लेना पड़ा। और

'बुद्धावतारे वैवस्वते मन्वंतर कलियुगे'

अर्थात्, कलियुग में बुद्ध का अवतार हुआ। महात्मा बुद्ध ने न 'आत्मा' को माना, न 'ब्रह्म' को[1]। दोनों ही अस्तित्व-विहीन हो गये। पर क्यों ऐसा हुआ ? स्पष्ट उत्तर एक शब्द का है—'मानव-कल्याण' के लिये। 'मानव' शब्द से तात्पर्य मेरा केवल मनुष्य-मात्र

---

१ 'एको देवः सर्वभूतेष गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥'

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।११

२ 'श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात स्मृतेश्च'

—वेदान्त-दर्शन अ० १ पाद ३ सूत्र ३८

तु० **छान्दोग्योपनिषद्** ४।४।३, ५

३ **'न शूद्राय मतिं दद्यात्'**

—मनु-स्मृति ४।८०

अर्थात्, शूद्र को वेद-विद्या का ज्ञान नहीं देना चाहिये।

४ 'वेदाक्षरविचारेण शूद्रः पतति तत्क्षणात्'

—पराशरस्मृति, १ ७३

अर्थात् वेद के अक्षरों का अर्थ समझने के लिये विचार करने पर शूद्र तत्काल पतित हो जाता है।

१

ही से नहीं है--प्राणी मात्र से है--चर-अचर दोनों से[1]। यही सम्पूर्ण भावना 'विश्व-कल्याण-भावना' में परिणित हो गई। मानव की भावनाओं की आधर-शिला यही भावना रही है--युग चाहें वेदों का रहा हो, स्मृतियों का रहा हो, चाहें 'बुद्ध' का अथवा 'महावीर' का।

महान आत्माओं की 'ब्रह्म-जिज्ञासा' में अथवा 'आत्म-चिन्तन' में 'ब्रह्म वहीं है जहाँ मानव कल्याण हो सका है, आत्मा वही छटपटा उठी है जहाँ भूक और प्यास से तड़पते हुये को किसी ने दो बूंदे टपका दी हों—किन्तु साथ ही वे दोनों बूदे जल की भी हों और पलकों की ओट में आँसुओं की भी हों...वह टुकड़ा कहीं एहसान का न हो... मान--अभिमान का न हो। फिर उस भूखे और प्यासे की तृप्ति से पूछना...आत्मा कहाँ है ?...ब्रह्म कहाँ है ? वह बतावेगी 'आत्मा' और 'ब्रह्म' दया में है, अभिमान में नहीं, उपकार में है, प्रतिशोध में नहीं; न्याय में है, पक्षपात में नहीं; त्याग में है, स्वार्थ में नहीं; वरदान में है, अभिशाप में नहीं।

यह 'दया', 'उपकार', 'न्याय', 'त्याग', 'वरदान'--यह एक ही 'भाव' के अनेक रूपान्तर हैं। वह भाव 'करुणा[2]' है। ऐसी ही अनेकानेक भावनाये युग युग में मानव को दो क्षण सांत्वना दे पाई हैं। स्व', 'स्वत्व', 'स्वार्थ', 'लोभ', 'क्रोध', 'अभिमान', 'अदाया', 'दुःख-दारिद्र', 'पक्षपात', 'अन्याय' और 'अत्याचार'—यह सब किसी आत्मा को सताये, चाहें 'ब्रह्म' को पर अपनी पराकाष्टा के पश्चात् कहते यही हैं, 'हमने बुरा किया '। यह भाव पश्चाताप का है। इसके एक ही पग आगे 'प्रायश्चित्' भी मिलेगा, पर मन ही मन दुखेगा। क्षमा भी मिलेगी पर आत्मा कंपेगी ... ... और अन्त सांत्वना मिलेगी तो केवल उसी पश्चाताप में। फिर पश्चाताप ही में 'ब्रह्म' का प्रस्फुटन होगा, आत्मा झलकेगी और वहीं होगी विश्व आत्मा की एकता ... ... एकरूपता ! अनेकता मिट चुकी होगी।

इस प्रकार वैदिक-चिन्तन का 'ब्रह्म'... वह 'आत्मा' जो विश्व में पूरित थी (है) 'ब्रह्म' और 'आत्मा' न कहला कर बुद्ध-युग में अथवा उनके अमर सन्देश में......युग के मानव-चिन्तन में 'करुणा' और 'मैत्री' बनकर आये ... मानव पीड़ा पर मानव की विजय का सन्देश लेकर आये। 'ब्रह्म' और 'आत्मा' के शब्द और रूप बदल गए, अर्थ और भाव नहीं। यह विजय बुद्ध के 'चतुर्-आर्य्य-सत्य'[1] में आज भी सुरक्षित है और रहेगी। युग-युग ने साहस और शक्ति उससे बटोरी है, बटोरेगा।

'बुद्ध'[2] जी को 'भगवान'[3] कहिए या 'महात्मा' पर थे वे 'विश्व-मंगल' की

---

१ 'दुःख,' 'दुःख का कारण' (दुःख समुदाय) 'दुःख का दमन' (दुःख निरोध) और 'दुःख के शमन का मार्ग' (दुःख—निरोध गामिनी प्रतिवाद)।

२ "...finished model of calm and sweet majesty, **infinite** tenderness for all that breaths and compassion for all that suffers, of perfect moral freedom and exemption from every prejudice." *Barth writing about Buddha—Discovery of India.*

—By Jawahar Lal Nehru

३ बौद्धो के लिए 'भगवान' की सत्ता में कोई आस्था नहीं थी (है)।—ले०

विभूति—मानव का संकल्प और करुणा की मूर्ति थे । उनकी मन-कर्म-वचन की सत्यता युग-युग के लिए 'अभय' का वरदान लेकर आई थी, आई है। किन्तु यह सत्यता वह थी जो युग की प्रेरणा बनकर आई थी—जो विश्वव्यापी—एवं सूर्य के प्रकाश के समान देदीप्यमान थी—ईरान में ज़रथूस्त्र द्वारा, भारत में महावीर तथा बुद्ध द्वारा और चीन में कन्फकशियंस द्वारा। आचरण की ऐसी सत्यता प्राप्त होने पर न 'ब्रह्म' की आवश्यकता रह जाती है, न आत्मा की। वह फिर स्वयं ही 'ब्रह्म'—विश्व की सम्पूर्ण 'आत्मा' हो जाता है। हां, स्वयं ही।

किन्तु,

'सखी री वे मुझसे कह कर जाते'

—मैथिलीशरण गुप्त

यह शब्द 'गुप्त' जी के हैं पर भावना में यशोधरा है—राजभवन[1] की यशोधरा—बिना ही कुछ कहे हुए दूर देश को गये हुए पति के लिए पत्नी की तड़पती हुई आत्मा है ... पर मोह ममता से दूर। एक वियोगिनी की चीत्कार है—मर्मस्पर्शी, पर विषाद से रहित। इन आर्त शब्दों को सुनकर तब भी विश्व काँपा था और आज भी। राज-पाट, धन-धान्य, वैभव और ऐश्वर्य नहीं, उत्तराधिकार में अपने पुत्र 'राहुल' के लिये उसकी तो कामना इतनी थी :—

> 'उत्तराधिकार में, दाय रूप अपने पिता से काषाय और भिक्षा का पात्र माँग लेना, बेटे !'

ऐसी ही भावनाओं से विश्व कांपा है—विकल्प संकल्प बन गया है।

देवकी की गर्भ से उत्पन्न हो कर कृष्ण मइया यशोदा की गोद में पले थे—ठीक इसी प्रकार 'माया' के गर्भ से उत्पन्न होकर बुद्ध जी गौतमी की गोद में पले थे। गौमती धात्री थी। पर गौमती के लिये 'धात्री' शब्द यहां कितना कटु है, कितना सारहीन और कितना अनुदार ? सुजाता को गौतम यदि न भुला सके तो विश्व ने ही ऐसी भूलें कहाँ की हैं ? और अम्बपाली' श्री-चरणों में एक बार जो झुकी तो उठी कब यह मुझे स्वयं नहीं पता।

सौहार्द से इस प्रकार युग के जाति अथवा मानव भेद के त्राहि को 'तथागत' में उभरने नहीं दिया। किसी को विवश अथवा वाध्य करके अपना नहीं बनाया[2]। पर फिर भी युग की कलुषति भावनायें, मानवीय दुर्बलतायें, संकुचित आकाँक्षायें और अतृप्त कामनायें

---

१ 'राजभवन' के वर्णन के लिये देखिए:— 'Light of Asia' By Edwin Arnold.

२ राहुल को 'बुद्ध-संघ' को सौंपते हुए यशोधरा ने राहुल से इस प्रकार के शब्द कहे थे।—ले०

अस्तित्व-विहीन हो गईं हों—ऐसा नहीं था। देवदत्त[1] जैसा पुरुष भी—मलीन और क्षुद्र भावनाओं से ओत-प्रोत—गौतम के साथ ही था।

बुद्ध जी के 'निर्वाण' का अर्थ 'मोक्ष' और 'मुक्ति' नहीं था, कर्म-सौन्दर्य में प्रस्फुटित जीवन का था—अमर जीवन का।

यह निर्वाण केवल लुम्बिनी,[2] सारनाथ, बुद्धगया, कुशीनगर[3], सांची, सांकाश्य[4] और कौशाम्बी में ही नहीं प्राप्त होता था, होता है—विश्व के प्रत्येक राजकण में प्राप्त होता है। होगा।

ठीक जिस प्रकार प्रभू ईसा के लिये रोम सम्राट कान्सटैनटाइन का सहयोग प्राप्त हो गया था उसी प्रकार बुद्ध जी के धर्म के लिये भारत के सम्राट अशोक का सहयोग प्राप्त हो गया था। अशोक 'सत्य' और 'अहिंसा' का प्रतीक बन कर आया। अशोक के स्तम्भ और शिला-लेख साक्षी हैं। वैशाली नगरी की बिनय-सभा साक्षी है। पाटलिपुत्र की तीसरी सभा साक्षी है और साक्षी है 'कथावत्थू'।

किन्तु वह 'आत्मीयता' जिसका अनुभव बुद्ध जी ने किया था इतनी भोली नहीं थी कि कोई उसे यों ही छल ले जाये। बुद्ध जी की आत्मीयता में न कोई अपना था, न पराया। इस आत्मीयता की परख में मनुष्य आसानी से नहीं उतर जाता है। नृशंसता मुँह फैलाकर इसकी ओर बढ़े, क्रूरता उग्र हो उठे, भय अपना आंतक जमा दे, भीषण प्रकम्पन्न विश्व की रग रग हिलादे तो इस आत्मीयता के ऊपर असर नहीं होता। यह आत्मीयता छाती से लगा कर रखना जानती है, किसी को दुतकार कर नहीं, किन्तु किसी को पुचकार कर भी नहीं।

'किसी को दुतकार कर नहीं', 'किन्तु किसी को पुचकार कर भी नहीं'—इन शब्दों में विरोधाभास हो सकता है पर संसार का द्वन्द नहीं है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु में एक हाहाकार मच जाता है, एक आलोड़न उठता है, एक उत्पीड़न भर जाता है, भय का आतंक छा जाता है, अभिशाप की ढ़ेरियों में आग लग जाती है और विश्व का सन्तुलन काँप उठता है जब अन्याय न्याय को दबा

---

१ देवदत्त गौतम का चचेरा भाई था। बुद्ध-संघ में बुद्ध पद के लिए उसने बुद्ध के विरुद्ध षडयन्त्र रच डाला। कौशाम्बी के राजा उदयन की रानी और श्रावस्ती के अन्य मतावलम्बी वैरागियों ने इन्हें सताया था।—ले०

२ नोटः बुद्ध जी की माता 'माया देवी' जब बुद्ध को गर्भ में धारण कर के कपिलवस्तु से अपने पिता के गृह 'कोलिय' जा रही थीं तभी मार्ग में लुम्बिनी के 'शालवन' में एक वृक्ष के नीचे बुद्ध जी का जन्म ५६३ ई० पू० हुआ था।—ले०

३ बुद्ध जी का निर्वाण-स्थल। ४८३ ई० पू० बुद्ध जी ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था—इसी स्थान पर।

४ यह स्थान मैनपुरी और एटा की सीमाओं पर फर्रुखाबाद से २५ मील की दूरी पर एक ग्राम के रूप में था (है)।—ले०

लेता है। करुणा के आँसू छलकते हैं, तो दानवता खिलखिला कर हँसती है। त्याग भटकता है, जब स्वार्थ उभरता है। तृष्णा तपाती है, जब ममता अपना घर बसा लेती है। द्वैता जब विद्वेष के बीज बोती है, तो उस फुलवारी को सींचने के लिए मानव के रक्त की आवश्यक्ता होती है। रक्त, रेत और अमंगल उसे सींचता है। सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-पराजय सभी कुछ तो द्वन्द है इसी संसार में। यह है विश्व के द्वन्द की अमर कहानी।

किन्तु इस द्वन्द में विजय मानव की होती है—दानव की नहीं। पर मानव विजय का भूका नहीं।

संसार में द्वन्द है किन्तु द्वन्द में सन्तुलन है। 'चिन्तन' ने इस द्वन्द को 'सत्य' तो कहा पर जिज्ञासा अतृप्त रही। और क्यों रही? उत्तर स्पष्ट है—चिन्तन में ही यदि कोई स्थिर होकर रह जाता, तो यौवन की हिलोरें गंगा-यमुना को बहने नहीं देतीं। मदभरी अलसाई हुई आँखों में नीरसता यदि टिक कर रह गई होती तो रस-विभोर हो अतीत की छेड़-छाड़ में 'हाय' यों ही कोई नहीं कर बैठता :—

'हाय! चटक चुंदरिया न मैली भई, न भई बिछुअन की झन्कार'

दुलार थपकियाँ दे और कोई सिमिट कर न बैठे—ऐसा साहस बिरले ही कर पाये हैं। फिर जिज्ञासा की वह 'अतृप्ति' अमरत्व की भावनाओं में लीन हो गई। स्पर्श और आलिंगन में—विश्व को मन्थर गति में वह 'जिज्ञासा' खो गई। कोई मन में बस गया, किसी का कोई हो गया।

दो हृदय जब मिलते हैं तो विधाता की आँखों में खार खटकता है पर जो कली आज खिली, कल जब मुरझाती है तो विधाता के 'हाय' नहीं होती। कुसुमों की कोमलता में प्यार भरके उनकी उमंगों को मसलते विधाता के दर्द नहीं होता। काटों से लिपट कर कोई अपने दुख-सुख को दो क्षण भुला भी ले, तो विधाता के हृदय में आग सुलगती है। और झन्झा के झोंके में कोई यदि मिट जाये तो विधाता को इसकी चिन्ता ही क्या?

किन्तु आकर्षण की 'धन' और 'ऋण' शक्तियों में जब तक बल है विधाता के वश का नही कि सृष्टि में हलचल न हो

यही कारण है कि यौवन को मादकता नारी ने दी और मादकता को अमरत्व मानव ने। यह कल्पना नहीं है, वह जिज्ञासा है जो अतृप्त रही है, रहेगी।

वैदिक-चिन्तन का 'ब्रह्म' जो आकाश से उतरा नहीं, पृथ्वी पर जन्मा नहीं, अग्नि में तपा नहीं, जल में बहा नहीं और वायु में प्राण बन कर किसी के टिका नहीं पर संसार से भी निकल कर गया नहीं 'बुद्ध-चिन्तन' में 'शील' और 'संकोच' बन कर आया, आचरण की शुद्धता और मन-कर्म-वचन की सत्यता बन कर आया। पर शील, संकोच, आचरण की शुद्धता और मन-कर्म-वचन की सत्यता तो मानव के लिये युग-युग की दीक्षा है।

छान्दोग्य में नारद द्वारा इस[1] प्रकार प्रश्न करने पर:—

"मुझे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और चौथा अथर्ववेद याद है, (इसके अतिरिक्त) इतिहास-पुराण पांचवां वेद, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्र-विद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या और देवजनविद्या—नृत्य-संगीत आदि, हे भगवन। यह सब जानता हूँ......हे भगवन ! वह मैं केवल मन्त्रवेत्ता हूँ... ..आत्मवेत्ता नहीं... ...और हे भगवन ! मैं शोक करता हूँ। ऐसे मुझको, हे भगवन ! शोक से पार कीजिये !"

इस प्रकार प्रश्न करने पर सनत्कुमार ने कहा, 'यह तुम जो कुछ जानते हो वह नाम ही है।'

किन्तु नाम से बढ़कर 'वाणी,' वाणी से बढ़कर 'मन', मन से बढ़कर 'संकल्प,' संकल्प से 'चित्त', चित्त से 'ध्यान', ध्यान से 'विज्ञान', विज्ञान से 'बल', बल से 'अन्न', 'अन्न' से 'जल', जल से 'तेज,' तेज से 'आकाश', आकाश से 'स्मरण', स्मरण से 'आशा', 'आशा' से बढ़कर 'प्राण' हैं।[2]

आत्मज्ञान की परम्परा का वर्णन करते हुये फिर छान्दोग्य इस[3] प्रकार समाप्त होता है......एक दीक्षा देकर:—

"नियमानुसार गुरू के कर्त्तव्य कर्मों को समाप्त करता हुआ वेद का अध्ययन कर आचार्य कुल से समावर्तन कर 'कुटुम्ब में स्थित' हो पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ, पुत्र एवं शिष्यों को धार्मिक कर सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर शास्त्र की आज्ञा से अन्यत्र प्राणियों की हिंसा न करता हुआ निश्चय ही आयु की समाप्ति पर्यन्त इस प्रकार बर्तता हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और फिर नहीं लौटता...नहीं लौटता।"

इन शब्दों में 'ब्रह्मलोक' का क्या स्थान है, वहाँ कोई पहुँचता है अथवा नहीं, पहुँच कर कोई लौटता है अथवा नहीं—यहाँ यह मेरा विषय नहीं है। किन्तु, इन शब्दों में 'कुटुम्ब में स्थित हो', 'स्वाध्याय करता हुआ,' 'पुत्र एवं शिष्यों को धार्मिक करता हुआ', 'सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर' (अर्थात् आचरण की शुद्धता लेकर), 'हिंसा न करता हुआ'—शब्दों से निश्चय ही स्पष्ट है कि यह 'आत्मज्ञान' भी 'जग' और 'जीवन' की अभिव्यक्ति के लिये है, उन्हें ठुकराने के लिये नहीं। सम्भवतः यही कारण है कि यौवन को उभरने से विधाता रोक नहीं पाया है।

---

१ छान्दोग्योपनिषद् अ० ७ ख० १. २. म० २, ३,

२ छान्दोग्योपनिषद् अ० ७ ख० २ से १५,

३ छान्दोग्योपनिषद् अ० ८ ख० ५ म० १

किशोर्य की अल्हड़ता में विश्व कुछ अधिक मोहक-सा हो जाता है—कल्पनाओं में 'स्वर्ग' उतरता है, आशाओं में 'शाश्वत' खेलता है, चिन्ताओं में एक 'अतीत' घूमता है, प्रतीक्षाओं में एक 'विश्वास' डोलता है, और विश्वासों की पग-ध्वनियों में— मन की विह्वलन में अनुराग जब उमड़ता है तो विश्व में एक अनन्त लहराता है। शरद के अनंतर वसन्त तो आता है—आवेगा, पर जवानी जो एक बार गई तो लौट कर नहीं आती।

किन्तु विधाता यह नियम बना कर पछताया नहीं क्योंकि शाश्वत जीवन में एक अनन्त सदैव ही लहराया है।

इस शाश्वत जीवन की व्याख्या वेदों के 'अनन्त' ने की थी। उपनिषदों के चिन्तन में यही था, स्मृतियों में यही झलका, महावीर प्रभू ने इसी का अभनुव किया, बुद्धजी की ज्ञान-खोज यही थी.........?

यह शाश्वत जीवन चीत्कार लेकर उत्पन्न होता है, हाहाकार से आरम्भ होता है। एक विद्रोह लेकर जन्मता है। अभिशापों में पलता है और मिट मिट कर रहता है। कल्पनाओं में अस्तित्व खोजता है तो विषाद से टकरा जाता है। इस शाश्वत जीवन को विश्व की ममता ने कभी प्यार से पास बिठाला नहीं, मोह ने चूमा नहीं, मान ने पूछा नहीं। चिन्ताओं ने कभी छोड़ा नहीं, आपत्तियों को नित्य-प्रति सहता रहा है और अड़चनों ने इसके प्रति कभी दया नहीं की। सफलता इसके पास नहीं फटकती, भाग्य इसे सहारा नहीं देता और विधाता के लिये, सम्भवतः, यह एक भार होता है। अधिकार इसके कोई होते नहीं, प्यार इसे कोई देता नहीं। समाज उसे दुतकार देता है, घरवाले उसे निकम्मा मान बैठते हैं। यह शाश्वत जीवन भावों से खिलखिलाता है तो सुनने वालों को अखरता है। और अपना दुलार जो 'बाँटता' है तो इसकी उङ्गलियों को काट कर लोग उनमें विष भर देते हैं। दर्द होता है तो इसे 'हाय' नहीं करने देते। संसार को कलक नहीं होता।

किन्तु,......किन्तु ठोकरों को यह बरदान मानता है, दुतकारों को अपना भाग्य मानता है और प्रकोपों को अपना भगवान मानता है। सम्वेदनाओं में इसे सुख मिलता है। एहसान की भावना इसमें होती नहीं। रोते किसी को यह देख सकता नहीं। किसी के मिठास पर यह चिपकता नहीं। वैभव और विलास इसे बांध कर रख सकते नहीं। त्याग इसको क्षण क्षण विवश करता है। स्वार्थ इसे सताता नहीं। अपमान की इसे चिन्ता नहीं, मान का मोह नहीं और विजय का भूका नहीं। इसमें विरोध होता है, प्रतिशोध नहीं; इसमें प्रेम होता है, मोह नहीं; इसमें क्षमा होती है, वैर नहीं; क्षोभ होता है, लोभ नहीं; शील होता है, दर्प नहीं; साहस होता है, बल नहीं, विक्रम होता है; विश्वास होता है, संशय नहीं; कर्त्तव्य होता है, कामना नहीं; सत्य होता है, छल, कपट, दिखावा नहीं। पर दुनिया इससे परेशान रहती है तो केवल इसलिए कि यह न किसी को दुतकारता है, न पुचकारता है। किसी एक का होकर रह नहीं पाता, पर रमता 'एक' ही में है। इसके दिल में मीठा-मीठा एक दर्द होता है, दर्द में खट्ठा-मिट्ठा एक प्यार होता है—पर सबों के लिए। विश्व के प्रति अपनी मंगल कामनाओं में लीन इसी जीवन में अमर हो, इसी विश्व भूमि पर विचरता है—निष्कंटक, किन्तु, निष्प्रभ नहीं।

यही वह आत्मीयता है जिसमें न कोई अपना है, न पराया। विश्व इससे टकराने का साहस न कर पाया है, न कर पाएगा।

शाश्वत जीवन रस-छका संसार में डोलता है। पर क्यों? उतर स्पष्ट है—उसकी एक दृष्टि 'विनाश' पर रहती है तो दूसरी 'मंगल' पर। वह विनाश से भी समन्वय कर लेता है, 'मंगल' से भी। किन्तु यह समन्वय मंगल में विध्वंस और विध्वंस में मङ्गल देखकर ही होता है।

महात्मा बुद्ध का कहना था—'सब्बं अनिच्च' अर्थात् सब अनित्य है। 'क्षण-क्षण परिर्वतनशील है, केवल ऊपर ही नहीं बल्कि जड़मूल से विनाशशील है। क्षण क्षण विनाश विश्व का अटल नियम होने से वह हर एक वस्तु का सहज धर्म है[१]।'' सभी कुछ अनित्य है। संसार में सूर्य की किरणें अनित्य है, चन्द्रमा की शीतलता अनित्य है, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु अनित्य हैं? किन्तु सूर्य, चन्द्रमा और यह पाँचों तत्त्व चाहें अनित्य हों अथवा नित्य हों, पर छोटी सी आयुवाला—उङ्गलियों पर गिनी जाने वाली आयु का पुरुष अपने को 'नित्य' मान बैठता है—अजर, अमर, अविनाशी। भारत के ऋषियों ने एक बार यह भावना की थी कि 'वह (ईश्वर) बिना वायु के श्वासोच्छवास लेता था[२]', 'संसार में जल का अभाव नहीं होता[३]', 'पृथ्वी जब रसातल को जायेगी तब जल ही जल रह जायेगा' और 'ब्रह्म' की आयु भी सीमित कर दी—केवल १०० वर्ष की। साँख्य ने प्रकृति और पुरुष को अनादि और नित्य मान लिया है। इन 'अजर','अमर','अविनाशी','अनादि' और 'नित्य' शब्दों में निहित भावनाओं ने छोटी-छोटी आयुवाले मनुष्य को जीने का अधिकार दिया है ... चलने[४] का साहस दिया है, अपने भविष्य के निर्माण का उत्साह दिया है—प्रकृति को परिवर्तन दिया है—संसार को गतिशीलता दी है — सुबह को शाम और शाम को सबेरा दिया है—वायु को सुगन्ध दी, कलियों को मुस्कराहट दी, जल को मिठास दिया, लहरों को बहाब दिया, मेंहदी को लाली दी, मेघों को बौछार दी, पृथ्वी को शृंगार दिया, आकाश को अभिसार दिया, अग्नि को ताप दिया, सूर्य को प्रताप दिया, तेज दिया, प्रचन्ड दिया। किन्तु, विचारों की समतल भूमि से मनुष्य सहसा ऐसी छलांग मारता है कि तुरन्त मेंहदी की लाली से मेघों की बौछार पर पहुँच जाता है—यह भुला कर कि सूर्य के भी दो पक्ष होते हैं—एक गर्म, दूसरा ठन्डा।

संसार में यदि 'विनाश' न होता तो सौ तक गिनती कोई न गिनता—आखें झपकियाँ न ले पातीं—मन सत्ता का भार ढोता, तो न ढो पाता—न किसी में डूबता, न

---

१ महापंडित राहुल साँकृत्यायन—'धर्मदूत' से

२ 'आनीदवातं स्वधया तदेकं'—नासदीयसूक्त—ऋ० १०. १२९. २.

३ नोटः—एक विचार यह भी है कि 'पानी तब नहीं था'।
देखिये :—टि० १ पृ० २५ तै० बा० २. २. १

४ तु० 'चरैवेतिं, चरैवेति'—ऐतरेय ब्राह्मण।
अर्थात, चलते रहो, चलते रहो।

उछलता—कारण–कार्य का चक्र न चलता, और काल की भी गति रुक जाती। भय भाग जाता। न कोई तपस्या करता, न कोई साधना। पृथ्वी पर का अमरत्व लुट जाता। और यदि 'मंगल' न होता, तो अधरों में मिटास न होता, होठों पर हँसी न आती—जीवित रहने का साहस नहीं होता—और विध्वंस और विनाश तड़प तड़प कर प्रलय की ओर बढ़ते तो प्रचन्ड ज्वालाओं में झुलसाने की शक्ति नहीं होती, तूफानों में उठने का साहस नहीं होता, प्रलय का एक एक बबन्डर पंचभूतों के क्रन्दनों में जड़ होकर रह जाता। जिस दिन जिस क्षण पृथ्वी रसातल को जायेगी, ब्रह्मांड डोलेगा, पंचभूतो (तत्वों) में क्रंदन होगा, वह दिन, वह क्षण कल्पना से अतीत है, अतीत से परे हैं—ऐसा नहीं हैं, ऐसा नहीं है। क्षण क्षण के जीवन में क्षण क्षण विध्वंस है, क्षण क्षण मंगल है, क्षण क्षण सृजन है, क्षण क्षण प्रलय है*।

सम्पूर्ण संसार को नापने के लिये आकाश बना है। आकाश को मनुष्य ने हृदय से नापा है—'हृदयाकाश'[१]। नापने पर मालूम हुआ हृदय एक अंगुष्ट का है। इसी एक अंगुष्ट में 'ब्रह्माण्ड' समाया हुआ है, बसा हुआ है। छोटे से छोटा, बड़े से बड़ा 'ब्रह्म[२]' हृदय में बैठा हुआ है। यह 'ब्रह्म' हृदय की 'क्षुद्रता' है, 'उदारता' है, मन की 'संक्रीणता' है, मन की 'विशालता' है। इसीलिये इस मन में संकुचित से संकुचित भाव उठाते हैं, उदार-से-उदार भाव उठते हैं। नीच-से-नीच काम करने पर तुल जाता है, कर डालता है, ऊँच-से-ऊँच काम करने पर अड़ जाता है, कर लेता है। इसीलिये ज़िन्दगी में आहें हैं लू की मारी हुई, खामोशी है सर्दी खाये हुई।

ज़िन्दगी ने अपने शिकवे लाखों से कहे, लाखों के बोल सहे, मगर टक्करों से ज़िन्दगी की मुहब्बत न गई। ऐ परवरदिगार! तू भी सुन ले, तेरा आलम भी सुन ले:—

"ज़िन्दगी वह मुहब्बत है जिसमें प्यार नहीं है।
मौत वह हुकूमत है जिसमें सरकार नहीं है।"

इसीलिये दुनियाँ की हर शय (वस्तु) ज़िन्दगी से प्यार मांगती है, जिन्दगी को हर शय से प्यार चाहिये। ज़िन्दगी में बहार आई, खिज़ां आई, मगर, ऐ ज़िन्दगी! तू जो एक बार आई, तो न बहार आई, न खिज़ां आई।

---

१ 'यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश'
—छान्दोग्योपनिषद् अ० ८. ख० १. म० ३

अर्थात् जितना यह भौतिक आकाश है उतना ही हृदयान्तर्गत आकाश है। 'अर्थात् हृदय विशाल होता है।'—ले०

२ "एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष म आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्य:"।
—छान्दोग्योपनिषद् ३. १४. ३.

अर्थात्, हृदय कमल के भीतर यह मेरा आत्मा धन से, यव से, सरसों से, श्यामाक से अथवा श्यामाकतण्डुल से भी सूक्ष्म है तथा हृदय कमल के भीतर यह मेरा आत्मा पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक अथवा इन सब लोगों की अपेक्षा बड़ा है।

*इस भाव की पूर्ति के लिये पृ० ६७ देखिये।

किन्तु यह जिन्दगी यों नहीं आती है, वह मन अकेला नहीं रह पाता है। और न जिन्दगी अकेले कटती है। भगवान ने भी इच्छा की, 'मैं एक हूँ, अनेक बन जाऊँ।' अनेक बन गया। चौरासी लाख[1] योनियां हो गईं। ज़िन्दगी भी सहारा ढूढ़ती है—कांटों में प्यार टटोलती है और फलास्फी का दर्द-सर मोल लेकर जब दुनियाँ में शोर मचाती है तो बात सिर्फ अपनी ही कह बैठतीं है। दुनियां जो इसे ग़ौर से सुनती है तो अपनी ही बात ढूँढ निकालती है।

ज़िन्दगी आती है किसी में रम जाने से और मन अकेले से दुकेला होता है किसी से फंस जाने पर।

पलक झपकी भी नहीं ले पाता कि मन ब्रह्माण्ड में घूम कर आ जाता है। किसी को खबर भी नहीं हो पाती कि कौन, कब, कहाँ किसकी नज़रो में चढ़ गया, कब उतर गया? मन सिद्धान्तों में नहीं रमता, आदर्शों को ढाह देता है। बहती हुई लहरों को पकड़ा जा सकता है, पर मन को नहीं।

किन्तु जो मन इतना चंचल है वह 'स्थिर' भी है। इस 'स्थिरता' का नाम 'उदासीनता' नही, 'तल्लीनता' है। इस तल्लीनता में मनुष्य अपने भविष्य को भुला देता है, भाग्य को ठुकरा देता है और भगवान को भूल जाता है। भूक इसे नहीं लगती, प्यास इसे नही सताती और नींद तो मानो आंखों से उड़ जाती है। इस तल्लीनता में इतना घुल मिल जाता है कि फिर विश्व की कोई भी कला मन को लुभा नहीं पाती। इस डूबते हुये मन को उछरते हुये किसी ने नही देखा है। सम्भवतः इसीलिये उपनिषदों में कहा है,... 'वह नहीं लौटता, नहीं लौटता'[2]।

यह 'तल्लीनता' स्वान्तायः सुखाय बन कर आती है, किसी के कहने पर नहीं, समझाने-बुझाने पर नहीं और विश्व में 'परहित' बन कर टिकती है—'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' बन कर छा जाती है।

फिर, रमण-लोक से ध्वनि होती है :—

—विश्व-प्रेम की, जग-मंगल की

ओ मानव!

सुन!

अपनी वह अन्तिम झन्कार!

और आज भी एक ध्वनि[3] उठती है—अस्थि-अवशेष से—अवलोकितेश्वर, मंजुश्री,

---

१ इन ८४ लाख प्राणियों का वर्णन पुराणों में आता है। ९ लाख जलचर, १० लाख पक्षी, ११ लाख कृमि, २० लाख पशु, ३० लाख स्थावर, और ४ लाख मनुष्य। देखियेः—'दासबोध' २०. ६.।—ले०

२ देखिये :—पृ० ८६

३ "As a master of fact we of Cylone belong to you and you belong to us and we are grateful to your Emperor Asoka for benefitting us by the message of Lord Buddha."

Shri C. W. W. Kannaangara, Cylone Minister for Local-Self Government addressing at 'सांची' *on 30th November, 1954, while laying the foundation of the Rest House for the relics of* सारिपुत्त *and* 'मौद्गलायन'।

सारिपुत्त, मौद्गलायन, धम्मपाल, कनकमुनि, पद्मसम्भव और कस्सप आदि जैसे बौद्ध सन्तों की समाधि से और विलीन हो जाती है 'अर्हत' में। यह ध्वनि केवल सांची में ही नही सुन पड़ती है—वह विश्व में पूरित और अणु-कण में है और सुन पड़ेगी। इतिहास की दृष्टि में बुद्ध जी के युग को एक ऐसे ही धर्म की आवश्यकता थी जो मनुष्य को ही नही; प्राणीमात्र को अभयदान दे, आत्मबल दे।

इस प्रकार स्वामी महावीर तथा महात्मा बुद्ध के चिन्तन ने जिस 'मानव' का सृजन किया था, मानव के लिये जिस 'जीवन' का सूत्रपात किया था, जीवन के लिये जिस 'सुख' का मिठास दिया था, 'शक्ति' दी थी, 'आत्मबल' दिया था वह मानव अपने जीवन के लिये, सुख के लिये, शक्ति के लिये, आत्मबल के लिये किसी ऐसे कोरे दर्शन के चक्कर में नहीं फंसा जिसमे चिन्तन केवल यही सोचता रहता है कि यह नाना सृष्टियाँ कहां से हुईं, किसने सृष्टियाँ कीं और किसने नहीं कीं ? और सत्य तो यह है कि यह अध्याय वैदिक-चिन्तन स्वयं ही समाप्त कर चुका था।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १२६वें सूक्त का नाम 'नासदीय सूक्त' है इसमें केवल ७ मन्त्र हैं। प्रथम मन्त्र में जिज्ञासा यों आरम्भ हुई :—

"उस समय (प्रलय दशा में) असत नहीं था'। जो सत है वह भी नहीं था...... पृथ्वी भी नहीं थी......आकाश के सातों भुवन भी नहीं थे। ब्रह्माण्ड भी कहां था ? किसका कहाँ स्थान था ?"

किन्तु, दूसरे सूक्त में यों कहा है :—

'उस समय मृत्यु नहीं थी, अमरता भी नहीं थी......वायु नहीं थी, किन्तु बिना वायु के श्वास-प्रश्वास लेता हुआ केवल एक 'ब्रह्म' था।'

और फिर सृष्टि की रचना बताई कि सब से पहले 'काम' उत्पन्न हुआ और न मालूम क्या क्या हुआ पर छटा मन्त्र स्पष्ट कहता है......कहाँ से सृष्टि हुई यह कौन जानता है ? सातवां मन्त्र और भी स्पष्ट करके कहता है :—

"यह नाना सृष्टिया कहां से हुईं, किसने सृष्टियाँ कीं, किसने नहीं कीं यह सब वे ही जानें जो इनके स्वामी परमधाम में रहते हैं। हो सकता है कि वे भी यह सब न जानते हों।"

विद्वानों का ऐसा मत है कि इसी 'नासदीय सूक्त' के आधार पर भारतीय दर्शन आया है, केवल भारतीय ही नहीं, विश्व का दर्शन आया है—ब्रह्म-जिज्ञासा लेकर अर्थात् अपने को जानने के लिये, पराये को—दूसरे को समझने के लिये। आज के विचारों की उथल-पुथल में कभी 'ब्रह्म' प्रत्यक्ष दीखता है, कभी ऐसा खोया हुआ दीखता है मानो 'ब्रह्म' जैसे नाम की कोई वस्तु न संसार से थी, न है, न होगी। मेरी दृष्टि में यह 'ब्रह्म' खिलखिलाती हुई दुनियां है, हँसती हुई ज़िन्दगी है, रोती हुई दुनियाँ है, तरसती हुई ज़िन्दगी है। किन्तु यह 'ब्रह्म' प्रत्येक का अपना अपना है, पर किसी एक का नहीं।

सूर को कृष्ण, तुलसी को राम मिल गये—भक्त को भगवान मिल गया। किसी का भाग्य जग गया। किसी का भविष्य बन गया। किसी से भगवान

ने वादा कर दिया, 'मैं तेरे खाने-पीने का सब प्रबन्ध रक्खूँगा[१]'। 'तू योग भ्रष्ट भी हो जाये तो श्रीमानों के घर में जन्म लेगा[२]।' गीता के इन आश्वासनों में जीवन के प्रति एक अभिवादन है। जीवन अभिवादन के लिये 'ब्रह्म' की खोज है।

न्युटन की खोज[३] 'ब्रह्म' ही थी, फैराडे की खोज[४] ब्रह्म ही थी। सूर के कृष्ण, तुलसी के राम 'ब्रह्म' ही थे। भक्तों की भावना, ज्ञानियों का ज्ञान और मानियों का मान 'ब्रह्म' ही है। होगा।

'खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीर से पहले खुदा
बन्दे से पूछे 'तेरी रज़ा क्या है ?'

—इकबाल

'ब्रह्म' की कैसी व्यापक व्याख्या है—जिसमें असीम सीमाओं में बंध कर रह गया है, सीमायें असीम में खो गई हैं।

गीता में छलियों का जुआ[५] इसीलिये 'ब्रह्म' बन बैठा था। और इसीलिये कोई वादा कर बैठा है :—

'न यह चाँद होगा, न तारे रहेंगे, मगर हम हमेशा तुम्हारे रहेगें'

'स्वर्ग[६]' और 'पुनर्जन्म[७]' को जाने दीजिये, इसी क्षण के 'ब्रह्म' की खोज कीजिये —इसी पृथ्वी पर के 'ब्रह्म' की—इन्हीं श्वासों का 'ब्रह्म'। किन्तु, 'ज्ञान'[८] किसी एक का होकर नहीं रहा है।

महाबीर और बुद्ध-युग में भी अनेक समस्यायें भयंकर रूप धारण किये हुई थीं। गोसाल 'संसार-विशुद्नी' में व्यस्त था। उसके अनुसार शुद्धता जब ही प्राप्त हो सकती थी जब कोई संसार की सम्पूर्ण सत्ताओं में से होकर निकले। उसकी दृष्टि में सम्पूर्ण सत्ता को भाग्य प्रेषित करता था। पूर्णकस्सप' 'अक्रिया' में विश्वास करते थे—मनुष्य कोई पाप

---

१ 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'—गीता ६।२२

२ गीता ६।२१

३ 'Laws of Gravitation.'—Newton—(1642—1727)

४ 'Laws of Electricity'—Michael Faraday (1791—1867)

५ गीता १०।३६

६ देखिये :—'विष्णु सूक्त'

७ देखिये :—'यम सूक्त'

८ तु० माण्डूक्योपनिषद् के 'अलातशान्तिप्रकरण' का अन्तिम मन्त्र ९९ इस प्रकार है :—

'क्रमते न हि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तायिनः।
सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितम्॥'

अर्थात, प्रज्ञानवान परमार्थदर्शी का ज्ञान धर्मों (विषयों) में संक्रमित नहीं होता और न सम्पूर्ण धर्म ही कहीं जाते हैं। परन्तु ऐसा ज्ञान बुद्धदेव जी ने नहीं कहा अर्थात् यह बौद्ध सिद्धान्त नहीं है, बल्कि औपनिषद दर्शन है। सिद्धान्त किसी का हो, पर है 'ज्ञान'। —ले०

नहीं करता है और न पुन्य। अजीत केसकम्बलिन 'उच्चादवाद' में व्यस्त थे। वे भले और बुरे कर्मों के फल में विश्वास नहीं करते थे। उन्हें न परलोक में विश्वास था और न इस बात में विश्वास था कि किसी व्यक्ति में कोई विशेत शक्ति उतर आती है। पकुद्ध कास्यायन का 'अशाश्वतवाद' था। उनकी दृष्टि में ७ तत्त्व होते थे, और मृत्यु के पश्चात शरीर सातो तत्त्वों में मिल जाता था। संजय वेलात्सीपुत्त को विकेप्पवाद' (सम्भवतः विक्षेपवाद) में विश्वास था कि मन स्वयं ही ठीक रास्ते से भाग जाता है। इस प्रकार विश्वासो की 'परणितियाँ' थीं, पर 'अटलता' नहीं।

बुद्ध जी और उन सरीखे सन्तों के पश्चात् उनका 'धर्म', 'संघ', 'मठों' और 'बिहारों' से 'शून्य' और 'सहज' की व्याख्या करता रहा। उनकी 'सत्य' और 'अहिंसा' कुछ कड़वी हो गई ? उत्तर स्पष्ट है—'बुद्ध जी' की वह 'आत्मीयता' इतनी आसनी से हर एक व्यक्ति के गले उतर जाने वाली वस्तु नही थी, उस पर चलना इतना आसान नहीं था जितना कह देना, सुन लेना और मान लेना। आज दुनियाँ तो ऐटम बाम्ब बनाने में विज्ञान की उन्नति समझती है। इस दुनियां में जीवित रहने के लिये अधिकारों की माँग भी है, सत्ता के लिये संघर्ष भी है। एक का अस्तित्व मिटा कर एक जीता रहना चाहता है। पर 'अहिंसा' का एक पक्ष 'हिंसा' भी है—इसको मान कर ही अहिंसा का निर्वाह हो सकता है। हर अच्छाई के साथ एक बुराई लिपटी हुई है, हर बुराई के साथ एक अच्छाई लिपटी हुई है। पर मनुष्य या तो 'अहिंसा' का पुजारी हो जायेगा या अैटमों की फैक्टरी पर फैक्टरी खोलेगा। मनुष्य 'अतिवाद' में विश्वास कर बैठता है। बुद्ध जी ने इसी 'अति' को वरजा था। बुद्ध जी का मार्ग मध्यम मार्ग (मध्यमा प्रतिपद्) था।

यह 'सत्य' और 'अहिंसा' एक होकर भी दो हो गये। हृदय-पक्ष को भाव चाहिये, बुद्धि पक्ष को ज्ञान चाहिये। बुद्धि और हृदय दो नहीं हैं, एक हैं। सीधी बात हृदय में गढ़ जाती है पर बुद्धि उसे भी कुरोद डालती है। एम० ए० और पी० यच० डी० बुद्धि से समझते हैं, मूर्ख बिचारा हृदय से समझता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि एम० ए०, पी० यच० डी० के हृदय नहीं होता और मूर्ख के बुद्धि न हो। सन्त और महात्माओं ने अन्दर की पुस्तकें पढ़ी हैं।

बुद्ध जी की 'आत्मीयता' को भी लोगों ने दो मार्गों में मोड़ लिया। अपने अपने हिसाब से अपने अपने गले से उतार ली। हीनयान 'ज्ञान' की ओर मुड़ गया, 'महायन' 'भक्ति' की ओर। चिन्तन की गम्भीरता का ध्यान हृदय की ओर गया। ज्ञानवाले अपने में रमण के रह गये—उन की आंखों में 'शून्य' समा गया, भक्ति-वाले हृदय लेकर हृदय को टटोलने लगे। 'शून्य' की अपनी अपनी व्याख्या कर ली गई।

ईसा की प्रथम शताब्दी में कनिष्क के युग में (अशोक से लगभग ३०० वर्ष पश्चात्) महायान सम्प्रदाय का जन्म हुआ था। ईसवीं सन् १४८ में इस सम्प्रदाय का 'अमित्यसूत्त' नामक ग्रन्थ रचा गया। धीरे धीरे 'बोधिवृक्ष', 'धर्म-चक्र', 'चरण-चिह्न' और 'स्तूप' (जैसे सांची के) भक्ति के आश्रय बन कर आये और बुद्ध जी से लगभग ६०० वर्ष बाद उनकी 'प्रतिमा' (मूर्त्ति) भक्ति की श्रद्धा-भावना बनकर आई। महायान

'बोधि सत्त्वत्व' को आगे रख कर चला। 'अर्हत' उसकी पृष्ठभूमि में था। किन्तु यह कैसे भुलाया जा सकता है कि हिन्दू-धर्म का कोई भी सम्प्रदाय उस युग में न चल रहा हो! 'शैव' और 'महायान' ने मिल कर एक नवीन रचना रच ली। यह 'योगाचार' कहलाती है। योगाचार से 'वज्रयान' (ताँत्रिक) की उत्पत्ति हो गई। 'तन्त्र, मन्त्र, जादू, टोना, ध्यान, धारणा, मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन' और न मालूम कितने प्रकार की 'ओंह्रीं' होने लगी। आसंग ने 'योगाचार-भूमि-शास्त्र' की रचना की। 'सहजयान' भी महायान की ही एक परिणति है। मूलतत्त्व खो गया, दिखावा रह गया। और

'तृष्णा! तू न गई मेरे मन से'

इस प्रकार व्यक्ति एक बार पुनः ममत्व में खो गया। विलीन हो गईं उसकी सद्भावनायें—'स्व' और 'स्वत्व' में।

किन्तु ममता का नाम संसार है। इस ममता में 'आत्मीयता' ढूढ़ लेना जीवन है और पुनः उसे संसार को लौटा देना जीवन की अभिव्यक्ति है। यह मैं स्पष्ट कर चुका हूँ कि 'आत्मज्ञान' भी संसार की अभिव्यक्ति के लिये है, उसे ठुकराने के लिये नहीं। जग[1] और जीवन का अर्थ और आशय केवल इतना ही है--सुख दुःख की सृष्टि में विश्व के मूल में सदैव ही शिवत्व रहा है—विध्वंस[2] नहीं। संसार केवल दुःखमय नहीं, न सार-शून्य और न नश्वर ही है। दुःख सुख में जीवन है और जीवन में 'मंगल' है—यही सनातन सत्य है। और यदि इस सत्य की व्याख्या हिन्दुओं ने की, तो बौद्धधर्म के 'निर्वासन' और 'निरसन'[3] का भाव लेकर नहीं। हिन्दू का आधार 'स्व' नहीं, 'समष्टि' अर्थात् 'समत्व' रहा है। यही हिन्दू-धर्म है।

---

१ तु० **'को जाने को जैहे जमपुर, को सुरपुर परधाम को।**
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को॥'
—तुलसी (विनय पद १५६)

इसी प्रकार बौद्ध सन्त 'मंजुश्री' कहते हैं :—

'अपने सारे जन्मों में मैं अक्षोभ्य आदर्श ग्रहण करना और भिक्षु बना रहना चाहता हूँ।'

—**शिक्षा-समुच्चय**

२ देखिये :—पृ० ६२ और फुट नोट का※

वहां सृष्टि के मूल में मैंने 'विध्वंस' और 'मङ्गल' दोनों ही को बताया है, किन्तु यहाँ मेरा आशय यह है कि विध्वंस तो मङ्गल के लिये आता है, अपने लिये नहीं। इस भाव की पुष्टि के लिये '**इतिहास के मूल में—विश्व-आयोजन**' शीर्षक अध्याय और **हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन**, भाग २ देखिये।

३ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी '**हिन्दी साहित्य की भूमिका**' में पृ० ४।५ पर लिखा है :—

"बौद्ध धर्म का इस देश से जो निर्वासन हुआ उसके प्रधान कारण शंकर, कुमारिल, और उदयन आदि वैदान्तिक और मीमांसक आचार्य्य माने जाते हैं..."

नोटः—इनके द्वारा बौद्धधर्म के 'निर्वासन और निरसन' का अर्थ भी आपने पृ० ५ पर दर्शाया है।—ले०

इस 'समत्व' अथवा 'समष्टि' के अनेक रूप हैं–'सहिष्णुता', 'सह-सत्ता', 'सौहार्द', 'सुहृदयता', 'सुजनता', 'सहोदरा', 'समता', 'समदृष्टि', 'मैत्री' और 'करुणा' इत्यादि। बौद्धों के प्रति हिन्दुओं की और हिन्दुओं के प्रति बौद्धों की यह 'सम'—'सहिष्णुता'[१] की भावना बुद्धयुग की एक अपूर्व कहानी है—जिसमें युग-युग के वैदिक-चिन्तन के 'ब्रह्म' और 'आत्मा' को बौद्धों द्वारा देश निकाला दिये जाने पर भी ब्राह्मणों के माथे नहीं ठनके ? वैदान्तियों के लगभग ४ या ५ हजार वर्षों की पली हुई 'नित्यता' के विरोध में बौद्धों ने 'अनित्यता' का स्वर जब ऊँचा किया तो ब्राह्मणों के हृदयों में बौद्धों के प्रति प्रतिशोध की भावना नहीं भड़की ? सांप नहीं लोटा। किन्तु ठनकते कैसे ? बुद्धजी ने बौद्धों को ही कहां कहा था कि, 'तुम्हारा लाल और ब्राह्मणों के रक्त का वर्ण काला है ?" और क्या ब्राह्मण इतनी बात नहीं समझते थे कि बुद्धजी की भाषा में 'ब्रह्म' और 'आत्मा' का अर्थ मानव के प्रति मानव की सद्भावना का है—एक ऐसी आत्मीयता का जिसमें न कोई अपना है, न पराया ? बुद्धजी भी भिक्षा का पात्र लेकर विचरते रहे संसार में ही—संसार ही के कल्याण के लिये आयु के बचे हुये ४५ वर्ष निरन्तर यात्रा, चिन्तन और प्रवचनों में बिताये। किन्तु उनके भिक्षा-पात्र में 'चेतना', 'सम्प्रीति' और 'मंगल' के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था।

---

१ 'It is very interesting, as evidence of the wonderful toleration which prevailed at that time, through the valley of the Ganges, that a teacher, whose whole system was so diametrically opposed to the dominant creed, and logically so certain to undermine the influence of the Brahmins, the persons of that day, should nevertheless, have been allowed to carry on his propaganda so ceaselessly and so peacefully through a considerable period of time. It is even more than that. Wherever he went, it was precisely the Brahmins themselves who often took the most earnest interest in his speculations, though his rejection of the soul theory, and of all that it involved was really incompatible with the whole theology of the Vedas, and therefore, with the supremancy of the Brahmins. Many of his chief disciples, many of the most distinguished members of his Order were Brahmins.

Throughout the long history of Buddhism, which is the history of more than half the people in the world for more than two thousand years, the Buddhist have been uniformly tolerant, and have appealed not to the sword, but to intellectual and moral suasion. We have not a single instance, throughout the whole period, of even one of those religious presecutions which loom so largely in the history of the Christian church. Peacefully the Reformation began ; and in peace, so for as its own action is concerned, the Buddhist church has continued till today.'

History and Literature of Buddhism
By Rhys Davids.

'ऋक्' शब्द की व्युत्पत्ति 'ऋच' धातु से है जिसका अर्थ 'स्तुति करना' है। यज्ञों की उत्पत्ति यजुर्वेद से हुई। 'यज्ञ' का अर्थ सीधा सादा है—जो कुछ अपनी आत्मा के अनुकूल हो वही 'यज्ञ' है। 'साम' शब्द 'सम' का आधार लेकर चला है। इस प्रकार विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद 'भक्ति' का, यजु 'कर्म' का और साम 'ज्ञान' का प्रतिनिधित्व करता है। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त'[१] से भारतीय चिन्तन आया है, 'संज्ञान सूक्त'[२] से 'कामनायें और आशीर्वाद' आये हैं, 'दान-सूक्त'[३] से 'दान', 'पुरुष-सूक्त'[४] से 'पुरुष', 'श्रद्धा-सूक्त' से श्रद्धा (विश्वास) आई है और अथर्ववेद के 'पृथिवी-सूक्त'[६] से 'राष्ट्र-भावना'। और 'मन्त्र' शब्द का अर्थ है—'मनन का साधन'[७]।

वैदिक काल के आर्यों के क्षेत्रस्य[८], इन्द्र[९], अग्नि[१०], वरुण[११], मित्र[१२], आदित्य[१३], विष्णु[१४], मारुत[१५], रुद्र[१६], और वायु और इन सब के विधाता के रूप में प्रजापति[१७] (ब्रह्मा) देवता थे और शुनासीरा[१८], सीता[१९], मातरिश्वा[२०], धात्री, सावित्री[२१], उषा, और

१ ऋ० १०. १२६. १—७
२ ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त
३ ऋ० १०. १०७. ५
४ ऋ० १०. ९०. ३. ४. ५.
५ ऋ० १०. १५१. १. ४. ५.
६ अथर्ववेद का० १२. सू० १.
७ 'मन्त्रो मननात'—निरुक्त
८ क्षेत्रस्य (ऋ० ४. ५. ५७.) (१) 'Lord of field.'
९ इन्द्र 'Sky that rains.'
१० अग्नि 'अग्नि'
११ वरुण 'Sky of Night, corresponding to Greek Ourance.'
१२ मित्र 'Sky of Day, corresponding to Zend Mithra.'
१३ आदित्य 'Limitless Light of Sky.'
१४ विष्णु 'Another name of Sun.'
१५ मारुत 'Storm-God' 'Thunder' (Father of मारुत)
१६ रुद्र अग्नि के भाव में भी ऋग्वेद में प्रयोग किया गया है।
१७ प्रजापति ऋग्वेद १०. ८५. ४३
१८ शुनासीरा ऋग्वेद ४. ५७. ५
१९ सीता ऋग्वेद ४. ५७. ७
२० मातरिश्वा, धात्री ऋग्वेद १०. ८५. ४७ 'मातरिश्वा सं धाता'

२१ 'सावित्री' is another name of 'सूर्य' and the sacred hymn❀ is a verse addressed to this deity."

❀(गायत्री) 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' ऋ० ३. ६२. १०

सरस्वती[1] देवियाँ थीं। यज्ञों में मन्त्रों द्वारा इन देवी-देवताओं का जो आह्वान होता था वह केवल एक ही भाव लेकर—सत्ता का भाव—

—'वे जीवित रहें और जीवित रहे उनका संसार,
... ... पल पल सुन्दर हो उनका।'[2]

यही सत्ता का भाव जग अथवा संसार के लिए 'लोक—संग्रह'[3] की भावना कहलाई, और जीवन के लिए 'ममत्व' और जग और जीवन के लिये 'मंगल', पर यह भाव भारत के केवल आर्यों में ही सीमित नहीं था, वह प्राणीमात्र में था, है और रहेगा। वह प्राणीमात्र, चाहे चर हो अथवा अचर, चाहे वह जल का बासी हो अथवा थल का—आकाश अथवा पाताल का। इसीलिये यह भावना 'विश्व भावना' कहलाई। इस प्रकार देवताओं और भावनाओं का नामकरण हुआ था। किन्तु व्यक्तिगत मनोभावों ने 'एक' ही को 'अनेक' कह डाला। वह 'एक' जग और जीवन के आधारतत्वों से परे नहीं, इन्हीं में हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु के सार-रूप वह 'एक' जीवन है, 'एक' जग है। इन्हीं 'तत्वों' से 'शरीर' और 'संसार' बना है।

ऋग्वेद और उपनिषदों के 'प्रजापति', 'विष्णु' और 'रुद्र' स्मृतियों और पुराणों के 'ब्रह्मा', 'विष्णु', और 'महेश्वराः' हो गये। इतिहास की दृष्टि से ऐसा नहीं हुआ हो, तो भी कोई आपत्ति नहीं। कबीर ने तो ऐसा कहा था—'हरि जैसे को तैसा लागे।' तुलसी ने भी कहा था :—

"जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥"

'ब्रह्मा' की शक्ति 'ब्रह्माणी', 'भारती', 'सरस्वती', 'वागेश्वरी' और 'शारदा' इत्यादि नामों से विख्यात हैं। 'विष्णु' की शक्ति 'लक्ष्मी' और 'श्री' इत्यादि नाम से और 'रुद्र' की 'उमा' और 'गौरी' और सुन्दर रूप में 'पार्वती' (शैलजा) और 'जगतमाता' कल्याण-रूप में, उग्र रूप में यही शक्ति 'दुर्गा', 'चण्डी', 'काली' और 'भैरवी' इत्यादि कहलाई और तारक रूप में 'तारा'। रूप अनेक हैं, नाम अनेक हैं, पर तत्व और भाव एक है।

किन्तु यह 'ब्रह्मा', विष्णु' और 'महेश्वराः' भी कल्प कल्प में उत्पन्न[4] और क्षय होते हुये भी चले आ रहे हैं।

---

१ सरस्वती (ऋ० २. ४१. १६) (मातृगण, देवों में श्रेष्ट)

२ लेखक की 'रेखा और कण' से।

३ "What the Aryans of early India sought to obtain...was the good (मंगल) of this world subsistence, a minimum of well-being." (कुशल-क्षेम)

Masson—Oursel, Grabowska and Stern

४ देखिये :—पृ० ४२

नोट :—'सरस्वती is the name of a river in the पंजाब'। दत्त, पृ० ३३

देखिये :—पृ० ४८ पर टि० १ का नोट।

'विष्णु' को मनोभावों का आधार मानकर 'वैष्णव', 'शिव' से 'शैव' और 'शक्ति' से 'शाक्त' सम्प्रदायों का जन्म हुआ। ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता के रूप में ही रहे, किसी साम्प्रदायिकता में नहीं। 'दर्शन' ने 'एक' ही को 'अनेक' करने में एक को 'पुरुष' और उस एक की शक्ति को 'प्रकृति' कहा है। और जग ने ऐसी ही शक्तियों को 'पुरुष' और 'नारी' कहा है। नारी और पुरुष दो नहीं, एक हैं। विवाह का अर्थ 'संकल्प' है, अनेक[1] का नहीं, एक का। 'मातरिश्वा' और 'धात्री' (पृथ्वी) साक्षी[2] हैं।

स्मृतियों के युग में शूद्रों के विवाह संस्कार में यदि मन्त्रों की आवश्यकता नहीं थीं तो इसका कारण भी था। वेद मन्त्रों के ज्ञान अथवा उनके पठन-पाठन का यदि निषेध[3] नहीं भी कहा जाये, तो शूद्रों को उस ज्ञान की प्राप्ति की सुविधा[4] अथवा व्यवस्था ही कहां थी ? और बिना वेद ज्ञान के उस 'ब्रह्म' का ज्ञान होता नहीं—ऐसा उस युग का विश्वास था। अतः शूद्र उस ज्ञान को प्राप्त करें तो कैसे[5] ? सोलहवीं शताब्दी में इस प्रश्न का उत्तर देते हुये वीरमित्रोदय ने कहा कि शूद्र ब्रह्म' का ज्ञान 'पुराणों' से प्राप्त करें क्योंकि शूद्रों को पुराणों के पठन पाठन का निषेध नहीं था। इस कथन में शूद्रों के प्रति क्या विष अथवा अमृत है यह तो वे जाने जिन पर बीती हो, किन्तु, सत्य तो यह है कि वेदों की व्याख्या यदि ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों ने की, मनुष्यकृत

---

१ तु० "तत्व प्रेम का मम और तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा ।।"
—तुलसी

२ "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्टी दधातु नौ" ऋ० १०. ८५. ४७

अंग्रेजी अनुवादः—

(The bride and bridegroom say), "May all the gods unite our hearts ; may Matarisvan and Dhatri and the goddess of Speech unite us together." (*Tr. By R. C. Dutta*).

३ देखिए :—टि० २. ३. ४. पृ० ८४

किन्तु, विद्वानों का मत है कि महर्षि वेदव्यास जी ने स्त्री, शूद्र तथा उन लोगों के लिये जिनको वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था 'महाभारत' और 'पुराणों' की रचना कर दी थी ताकि वे लोग भी वेद-ज्ञान का लाभ उठा सकें और पृ० ८४ पर टि० २. ३. ४. में आई हुई भावनायें द्वेषमूलक न समझी जायें।—ले०

४ "The requisite texts of the Vedas are difficult to understand and are scattered about in various places and all these are collected and explained by the स्मृतियां" —स्मृतिचन्द्रिका

५ "According to the opinion held by the writer (वीरमित्रोदय) of Digest a शूद्र is not entitled to the study of the वेद how then is शूद्र to attain final Release ? This difficulty the writer gets over by declaring that the शूद्र will derive the requisite knowledge of the Self from the पुराण।"
—गंगानाथ झा, पृ०६

स्मृतियों ने की, तो वेदविदित अथवा स्मृतियों के अन्तर्गत 'इतिहास' और 'पुराणों'[१] ने भी की। अन्तर केवल इतना ही है कि पुराणों ने 'ब्रह्मतत्त्व' के साथ-साथ 'ऐहिक' (लौकिक) पक्ष की भी व्याख्या की है।

पुराणों में[२] सृष्टि की उत्पत्ति से, उसकी लय और प्रलय तक के युग-विधान — सत्युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग की, उनके देवताओं[३] की वंशावली एवं मन्वन्तर (मनु के युग) सूर्य और चन्द्र वंशों की वंशावली का वर्णन है। पुराणों में मनु के वंशज—राम और कृष्ण की, सूर्य्य और चन्द्रवंश की वंशावली की केवल कीर्ति शेष रह गई है—संघर्ष के श्रेयरूप—उस पुरुष के संघर्ष की–जो चला गया, किन्तु,आज भी शेष है–'संघर्ष' में। मनुष्य का दूसरा नाम 'संघर्ष' (Struggle) है और रहेगा—वह सदैव ही इस 'संघर्ष' में।

---

१ "The पुराण are also included under स्मृति as the वेद itself names इतिहास and पुराण along with चतुर्वेद। Vishnu also places the पुराण on the same footing as मनुस्मृति and its subsidiary sciences, Science of Healing."
— गङ्गानाथ झा, पृ० २६

नोट : 'पुराण' का अर्थ है 'पुराना'।

हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १८४

तु०—'पुराण' का अर्थ है 'the 'ब्रह्म and the rest' —**स्मृतिचन्द्रिका**

तु० "The पुराण are words on old religious traditions mixed with secular events.' 'Seculer'= ऐहिक (लौकिक)।

History of Pre-Musalman India. Vol. II (Vedic India)
By V. Rangacharya पृ० ३६

२ पुराणों के पाँच विषय बताये गये हैं—यह लक्षण ऊपर दिये हुये हैं।—ले०

नोट : १८ पुराण और १८ उपपुराण हैं। —ले०

१८ महापुराण इस प्रकार हैं। पुराणों के रचियता महामुनि व्यास कहे जाते हैं।

१	ब्राह्म पुराण	२	पाद्म पुराण	३	विष्णु	४	शिव	५	भागवत
६	नारद	७	मार्कण्डेय	८	अग्नि	९	भविष्य	१०	ब्रह्मवैवर्त
११	लैंग	१२	वाराह	१३	स्कन्द	१४	वामन	१५	कौर्म
१६	मत्स्य,	१७	गारुड़	१८	ब्रह्माण्ड पुराण।				

नोट : पुराणों के विषय में ऐसा वर्णन आया है कि सब से प्रथम 'विष्णु पुराण' ब्रह्मा से पुलस्त्य मुनि ने प्राप्त किया था और उन्होंने 'पराशर' को दिया, पराशर ने 'मैत्रेय' को दिया। —ले०

नोट : वायु पुराण 'शिव' पुराण के अन्तर्गत भी आता है। —ले०

नोट :—कुछ विद्वानों का मत है कि 'शिव पुराण' उपपुराण के अन्तर्गत आता है अतः शिव पुराण के स्थान पर 'वायु' पुराण कर लिया जाये तो भी कोई अनुचित नहीं। ले०

३ विष्णु पुराण के मत से ११ रुद्र, १२ आदित्य, ८ वसु, प्रजापति तथा वषट्कार —यह ३३ देवता हैं। ऋग्वेद (३. ९. ९.) में ३३३९ देवताओं का कथन है। पर ऋ० १. ३४ ११. तथा १०. ५५. ३ में केवल ३३ देवताओं का वर्णन है। शतपथ-ब्राह्मण (४. ५. ७. २.)में भी ३३ ही देवता हैं। सायण ने भी ३३ देवताओं की ही व्याख्या की है। ले०

यह पुराण मूल रूप में महाकाव्य-काल[१] (२५००—१००० ई० पू०) में रचे गये और इतिहास बताता है कि यह पुनः[२] लिखे गये गुप्त-काल (३००—५००) में। इतिहास ने पुराणों की सत्यता[३] पर भी प्रकाश डाला है।

---

१ "The historical genelogies in these works (पुराण) are based on very ancient and reliable sources, The accounts of the kings were written from the songs of the heralds (सूत) of the Vedic Period."

The Age of the Imperial Guptas पृ० १०६
By Prof. R. D. Banerji
(A. S. Altekar)

नोटः "It is certain, however, that as early as the time of बुद्धदेव there was in existence an inexhaustible store of prose and verse narratives,.........आख्यान, इतिहास, पुराण and गाथा forming as it were literary public property which was drawn upon by the Buddhists and the Jains, as well as by epic poets."

History of Indian Literature Vol. I. पृ० ३१४
By M. Winternitz

नोट :—"The history of हस्तिनापुर and the main line of कुरु or पुरु is not so obscure. According to the पुराण there were about twenty-eight kings from जन्मेजय to क्षेमक।"

'अधीसीमकृष्णो'—'अधीसीमकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतं यो महायशाः'—is given a very interesting place in the puranic traditions. It was in his (अधिसीमकृष्णो) time that वायु and मत्स्य पुराण are said to have originated."

History of Pre-Musalman India Vol II (Vedic India)
By V. Rangacharya.
पृ० २११, २१२, २१३

नोट—हस्तिनापुर के इतिहास का प्रथम राजा 'जन्मेजय' था और 'जन्मेजय' से तीसरा राजा 'अधिसीमकृष्णो' था। 'क्षेमक' अन्तिम और अट्ठाईसवां था।—ले०

नोटः सबसे प्रथम पुराणों का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में H. H. Wilson ने किया।

२ "The majority of the पुराण were recast during the Gupta Period. It can be stated that the final redaction of most of the reliable पुराण took place before the disruption of Gupta Empire.'.

(*Prof. R. D. Banerji*)

३ "The accounts of the Gupta Empire, as given in the वायु, मत्स्य, भविष्य, भागवत पुराण agree with the known inscriptions."

"The account of the dynasties of the fourth century A. D. is correct can be proved from the contemporary epigraphic and numismatic evidence."

वही, पृ० १११

इतिहास के मूल में :—

—विश्व-आयोजन

इतिहास के मूल में विश्व आयोजन है, किसी का उत्थान और पतन नहीं, किसी की जय और पराजय नहीं, किसी का मान और अपमान नहीं ... ... किसी को यश, अपयश नहीं।

रश्मियाँ सृष्टि का संयोजन कर रही हैं ... ... करती रहेंगीं।

सूर्य्य अपनी किरणों से विश्व का आयोजन करता हुआ चला आ रहा है। यह आज की ही अनुभूति नहीं, आज से लगभग ४५०० वर्ष पूर्व के मानव की भी थी—वेदों के युग की। 'विष्णु (सूर्य्य) अपनी रश्मियों से संसार की रक्षा करता है[1]' :—

'भाद्यर्थ पृथिवींमभितो मयूखैः'

आज ऐटम बाम्ब सूर्य्य की किरणों को गिन रहे हैं। वैज्ञानिक रश्मियों के अनुसन्धान में व्यस्त हैं।

पर होंट को होंट चाहिये, भुजा को भुजा और आलिंगन को प्यार।

देश देश की सीमायें परस्पर मिलने को उत्सुक रही हैं......मिल कर रहीं हैं... मिल कर रहेंगीं। आज 'देश' और 'राष्ट्र' की भावनायें संकुचित हो चुकी हैं—यह किसी से छिपा नहीं है।

कितने रक्तपात से बेबीलोनिया ने मिस्र लिया होगा ? कितनी आहें इसी दुनियाँ में समा गईं जब ईरान ने बेबीलोनिया को लिया था ? ईरान को लेने पर ग्रीक ने कितनी खुशियाँ लुटा दी ? किस-किसने कितने आंसू बहाये होंगें जब ग्रीक, कारिन्थ और कारथेज की सुख-सम्पत्ति रोम ने लूट कर अपना घर भर लिया होगा ? और आश्चर्य यह है कि अपमान की ठोकरें खा कर रोमवासी भी जिया तो कैसे ? पर जिया।

किसी के पतन पर कोई दो आंसू डालने नहीं गया। किसी की पराजय पर किसी ने शाबासी दी भी हो तो झूठी। किसी के अपयश पर किसी ने श्रद्धांजलि नहीं भेंट कर दी। और आज के कब्रिस्तानों में आशिक की सदायें तो गाहें-बगाहें सुन पड़ती हैं पर कब्र पर फूल चढ़ाने कोई माशूक नहीं गया।

बने के तो सभी साथी होते हैं। जय की गूंज में कौन नहीं इठलाता है ? और यश प्राप्ति पर नम्रता तो सभी दिखाते हैं पर मन ही मन गुद-गुदाता है।

किन्तु इतिहास की एक एक घटना ने मानव को 'सम' की दीक्षा दी है। उत्थान और पतन में, जय और पराजय में, यश-अपयश में 'सम' होना इतिहास की घटनायें मानव को सिखाती रहीं हैं किन्तु विनाश और निर्माण में निर्मित मानव आंसुओं को भूलता रहा है, मुस्कानों को याद करता रहा है।

---

१ वैष्णव सूक्त

प्रसव की पीड़ा के भय से नारी जननी बनने की अभिलाषा का मोह नहीं छोड़ पाई है।

तब का और आज का भी मनुष्य सागर और पर्वतों को लांघता हुआ, पाताल में उतरता हुआ, आकाश में चढ़ता हुआ भी पृथ्वी पर के क्षण भर के सुखी जीवन का मोह त्याग नहीं पाया है।

इस मोहक सत्ता के अभिशापों में वरदानों का विश्व-विधान लेकर पृथ्वी के एक एक कण पर मानव चरण-चिन्ह छोड़ता हुआ चला आरहा है...चला जा रहा है......। सागर बँट गये, पृथ्वी बँट गई, आकाश बट गया...पर सागर का जल एक रहा, पृथ्वी के कण एक रहे, आकाश की तारावलियाँ सब को एक समान झांकतीं रहीं।

आज नहीं, तो कल, भारत, इंगलैन्ड, चीन, जापान, अमेरीका, रुस और पाकिस्तान के निवासी किसी नगर, देश और राष्ट्र का निवासी अपने को नहीं कहेंगे—राजाओं के मूकट स्वतः ही गिर पड़ेंगे, राष्ट्र की सीमायें टूट जायेंगीं, तोपों में गरज नहीं रह गई है, दौलत की हाय मिट चुकी है, बाम्ब रक्खे रक्खे गल जायेंगें—रश्मियाँ रश्मियों की शक्ति को खींच लेगीं और यह सब क्यों होगा?—क्योंकि मनुष्य या तो ऐसे 'भूत' की व्याख्या करता है जिसे उसने देखा नहीं या कल्पना-जगत में घूम कर भविष्य वाणी लिख डालता है—ऐसे 'भविष्यत्' की व्याख्या करता है जिसे देखने का उसे अवसर नहीं।

इतिहासलेखक का यह काम नहीं कि वह भविष्य वाणी रच दे किन्तु विश्व के आयोजन में 'विध्वंस' और 'मंगल' देखकर—विश्व के सन्तुलन हेतु......लोक-संग्रह की भावनाओं में मानव को प्रतिष्ठित करा दे—रह रह कर पुनः पुनः ध्यान आकर्षित करादे—विध्वंस और मंगल की ओर......विध्वंस में मंगल और मंगल में विध्वंस द्वारा रचे हुये प्रपंच की ओर—तो केवल यह अपने आंसुओं को पोंछ लेगा, किसी की मुस्कराहट छीन नही लेगा।

विश्व के इतिहास में मानव की चरण-रेख से स्वस्ति की ध्वनि हो रही है।

और ईसा के लगभग २७ वर्ष पूर्व पाश्चात्य विश्व में रोम साम्राज्य स्थापित हुआ था और भारत में मगध ने आन्ध्रदेश को अपना विजेता स्वीकार कर लिया था- निष्प्रभ[१] होकर। 'आन्ध्र देश' में सातवाहन साम्राज्य का वैभवशाली युग था।

सातवाहन ब्राह्मण थे। वृति उनकी उदार थी—अति उदार। वे धर्मशील, दानी और सहिष्णु थे। इस वंश का प्रथम राजा सिमुक और अंतिम (३०वाँ) पुलोमावि था। इनका युग[२] २१२ ई० पू० से २३८ ई० का विद्वानों ने निर्धारित किया है।

इस युग में देश धन-धान्य से पूर्ण एवं समृद्धिशाली था। और रोम जैसी नृशंशता भारत की भूमि पर नहीं नाची तो इसका कारण भी था—इस भूमि पर कृष्णा के निकट और गोदावरी के तट पर सदैव ही वेद मन्त्रों से 'श्री' और 'सरस्वती' का पूजन हुआ है।

---

१ देखिये:— पृ० ८२ और टि० २.

२ श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने इनका युग २१२ ई० पू० से २३८ ई० का माना है। विद्यालंकार जी ने 'सातवाहन युग' और 'गुप्त काल' को मिला कर 'अश्वघोष युग' (२१२ ई० पू०—५३८ ई०) भी कहा है। — ले०।

इस भूमि पर बुद्ध जी के 'धम्मपद' (गीता के समान प्रवचन) के प्रवचन होते रहे। इस भूमि पर भारतीय ब्राह्मणत्व धर्म-कर्म में लीन होता रहा है। और इस सब का आशय केवल इतना है कि अन्तःकरण की परिष्कृति से शब्द बोलने में कुछ मीठे निकले हैं।

शुद्ध चित और बुद्धि ने मन के विकल्पों को भूमि पर उतरने नहीं दिया है।

साहित्य की दृष्टि से यह युग 'प्राकृत' और 'लौकिक' संस्कृत के लिये एक महान युग था। प्राकृत को राज्याश्रय प्राप्त था, संस्कृत को उदारता। प्राकृत राजभाषा थी। इस युग की प्राकृत भाषा के महान ग्रन्थ 'गाथासप्तशती,' 'वृहत्कथा' और 'कातन्त्र' व्याकरण थे।

मन की अभिव्यक्ति भावों ने की है, भावों की भाषा ने। कोमल भावों ने कोमल स्वरों की साधना की है। स्वरों की साधना में तपस्या का बल होता है—थके हुये मन की हार नहीं। साधना में चिन्तन की गहराई होती है—मन की शिथिलता नहीं। संस्कृत के विद्वानों ने एक-एक स्वर, एक-एक व्यंजन पर प्राणों का देना सीखा था।

'विद्वानों के वचन में मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती है[१]'—'भाषा-सूक्त'[२] के एक मंत्रका यह छोटा सा वचन है पर कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति है—मन की, भावों की, भाषा की।

भाषा[३] विषयक चिन्तन ऋग्वेद के 'भाषा-सूक्त' से आरम्भ हुआ अथवा पाणिनि से—उसकी 'अष्टाध्यायी' से—यह विद्वानों का विषय है किन्तु अन्यत्र[४] यह स्पष्ट हो चुका है कि मन्त्रोच्चारण की शुद्धता के लिये व्याकरण की रचना हुई थी। यह शुद्धता ऋषियों ने अन्तःकरण की दी थी। कोई क्षण भर सोचे तो सही कि मन अपनी अभिव्यक्ति के लिये कैसा छटपटाता है? 'अकार'[५] में 'ओंकार' भर दिया गया है। शब्द, वाक्य और अर्थ-ज्ञान मे प्राणों की तन्मयता भर दी गई है। एक-एक शब्द 'धातु'[६] अथवा 'धातुओं' पर आधारित है। 'धातु' अथवा 'धातुओं' में 'मनन' भरा हुआ है। 'मनन' में उपासक की 'इच्छा', साधक की 'साधना', तपस्वी की 'तपस्या,' योगियों का 'योग' है और बुद्धिमानों की 'बुद्धि' भरी हुई है। एक ही धातु से अनेक शब्द सिद्ध होते हैं जैसे 'कृ' धातु से 'किरण' और 'कृष्ण'। सूर्य और उसकी किरणों में कोई अन्तर नहीं। इसी प्रकार 'किरण' और 'कृष्ण' में कोई अन्तर नहीं।

---

१ 'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि'। ऋ० १०. ७१. १. २.

२ ऋग्वेद के दसवें मण्डल का ७१ वाँ सूक्त 'भाषा-सूक्त' कहलाता है। —ले०

३ भाषा के लिये अंयत्र देखिये।

४ देखिये—पृ० ४३, टि० ३ और ४

५ 'ॐ'—प्रणव तत्त्व

६ नोटः सारे शब्द धातुओं से उत्पन्न हैं। कभी-कभी अनेक धातुओं से एक शब्द बना है। एक शब्द का एक ही अर्थ है—ऐसा नहीं है। प्रसंग के भेद से शब्दों का अर्थभेद होता है। —ले०

व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि की 'अष्टाध्यायी'[१] पर ही कात्यायन ने 'वार्तिकों' की रचना की और पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' की। इन 'मुनित्रय' अर्थात् पाणिनि,[२] कात्यायन[३] और पतंजलि[४] के स्तिथिकाल में विद्वानों में मत भेद है।

सातवाहन-युग को संस्कृत में व्याकरण की यह परम्परा मिली थी।

किन्तु संस्कृत साहित्य में गम्भीर चिन्तन से हट कर मन जीवन को स्पर्श करने वाले पक्षों की ओर मुड़ा। 'वाल्मीकि' और 'व्यास' की अमर कृतियाँ 'रामायण' और 'महाभारत' को युग-युग से निकलते हुये सातवाहन युग में जो रूप संस्कृत में दिया गया था, सम्भवतः, वही रूप आज हमें प्राप्त है। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति भी इसी युग में रची गई—ऐसा भी विद्वानों का मत है। भरत का नाट्यशास्त्र, भास[५] के नाटक और वात्स्यायन का 'कामसूत्र' इसी युग की देन हैं। शूद्रक का 'मृच्छकटिक' भी इसी युग का बताया जाता है। अमरसिंह का 'अमरकोश' और अश्वघोष[६] के महाकाव्य 'बुद्ध-चरित' और 'सौदरानन्द' इसी युग की कृतियाँ हैं। 'चरक-संहिता' भी पुर्नजन्म प्राप्त करके इसी युग में आई थी।

साहित्य, संगीत और कला......समृद्धि और सर्वसम्पन्नता .....श्री, सरस्वती, विजय और कीर्ति से जब मातृ-भूमि स्वस्तिमती होती है तो देश में दूध की नदियाँ बहती हैं, जन-कल्याण की भावनाओं से प्रेरित प्रत्येक व्यक्ति अपने में एक गौरव टटोलता है, उसे एक ऐसी रसात्मक अनभूति होती है जिससे वह तृप्त हो हो कर भी अतृप्त ही रहता है। देश के एक एक व्यक्ति की एकएक भावना और देश की एक एक हलचल सम्पूर्ण देश के समस्त चैतन्य का स्पर्श करती है। एक शब्द में यों कहिये मातृ-भूमि स्वयं ही एक एक का—चर-अचर का योग-क्षेम कर देती है। किन्तु युग परिवर्त्तन के साथ सब से पहला काम यह होता है कि दूध, दही, सत्तू और आसव में से 'मिठास' निकल जाता है, छन्दों में से 'रस' निकल जाता है, संगीत में से 'स्वर' निकल जाता है, कला में से 'सौन्दर्य' निकल जाता है, 'श्री' में से 'स्वस्ति' निकल जाती है, सरस्वती में से 'विनय' निकल जाती है, वाणी से 'तेज' निकल जाता है, विजय में से 'कीर्ति' निकल जाती है, कीर्ति में से 'विक्रम' निकल जाता है—और देश में से 'जन-मन-प्रतिष्ठा' उठ जाती है।

किसी देश के भौगोलिक विस्तार से उसके विक्रम और पराक्रम को नहीं नापा जा सकता है। देश का गौरव देश के प्रत्येक जन की भद्रता, शीलता एवं प्राणीमात्र के प्रति उसकी कल्याण-भावना में है।

---

१ 'पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी संस्कृत-वाङ्मय का अमर स्मारक है।'
देखिये:—श्री वाचस्पति शर्मा द्वारा रचित लेख **'नमस्कृत्य मुनित्रय,' नयी धारा** अंक ५, अगस्त १९५४।

२ पाणिनि का काल ४३६९ वर्ष पूर्व का मानते हैं।

३ कात्यायन का ४००—५०० ई० पू० का

४ पतंजलि का २०० ई० पू० का।

५ श्री गणपति शास्त्री ने भास के १३ नाटकों को १९०९ में खोज निकाला है।

६ अश्वघोष का काल ७८—१०० ई० का है।—ले०

पर यह सब क्यों निकल जाता है ? निकल कर जाता है तो कहाँ ? युग परिवर्त्तन होता है तो क्यों ?

विद्वानों ने 'परिवर्त्तन' के अनेक कारण बताये—परिवर्त्तन विश्व का अटल नियम है, कारण और कार्य्य का चक्र चलता है, क्रिया-प्रतिक्रिया को जन्म देती है, प्रतिक्रिया क्रिया को, संसार का प्रपंच क्षीर-नीर से है, रात के पश्चात् दिन का होना अवश्य-भावी है, पृथिवी घूमती है अत: सब कुछ (पृथिवी 'में' अथवा 'पर' का) घूमता है। काल सब को खाता हुआ चला जा रहा है, और न मालूम क्या क्या ! विश्व के मूल में विध्वंस और मंगल दोनों ही हैं तो विध्वंस के पश्चात् मंगल, मंगल के पश्चात् विध्वंस—अथवा दोनों क्षण क्षण—साथ साथ होंगे ही। नियति भी एक कारण है, भगवान भी एक कारण है। मन भी एक कारण है, बुद्धि भी एक कारण है। परिवर्त्तन के कारणों को गिना जाये तो शरीर के रोम रोम को गिनते रहिये—निश्चिंततापूर्वक।

किन्तु मेघों की बूंदों को, सागर की तरंगों को और मन के भावों को गिनने की ओर मानव का अभी ध्यान नहीं गया है, यदि गया होता तो निश्चय ही इन सब की एक एक तालिका 'विश्व–कोष' में होती।

विद्वानों ने एक दिन की श्वासों को गिन लिया है। बताया है २१६०० होती हैं। उन्होंने काल (Time)को नाप डाला, आकाश (Space) तथा संयोग (घटना) (Chance) को नाप डाला, गिन डाला।

किन्तु मानव का एक पग उठना इतिहास की एक उत्सव-घटना है—चाहें वह पग उत्तरी ध्रुव की ओर उठा हो, चाहे दक्षिणी ध्रुव की ओर। चाहें वह 'काल,' 'आकाश' अथवा 'संयोग' नापने को उठा हो और चाहे मेघों की बूंदें गिनने को उठे।

परिवर्त्तन[1] केवल इसलिये होते हैं कि क्षण-क्षण में एक नया जीवन आ जाये। पता नहीं, गुलाब की खुशबू कब से नहीं बदली है।

इस प्रकार, दूध नहीं बदला, दही नहीं बदला, सत्तू नहीं बदले—युग के साथ खानेवाला बदला गया। आज सत्तू खाने वाला गरीब समझा जाता है और परीक्षित[2] के युग में यह एक सामग्री थी। उपनिषदों में 'सत्तू' द्वारा उपमा दी जाती थी।

---

१ **'नित्य नूतनता का आनन्द**
किये है परिवर्त्तन में टेक'।

प्रसाद—(कामायनी—श्रद्धा-सर्ग)

२ 'राज्य के आसन पर विराजते ही परिक्षित् ने,जो सब में गुणवान है ऐसा योग-क्षेम किया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था'—यह वाक्य कुरु देश का निवासी एक पति घर बसाते समय अपनी पत्नी से कहता है।

'दही, दूध या सत्तू और आसव इन में से आपके लिये क्या लाऊँ'—वह परीक्षित् राजा के राज्य में पत्नी अपने पति से पूछती है।"

देखिये:—**विक्रमांक** वर्ष ४८ **अंक** १-४ में **'परिक्षिती गाथायें'** शीर्षक लेख, श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित।

किन्तु दूध की नदियों के लिये खून की नदियाँ बहा देना मनुष्य के बायें हाथ का खेल है। मुहब्बत की आहों को लपटों में तपाया जाता है मगर मुहब्बत की आग में आहों के शोले भड़का देना मनुष्य के लिये बायें हाथ का खेल है।

और जब भारत में दूध की नदियाँ बह रहीं थीं, जब रोम में गुल-छर्रे[1] उड़ रहे थे—ब्रिटेन का अनाज रोम की सेना हेतु राहिनलैन्ड (Rhineland) भेजा जाता था, मसाले भारत से जाते थे, और सिल्क चीन से; मिस्र, बेबीलोनिया, पैलिसटाइन, फोनेशिया, ग्रीक, कारिन्थ, और कारथेज इत्यादि सभी तो रोम का आधिपत्य स्वीकार करते थे; जब हानवंश के युग में चीनवासी सुख, शान्ति तथा समृद्धि का अनुभव कर रहे थे; जब वहाँ 'कफ़न' भी सिल्क का होता था; मान्चूरिया, ह्वांग-हो, याँग्टसी, सी नदियों की घाटी, कुनलू और चीनी तुर्किस्तान सभी तो चीन का आधिपत्य स्वीकार करते थे; जब ईरान में सैसानियन (Sassanian) वंश के आर्देश्वर बैबीगन (२२६-२४०) के एकछत्र राज्य में दारायूस द्वारा खोये हुये राज्य[2] को पुनः प्राप्त करके घरेलू शान्ति का लोग अनुभव कर रहे थे; करमोर, इस्फाहन, एराक इत्यादि सभी तो ईरान का आधिपत्य स्वीकार करते थे···तब दक्षिणी रूस की 'सीथियन, जातियाँ,' पश्चिमी चीन के 'शक', उत्तरी-पश्चिमी चीन की 'यूची जाति' और उनकी शाखा रूप 'कुषाण', चीन की पश्चिमी सीमा पर के 'हूण', अरब के यवन, तुर्किस्तान, समरकन्द, बुखारा के तुर्क तथा मुगल···तब यह सब अपनी सत्ता को तरस रहे थे···इनके न कोई दर्द को सुनता था, न दुःख को। उस वक्त इनकी आवाज पर तरस खाने वाला कोई नहीं था।

पर तरस कोइ क्यों खाये? यदि खाये भी, तो क्या अपने को नुचवा ले?

हिंसा, त्राहि, हाहाकार, पाशविकता, क्रूरता, बरर्बता, त्रास, उग्रता, लूट, खसोट, नग्न-शोषण, और इसी संदर्भ तथा परम्परा में 'कत्लेआम' और 'तबाही'—इन सबों ने पृथ्वी पर खड़े होकर आकाश को छूना चाहा है। आकाश तो नही छू सके पर पृथिवी पर मनुष्य की हड्डियों के बुर्ज बना डालने में कुछ छोड़ा भी नहीं। 'रक्त' को 'रेत' में मिला कर गले से न उतरने वाले कड़वे घूंट पिये हैं। पर यदि न पिये गये होते तो भी विश्व का सन्तुलन काँप उठता।

हैवानियत ने ज़िन्दगी को पर्दा हटा के देखा हैं, इन्सानियत ने पर्दा डाल कर।

किन्तु चिंउटी से पहाड़ बनता हुआ चला आ रहा है। बात-की-बात में आन्दोलन, आन्दोलन से क्रान्ति, क्रान्ति से महायुद्धों का निर्माण होता हुआ चला आ रहा है।

---

१ "The Romans brought the diverse peoples of the western Mediterranean under their sway, thereby creating a new condition of unity and harmony, the *Pax Romana* or Roman peace ... ... This effective stimulus produced a period of prosperity that continued for almost two centuries, the happiest age of the Roman Empire." (From 26 B. C. to 173 A. D)

लूकस, पृ० २००

२ "Ardisher Babigan (226 A. D. to 240 A. D) was restorer of the great Empire, which had been created by Cyrus and lost by Darius'.

History of Persia Vol I By John Malcolm पृ०, ७३

विश्व के इतिहास में यहाँ से 'नग्नबर्बरता', 'क्रूरता', अथवा 'नृशंशता' का कोई नया अध्याय नहीं आरम्भ हो रहा है। बात केवल इतनी है कि मोहक सत्ता के लिए कच्चे धागे में प्राणों को पिरोकर मानव की 'विश्व-भावना' अपना रूप निहारना चाहती थी। मतलब सिर्फ इतना है कि इन्सानी खून की दौरान तलवार को अपने गले से लगा कर चूमना चाहती थी।

यकीनन लिबासे-हैवानियत[1] ने अपनी जिन्दगी के हर दौर[2] में इन्सान की 'रूह'[3] को 'कालिब'[4] से अलग करके इन्सानी जज्बात[5] को देखा है। हूणी,[6] तुर्की और अरबी घोड़ों की टापों के नीचे तड़पती हुई लाशों ने इन्सानी जीत की दुआयें की हैं। तलवार के हर टुकड़े ने इन्सानी लहु को पीने के पहले काबे की ओर उठ कर सिजदा[7] किया है। और हैवान भी मरा तो इन्सानी ज़िन्दगी की हसरतों[8] में।

हर मौत के पहले ज़िन्दगी का सवाल है।

ज़िन्दगी को कायम रखने के लिये दुनियां ने करवटें बदली हैं—दर्द तो कभी इस पहलू में हुआ, कभी उस पहलू में, प्यार कभी इस दिल को मिला, कभी उस दिल को।

ज़िन्दगी के लिये माँ ने मिन्नते की हैं, कभी ताजियों के नीचे निकाला, कभी मन्दिरों के दरवाजे चूम डाले। कभी आंखों में रोई, कभी आहों और ख्यालों में। मां ने अपने बच्चे की ज़िन्दगी का दुनियां की नज़र से छुपा कर दिल की धड़कनों में रक्खा है। दुधमुहें बच्चे को दूध दबाने का हौंसला मां की धड़कनों ने दिया है।

ख्यालों की यह तीरनदाजी नहीं है कि मिस्र, बेबीलोनिया, कैल्डीया, ईरान, ग्रीक, रोम, भारत, चीन, दक्षिणी रूस, अरब, तुर्किस्तान, बलख, बुखारा होता हुआ, हैवानियत के शिकवे कहता और सुनता हुआ हर मौत के पहले ज़िन्दगी के सवाल में मां की धड़कनों को पेश कर रहा है, बच्चे का हौंसला दिखला रहा है। यह ज़िन्दगी का वह साज़ है जिसमें आवाज़ नहीं है, मौत के वह नग़में हैं जिनमें ख्यालों को अन्दाज़ नहीं है।

मगर ज़िन्दगी से बढ़ कर एक चीज और है—'मां का दूध'।

ज़िन्दगी के लिये मां का दूध लजाया नहीं गया है। जननी-जन्म-भूमि का प्यार लुटाया नहीं गया है। पर यहाँ पर कोरी ज़िन्दगी का सवाल था; किसी के मानहानि का कोई कारण नहीं। 'उर्बरा' से 'ऊसर' का प्रश्न था—भूमि का यह आयोजन था।

सीथियन जातियां, शक, यूची, कुषाण, हूण, यवन, तुर्क और मुगल यह सब अपनी अपनी जननी-जन्म भूमि को छोड़ कर ईरान, रोम, योरुप और भारत में आये

---

१ दानवता के परिधानों ने। २ परिस्थिति, दृश्य। ३ आत्मा ४ शरीर
५ मानव के भावों को।

६ "They (Huns) were,' he (Historian, Ammianus Marcellinus) said,' "a race savage beyond parallel." "There is not a person in the whole nation who can not remain on his horse day and night. On horse back they buy and sell, take their meat and drink, and there they recline on the narrow neck of their steed and yield to a sleep so deep as to indulge in every variety of dream."

लूक्स द्वारा उद्धृत पृ० २५६

७ पूजा, प्रणाम करना। ८ इच्छाओं, अभिलाषाओं।

थे—कोई आगे, कोई पीछे। भय इनके साथ था। विनाश इनके आगे आगे चलता था। जहां कहीं भी पहुँचते थे 'त्राहि', 'हाहाकार' और 'विध्वंस' मंडराता था। आतंक छा जाता था। रक्त से पृथ्वी लोहित हो उठती थी। नग्नबर्बरता, क्रूरता, नृशंशता और पाशविकता से विश्व का सन्तुलन कांप उठता था।

इस[1] सन्तुलन को ही बनाये रखने के लिये ऋषि-भूमि की विचार-धारा में 'ब्रह्म' अनेक नाम, अनेक रूप का बन कर आया था। भारत को दीक्षा तो—'बैर बैर से नहीं मिटता है'—यह मिली थी। ईरान को दीक्षा तो—'मन-कर्म-वचन की सत्यता' की मिली थी। रोम के अन्तर्भाव को प्रभु ईसा का मन्त्र तो यह मिला था—'यदि कोई एक चप्पत मारे तो दूसरा गाल भी उसकी ओर कर दो'।

विश्व-भावनाओं की परीक्षा तो केवल ऐसी परिस्थितियों में ही होती है जब नृशंशता मुँह फैला कर सामने खड़ी होती है। विध्वंस जब तांडव नृत्य करता है, शिव की शक्ति (मङ्गल की शक्ति) का अवलोकन उसी क्षण होता है और 'आत्मीयता' की परख भी अपने ऊपर आई हुई आपत्तियों में ही होती है।

इस प्रकार एक ओर 'बैर बैर से नहीं मिटता है'[2]—यह भावना है, दूसरी ओर 'खून का बदला खून'—यह भावना है। एक भावना में 'प्रेम' है, दूसरे में 'बैर'।

किन्तु दुनियाँ ने—'खून का बदला खून'—इसको अधिक अपनाया है। प्रत्येक देश ने मृत्यु का दंड फांसी रक्खा है। 'अत्याचार करने वाले से अत्याचार सहन करने वाला अधिक पापी है'[3]—इस भावना में उद्वेलित हो मानव ने अपने ललाट पर बल नहीं आने दिया है। बुरे का बहिष्कार करने पर दुनियाँ उतारू हो गई है। राष्ट्र पर-राष्ट्र को खाने की घोषणा में अपना अभ्युदय देखते हुये चले आये। किन्तु साम्राज्य लिप्सा में फिर स्वयं मर मिटे! विध्वंस भाग्य की लिपियों को लिखता रहा, मंगल मेटता रहा।

किन्तु, ध्यान रहे—सत्-असत् में तुलना नहीं, सन्तुलन है।

मनुष्य की वृतियों में एक वृति दूसरे का सन्तुलन किये हुये है।

इसीलिये वैदिक चिन्तन का 'ब्रह्म', ईरान की 'मन-कर्म-वचन' की 'सत्यता', रोम की वह 'सुहृदयता', बुद्ध जी की वह 'आत्मीयता'—अब इन रूपों में न प्रकट होकर उस युग[4] के विश्व में 'विक्रम' बन कर आये। रश्मियों ने रश्मियों की शक्ति को खींच लिया।

---

१ 'इस'—इस शब्द से यहां मेरा तात्पर्य्य शक, यूची, कुषाण, हूण, यवन, तुर्क और मुगलों की क्रूरता द्वारा कँपे हुये 'सन्तुलन' से नहीं है। आपत्तिजनक परिस्थितियों से है।—ले०

२ महात्मा बुद्ध

३ दयानन्द सरस्वती

४ ई० पू० २१२ से ५३८ ई० के काल में (शुङ्ग, सातवाहन तथा गुप्तकाल में।) शुङ्ग काल में पुष्यमित्र शुङ्ग, सातवाहन युग में महाराज शातकर्णि, और गुप्तकाल में महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त तथा स्कन्द विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्हीं सबके काल में शक, यूची, कुषाण तथा हूणों का अन्त हुआ था।—ले०

इस 'विक्रम' का अर्थ—बल-वीर्य-पराक्रम और शौर्य का ही है। संघर्ष में 'साहस' का ही है', । 'बैर' का नहीं, 'प्रीति' का ही है।

ईसा के लगभग ५०० वर्ष पूर्व यदि सीथियन ने दारायूस के ईरान को सशंकित एवं भयभीत कर रक्खा था, तो ईसा के लगभग १४०-१२० वर्ष-पूर्व ईरान को शकों ने आतंकित कर रक्खा था। शक भारत में भी आये। शकद्वीप बसा कर शकों ने भारत पर आक्रमण किया था। सिन्धु, पंजाब, मथुरा, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र (सातवाहन से छीन कर) तथा उज्जयिनी नगरी इत्यादि को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया था।

ईसा की प्रथम शताब्दी में भारत में कुषाणों का इतिहास आरम्भ हुआ। इन्होंने भी साम्राज्य स्थापित किया। पार्थिया, सीस्तान, बिलोचिस्तान, काबुल, कन्धार, बैक्ट्रीया, अफगानिस्तान, खोतान, काश्गर, यारकन्द, कश्मीर, सिन्धु, मथुरा, साकेत (अवध) और सम्भवतः बिहार उस साम्राज्य के अङ्ग थे। महाराज कनिष्क (७८-१२३ ई०) भारत में आसीन थे।

उधर योरुप में ईसा की प्रथम शताब्दी में हूण रूस की पूर्वी सीमाओं को स्पर्श कर चुके थे। किन्तु ईसा की पाँचवी शताब्दी तक वे वहां असफल रहे। ईसवी सन् ४८४ ई० में उन्होंने फीरोज के ईरान को आतंकित कर डाला। ईरान की आँखों में रोम भी खटकता था। पाँचवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में रोम को भी हूणों ने आतंकित कर डाला। हूणों का भी अपना एक साम्राज्य था—राहिन से मध्य एशिया तक। हूणों के सरदार अटीला के यहां से चीन को राजदूत जाता था। कुस्तुनतुनियांपोल से भी राजदूत अटीला के यहां आया था।

बैक्टीया, अफगानिस्तान और तक्षशिला का विध्वंस[१] करके हूण भारत में भी महाराज कुमार गुप्त विक्रमादित्य के काल (४१४-४५५ ई०) में आये थे।

और फल यह हुआ कि कालान्तर में सीथियम जातियों का योरुपीयकरण हो गया—वे कृषि करने लगे।

ईरान से शकों का निरशस्त्रीकरण हो गया। महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३८०—४१३ ई०) द्वारा शक भारत में धाराशायी हुये। रोम और भारत को आंतंकित करने वाले हूण रोम से ४५१ ई० में चैलियन्स के युद्ध में गये और भारत में युवराज भट्टारक स्कदगुप्त विक्रमादित्य (४५५—४६७ ई०) द्वारा सदैव को पराजित हूये। रश्मियों ने रश्मियों को इस प्रकार खींच लिया।

विश्व में विजय विक्रम के साथ चली गई, भारत में बैर[२] प्रीति के साथ चला गया।

---

१ "The western gate of India was neglected in the time of कुमारगुप्त प्रथम and swarm after swarm of barbarians poured in through it. Chinese historians have recorded the destruction of the cities of Bactria and Afganistan"............At the same time perished the great University of तक्षशिला।" पृ०४७।४८

The Age of Imperial Guptas.
By Prof. R. D. Banerji
(Prof. A. S. Altekar)

२ 'The history of India has been one of assimilation and synthesis of various elements that have come in."—*Jawahar Lal Nehru.*

शैलशिरोमणि से सुसज्जित और सागरों की मेखला से अलंकृत भारत की शस्य-श्यामला भूमि में—हिमालय से कन्याकुमारी तक बिखरे हुए रजकणों में—भूरी, काली और लाल मिट्टी[1] में, कन्दराओं में, शिलाओं में, पर्वतों और निर्झरों में—सिन्धु और सरस्वती के तटों पर किये हुये यज्ञों में—पयस्वनी, सलिला गंगा और यमुना की धारों में, —कूल और कछारों में—नर्मदा, कृष्णा और गोदावरी के क्षेत्रों में—कुरुक्षेत्र और दण्डक वन में···जलमग्न मेघों में—ऋतु-ऋतु में—बीजों, पल्लवों, पुष्पों और फलों में—वनस्पति और औषधियों में—वन, वन में, अरण्यों में—जीव-जन्तुओं में—जलचर में, नभचर में,—पशुओं की हुंकारों में—भयंकर तूफानों में......भूगर्भ की प्रलयों में और ज्वालामुखियों की धधकती हुई ज्वालाओं में...लावा में, धातुओं में, रसायनों, खाद्यों, द्रव्यों और पदार्थों में—दूर तक फैली हुई रेणुका में, ऊसर, मरुभूमि और लहलहाते हुए खेतों में...जवा, गेहूँ, चावलों में, रस में, विरस में, दूध, दही, माखन और गोधन में—मणि-रत्न आदिक निधियों में—अरण्यनी के सौरभ में—सन्ध्या की गोधूलि में—कुटिया में, मणिदीप में—तारों भरी रजनी में—उषा की प्रभाती में—भूमण्डल पर उतरती हुई—व्योममण्डल को जाती हुईं रवि-शशि की किरणों में और अथर्ववेदीय पृथिवी-सूक्त[2] के राष्ट्रीय गीतों में केवल एक ही भावना उमड़ कर आई है :—

'विश्वजन्या स्वस्तिमती हो।'

'विश्वजन्या' का अर्थ 'माता' का भी है, भूमि का भी। किन्तु यह 'विश्वजन्या' विश्वंभरा भी थी—विश्व का भरण-पोषण करने वाली।

सम्भव है पृथिवी-सूक्त के रचयिता की दृष्टि में यह 'विश्व' हिमालय से कन्याकुमारी तक ही रहा हो, पर ऐसा नहीं है, नहीं हैं। राम लंका को चले गये, अर्जुन पाताल को चला गया और यदि कोई यह न माने तो यह मानना ही पड़ेगा,—रेत में से तेल निकाला है-भूमि ने, मिट्टी में से सोना पैदा किया है-भूमि ने, पत्थरों में से कोयला दिया है-भूमि ने। किन्तु,

किन्तु, सर्पों को ओस से पाला है भूमि ने--मिट्टी खिला के। दानव का शोषण इसीलिये असफल रहा है।

विश्व का योग-क्षेम भूमि ने किया है। वह भूमि चाहें भारत की रही हो, चाहें लंका, चीन, जापान, इङ्गलैन्ड, योरुप, रूस, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका अथवा अमेरीका की रही हो। सागरों और पर्वतों के बंधे भूमि बंध न सकी है।

पृथिवी का विक्रम 'भरणपोषण' का है।

वीरों का विक्रम 'हनन' का है।

इसीलिये 'पृथिवी-सूक्त' में भावना यों आई है:—

'जो मेरा हनन या मुझ पर आक्रमण करता है उसका मैं हनन करता[3] हूँ।'

---

१ **'बभ्रु कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिम्'**
पृथिवी-सूक्त ११
अर्थात्, भूरी, काली और लाल मिट्टी पृथिवी के विश्व रूप की परिचायक है।

२ अथर्व-वेद १२।१।१—६३

३ देखिये :—**'पृथिवीसूक्त एक अध्ययन'** शीर्षक लेख—**'विक्रमांक'** पृ० ७१

भारत के इतिहास में जितने भी आक्रमण भारत पर हुये—चाहें वह सिकन्दर का रहा हो, चाहें यूनानी, पल्हव, पार्थियन, शक, यूची, कुषाण, यवन, तुर्क अथवा मुगलों का, चाहें अंग्रेजों, फ्रान्सीसियों, डच अथवा गोआ के लोगों का रहा हो—पर वे सब थे 'अकारण' ही।

इस 'अकारण' शब्द का अर्थ किसी ने 'बहाने' का लगा लिया है, किसी ने 'अधिकार' का, किसी ने अपनी 'विजय' का, अपने 'अभिमान' का, अपने 'स्व' का, 'प्रभुत्व' का, और इस प्रकार जिस जिस से अपने को सन्तुष्टि हुई है वही अर्थ इस 'अकारण' शब्द का है। पर 'कारण' और 'अकारण' के पीछे केवल मानव का एक संविधान है।

घटना, घटना के क्रम[1] में विश्व-आयोजन है।

क्षण, क्षण में एक उत्सव है।

पग पग पर एक मेल है। 'विश्व' का, विश्व के 'मानव' का एक रहस्योद्-घाटन है—स्व' के लिये, 'परम' के लिये, 'स्वत्व' के लिये, 'स्वार्थ' के लिये, 'परमार्थ' के लिये, और अन्त में 'मङ्गल' के लिये—मानव-मङ्गल के लिये, विश्व-मङ्गल के लिये।

भारत का विक्रम भौगोलिक विस्तार का नहीं, सांस्कृतिक[2] विस्तार का था।

विश्व के महायुद्धों के अनेक कारणों में भू-गर्भ और सागर में छिपे हुये रत्नों का मोह ही काम करता रहा है—भू पर बसे हुये व्यक्तियों और सत्ताओं की हड्डियों को पीस डालने की कामना ही दर्पशीला बन कर काम करती रही है।

पर किसी विजयी देश ने स्वदेश की सुरक्षा हेतु हड्डियों को पीस कर विशाल पर्वत नहीं खड़े कर लिये हैं, न खड़े कर लेगा। रत्नाकर[3] जैसे सागरों के रत्नों ने, सुमेरु जैसे सोने के पर्वतों ने स्वयं ही मानव का देवतुल्य आह्वान किया है। और मनुष्य सागर और पर्वतों को लाँघता हुआ, आकाश और पाताल में चढ़ता और उतरता हुआ भी पृथ्वी पर के क्षण भर के सुखी जीवन का मोह त्याग नहीं पाया है-- यह स्पष्ट हो ही चुका है।

एक पृथ्वी, एक छत्रराज की ओर बढ़ता हुआ विश्व देश-देश की भौगोलिक सीमाओं को जब एक कर लेगा, जल-थल-और आकाश का मार्ग जब एक हो जायेगा, सागरों के बटवारों के झगड़े जब मिट जायेगें, आकाश की देवतुल्य रमणियाँ जब पृथ्वी पर उतर आयेगीं, जब राजमुकुट गिर-गिर कर चूर हो जायेगें—तब जिस प्रकार दस्यु के मिट जाने पर आर्य्य परस्पर[4] लड़ने लगे थे ठीक उसी प्रकार विश्व-भूमि का बासी परस्पर लड़ने लगा, अथवा, तब राम राज्य स्थापित होगा, तब 'प्रिन्स आफ पीस'[5] का राज होगा,

---

१ 'All events in this best of possible worlds are admirbly connected. If a single link in the great chain were omitted, the hormony of the entire universe would be destroyed.'

Voltaire.

२ देखिये :—'इतिहास में—'**राष्ट्र का सांस्कृतिक संविधान**'शीर्षक अध्याय

३ अरब सागर

४ देखिये :—टि० १ पृ० ६

५ देखिये :—पृ० ६६

तब दूध की नदियाँ बहेंगी, भय, आतंक, नृशंशता, क्रूरता, पाशविकता, भुकमरी, लूट, खसोट, शोषण ढूंढ़े न मिलेंगे, तब विश्वशान्ति होगी, मैत्री होगी, भ्रातृत्व होगा, इसी पृथिवी पर अमरता लुटेगी, शब्दों का, अर्थों का, भावों का मधु बिखरेगा और तब विश्व के विशाल भवन पर मानव की शाश्वत पताका लहरायेगी ?

इनमें से क्या होगा, क्या नहीं मैं नहीं कह सकता। पर निश्चय ही बढ़ते हुये विश्व का आग्रह क्षण-क्षण जन-मन-प्रतिष्टा का है। भूमा का यही बरदान है, भारती का यही नित्य मंगल-गान है। 'श्री', 'विजय' और 'कीर्त्ति' का यही अभिमान है।

और यही है विश्व आयोजन का विश्व-विधान--'जन-कल्याण'।

अतुलित छवि और सौन्दर्य की राशि, वसुधे ! तुम्हारी विश्वमंगल की कामनाओं से इसी पृथिवी पर इन्द्र की वर्षा है, कुबेर का धन हैं, शिव की शक्ति है, विष्णु का बल है, सूर्य्य का तेज है, शशि की शोभा है, ऋतुओं का उत्सव है, वैभव का विलास हैं, कुटिया का प्यार है, जन-मन का हर्ष है, जीवन का सुख है, जग का विश्वास है—तुम्हारी छवि-कुन्तल की अनन्त रश्मियों में नारी का शृंगार है, और मानव का राजतिलक।

दो-चार आदमियों की टोली से ग्राम, ग्राम से नगर, नगर से जन-पद, जन-पद से देश, देश से राष्ट्र···राष्ट्र से साम्राज्य और न मालूम क्या-क्या खड़े हो गये ? सब ही देश अपनी अपनी 'जय' और 'पराजय' की दुःख-सुख भरी कहानी एक दूसरे से कहते रहे हैं। विश्व के इतिहास में 'जय' और 'पराजय' का कोई मूल्य नहीं। मिस्र, बेबीलोनिया, कैल्डीया, ईरान, ग्रीक, रोम, कारिन्थ, कारथेज और चीन सभी तो साक्षी हैं। वे सब एक ही 'मानव' और एक ही 'भूमि' के थे, हैं और रहेंगे।

इन सब का संकेत एक पृथ्वी, एकछत्र राज की ओर था।

एक पृथ्वी, एकछत्र राज की ओर विश्व बढ़ता हुआ चला आ रहा है। एक चैतन्य विश्व की सम्पूर्ण सत्ताओं को—जड़, चेतन, जलचर, नभचर, पशु-पक्षी, तरल-सघन, स्त्री बालक, पुरुष को···घटना घटना के क्रम को···अणु-कण को स्पर्श करता हुआ चला आ रहा है। चला जा रहा है।

और विध्वंस और निर्माण में निर्मित मानव 'मंगल' के सहारे जीता हुआ चला आ रहा है।

विश्व-आयोजन में 'जग-मंगल' की खोज है—'विश्व-प्रेम' की।

किन्तु,···?

इतिहास में :—

—राष्ट्र का सांस्कृतिक संविधान

——सुरक्षा

——सुशासन

——सामर्थ्य

——विक्रम

किन्तु, 'हे महान राजन्! सैकड़ों कल्पों तक यह पृथिवी आपकी सुरक्षा और सुशासन से सजी हुई रहे'[1]—राजर्षि विक्रम की महिमा में कहे हुये कालिदास के यह शब्द हैं, मेरे नहीं।

'उर्वशी,' 'पार्वती' और 'शकुन्तला' का निर्माण कालिदास ने भारत की इसी भूरी, काली और लाल मिट्टी से किया था जो विश्व की परिचायक है। मेघों की पहली जलधारा से सींची गई भूमि की सुगन्धि[2] से उर्वशी का निर्माण कालिदास ने किया है, पार्वती का निर्माण हिममंडित हिमालय के देवदारुओं के बीच छिटकी हुई शरद की शशि-पूनो से और अरण्यनी के सौरभ में शकुन्तला का निर्माण कानन के कुसुमों के वसन्त से किया है।

पृथिवी की गन्ध[2] और वायु[3] की सुगन्धि से बसन्त का निर्माण हुआ है। ऋतुओं ने पृथिवी का रूप-शोभन किया हैं।

किन्तु, 'ब्रह्म' की खोज में, 'स्व' की अभिव्यक्ति में.. गम्भीर चिन्तन में युग-युग से डूबे हुये मानव के मन को उर्वशी, पार्वती और शकुन्तला ने रूप-यौवन की ओर आकर्षित किया है। विश्व इतिहास साक्षी है और साक्षी हैं साहित्य की अमर कृतियां। होमर की 'पेनीलोप' साक्षी है।

'सृष्टि की प्रथम रचना 'काम' है'—चिन्तन ने यह तो परख लिया था। 'विश्व का उन्मीलन हो रहा है'—दर्शन तब यह जानता था। 'स्व की परमसिद्धि में मानव-सत्ता की अभिव्यक्ति है'—आत्म-अनुभव द्वारा मनुष्य यह समझता था। किन्तु, 'शिरीष-से कोमल हृदय में विछलन भी होती है'—कालिदास तक के युग का पुरुष यह नहीं जानता था। यह अतिशयोक्ति नहीं है, न कल्पना है। गम्भीर चिन्तन की ओर से हट कर मानव का ध्यान होंटों की ओर तब गया था।

---

१ **'सर्वथा कल्पशतम् महाराजः पृथिवीं पालयन् भवतु'**

—कालिदास

२ **'पुण्यो गन्धः पृथिव्यां'**—'पृथिवी में मैं गन्ध हूँ'। गीता ७/९

३ नोट :—गीता ७/९ में 'वायु' में भगवान क्या हैं—यह नहीं बताया प्रत्युत ज्यों ही 'वायु' में क्या हैं यह बताने का ध्यान आया त्योंही 'जीवनं सर्वभूतेषु' कह डाला अर्थात्, 'सब भूतो' (प्राणियों) का मैं जीवन हूँ।' अर्थात् वायु के बिना चारों तत्व—'पृथिवी', 'जल', 'अग्नि' और 'आकाश' स्थिर नहीं रह सकते—इनमें जीवन नहीं आ सकता।—ले०

भरत का 'नाट्यशास्त्र' और वात्स्यायन का 'कामसूत्र'—विद्वानों का मत है, सातवाहन युग में रचे गये। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के आधार पर सातवाहन समृद्धि-युग ५७ ई० पू० से ७८ ई० का था। ७८ से १८० ई० तक तुखार-सातवाहन-युग और १८० से २३८ ई० तक आभीर सातवाहन युग का क्रम बैठता है। कुछ भी हो यह विद्वानों का विषय है, मेरा नहीं। किन्तु ग्रीक साहित्य में होमर (८०० ई० पू०) की 'पेनीलोप' का निर्माण कालिदास से निश्चय ही बहुत पूर्व का था।

विक्रम संवत ५७ ई० पू० से माना है और शक संवत ७८ ई० से।

कालिदास ने जिन 'विक्रम' की महिमा का वर्णन किया है उन 'विक्रम' के युग तथा उनके द्वारा स्थापित किये हुये 'संवत' के ऐसे जटिल प्रश्न हैं जिनका समाधन इतिहास अभी तक कर नहीं पाया है। इस विषय पर विद्वानों के मत अनेक हैं, तर्क अनेक हैं, गणनायें अनेक हैं, आधार अनेक हैं। इतिहास एवं पुरातत्व के महापंडित श्री अनन्त सदाशिव अलक्तेर का मत[१] है कि यह विक्रम संवत मालवगण राज में ५७ ई० पू० चला था। इसका प्रारंभिक नाम 'कृत संवत' था और ६ वीं शताब्दी में यही 'विक्रम' संवत कहलाया। अनेक विद्वानों का मत है कि यह 'विक्रम' महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०—४१३ ई०) ही थे।

किन्तु शिला अथवा अभिलेखों से और प्रशस्तियों से ही मानव के कीर्त्तिस्तम्भ नहीं खड़े हो गये हैं। युग-युग के पीछे छिपा हुआ मानव-प्रयास साक्षी है।

भारत का यह अहोभाग्य है कि 'राम' और 'कृष्ण' के समान आज संसार उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य को जानता है। और क्यों जानता है ? उत्तर स्पष्ट है- 'राम' से तुलसी नहीं, तुलसी से 'राम' हैं, कृष्ण से सूर नहीं, सूर से 'कृष्ण' हैं, इसी प्रकार 'विक्रमादित्य' को विश्व कालिदास से जानता है। और कालिदास को उर्वशी, पार्वती और शकुन्तला से—भारत की इसी मिट्टी से। उर्वशी को 'मेघदूत' से, 'पार्वती' को 'कुमारसम्भव' से, शकुन्तला को उसके नाम से—एक शब्द में इन तीनों को विश्व साहित्य[२] से जानता है, और होमर[३] और होमर की पेनीलोप को इतिहास से—इलियड और ओडेसी के महा-काव्य से—साहित्य से।

दण्डक वन से 'रामायण' को और कुरुक्षेत्र से 'महाभारत' को जानते हैं। अर्जुन, नकुल, भीम और सहदेव को उनकी दिग्विजयों से जानते हैं और युधिष्ठर को राजसुय यज्ञ से।

---

१ देखिये : "**विक्रम संवत्**' शीर्षक लेख—'**विक्रमांक**' पृ० ७७
काशी नागरी प्रचारिणी सभा, २००० वि०

२ संस्कृत साहित्य से।

नोट :—'विक्रम' और 'कालिदास' की समकालीनता संस्कृत वाङ्मय में अमिट है।'

३ देखिये टि० १० पृ० ४६

'महाभारत' के आधार पर भारत की सीमाओं को पूर्वी अफगानिस्तान और वंक्षु के पास के प्रदेशों से और इन प्रदेशों पर की भारत की भेंट से ईरान और ग्रीक को जानते हैं। दरदों[1] (बिलोचिस्तान के लोग) और काम्बोजों (बदख्शाँ और प्राचीन पामीर के लोग) को हरा कर अर्जुन जब उत्तर की ओर बढ़ता है तो उस भूमि में पहुँचता है जिसे आज 'सोवियत रूस' के नाम से जानते हैं। ऋषिकों (यू-शी जाति) को हराने से उत्तर-पश्चिम चीन के कांसू प्रदेश का पता लगता है। सहदेव की दिग्विजय से भारत के दूत रोम (रोमा) और अलक्जेनडेरिया पहुँचे थे। भीम की दिग्विजय से नैपाल के किरत देश और उसके-निवासी 'किरातों' का पता चला था।

युधिष्ठर के राजसुय यज्ञ में काम्बोज (बदख्शाँ और पामीर) से कल्माष तथा तित्तिर नस्ल वाले ३०० घोड़े, गायें, रथ और २०० ऊंट आये थे। ऊन और समूर (जिन पर सोने क काम बना था) वे लाये थे। बिलोचिस्तान से बकरे, भेड़, गाय, सुअर, ऊंट, फलों की शरब और रत्न आये थे। खरानवाले शाल और कंबल लाये थे। अफगानिस्तान से हजारों कमल के रंग वाले ऊनी वस्त्र, सिल्क, ऊन, हींग और मेमनों की खालें आई थीं। काफिरिस्तान से ३००० सुन्दर दासियाँ, मृगचर्म और कपिशायनी (अंगूरी शराब के समान) सुरा आई थी। नैपाल के किरंत देश से चमड़े, रत्न, स्वर्ण, चन्दन, अगरू, दासियाँ और पशु-पक्षी भी लाये गए थे। कशमीर के उत्तर में 'उत्तर-कुरु' देश से हिमालय के पुष्पों से जनित मधु और अंब पुष्पों की मालाएं भी लाईं गईं थीं। कैलाश की बनस्पतियाँ भी लाईं गईं थीं। सोना तिब्बत से और सायबेरिया से, मोती मनार की खाड़ी से, शंख भी वहीं से भेंट में आये थे। और भारत के विभिन्न देशों से घोड़े[2] हाथी, ऊँट, सुअर, वस्त्र और नाना प्रकार की वस्तुयें भेंट में आई थीं। डा० मोती चन्द[4] ने अपने सारपूर्ण एवं गम्भीर लेखमें यह सब कुछ बड़ी ही सावधानी से दर्शाया है। यह लेख काफी विस्तृत है। इस लेख का आधार महाभारत का 'उपायनपर्व' है।

किन्तु यह 'महाभारत' कब रचा गया और यह सब घटनायें किस युग की हैं—यह प्रश्न है ? डाक्टर साहब ने यह[5] तो स्पष्ट कर दिया कि "भौगोलिक दृष्टिकोण से इन दिग्विजयों का काफी महत्व है। इनसे न केवल नगरों इत्यादि के वर्णन का पता चलता है बल्कि बड़े-बड़े राजमार्गों का भी पता चलता है।" आपने यह[6] भी स्पष्ट किया है, "इनसे

१ 'आधुनिक दर्दिस्तान का बोध होता है—शायद गिलगिट, गुरेज, स्वात और कोहिस्तान वालों के लिये भी 'दरद' शब्द का प्रयोग हुआ हो।'—डा० मोती चन्द

२ कैकेय देश से

३ भारत के कामयक वन से—छोटे नागपुर के निकट।

४ देखिये :—डा० मोती चन्द द्वारा लिखित **'उपायनपर्व का एक अध्ययन'** शीर्षक लेख—**'विक्रमाँक'** पृ० १४२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, स० २०००।

५ विक्रमांक पृ० १४६

६ विक्रमांक पृ० १४६

(दिग्विजयों से) यह भी पता चलता है कि तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं को महाभारत के पात्रों पर घटा दिया गया है। इन दिग्विजयों से यह नहीं समझना चाहिये कि भारतीय राजा लोग एक ही समय इतनी लम्बी-लम्बी चढ़ाइयाँ करते थे। सच तो यह है कि छोटी-मोटी चढ़ाइयों को एक सूत्र में ग्रथन करके इन दिग्विजयों का सूत्रपात होता है।" और आगे चल कर आपने यह[1] भी स्पष्ट किया है कि 'महाभारत के काल के सम्बन्ध में अब भी बहुत विवाद है। दाह्लमान (दास महाभारत आल्स एपांक्स उंड रेख्टबुख' और 'जेनसिस डेस म्हाभारत') के अनुसार महाभारत की रचना पांचवी या छटी शताब्दी में हुई। यह सिद्धात अब मान्य नहीं है।" आपका यह[2] भी कहना है कि 'विद्वानों द्वारा माना जाने लगा है कि महाभारत की रचना एक आदमी द्वारा नहीं हुई है' (अर्थात, केवल वेदव्यास ने ही नहीं रचा है)। आपने अपने लेख की पुष्टि में यह[3] भी स्पष्ट कहा है कि "महाभारत के भौगोलिक अध्ययन में यह आवश्यक नहीं कि हम महाभारत के समय की विवेचना करें।" और अपने लेख के द्वितीय भाग को समाप्त करते हुए आपने कहा है, "इन सब प्रमाणों को तौलते हुये हम इस निष्कर्ष[4] पर पहुँचते हैं कि जिन घटनाओं का उल्लेख हम पाते हैं वे सम्भवतः १८४ से १४८ ई० पू० के बीच घटी होगीं जो पुष्यमित्र शुंग[5] का राज काल था।"

डाक्टर साहब के उपरोक्त शब्दों से इतना तो स्पष्ट ही है कि युग-युग के पीछे एक मानव प्रयास छिपा है।

और इतिहास की शंकायें तो ठीक वैसी ही होती हैं जैसे अपने ही कहे हुये शब्दों को अथवा बातों को कोई जब भूल जाता है तो याद दिलाने पर आश्चर्य कर बैठता है।

महाभारत किसी युग में रचा गया हो, एक ने रचा हो, अनेक ने रचा हो, उसकी दिग्विजयों का आधार छोटी-मोटी चढाइयां रही हों अथवा एक ही समय पर बड़ी-बड़ी, लम्बी-लम्बी लड़ाइयाँ, उसमें चाहें भारतीय वीरों की उस उदारता का परिचय हो जिसमें अपने को मिटा कर अपनी विजयों का श्रेय महाभारत में पात्रों को दे दिया हो, और चाहें महाभारत के रचयिता अथवा रचयिताओं ने उन वीरों के प्रति पक्षपात करके उनकी विजयों का श्रेय उनको न देकर महाभारत के पात्रों को दे दिया हो, महाभारत में वर्णित घटनायें चाहे पुष्यमित्र शुंग के काल १८४ से १४८ ई० पू० में घटीं हो अथवा न घटी हों, जैसा डाक्टर साहब के 'सम्भवतः' शब्द के संकेत से जान पड़ता है ... ... किन्तु महाभारत

---

१ विक्रमांक पृ० १४७
२ विक्रमांक पृ० १४६
३ विक्रमांक पृ० १४७
४ विक्रमांक पृ० १५५
५ पुष्यमित्र के लिए देखिए पृ० ६२

में वर्णित [१] 'पश्चिमोत्तर प्रदेश', 'पूर्वी अफगानिस्तान', 'पंजाब', 'मध्य एशिया' की भौगोलिक स्थिति, उन देशों की तत्कालीन आर्थिक अवस्था, उपज, व्यापारिक वस्तुयें'—यह सब 'ग्रीक,[२] चीनी, मध्यकालीन अरब के भूगोलवेत्ताओं तथा प्राचीन भारत के भूगोल की खोज में मेसन, बर्न, वुंड, सेंट, मार्टिंन', कनिघंम, होल्डिश तथा स्टाइनं जैसे भूगोल-वेत्ताओं की परख से बहुत कुछ अंशों और मानों में सही उतरीं। इसके दर्शाने में डाक्टर साहब को सराहनीय सफलता तो मिली ही है, किन्तु श्रेय महाभारत के उस रचयिता अथवा रचयिताओं को भी है जिसने अथवा जिन्होंने जो कुछ लिखा था आँखें खोलकर लिखा अन्यथा वही हाल होता जैसे सिकन्दर के भारत आने के पूर्व (३२६ ई० पू० से पूर्व) ग्रीक देशवासियों का यह विश्वास था कि सागर हिन्दूकुश पर्वत के पासही कहीं[३] बहता था।

किन्तु 'विक्रम' के विषय में इतिहास में जितनी भी खोज हुई है, जितने भी मत हैं, जितनी भी गणनायें हैं, जितनी भी सामग्री उपलब्ध हैं, जितना भी लेखों, अभिलेखों, प्रशस्तियों इत्यादि का साक्ष्य प्राप्त है वह किसी न किसी रूप में इन 'बिक्रम' की खोज में 'शकों' की घटना के उल्लेख का मोह त्याग नहीं पाया है। और इतिहास का यह एक सत्य [४] है कि ईसा वर्ष पूर्व ६० के लगभग शकों ने उज्जयिनी को हस्तगत किया था और कुछ ही दिनों में उन्हें उस नगरी का परित्याग करना पड़ा। विक्रम संवत् ५७ ई० पू० से मानते हैं।

यह शक उस युग के विश्व की एक महान घटना के रूप में थे। १६० ई० पू० में यह 'शक' अपने देश से यू शी द्वारा निकाल दिये गये थे। इसके पश्चात् यह शक 'कपिशा' की ओर बढ़े। विद्वानों का ऐसा कहना है कि 'यासीन घाटी होते कश्मीर उद्यान या स्वात गये तथा कपिशा उनके आधीन हुई। हिरात होते हुये सीस्तान गये—ऐसा भी विद्वानों का मत है। वे फरगना में भी बस गये-ऐसा भी विश्वास है। महाभारत में 'तुषार' और 'कंकों' के क्रम में 'शक' आते हैं। यह 'कंक' 'सौग्दयाना' के रहने वाले थे। तुषार यू-शी की शाखा के रूप में थे। यू-शी स्वयं उत्तर-पश्चिमी चीन के 'काँसू प्रदेश' के निवासी थे।

इस प्रकार भारत में उस युग में 'शकों' का हराना निसन्देह एक महान विक्रम का कार्य्य था। निचले सिन्ध में शकद्वीप बसा कर शकों ने अपनी सता को भारत में स्थापित तथा अपने को प्रसारित किया था।

विश्व इतिहास की अनोखी घटना एक यह भी है कि बर्बर जातियों के निरन्तर आक्रमणों से रोम जैसा वैभवशाली एवं विशाल साम्राज्य ४७६ ई० में टूट गया था, उजड़ गया था, पूर्णतः ध्वसित हो गया था। यह भी सम्भव है कि शक, यू-शी, कुषाण और हूणों के साथ जर्मनी की बर्बर जातियां—गाथस,[५] वेन्डाल, स्लैवज़ इत्यादि यदि भारत आ गई होतीं तो भारत भी रोम के समान छिन्न-भिन्न हो गया होता।

---

१ विक्रमांक पृ० १४३

२ विक्रमाँक पृ० १४२

३ देखिये टि० ३ पृ० ५०

४ देखिए डाक्टर अलतेकर द्वारा रचित **'विक्रम संवत्'** शीषक लेख, **'विक्रमाँक'**, पृ० ७७ में पृ० ६२।

ऐसी परिस्थिति में निश्चय ही पराक्रम- शौर्य्य-बल-विक्रम और वीर्य में विष्णु के समान, सूर्य्य (आदित्य) के समान एक महाप्रतापी वीर की आवश्यकता थी। वह वीर कौन था इतिहास आज उसका नाम नहीं ले पाता है। इस वीर के नाम के लिए इतिहास ने अनेक वीरों की ओर संकेत किया है। सातवाहनवंशीय गौतमी पुत्र श्री शातकर्णि और गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की ओर इतिहास का अधिक झुकाव है। और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जब तक उस विक्रमशाली वीर का ऐतिहासिक अस्तित्व स्थापित न हो जाये तब तक उसके द्वारा 'सुरक्षा' और 'सुशासन' के लिये जनता को मोहित किया जाये तो किस आधार पर ? जनता की बात उठाई जाये तो किस अभिमान पर ?

एक पाश्चात्य् विद्वान[1] का कथन है :—

'People who take no pride in the noble achievements of their remote ancestors will never achieve anything worthy to be remembered.'

अर्थात्, वह जन जो अपने दूरवर्ती पूर्वजों के उद्दात अथवा महान् 'कृत्य' में अभिमान नहीं देख पाता वह ऐसा कुछ भी न करेगा जो स्मरण के योग्य हो।

निःसन्देह पूर्वजों के उद्दात एवं महान 'कृत्य में पुण्योत्कर्ष का गौरव भाव अंकित है। उनके महान 'कृत्य' में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा युग का यथार्थ दर्शन है।

भारतीय ऋषियों का राष्ट्रीय गौरव भाव देखिये :—

> 'हे ब्रह्मन[2] ! हमारे देश में ब्राह्मण वेदादि समस्त विद्याओं से दे-दीप्यमान हों। क्षत्रिय पराक्रमी, अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण एवं दक्ष हों। हजारों से अकेले युद्ध करने वाला हो। गायें दूध देने वाली हों, बैल बोझा ढोने वाले हों। स्त्रियाँ अत्यन्त बुद्धिमती हों। प्रत्येक मनुष्य विजयी हो। हमारे देश में मेघ आवश्यकतानुसार जलवृष्टि करें······जौ, गेहूँ आदि औषधियाँ फलवती होकर परिपक्क हों। प्रत्येक मनुष्य का योग-क्षेम उसके उपभोग के लिये पर्याप्त हो।'

और इस गौरव भाव में चारो ओर से 'अभय'[3] की कामना थी।

उपरोक्त शब्दों में—'योग-क्षेम उसके उपभोग के लिये पर्याप्त हो'—इसका सीधा-सादा और स्पष्ट अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति इतना तो पैदा कर सके कि घर-उठा कर खा सके। खाने के लिये रात-दिन केवल चिन्ताओं में ही न घुल जाये। एक ऋण चुकाये तो दूसरा न उत्पन्न हो जाये। एक आपत्ति से पिंड छुड़ाये तो दूसरी न आ पड़े।

दूसरी ओर एक भावना यों है :—

---

१ Thomas Babington Macaulay (1800—1859)

२ तैत्तरीय संहिता ७।५।१८

३ अथर्ववेद १६।१५।६

'जितने अन्न से मनुष्य का पेट भरता है उतने का ही स्वामी होना उसके लिये उचित है। इससे अधिक की अभिलाषा करने वाला चोर है और दण्ड का भागी है।'[१]

आज के आतंकवादी पूँजीवाद युग में व्यासजी की इस बात से अमरीका की 'इकोन्मी अपसेट' हो सकती है, इङ्गलैन्ड का आर्थिक सन्तुलन काँप उठेगा और सम्भवतः इस बात पर चलने से रूस का 'फाइव ईअर प्लान' फेल हो गया होता।

किन्तु यदि यह प्रश्न किया जाये कि व्यास जी की इस बात को भारत में किस-किस युग ने माना था अथवा है तो व्यास जी कृत 'महाभारत' और 'पुराण' किसी ऐसे युग की ओर संकेत करें, तो करें पर दुर्योधन तो सुई की नोक की बराबर भी भूमि बिना युद्ध पाण्डवों को देने को तैयार नहीं था। युग की ऐसी अनुदार वृत्ति पर झींक कर व्यास जी ने यों[१] कह डाला :—

'पृथिवी पर धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियों की जो विभूति है वह एक पुरुष के लिये भी पर्याप्त नहीं है।'

व्यास जी के शब्दों में आर्थिक सन्तोष और असन्तोष का कैसा सरल चित्रण है—एक ओर जितने अन्न से मनुष्य का पेट भर जाये उतने का ही उसे स्वामी होना उचित समझा गया है, दूसरी ओर उसके असन्तोष का कैसा नग्न चित्र है कि यदि वह पृथिवी के सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य एवं वैभव का स्वामित्व प्राप्त करले तो भी उसे थोड़ा ही समझेगा।

जो कुछ भी हो, पर 'उपभोग के लिये पर्याप्त' वाली भावना अपना एक विशेष महत्व रखती है। इस 'पर्याप्त' शब्द में आर्थिक 'हाय' नहीं है, पारिवारिक सुख की एक तृप्ति है—न अधिक योग है, न अधिक भोग।

पारिवारिक सुख केवल इतना ही नहीं है कि मैं और मेरे कुटुम्ब के ही व्यक्ति तृप्त हो जायें वरन् उस सुख में अतिथि भी सम्मिलित है, और साधु भी। राष्ट्र करों से सम्मिलित है, समाज और जन-समुदाय व्यक्ति के व्यवहार द्वारा—'कर्त्तव्य' और 'उत्तर-दायित्व', 'आभार', 'उपकार', और रीते 'धन्यवाद' से। इस प्रकार व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से जन-समुदाय अथवा राष्ट्र पोषित हुआ है।

किन्तु व्यक्ति को पोषित किसने किया है ?

'व्यक्ति' को पोषित 'अर्थ', 'धर्म', 'काम' और 'मोक्ष' ने किया है—यह युगों-युगों पुरानी बात है। 'अर्थ' के साथ 'धर्म' लगाकर, तब, आर्थिक विषमता का सन्तुलन कर दिया गया था। और 'धर्म किये धन न घटे', किन्तु, 'जो सहाय रघुवीर'।

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि धर्म करने से भी धन घट जायेगा यदि 'रघुबीर' की सहायता न हुई। होम करते हुये भी हाथ जल जायेगा। और 'काम के साथ, तब, मोक्ष लगा कर 'काम' (कामना, वासना) को उद्दात बना लिया था। 'धर्म' का अर्थ यहाँ 'जन-कल्याण' अथवा,' सुकार्य्य' का है और 'मोक्ष' का अर्थ 'अतिउदार' का। 'शास्त्रोक्त रीति से सन्तान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव[२] मैं हूँ'...यह गीता का कथन है। इस प्रकार 'अर्थ', 'धर्म', 'काम', 'मोक्ष'—यह शब्द चार हैं पर अर्थ एक है—'उपभोग'।

---

१ 'यावद् भ्रियेत जठरं तावत् सत्त्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तयेनोदंडमर्हति।'   —वेद-व्यास

२ गीता १०।२८

किन्तु इस कथन की सार्थकता, अब, केवल उपदेश देने के लिये है। मनुष्य ने अपने लिये नियम अनेक बना डाले पर साँचे में ढला नहीं। पानी के जानवर का क्या पता किस समय किस तरफ ररक जाये ?

'नियंत्रण', 'नियमों' और 'विधानों' को लोकहित के लिये रच डाला था पर अपने-अपने 'स्व' को जब-जब आवश्यकता हुई है, तब-तब नियंत्रण, नियमों तथा विधानों को अपनी ओर मोड़ लिया गया है। लोकहित की कौन कहे अपने हित का भी ध्यान न रक्खा गया है।

किन्तु व्यक्ति, परिवार, समाज, जन-समुदाय अथवा राष्ट्र के सम्मुख आर्थिक विषमता जब मुँह फैला कर खड़ी होती है तब अर्थशास्त्र की किसी भी योजना ने उनमें से किसी का भी अर्थ-सङ्कट काट नहीं दिया है। भूके पेट[१] से राष्ट्रीय गीत गाये नहीं गये हैं। दारिद्रय् राष्ट्र का सबसे बड़ा अभिशाप है।

अर्थ-शास्त्र ने मानव की अर्थ-प्रतिष्ठा के लिए अनेक मार्गों की ओर संकेत किया है—धन के 'उत्पादन'[२] की ओर, 'वितरण'[३] की ओर—'लाभ'[४] की ओर, ब्याज[५] की ओर—संरक्षण[६] की ओर किन्तु राज्यकोष के गिरे हुये मूल्य ने सहारा नहीं दिया है। राष्ट्र के अर्थ-संकट के अनेक कारणों में राष्ट्रीय ऋण एक महाकारण है ठीक वैसे ही जिस प्रकार व्यक्ति के अर्थ-संकट में ऋण एक महाकारण है। राष्ट्रीय[७] ऋण बढ़ गया है, पारिवारिक सुख घट गया है—व्यक्ति[८] कर्जे से दब कर रह गया है। 'सूद लेना पाप है'—नियम यह बना, पर 'मूल से ब्याज प्यारा है' बरता यह गया। राष्ट्रीय ऋणों के भुगतान की कौन कहे केवल ब्याज भी निकलना कठिन हो गया है। पर राष्ट्रों ने परस्पर बैठ कर एक दूसरे के राष्ट्रीय ऋणों को लेखनी के एक झटके से उड़ा देने की बात दिलों में उठाई हो, तो हो, पर पत्रों में अभी छपी नहीं, वास्तव में उड़ा देने की बात कौन कहे ?

पर पिता के ऋण का भुगतान करने से सुपुत्र ने मुख नहीं मोड़ा। पूर्वजों के 'ऋण' का भुगतान न करने वालों को समाज ने अपना अभिशाप समझा है। पूर्वजों को कलंकित नहीं किया गया है। किसी ने अपनी साख नहीं खोई है। पर अब यह *कहानी भी पुरानी हो चली है।

किन्तु राष्ट्र एक एक जन की चिन्ता करता रहा है। एक एक जन के लिये स्वर्ण युग रचता रहा है। एक एक जन के सुख-दुःख को बांटता रहा है। एक एक जन के 'स्व' और 'स्वार्थ' को 'जन-हित' की ओर अनेकानेक नियंत्रण, नियमों और विधानों से

---

१ 'No man can be a patriot on an empity stomach.' *W.C. Brann*

२ Production of Wealth

३ Distribution of Wealth

४ Profits

५ Interests

६ Savings, Foreign Aids

*इन्डोनेशिया ने अपने ४०८१० लाख डच गिल्डर्स के ऋण को हालैन्ड को देने से मना कर दिया। 'लीडर' ४ अगस्त १९५६।

मोड़ता रहा है। और ऐसे भी अवसर आये हैं जब राष्ट्र एक एक जन से बलिदान मांगता रहा है—एक एक व्यक्ति के सुख-सम्पत्ति का बलिदान, तन का, मन का, जग का, जीवन का। यह बलिदान अब नाना[1] रूपों का है। नई प्रीति का बलिदान राष्ट्र ने मांगा है। नई

७

विश्व के प्रमुख देशों का राष्ट्रीय ऋण

	१९१४ ई०		१९३० ई०
यूनाटेड किंगडम	६६८० लाख पौन्ड	(Pound)	७५९६० लाख पौन्ड
अमरीका	१०२८० लाख डालर	(Dollar)	१६१८५० लाख डालर
फ्रान्स	३४१८८० लाख फ्रैंक्स	(Francs)	४८२१७९० लाख फ्रैंक्स
जर्मनी	४९२६० लाख मार्क्स	(Marks)	१०३७५० लाख मार्क्स
इटैली	१५·८१० लाख लायर	(Lier)	८९८७६० लाख लायर्स
जापान	२५०६० लाख येन	(Yen)	५९५९० लाख येन

८ राष्ट्र के एक एक व्यक्ति पर राष्ट्रीय ऋण का भार

यूनाटेड किंगडम	१५ पौन्ड	१६६ पौन्ड
अमरीका	२½ पौन्ड	२७ पौन्ड (१३१ डालर)
फ्रान्स	३२ पौन्ड	९५ पौन्ड
जर्मनी	———	८ मार्क्स
इटैली	१८ पौन्ड	२३ पौन्ड

The Intelligent Man's Guide Through World Chaos By G.D.H. Cole. पृ० ४३७

नोट :—भारत को अपनी 'द्वितीय पंच-वर्षीय योजना' के लिये ११३० करोड़ रुपये के ऋण की आवश्यकता हुई जिसमें से १५० करोड़ का ऋण भारत ने अपने ही देश की जनता से १८ जुलाई १९५९ तक ले लिया। अमरीका ४० करोड़, इङ्गलैन्ड २० तथा रूस ६३ करोड़ का ऋण भारत को देने को तैयार थे पर भारत का कथन था कि इस ऋण को एक ही शर्त पर भारत लेने को तैयार होगा कि अन्य राष्ट्र भारत से कोई राजनैतिक लाभ उठाने का साहस न करें।—ले०

१

(क) शुल्क	(Fees)
(ख) कर	(Taxation)
(ग) मूल्य कर	(Tarrif)
(घ) सीमा शुल्क	(Customs Duty)
(ङ) ऋण	(Borrowings, Debts)
(च) नियंत्रण	(Controls & Restrictions)
(छ) नियम-अधिनियम	(Laws and Rules)
(ज) भरती	(Recruitment)
(झ) अनिवार्य भरती	(Compulsory Conscription)
(ट) अनिवार्य सम्पत्ति प्राप्ति	(Compulsory Acquisition of Property)
(ठ) राष्ट्रीयकरण	(Nationalization)

नवेली के अनन्त स्वर्गों का बलिदान राष्ट्र ने चाहा है। पति के लिये भरी हुई 'आहों' ने राष्ट्र के लिये अपना बलिदान कर दिया है। माता ने राष्ट्र के गौरव के लिये पुत्र को दूध का आशीर्वाद देकर बिदा कर दिया है। पिता ने दूर तक पहुँचा कर पुत्र को राष्ट्र को सौंप दिया है। बहिन ने तिलक करके भाई को रण-क्षेत्र की ओर मोड़ दिया है। और दुध-मुहें बच्चे ने माता की गोद में दूध डाल कर पिता को अपने बन्धन से सदैव को मुक्त कर दिया है। पर कमी राष्ट्र में ऐसे लोगों की भी नहीं रही है जिन्होंने चावलों के पानी से पैसा पैदा न किया हो, जिन्होंने आंटे में इमली की गुठली पीस कर जनता को खिला न दी हो। राष्ट्र के दुर्भिक्ष साक्षी हैं।

पर हाँ, अकाल में जनक के अतिरिक्त अकालपीड़ित जनता के लिये किसी राजा ने खेत नहीं जोता है—अकाल की तो बात कौन कहे, सुकाल में फसलें[1] तो बहुतों ने खराब करा दीं, नाश करा दीं। राष्ट्र की भावनाओं में अन्तर आया हो या न पर आज कामनाओं में अन्तर निश्चय आ गया है। आज के राष्ट्रों में से जन-जन के दुःख-सुख बांटने की भावना निकल गई है। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि मनुष्य के पास से भूमि निकल गई है। विश्व की चप्पा चप्पा भूमि मानव के तले से निकल गई है।

राष्ट्र के कर्मचारियों ने जन सेवा का भार तो निश्चय अपने ऊपर ले लिया है पर आशा के अनुकूल कार्य्य कुशलता में अपने को श्रेय का अधिकारी मान बैठे हैं। यदि कोई सच्चाई से अपना काम करे तो इसमें श्रेय का कौन-सा कारण उत्पन्न हो गया है? और यदि इतने पर भी श्रेय मिले तो जन सेवा का वह आशीर्वाद मङ्गलमय हो।

इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति का, राष्ट्र और व्यक्ति का, विश्व के मानव का सम्बन्ध श्रद्धा-भाव से जुड़ा हुआ है।

श्रद्धा-भाव से प्रजा ने राष्ट्र का अभिनन्दन किया है और प्रजास्वत्व भाव से राष्ट्र ने प्रजा का।

प्रजाओं के प्रजनन का सामर्थ्य लेकर आज से बहुत समय पूर्व भारत में और १५ वीं शताब्दी में योरप[2] में राष्ट्र का उदय हुआ था—'धर्म' और 'संस्कृति' के लिये, 'अर्थ' और 'काम' के लिये। मोक्ष पृथिवी पर सदैव ही रही—?

'धर्म' शब्द से मेरा आशय 'मानव-धर्म से है।' 'संस्कृति' शब्द का अर्थ 'सद्-भावनाओं' का है। 'मोक्ष' का अर्थ 'लोक-हित' का है।

---

१ अमरीका ने १९३९ से १९४५ के विश्व युद्ध के ३ वर्ष पूर्व १९३६-३७ में अपनी गेहूँ, शक्कर तथा काफी (Coffee) की फसलों को नष्ट कर दिया था। इङ्गलैन्ड ने अपने कपड़े के मिलों से १००००००० करघों की धुरियाँ (Spindles) निकाल के फेंक दीं थीं—यह सब केवल इस लिये हुआ था कि कहीं अधिक पैदावारी से बाजार भाव न गिर जाये। —ले०

२ इसके लिये पृ० १२६ पर टि० * देखिये :—

लोकहित सद्भावनाओं से हुआ है। सद्भावनाओं से संस्कृतियों का जन्म हुआ है—पल पल की अभिसन्धियों से शताब्दियों का।

'रजत', 'स्वर्ण' और 'हीरक' जयन्तियों में मानव ने यदि अपना अभिमान देखा हो, यश और गौरव देखा हो तो मैं नहीं कह सकता पर निश्चय ही इन शताब्दियों ने मानव के अनेक युग देख डाले हैं—मानव का 'भय[1] और भेद' देखा', 'मान[2] और अपमान' देखा, समृद्धि देखी, धन देखा, निर्धनता[3] देखी, आतंक[4] देखा, क्रूरता देखी और इन सबसे परे मानव को देखा, कभी गिरते हुये, कभी उठते हुये, राष्ट्रों को देखा, कभी बनते हुये, कभी बिगड़ते हुये, साम्राज्यों को देखा, साम्राटों को देखा और हिलती हुई सत्ताओं को देखा।

किन्तु शताब्दियाँ मानव को न समझ पाई हैं। और मानव भी शताब्दियों को तब समझा है जब वे बीत गई हैं। तो साधारण जनता राष्ट्र को, राष्ट्र की नीतियों की, नीतियों की शतरंजी चालों को क्या समझेगी?

पर देश, देश, राष्ट्र, राष्ट्र की साधारण जनता केवल दो रोटियों का मोह लेकर जीती रही है। अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी ने बाल बच्चों समेत उत्तम-मध्यम बसर कर लेने में अपना अहोभाग्य समझती रही है। इतने पर भी यदि कोई हथेली की रोटी छीन ले जाये, गरीब की टूटी-फूटी झोपड़ी में आग लगा दे तो गरीब जनता पेट मसोस कर रह गई है—रह जायेगी, पर निश्चय ही राष्ट्र रसातल को चला गया है—चला जायेगा। गरीब को लूट भले ही लिया होगा पर कंगन किसी ने पहना नहीं दिये हैं। गरीबों के आँसुओं से रईसों ने अपने मोतियों की आब तो बैठाल ली है पर उनकी सूनी आँखों में झाँक कर किसी ने

---

* "Nations came into being; national divisions became marked, national literatures spring up; national rules for industry take the place of local regulations; national laws, national tongues; even national Churches came into being. People began to think of themselves, not as citizens of Madrid or of Kent or of Burgundy but of Spain, of England or of France. They feel that they owe allegiance not to this city or to that feudal lord but to their King who is the monarch of whole nation."

—*Leo Huberman*

१ मिस्र की लगभग ३।४ शताब्दी (६०६—५३६ ई० पू०) ने 'भय और भेद' देखा।

२ ईरान और ग्रीक की लगभग ४ शताब्दियों (५३६—१६८ ई० पू०) ने मान और अपमान' देखा।

३ रोम की लगभग ७ शताब्दियों (१६८ ई० पू०—४७६ ई०) ने 'समृद्धि, धन और निर्धनता' देखी।

४ जर्मन की बर्बर जातियों, शक, यूचो, कुषाण, हूणों की छोटी आयु ने 'आतंक और क्रूरता' देखी।

देखा नहीं। गरीबों की 'हाय' से रईसों ने नफरत भरे दिल की गहरी खाइयों को तो नाप डाला पर यह ख्याल नहीं आया कि वे 'आहें' कफन में बँधकर साथ गई हैं और यह मोती और कंगन यहीं रह गये हैं। जड़ाऊ कंगन में मोतियों की चमक आंख नहीं मारने देती है, पर... ...पर सूने चूल्हे पर रीती हांडी चढ़ाकर भूक से तड़पते हुये बच्चों को हाँडी खटका कर माँ जब बहलाती है तो उस कलेजे की हूक को देख कर भी कोई कह नहीं पाया है। पर, फिर, गरीबों के लिये भूमा का वरदान 'मंगल' भी चुप बैठा नहीं रह गया है।

'सूने चूल्हे पर रीती हाँडी'—मेरी कोई कल्पना नहीं है। किसी[1] के जीवन की कोई घटना ही थी—'सत्य' अथवा' 'असत्य'।

जनश्रुति के आधार पर कालिदास के 'महाराज विक्रम' के विषय में भी ऐसी अनेक कथायें सुनने को मिलती हैं जहाँ महाराज सहसा 'मंगल' बनकर पहुँच गये हैं—प्रजा के सुख में, दुख में। पर सुनी हुई बातों में भरोसा किसको ?

प्रजावत्सल राजा को, सम्भवतः प्रजा से ऐसा ही मोह रहा है।

और यों तो उज्जयिनी की अलकापुरी में—कालेश्वर के मन्दिर में सेवा के लिये आने वाली 'देव दासियाँ' (पर कालिदास ने 'वेश्या' शब्द का प्रयोग किया है) अथवा वेश्यायें जब अपने नृत्य की थिरकन से किसी को बेसुध कर डालतीं थीं तो इसमें किसी के छलकते हुये यौवन का क्या दोष था ? और इनके कटाक्षों-से यक्ष यदि मेघ को संचेत कर दे, तो उज्जयिनी नगरी के महाकालेश्वर मन्दिर के आमोद-प्रमोद को क्या दोष था और क्या दोष है उसको जो किसी की गुँथी हुई बेणियों से गिरे हुये मन्दार के पुष्पों से यह पता लगा ले कि रात्रि में प्रेमिका प्रियतम से मिलने गई थी तो किस ओर ? यह मेरे नहीं, कालिदास के युग-चित्र[2] हैं।

इस प्रकार युग-युग में देश, देश में एक ओर आनन्द-प्रमोद बहा है और दूसरी ओर नितान्त गरीबी रोई है। पर वासनाओं में नहा, नहा कर मनुष्य तृप्ति-दान नहीं कर पाया है—किसी की गरीबी से फायदा उठा-उठा कर कोई रईस रह नहीं पाया है, किसी की इज्जत लूट कर कोई चैन से सो नहीं पाया है। यह भूमा का वरदान है, किसी की 'हाय' नहीं।

मनुष्य का शोषण मनुष्य ने किया है—दुनियाँ के लिये नहीं, केवल अपने लिए। और क्यों किया है यह बीसवीं शताब्दी में सुनियेगा।

रही 'अभय' की बात सो उनके लिये इतना कह देना यथेष्ट होगा कि 'रामायण' में रावण के भय से वायु भी तीव्रगति से बहता हुआ रावण की ओर से नहीं निकलता था। सम्भवतः यह महर्षि वाल्मीकि की कल्पना हो—एक अतिश्योक्ति हो, पर भय के आतंक से जनता त्राहि-त्राहि कर उठी है—वह भय चाहें राष्ट्र का रहा हो, चाहे पर-राष्ट्र का, चाहे समाज का रहा हो, चाहे परिवार का। परिवार में यह 'भय' 'कलह' कहलाता है, समाज में 'भेदभाव' कहलाता हैं और राष्ट्र में 'अन्याय'। पर-राष्ट्र के 'भय' का भी भार राष्ट्र के एक एक व्यक्ति पर है—वह भार चाहे ऋण का हो, चाहें गुलामी का और चाहे तन-मन-धन से किसी (पर-राष्ट्र) की सेवा का, अथवा अकारण आक्रमणों का।

---

१ अरब के एक खलीफा।
२ 'मेघदूत' से

इस प्रकार बीती हुई शताब्दियों में एक 'नित्य'[१] भर कर रख लिया गया है—गये हुये मानव के आदर के लिए—पुरुषोत्कर्ष के गौरव भाव के लिये, वर्तमान में जीवन निर्बाह के लिये और आने वाले मानव के लिये। यह 'नित्य' यदि दिन-प्रति-दिन की घटनाओं में घटित न हो—यदि जीवन पर लागू न हो तो चाहे अतीत का गौरव देखना, चाहे वर्तमान का निर्बाह और चाहे भविष्य का उत्साह, पर जीवन में शक्ति का संचार होते होते रह जायेगा।

विश्व की महान घटनाओं का, विश्व के महाकाव्यों का एक ही ध्येय रहा है—जीवन में शक्ति का संचार करना।

राष्ट्र और भू की प्रतिष्ठा इसी शक्ति से हुई है। इसी शक्ति ने अतीत का गौरव गाया है, वर्तमान का निर्देशन किया है, भविष्य को उज्ज्वल बनाया है। इसी शक्ति से सागर की तरल तरंगों ने मानव की कीर्त्ति गाई है, पर्बतों की स्फुटिक शिलाओं ने अपनी निर्जनता के सुखद सन्देश सुनाये हैं और निर्भरों ने कलकल ध्वनि में मानव का स्वस्ति-वादन किया है।

इसी शक्ति से राष्ट्र का निर्माण हुआ है, राष्ट्र ने 'सुरक्षा' का भार इसी शक्ति के आधार पर लिया है, सुशासन की भावनाओं में 'जनहित' इसी शक्ति ने भर दिया है, 'सामर्थ्य' में साहस का सहचर्य इसी शक्ति के कारण है, 'विक्रम' की आधारशिला यही शक्ति है। इसी शक्ति से जन-मन-प्रतिष्ठा हुई है—मानव कृतकृत्य और धन्य हो उठा है।

'सुरक्षा', 'सुशासन', 'सामर्थ्य' और 'विक्रम' के कीर्त्तिस्तम्भों पर सदैव ही जन-मन-प्रतिष्ठा की ज्योति जगमगा उठी है।

विक्रम-युग की इसी जन-मन-प्रतिष्ठा से आज विश्व का बच्चा बच्चा उज्जयिनी के महाराज 'विक्रमादित्य' को केवल इसी नाम से जानता है।

इतिहास की परमसिद्धि—युग युग के स्वर्ण युग—'सुरक्षा', 'सुशासन', 'सामर्थ्य', और 'विक्रम'—यही थे। विश्व के प्रत्येक स्वर्ण युग में जन-मन-प्रतिष्ठा हुई हैं और जब जब जिस जिस देश की भूमि से जन-मन-प्रतिष्ठा उठ गई है वह देश, वह भूमि निश्चय ही रसातल को चली गई है।

विश्व की सांस्कृतिक रेखाओं से युग युग में निर्मित आज भी विश्व में मानव के कीर्त्तिस्तम्भ खड़े हुये हैं—मानव उन दीपों में ज्योति प्रज्ज्वलित करता हुआ चला जा रहा है।

टिमटिमाते हुये दीपक की लोय में सूर्य की किरणों का समाधान होता हुआ चला आ रहा है—तूफानों का अन्धड़ चलता रहा है।

किन्तु दीप शिखा की ओट मानव विश्व-मंगल-काव्य रचता रहा है।

वह दीपक जन जन के मन का था। है। और होगा।

मानव के राष्ट्र का सांस्कृतिक संविधान जन-मन-प्रतिष्ठा का है।

और वह शक्ति ?···वह शक्ति मानव-चरित्र की थी।

---

१ तु० **'The past can never be effaced, since the recollection of it is an element in shaping the future.'** *James Bryce*

इतिहास मे स्वर्ण-युग:—
(ईसवी शताब्दी से ६४६ ई०)

ईरान, रोम, भारत और चीन का वैभवशाली युग[1]

राष्ट्र की शोभा——जन-मन-प्रतिष्ठा

'प्रिय ! तुम्हारे होंट कहीं कुम्लाँह न जायें'—किसी के प्यार की यह युगों-युगों पुरानी और एक बीती हुई कहानी है।

किन्तु उषा की प्रथम किरणों से विश्व आशाओं से भर उठा है। मध्याह्न के प्रचंड ने तप कर जीवन में ऊर्जित रस भर दिया है । दिन की थकी हुई ऊर्धित शक्तियों का श्रम-परिहार, फिर, सन्ध्या ने कर दिया है।

और निशा बीत गई है—कुछ अतीत के, कुछ इस क्षण के, कुछ कल के... सुनहले और सुन्दर स्वप्नों से।

पर यह नित्य की कहानी है--अतीत की, आज की, कल की। उषा आवेगी, प्रचन्ड तपेगा, सन्ध्या होगी और निशा आयेगी और जायेगी—होंट चाहें किसी के कुम्लाँहें, चाहें काले पड़ जायें।

इन होंटों की कहानी आज से बहुत समय पूर्व—उस समय से आरम्भ होती है जब लोरियाँ देती-देती माता ने दुनियाँ की दृष्टि से छिपा कर अपने नन्हे-से फूल[2] को चूम लिया था और दुलार से भर कर दूध देते-देते कह उठी थी, 'जब तुम राजा हो जाओ मुझे भूल न जाना।' फिर किस माता का लाल राजा न हुआ ! किन्तु धीरे धीरे माता का वह प्यार होंटों से उतर कर हथेली पर आ गया था—माता के स्नेह की यह ३० वर्ष की कहानी है। अपने ३० वर्षीय पुत्र को माता ने उसकी हथेली चूम कर अपना स्नेह दिया है। यही स्नेह 'आशीर्वाद' कहलाया। किसी माता का लाल दुनियां की दृष्टि में राजा हुआ

---

१ रोम साम्राज्य के सम्राट आगस्टस (२७ ई० पू० से १४ ई०) के काल में रोम साम्राज्य स्थापित हुआ था—सुख और शान्ति से परिपूर्ण हुआ था। फिर अनेक सम्राट आये। २३५ ई० से २८५ ई० तक वहाँ बर्बर जातियों का भय रहा। २८४ से ३०५ ई० तक डायाक्लीटन (Diocletan) का निरंकुश शासन रहा और ४७६ ई० में रोम साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। ईरान में सैसानियद वंश के अर्देश्वर बैबीगन (२२६ ई०-२४० ई०) के काल में सुख, समृद्धि और शान्ति रही । भारत में सातवाहनबंश के समृद्धि युग ५७ ई० पू० से गुप्त-युग (३०० ई०—५०० ई०) तथा हर्ष की मृत्यु ६४६ ई० तक भारत श्री-सम्पन्न एवं वैभवशाली रहा। और हनवंश के उदय काल २०६ ई० पू० से २२१ ई० तक चीन ने भी सुख, शांति और समृद्धि का अनुभव किया। इस प्रकार लगभग ७०० वर्षों में ईरान, रोम, भारत और चींन—कोई आगे, कोई पीछे—श्री-वृद्धि को प्राप्त हुये थे। – ले०

२ 'फूल' शब्द का आशय यहाँ 'पुत्र' से है। चीनी भाषा में एक कहावत है जिसका सारांश केवल इतना है कि यदि तुम्हारे पास ४ पैसे हों, तो दो पैसे रोटी पर व्यय करना। और दो पैसे फूलों पर। रोटी पर व्यय किये हुये पैसे तुम्हें जीवन देगें और 'फुलों' पर व्यय किये हुये पैसे जीने का एक कारण देगें—'*a reason for living*'। ठीक इसी प्रकार दुनियाँ अपने बच्चों के मोह से जीती है। —ले०

हो या न हुआ हो, पर निश्चय ही माता की ममता और पिता के प्यार से पुत्र जीवन में फूला-फला है। और पुत्र ने श्रद्धा से इन चरणों में यदि शीश झुका दिया है, तो माता ने अपने दूध को और पिता ने अपने परिवार को धन्य समझा है। एक सुखी परिवार का दो रेखाओं का यह छोटा सा चित्र है जिसमें श्रद्धा का एक गौरव भाव अंकित है—एक एक के होटों पर मुस्कराहट है।

इसी मुस्कराहट के लिए जेठ की दोपहरी तपती है ... . खेतों पर कोई पसीना बहाता है ... ... भादों की घनघोर घटायें उमड़-घुमड़ कर आती हैं ... ... मेड़ों को कोई बाँधता है ... ...जल से सराबोर अविचल कोई खेतों को निराता है और फिर 'धान', 'जवा' और 'गेहूँ' की खेती लहलहाती है। गोधन में अभिमान भर उठता है।

धन-धान्य से परिपूर्ण गृह जन-परिजन, जाने-अनजाने को सुख देता है ... ... गृह-लक्ष्मी तृप्त होती है। इस गृह तृप्ति में नित-उठ उत्सव होते हैं। नित्य-प्रति आनन्द और मङ्गल की बधाइयों से वायुमंडल अभिसिक्त हो उठता है ... ग्रह-चक्र शान्त हो जाते हैं और कुल देवता प्रसन्न होते हैं। उस गृह से आदर और सम्मान का भूखा अतिथि परितृप्त लौटता है और दो मुट्ठी चावलों से सन्तुष्ट साधू परिवार की जय-जय-कार मनाता हुआ आगे बढ़ जाता है। चारों ओर का वातावरण मधुर हो उठता है, परिस्थितियां अनुकूल हो जाती हैं।

सरस्वती के अभिवादन से वह गृह पवित्र हो जाता है।

'श्री', 'विजय' और 'कीर्त्ति' के लिये सुबह से निकला हुआ घर का पुरुष सन्ध्या को जब पुनः घर लौटता है तो मणिदीप मुस्करा उठते हैं। पिता का प्यार हुलसता है, माता की ममता जगती है। पत्नी मधुर वचनों से आदर सँजोती है और निर्द्वन्द बालक दुलार लेकर सिमिट कर घिर आते हैं। कुलश्रेष्ट एवं गुरुजन परिवार की फुलवारी को फूलते हुए देखकर आशीर्वादों की मङ्गलवर्षा करते हैं। कुलवधुएं इन आशर्वादों को अँचल में ले लेती हैं। यही आशीर्वाद उनका 'सुहाग' कहलाता है।

किन्तु अपनी पत्नी के हाथों का भरा हुआ जल, माता के हाथों परोसी हुई रसोई और नन्हें-मुन्हों से बिखेरी हुई थाली ... बस यही एक अभिलाषा है एक छोटे-से परिवार के एक छोटे-से सौभाग्य की।

और मैं नहीं कह सकता आधी रात बेला फूलता है तो क्यों? मदनकुँज की मलय समीर के मन्द स्पर्श से कब किसके घूंघट के पट खुल गए और कब, कौन, किससे कह उठा था:—

'प्रिय! तुम्हारे होंट कहीं कुम्लाँह न जायें।'

पर, निश्चय ही वह गृह नन्दन-निकुञ्ज था।

उस गृह में 'श्री' ने स्वस्ति भर दी थी, 'सरस्वती' ने आलोक, 'विजय' ने हर्षोल्लास भर दिया था और कीर्त्ति ने स्वाभिमान की ढेरियाँ लगा दी थीं। एक एक के जीवन में उत्कर्ष छलकता था।

कर्मनिष्ठ, कर्त्तव्यपरायण, न्यायप्रिय, पुरुषार्थी, मेधावी, विद्वान, पराक्रमी, यशस्वी तथा वीर पुरुषों ने समाज और राष्ट्र को सशक्त तथा सम्मानित किया है और राष्ट्र की शोभा से स्वयं गौरवान्वित हुए हैं। तेजस्वी ने पृथ्वी की लाज रक्खी है।

किन्तु गीता में कहा है—'तेजस्वियों का तेज मैं हूँ' (गीता ७।१०)। स्पष्ट अर्थ इसका यह है कि चरित्रवानों का 'चरित्र' ही ईश्वर है।

इतिहास के स्वर्ण-युगों का निर्माण चरित्रवानों ने किया है—श्रीमानों ने। 'श्रीमान' का अर्थ केवल पैसे, पद, कुल अथवा मान में बढ़े हुये व्यक्ति का नहीं है।

श्री-सम्पन्न, उदार एवं वैभवशाली राष्ट्र तथा युग—इन दोनों का निर्माण 'विनय' और 'शील' के आधार पर हुआ है। विद्या से 'विनय' ले ली गई थी और चरित्र से 'शील'। राष्ट्रों का उदय और पराभव राष्ट्र के एक एक जन के चरित्र पर आधारित रहा है।

और यह किसी दर्पशीला नगरी का अभिमान नहीं है—'मगध', 'कन्नौज' 'अयोध्या' तथा 'उज्जयिनी' नगरी का स्वाभिमान है जो भारत के एक एक जन के मन की प्रतिष्ठा के लिए युग युग के इतिहास में स्वर्ण-युग बनकर आया था। उस स्वर्ण युग में चरित्र की लाली थी।

गुप्त-काल (३००—५००) का इतिहास 'मगध', 'कन्नौज', 'अयोध्या' तथा 'उज्जयिनी' नगरी का इतिहास है। ईसा की ३१६ ई० में चन्द्रगुप्त प्रथम (३१६—३३५) ने आर्यावर्त्त के ६ राजाओं पर—अटवी राज्य (जबलपुर तथा छोटे नागपुर के समीपवर्ती प्रदेश) तथा दक्षिण-पथ पर विजय पाई थी। बंगाल, नैपाल, कामरूप (आसाम) उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे। पश्चिमी क्षत्रप अर्थात् शकराज तथा सिंहलद्वीप भी उसे भेंट भेजते थे। इस प्रकार भारत की दिग्विजय करके अश्वमेध उसने रचाया था। किन्तु शकराज्वों को पूर्णतः ध्वस्त करके मथुरा, मालवा, गुजरात, सौराष्ट, द्वारिका इत्यादि देशों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय चन्द्रगुत द्वितीय[१] (३८०—४१३ ई०) को था। इसी ने अपने भ्राता रामगुप्त की स्त्री 'ध्रुवदेवी' की लज्जा शक के हाथों से बचाई थी। विशाखदत्त[२]

---

१ "From the accession of चन्द्रगुप्त द्वितीय the Gupta kingdom becomes a vast empire extending from काठियावाड peninsula to the confines of पूर्वी बंगाल and from हिमालय to नर्वदा।" It is known to have included बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब का पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश के भाग ....and practically the whole of मध्य भारत including the famous and fertile provinces of मालबा, उत्तरी गुजरात, काठियावाड, and the famous ports of काम्बे, घोघा, वेरावाड़, पोरबन्दर, द्वारिका।"

The Imperial Age of Guptas पृ० ३२
By Prof. R. D. Banerji

तु० "चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) made उज्जयिनी his second capital and made also a religious and cultural centre of India."

Early History of India पृ० २५२
By N. N. Ghosh

तु० "His (चन्द्रगुप्त द्वितीय) inscriptions prove that he conqured the whole मालवा and his silver coins indicate that he destroyed the later Western Satraps (शक) of काठियावाड।" प्रो० बनर्जी, पृ० ३०

२ "The extracts from विशाख दत्त's new historical drama 'देवी-चन्द्रगुप्त' begin with the second Act, where it is stated that रामगुप्त agreed to give away ध्रुवदेवी to शक in order to remove the apprehension of his subjects.' वही, पृ० ३२

के नाटक 'देवी–चन्द्रगुप्त' और 'प्रसाद' जी के नाटक 'ध्रुव-स्वामिनी' की नाट्य कला यही 'ध्रुव-देवी' थी। रोम का सोना[1] इसी युग में भारत आया करता था।

किन्तु··

गुप्त-काल का रणकौशल भारत की दिग्विजय का श्रेय यदि समुद्रगुप्त (३३५–३८० ई०) को दे और 'प्रयाग-स्तम्भ[2]' उसकी साक्षी दे, भारत में शकों की सत्ता को समूल नष्ट करने का श्रेय यदि चन्द्रगुप्त द्वितीय को दें और विक्रम-संवत्[3] साक्षी दे, मुद्रायें कुमारगुप्त (४१३—४५५ ई०) के अश्वमेध[4] की घोषणा करें और साम्राज्य की

---

१ "The Western traders poured Roman gold into the country in return for Indian products."

The Imperial Age of Guptas पृ० ३२
By Prof. R. D. Banerji

२ समुद्रगुप्त का "The Allahabad Pillar Inscription."

३ "The legend contains the traditions of Saka dominion in Western India......and of the foundation of विक्रम संवत् (58 B. C.) which विक्रमादित्य probably inaugurated to celebrate his great victory over Sakas."

Early History of India. By N. N, Ghosh. पृ० ५१

तु० 'Prof. Rapson, however, argued that "Azes I is the founder of the era." Cited in Foot Note at p. ५१ By N. N. Ghosh.

४ कुमारगुप्त प्रथम coins show that he performed the ceremony." (अश्वमेध) प्रो० बनर्जी पृ० २६५

नोट: "Dr. Coomaraswamy was of the opinion that some of the coins of Kumargupta I represent the best specimen of Indian art...The figures on the gold coins of Gupta Emperors show various types of costumes and ornaments...चन्द्रगुप्त प्रथम and समुद्रगुप्त were shown in the Persian dress with long coat and trousers...The coins are started in close imitation of the late Kushan coins, consequently the influence of sovereign dress is visible on the person of Gupta kings... ..Gradually the Gupta soverigns replaced foreign costumes and adopted Indian dress. समुद्रगुप्त is seen in Indian dress playing on the lyre and कुमारगुप्त प्रथम is also seen in similar dress while hunting a lion. Female dress was always of Indian style...Female dieties and the queen on the reverse side are seen wearing साड़ी and उत्तरीय। Bodice was not in the vogue......The चादर covered the shoulders, Revival of Sanskrit in Gupta Age is also reflected in the coin legends."

THE LEADER WEEKLY, July 24, 1955.

सीमायें साक्षी दें, तो दें, किन्तु साम्राज्य की सीमाओं और अन्तर्वेद[१] को अभयदान दिया था तो स्कन्द (४५५—४६७) ने। युद्ध और विजय के स्तम्भ[२] और अभिलेख[३] साक्षी हैं। और साक्षी है...वह हूण देश[४]। सब कुछ था, किन्तु रक्त और अश्रु से लिखे हुये युग के इतिहास में स्कन्द अकेला[५] था। चिर-जीवन की अनन्त पंक्तियों में...प्रेम प्रणय की मधुर रागिनी बन कर बिखर गया था.........अनन्त की ओर।

विश्वासों में उसके एक टीस थी, किन्तु विश्वास था।

(देवसेना) —'मेरे इस जीवन के देवता! और उस जीवन के प्राप्य[६]?'

नोट :—भरतपुरराज में 'बयाना' के निकट 'हुल्लनपुरा' में १६४६ ई० में गुप्त काल की स्वर्ण मुद्राओं (लगभग २००० मुद्रायें) की एक 'निधि' पृथ्वी के नीचे से प्राप्त हुई है।

देखिये :—Catalogue of the Gupta Gold Coins, in the BAYANA HORAD...By Dr. A. S. Altekar *D. Litt.* (गुप्तकालीन मुद्रायें)

१ 'अन्तर्वेद is the land between गंगा and यमुना।'

२ "Bithari pillar inscription proves that as the Crown Prince स्कन्दगुप्त haa saved his father's Kingdom from total destruction at the hands if पुष्यमित्र who were probably the first waves of the हूण to reach the plains of the पंजाब, it also proves after the accession as Emperor he had defeated the second wave of the हूण and thus saved Northern India from the ravages of barbarian invasions...But the हूण invasions continued and most probably स्कन्दगुप्त lost his life in trying to stem the mighty flood of the third invasion." प्रो० बनर्जी, पृ० ४६।४६

३ "*Bithari pillar.*"

"Junagarah Inscription.,"

४ "The affinities between the Hungarians of Magyar. language and the Tibetan proves that some of the Western Tibetan tribes are the modern representa tives of the हूण। This is borne out by the fact that the country to the north of the मानसरोवर lake and the Nilam pass is still known to the people of गढ़वाल state as the "हूण देश'"

The Imperial Age of Guptas.

By Prof. R. D. Banerji

Prof. A. S. Alteker

५ "स्कन्द evidently left no son to succeed." (स्कन्द अविवाहित था)।

६ 'प्रसाद जी' के नाटक 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य,' पृ० १५५

हूण भारत से समाप्त हो गये अथवा उनका भारतीयकरण हो गया—किन्तु गुप्त-साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करके। विश्व के इतिहास में रह गये वे जो अरब से चलेगें, जो तुर्किस्तान, समरकन्द, बुखारा से चलेगें...विश्व में भावी विध्वंस और विनाश को आमंत्रित करके। किन्तु इस युग के आगे विश्व का विधान ऐसा ही था। विश्व के एक एक जन को एक होना था।

गुप्तकाल मठों, मन्दिरों और मूर्तियों का युग है। गुप्त वैष्णव थे...'परग भागवत।' किन्तु 'राधा' और 'कृष्ण' की मूर्तियाँ नहीं थीं। नालन्दा, मथुरा, कौसाम्बी, साँची, सारनाथ बुद्धगया, मृगशिखावन, काँची और काठियावाड़ इत्यादि में यदि भगवान बुद्धदेव के 'अत्तरीय विहरथ, अत्तसरण, अनन्य सरण' अर्थात् आत्मदीप होकर विहार करो, 'आत्म शरण', 'अनन्यशरण' की व्याख्य होती थी, मथुरा, मद्रा (मधुरा) काँची, कर्णाटक, काहौन, उदयगिरि, बल्लभी, प्रबर्धन (बंगाल में) तथा तमिल इत्यादि प्रदेशों में दौलत-राम के शब्दों में, यदि महाबीर स्वामी के :—

> 'पायो न शरन, लहायौ न सुख-शैल्वा।
> जीव तू अनादि है, तै भूल्यो शिव गैल्वा॥'
>
> —दौलत राम (जैन महात्मा)

की व्याख्या होती थी, तो सम्पूर्ण गुप्त साम्राज्य में सनातन सत्य गीता[1] के 'अनन्या-श्चिन्तयन्तों'※—अर्थात 'अनन्यशरण' की व्याख्या होती थी। बौद्ध, जैन, हिन्दू तीनों के धर्म का अर्थ, आशय और भाव एक ही था, किन्तु धर्म अनेक, उनके

---

१ "गीता is described as a skilful union of the system of कपिल[2] and पतंजलि[3] with a large admixture of the prevailing Brahmanic doctrines.. and that it could not have been composed before the third Christian century."(इन शब्दों से मेरा कोई सरोकार नहीं। —ले०)

Alberuni's India Vol II पृ० २६५

By E. C. Sachau

नोटः—"Various generations of Hindu scholars have modelled and remodelled the book, one of the most precious gems of their literature, and it seems ashtonishing that an edition of (Original Edition) which existed as late as the time of Alberuni." (१०३० ई०)।

नोट :—देखिये पृ० १३५ पर※ वही पृ० २६६

२ सांख्यदर्शन।

'सिद्धानाँ कपिलो मुनिः 'अर्थात् "सिद्धों में कपिल मुनि मैं हूँ।' गीता १०।२६

३ पतञ्जलि का योगदर्शन।

※ गीता ६।२२

सम्प्रदाय, हीनयान, महायान, वज्रयान, श्वेताम्बर, दिगाम्बर, वैष्णव, शैव, सूर्य, और शाक्त इत्यादि अनेकानेक। इसी 'अनन्यशरण' के भाव को गीता के निर्देशक अथवा वक्ता ने 'समदर्शन' कहा है और 'कबीर' और 'तुलसी' ने यों व्यक्त किया है :—

"जहँ-जहँ डोलों सो परिक्रमा जो कुछ करो सो सेवा।
जब सोवों तो करो दण्डवत पूजो और न देवा॥"

—कबीर

"सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं-सेवक सचराचर रूप राशि भगवन्त॥"

—तुलसी

धर्म का अर्थ 'विषमता' नहीं है। इतिहास साक्षी है।

यदि भारत में गुप्त-काल मठों, मन्दिरों और मूर्तियों का युग था—सहिष्णुता का एक महान युग तो उधर योरुप में भी यही काल चर्चों[१] और मूर्तियों का युग था। रोम केन्द्र था। ईसामसीह[२] के धर्म का उत्कर्ष इसी युग में हुआ था। और ईरान में जरथूस्त्र धर्म का—अग्नि पूजन[३] का पुनरुत्थान भी इसी काल के लगभग की घटना है। किन्तु बौद्ध,

*'गीता का निर्माण काल ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व का नहीं हो सकता है'—यह कथन उतना ही अस्थिर है जितना यह कहना कि गीता के अध्याय दस, श्लोक २४ में आये हुये—'सेनानीनामहं स्कन्दः',—अर्थात् 'सेनापतियों में मैं स्कन्द : हूँ'—यह श्लोक गुप्तकाल के महाराज स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य (४५५—४६७ ई०) जैसे वीर सेनानायक अथवा सेनापति को देख कर रचा गया हो। महाराज स्कन्द ने हूणों से लोहा लिया था और उन्हें एक बार अपने जीते जी सिन्धु से इस ओर नहीं आने दिया था। हूण उस समय विश्व की समस्या थे। विश्व इतिहास ने महाराज की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है। 'प्रसाद जी' के नाटक 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' में भी महाराज की वीरता एवं विक्रम का ही यशोगान है। ले०

१ "The Edict of Milan, which legalized the Christian faith in 313, exercised a profoud influence on Christian art..................The first temples.........were called 'basilicas'. A number of such churches built in the 4th, 5th and 6th centuries are still standing in or near Rome, among them the Churches of St. Paul, Santa Maria Maggiore, St. Lawrence-out-side-the—Walls and San Clemente, the last being perhapes the most famous." लूकस, पृ० २४६

२ "Christianity......won the adherence of the Greco-Roman world and the incoming barbarians of the north." वही, पृ० २४८

३ "The Sassanid (सैसानिद राज्य) state was Zoroastrian and anti-Christian and anti-Roman," वही, पृ० २७१

जैन, हिन्दू, ईसाई और पारसी धर्म का 'शुभ सन्देश' किसी काल विशेष की घटना नहीं; सत्य किसी देश अथवा युग विशेष का नहीं होता। 'अनन्यशरण' की व्याख्या यदि भारत में हुई, तो योरुप और ईरान में भी हुई थी।

'वह स्थान ऐसा वैसा नहीं है यह स्त्री का हृदय है[१]'। सत्य इसी प्रदेश से आया है। फ़ारस में 'ग़जल' –इश्क़िया असरार––का अर्थ 'सखुन अज़ ज़बान गुफ्तन' अर्थात् औरतों की बातें करना है। सम्भवतः यह परिभाषा स्त्री को आधार मान कर की गई हैं––स्त्री के हृदय को देखकर नहीं। नारी के विषय में तो अनेक कहते, किन्तु उसके हृदय को बिरले ही देखते हैं।

उर्वशी की साड़ी जब माधवी लता में फँस गई थी, सम्भवतः ऐसे ही अवसर पर शकुन्तला लज्जा से साड़ी में सिमिट कर रह गई थी।

लज्जित करती रही थी............

.........वह वन की लता

.........उद्यान की लताओं को।

शिथिल थीं मधुर कल्पनाएं......तृण-वीरुध और तरु-पल्लव की।
सुरभित दिगन्त चंचल हो उठे थे। उमड़ पड़ा था स्नेह।
किन्तु, निष्छल थी यौवन की नील विभा[२]।
प्रणय अधीर था। मन शान्त। अभिसिक्त थे प्राण।
दुष्यन्त निकट था।
प्रियम्बदा[३] तो ठिठुक कर पीछे हट गई थीं, किन्तु शाकुन्तल अभिज्ञान थी।

भय से नहीं, भावना से प्रेम की परिपाटी आरम्भ हुई है। यही वह सत्य है जो नारी हृदय से आया है। ऐसी ही परिपाटी का आलम्बन कालिदास ने लिया था।

---

१ कालिदास और शेक्सपियर की तुलना करते हुये एक फ्रांसीसी ग्रन्थकार का कथन है :—

"मालूम पड़ता है कि भारतवर्ष के कवि ने सौन्दर्य के सूक्ष्म और तीक्ष्ण प्रदर्शन में अपने विपक्षी को पराजित कर दिया है। पाश्चात्य् कवि जिसको पकड़ने की कौन कहे, छूने तक नहीं पाता, ऐसी वस्तु को पकड़कर भारतीय कवि ने एक अति गम्भीर प्रदेश से सत्य का उद्धार किया है। वह स्थान ऐसा वैसा नहीं है वह स्त्री का हृदय है।"

देखियेः–'**कालिदास और शेक्सपियर**'–श्री छन्नूलाल द्वारा लिखित भूमिका पृ० ८

२ "शकुन्तला के यौवन में जिस समय प्रेमोद्रेक हुआ था उसी समय उसका दुष्यन्त के साथ साक्षात्कार हुआ था।" वही पुस्तक पृ० १४६

३ "प्रियम्बदा—'सखी शकुन्तला, तू छिन भर यहीं खड़ी रह।"

'**शकुन्तला नाटक**', अंक १, राजा लक्ष्मण सिंह कृत, पृ० १५

भारत की साहित्यिक अभिरुचि का दिग्दर्शन इस युग में विशिष्ट रूप से मिलता है। काव्य, कला, कोष, नाटक, पिङ्गल, छन्द, व्याकरण, अलंकार, प्रशस्ति, गद्य, पद्य, पुराण, स्मृति इत्यादि की अथवा यों कहिए साहित्य के अङ्ग-अङ्ग की इस युग में व्याख्या हुई। भाषाओं में 'वैदिक एवं लौकिक संस्कृत', 'प्राकृत' तथा 'पाली' भाषा के पश्चात् इस युग में 'संस्कृत'[1] का पुनरुत्थान हुआ। कालिदास का 'रघुवंश', 'मेघदूत', 'ऋतु-संहार' 'कुमारसम्भव' इत्यादि, विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', 'देवीचन्द्रगुप्त', भर्तृहरि की 'शतक' संस्कृत साहित्य की अक्षय-निधि हैं। किन्तु कालिदास की 'शकुन्तला'❀ अक्षय-निधि है विश्व-साहित्य की। 'पंचतन्त्र'[2] साक्षी है।

दर्शन की परम्परा में गुप्तकाल टीका, भाष्य तथा गवेषणाओं का युग है। 'सांख्य', 'योग', 'न्याय', 'वैशेषिक', 'मीमांसा' तथा 'वेदान्त' षट-दर्शन पर भाष्य एवं टीकाएँ इसी युग में रची गईं—विद्वानों का ऐसा विश्वास है। 'कपिल' के 'सांख्य' दर्शन पर ईश्वरकृष्ण की 'सांख्यकारिका', 'पतञ्जलि' के योगदर्शन पर 'व्यासभाष्य', 'गौतम' के 'न्यायदर्शन' पर वात्स्यायन का 'न्यायभाष्य', 'जैमिन' की मीमांसा पर शबर का 'शबरभाष्य' इत्यादि इसी युग में रचे गये। वैशेषिक दर्शन तथा 'गीता' पर गवेषणायें हुईं।

---

१ "Upto the time of the Guptas, epigraphs are generally found written in प्राकृत। But with the revival of Brahmanism the use and influence of संस्कृत also revived with the result that in official and private epigraphs as well as in coin legends संस्कृत replaced प्राकृत। संस्कृत instead of पाली became also the vehicle of expression of even Buddhist writers."

Early History of India पृ० २७६।२७७
By N. N. Ghosh

२ "संस्कृत literature is particularly rich in fairy tales and fables. One of the most interesting works is पंचतन्त्र which was translated in पहलवी, अरबी and सीरिया की भाषा at an early date and thus found its way to the Western countries and translated in almost all European languages." *Ancient India* पृ० ४६६
By R. C. Majumdar

❀नोट: —'शकुन्तला of कालिदास was Englished by Jones in 1789. Foster's German rendering of (1791) it from the English version at once drew the attention of Herder, Herder (१७४४—१८०३ ई०) introduced to Goethe. (१७४६—१८३२)'

Creative India By B. K. Sarkar पृ० १०८

बौद्ध साहित्य[1] विश्व साहित्य की गणना में आ चुका था। बौद्ध साहित्य तथा संस्कृति का दीपक स्थविर काश्यप मातङ्ग और धर्मरत्न ने चीन में प्रदीप्त किया था, आचार्य शान्तरक्षित, दीपंकर-श्रीज्ञान तथा स्मृतिज्ञान-कीर्ति ने तिब्बत (भोट-देश) में, गुणवर्मा (४२४ ई०) ने जावा,[2] बोर्नियों और सुमात्रा में और इनसे पूर्व सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र-स्थविर (२५६ ई० पू०— १६६ ई० पू०) 'सिंहल' (लंका) को प्रदीप्त कर चुके थे।

---

१ "Buddhist literature also rose to the rank of world literature. It was studied all over Asia and many of its legends, fables and anecdotes found their way into Europe. Nay, it is even surmised by many that the Christian Gospels and, particularly, the story of Christ's life were profoundly influenced by the Buddhist cannon......Rudolf Seydel, who has gone more deeply in this branch of study......has pointed out that the Bible is indebted to a large extent to the Buddhist literature,"

Ancient India By R. C. Majumdar पृ० १६८

*नोट :—काश्यप मातङ्ग ने 'द्वाचत्वारिंशत-सूत्र' का अनुवाद चीनी भाषा में किया। भारत का यह पहला ग्रन्थ है जिसका अनुवाद चीनी भाषा में हुआ था। धर्मरुचि (५०१ ई०—५०७) दक्षिण भारत के भिक्षुक थे। इन्होंने भी अनेक अनुवाद किये। रत्नमति (५०८ ई०) और बुद्ध-शान्त (५२० ई०) भी भारत के भिक्षुकगण थे। रत्नमति ने 'महा-यानोत्तरतन्त्र' (योगाचार दर्शन का प्रमाणिक ग्रन्थ) का अनुवाद किया। बुद्धशान्त चीन में लगभग १६ वर्ष रहे (५२० ई०—५३६ ई०)। बोधिरुचि (५००—५३५) भी भारत के त्रिपिटकाचार्य्य भिक्षुक थे। यह कश्मीर होते हुये चीन पहुँचे थे। इन्होंने ३६ ग्रन्थों को अनुवाद किया था।

प्रमुख यह थे :—

'दशभूमिक', 'विशेष-चिन्ता', 'गयाशीर्ष', 'लंकावतार,' 'धर्म-संगीति' इत्यादि चीन और जापान के बौद्ध इतिहास में बोधिधर्म (५२० ई०) का भी विशेष स्थान है। यह 'ध्यान-सम्प्रदाय' के संस्थापक थे।

बौद्ध धर्म का प्रभाव १२।१३ वीं शताब्दी में मङ्गोलों पर भी पड़ा था। कुबिले खाँ (१२५६—१२६४ ई०) ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। मंगू खाँ (१२५१—१२५६ ई०) ने काराकोरम में एक 'धर्म-सम्मेलन' बुलाया था। चंगेज खाँ (१२०६—१२२७ ई०) ने यदि किसी धर्म को स्वीकार नहीं किया, पर विरोध भी नहीं किया।

देखिये:—'ज्ञानोदय' 'एशिया का अंक' अगस्त, १६५५ पृ० ७५—८६,

२ जावा, बोर्नियो, सुमात्रा 'स्वर्ण-भूमि' कहलाती थी। —ले०

श्री महेन्द्र-स्थविर ने सिंहल के राजा 'तिष्य' को 'चूलहत्थि-पदोपमसुत्त' का उपदेश दिया था। इस युग से पूर्व ईसा की प्रथम तथा द्वितीय शताब्दियों में 'अश्वघोष'[१] का 'बुद्ध चरित्र', उसका 'सारिपुत्त प्रकरण', योरुप तथा मध्य एशिया में, उसका 'महायानश्राद्धोत्पाद' जापान में, और नागार्जुन[२] की 'जीवनी' चीन में पहुँच चुकी थी। उन देशों की भाषाओं में रूपान्तर हुआ। और यह सब, सम्भवतः, ईसा की पाँचवी शताब्दी के पूर्व हो चुका था। इन्हीं विमल विभूतियों के प्रसाद से 'असंग', उसके भ्राता 'वसुबन्धु' और उनके शिष्य 'दिग्गांग' ने बौद्धसाहित्य और दर्शन की व्याख्या की एवं उन्हें योग दिया। असंग का 'योगाचार-भूमिशास्त्र' और उस पर वसुबन्धु की टीका—'महायान सूत्रालंकार टीका' अनुपम ग्रन्थ हैं। दिग्गांग का 'प्रमाण-समुच्य' एक सुन्दर कृति है। परमार्थ (४६६—५६० ई०) ने 'वसुबन्धु' की जीवनी रची।

जैन साहित्य के अंग[३], उपाँग, प्रकरण, मूलसूत्र इत्यादि की अभिव्यक्ति भी इसी युग में हुई थी। आर्यभट्ट (ज० ४७६ ई०) और बराहमिहिर (५०५—५८७ ई०) ने ज्योतिष पर प्रकाश डाला। किन्तु 'यत्त' (जो सम्भवतः पाणिनि से भी पूर्व हुआ था) की 'निरुक्त', 'पिंगल' के 'छन्द-सूत्र' और व्याकरण में 'कात्यायन' तथा 'पतञ्जलि' (जिन्होंने पाणिनि के व्याकरण पर टीकायें लिखीं) की क्षमता का कोई भी ग्रंथ इस युग में इन

---

१ "अश्वघोष stands at the starting point of all the great currents ...transformed India towards the beginning of Christian era......in his richness and variety he recalls Milton, Goethe, Kant, and Voltaire.'

Ancient India By R. C. Majumdar. पृष्ट १६६

'.........a unique manuscript of a dramatic poem of अश्वघोष, called, 'सारिपुत्त प्रकरण' has been discovered in Central Asia..his philosophical work called. 'Mahayansraddhotpada' which is used even today as the principal treatise in the schools of Japan.'

२ 'Nagarjuna (नागार्जुन) flourished towards the close of the second century of A. D.'

"According to the biography of नागार्जुन which was translated into Chinese at the beginning of the fifth century A. D. he was born in South India.' वही, पृष्ट १६७

३ 'The existing sacred texts, including these Angas, thus belong exclusively to श्वेताम्बर साम्प्रदाय and were finally arranged in council at वल्लभी in the middle of the 5th century A. D." वही, पृष्ट ४७२

नोटः— 'अंग' और 'उपाँग' के लिये देखिये 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' पृ० २१६।२१७

विषयों पर, सम्भवतः, प्राप्त नहीं है। इसका कारण भी है। यह युग तो 'कल्पना'[1] तथा 'भावना' का युग था। 'प्रेम' और 'विरह' के कटु-अनुभव का युग था, परिभाषाओं का नहीं।

भारत में ५०० ई० में गुप्तकाल समाप्त होता है—हूणों द्वारा साम्राज्य छिन्न-भिन्न। पर इस काल के अंत से एक डेढ़ सौ वर्ष के पश्चात् एक बार पुनः भारत में राजनैतिक एकता स्थापित होती है और देश धन-धान्य से पूर्ण एवं समृद्धि-शाली—हर्षवर्द्धन के समय में। हर्षवर्द्धन के साम्राज्य में पूर्वी पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल सम्मिलित थे। साहित्य की दृष्टि में भी हर्ष का युग एक महान युग है। हर्ष स्वयं भी एक महान साहित्यकार एवं एक सफल नाटककार था। उसने 'रत्नावली', 'नागानन्द' तथा 'प्रियदर्शिका' नाटकों की रचना की। 'बाण' (७०० ई०) इसी के दरबार में था। बाण का 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' युग की अति उत्तम कृतियाँ हैं। 'मयुर', 'हरिदत्त', 'जयसेन', मातंग दिवाकर' जैसे राज्यकवि एवं विद्वानों ने उसके राज्य की शोभा बढ़ाई थी। इसी के युग में चीनी यात्री ह्वानसांग (६३०ई०) आया था। हर्ष ने भी ६४१ ई० में एक ब्राह्मण दूत को चीन भेजा था।

हर्षवर्द्धन (६०६—६४६) की मृत्यु ६४६ ई० में मानी जाती है। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के एक डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् ८०० ई० से भारत में भी वही युग आरम्भ होता है जिसे 'अन्ध-युग' (Dark Ages) कहा गया है। किन्तु इन डेढ़ सौ वर्षों में हर्ष की मृत्यु के लगभग १०० वर्ष पश्चात् महाकवि भवभूति का आविर्भाव हुआ था। इनका जन्म 'बरार' में बताया जाता है। बरार (विदर्भ) के 'माधव' और उज्जयिनी की 'मालती'—इनके 'मालतीमाधव' के पात्र हैं। इनकी अन्य रचनायें 'महावीरचरित' तथा 'उत्तररामचरित' हैं।। यहाँ यह भी नहीं भुलाना चाहिये कि ६०० ई० के लगभग 'दण्डी', ६५४ ई० से कुछ ही पूर्व 'भारवि' और ७वीं शताब्दी के लगभग मध्य में 'आचार्य माघ' संस्कृत की विमल विभूतियाँ थीं। दण्डी का 'दश-कुमार चरित' तथा 'काव्यादर्श', भारवि का 'किरातार्जुनीय' और माघ का 'शिशुपाल वध' तथा 'नैषध' युग के महाकाव्य हैं। ६८६ ई० में भारत में श्री शङ्कर ने दक्षिण में जन्म ले लिया था। सिद्धकवि सरहपा ने ७५० ई० के लगभग मगध में जन्म लिया था।

किन्तु भारत की राज-सत्ता दक्षिण में जा बसी—चालुक्यों के हाथ में। चालुक्यों का अन्त राष्ट्रकूटों ने कर दिया। ६वीं शताब्दी मे अश्वघोष (८१४—८७७ ई०) एक बड़ा ही प्रतापी राष्ट्रकूट हुआ—उस युग के विश्व के चार महान् राजाओं में से था। वे चार थे—दक्षिणी भारत का अश्वघोष, योरुप में कुस्तुनतुनिया का सम्राट, चीन का सम्राट और अरब में बगदाद का खलीफा।

---

१ कालिदास की 'कल्पना' देखियेः—

"विद्याधर सुन्दरियाँ भोज पत्र पर अनङ्ग-देव सन्देश गेरू से लिख कर अपने प्रिय के पास भेजती हैं। विपिन-निवासी अंधेरी रात में औषधियों के प्रकाश में खूब कलोल करते हैं। करि-कपोल-ताड़ित-साल-द्रम-दुग्ध-गंद से सुरभित हो के यहाँ की वायु सब को सुख देती है। निज कुच और नितम्ब के भारी बोझे के कारण किन्नर नारियाँ बरफ पर भी मंद गति ही से चलती है।" **कुमारसम्भव,** प्रथम सर्ग, श्लोक ६, १०, ११

इतिहास में विध्वंस का स्वस्तिवादन :—

अरब का उत्कर्ष
(६५०ई०—१०००ई०)
मानव के अभिनव चरण

योरुप के इतिहास में रोम के सूर्यास्त होने पर वहाँ वह युग आरम्भ होता है जिसे अनेक इतिहासकारों ने 'अंध-युग' कहा है। यही 'मध्य-युग' कहलाता है। यह 'अंध' अथवा 'मध्य-युग' ५०० ई० से आरम्भ होकर १४९२ ई० में समाप्त होता है। इस 'अंध' तथा 'मध्य-युग' में इतिहासकारों ने एक अंतर बताया है। ५०० से १००० तक के काल को 'अंध-युग' कहा गया है और ५०० से १४९२ ई० तक के सम्पूर्ण काल को 'मध्य-युग' कहा गया है।

भारत में भी ९ वीं तथा १० वीं शताब्दी 'अंध-युग' कही गई हैं। भारत में ५०० ई० में गुप्तकाल का वैभवशाली युग समाप्त हो जाता है और एक डेढ़ सौ वर्ष के पश्चात् एक बार पुनः भारत में राजनैतिक एकता हर्षवर्द्धन के काल में स्थापित होती है और देश धन-धान्य से पूर्ण एवं समृद्धिशाली होता है। हर्ष की मृत्यु ६४६ ई० में मानी जाती है। ८ व ९ वीं शताब्दी में भारत की राजसत्ता दक्षिण में जा बसी थी।

इतिहासकारों ने अरब के उत्कर्ष का काल[१] ६५०—१००० ई० का माना है। अरब का यह उत्कर्ष 'धर्म' के आधार पर था। धर्म का आधार इस्लाम की तलवार[२] थी। किन्तु केवल तलवार से ही काम नहीं चल सकता जब तक एक कार्ययुक्त पुरुष का निर्माण न हो जाये। यह 'धर्म'[३] संसार को छोड़कर 'खेरा' अथवा 'मसजिदों' में बैठकर पूजन का ही उपदेश नहीं करता था, वरन् सदैव ही संसार में रहकर संघर्ष से भिड़ने का आदेश देता था। यही युग की प्रेरणा थी। कारणसहित जिज्ञासा ने अरबवासियों के दर्शन में यदि सूक्ष्म आत्मा की व्याख्या नहीं की तो 'कार्ययुक्त'[४] (Active, Dynamic) पुरुष की व्याख्या निश्चय की। मानव के अभिनव चरण भूतल पर आए। विध्वंस इनके साथ था। पर क्यों ? यह सुनिए :—

---

१ 'That the degree of civilization was made dependent on religion in the flourishing period of Islam (A. D. 650—1000) goes without saying ?'

The Moslem World Of Today पृ० ८४

२ '*And forcing it down by means of the sword.*' बार्न्स द्वारा उद्धृत पृ० २६१

३ '*Islam is a composite religion.*' बार्न्स पृ० २६०

Dr. Samvel M. Zwemer.

४ '*Islam is a religion of action.*'

उर्वरा की ओर मरुभूमि ने सदैव ही आकाँक्षाओं की दृष्टि से देखा है। इतिहास के आदिकाल से मिस्र, मेसोपोटामिया अर्थात् एकद और सुमेर, पैलिस्टाइन, सीरिया, असीरिया, ईरान, ग्रीक, रोम, कारेथज—यह सब उपजाऊ भूमिवाले अर्थात् कृषि और व्यापार के प्रदेश थे, अरब के समान मरुभूमि के नहीं। किन्तु सम्पूर्ण अरब भी एक-सी मरुभूमि नहीं थी। अरब-भूमि का दक्षिणी भाग उत्तरी भाग की अपेक्षा कहीं अधिक उपजाऊ था। उत्तरी भाग अरब-मरुभूमि और दक्षिणी भाग सुख-समृद्धि वाला प्रदेश कहा जाता था।

अरब में भिन्न-भिन्न अनेक जातियाँ थीं जो 'कबीले' कहलाते थे। उनके पास न कृषि के लिये उपयुक्त भूमि ही थी, न कृषि के साधन ही। 'खजूर' इनका विशेष प्रिय पदार्थ था। भेड़-बकरियाँ चराना उनका एक विशेष उद्योग था। वे सामी भाषा बोलते थे। यही उनका परस्पर का एकमात्र सूत्र था अन्यथा वे परस्पर मरने-मारने को सदैव ही तत्पर रहते थे।

अरब की इन्हीं जातियों में से कुछ लोग मोहम्मद साहिब के आविर्भाव से लगभग १२ या १४ सौ वर्ष पूर्व (सम्भवतः इससे भी पूर्व) सुमेर, एकद, पैलिस्टाइन इत्यादि अर्थात् उपजाऊ भूमि वाले प्रदेश में जा[१] बसे थे। उनकी सभ्यता का आधार कृषि हो गया था। किन्तु ५२५ ई० पू० जब मिस्र और ५२६ ई० पू० में जब कैल्डीयन साम्राज्य (सुमेर, एकद, सीरिया, असीरिया, पैलिस्टाइन) का ईरान द्वारा अन्त हुआ तो इन सामीभाषावादी जातियों का इतिहास भी समाप्त हो गया था। किन्तु अर में प्रतिद्वन्दता एवं पारस्परिक[२] विरोध चलता ही रहा।

---

१ 'Over and over again the Semitic peoples of Arabia invade the Fertile Crescent. The second phase of Tigris-Euphrates civilization was that of Assyria. The Assiyraians, who spoke Simitic language, had moved from the barren wastes of Arabia into Mesopotamia long before 2000 B. C. They began to extend their rule over the Fertile Crescent. They seized Damsacus (732 B. C.), Palestine and even the delta of Lower Egypt.' लूकस पृ० ७२/७४

तु० "But it was also a time of social and political chaos in Western Arabia." बार्न्स पृ० २६

२ "The pregnant expression of Mohammed's doctrine of the unity of mankind is found in a passage of (कुरान ३०।२१) evidently directed against the mutual quarrelling, sarcasm, scorn, and disdain occurring in the community of Medina."

Islam and Race Problem. By C. Snouck Hurgronje. पृ० ८३

Cited in Moslem World of Today
By J. R. Mott.

उनके पारस्परिक मेल की व्याख्या खान्दानी-खून[1] ने की है। अब महात्मा मोहम्मद साहब के युग से इनका इतिहास पुनः आरम्भ हुआ।

वह मूर्ति अंतर्ध्यान हो गई थी केवल यह कह कर, 'मोहम्मद! तुम आज से पैगम्बर हो गये'। मैं भगवान का दूत जिबरईल हूँ'। यह वह दिव्य प्रकाश था, सम्भवतः जरथूस्त्र धर्म की 'सुनहली रोशनी' के समान, सम्भवतः महात्मा बुद्ध के 'प्रकाश' के सामान, सम्भवतः महात्मा महावीर स्वामी के 'स्वप्न' के समान, सम्भवतः, महात्मा ईसा के जल से अभिसिक्त होने के पश्चात् उस अनुभव के समान जिससे उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ था कि मानो भगवान की शक्ति उतरकर उनमें प्रतिष्ठित हो गई हो। इसी 'प्रकाश' में महात्मा मोहम्मद साहब ने भगवान के दिव्य आदेश को ग्रहण किया था। किन्तु वे अक्षर क्या थे जिनके पढ़ने का आग्रह—'इक़रा[2],' 'इक़रा'—वह देवमूर्ति—जिबरईल—मोहम्मद साहब से करती रही और वे कहते रहे :—

'माअना बेक़ारेइन'[3]

अर्थात 'मैं पढ़ने वाला नहीं हूँ।' वे अक्षर क्या थे—यह केवल मोहम्मद साहब ही जाने क्योंकि उन्होंने उन्हें पढ़ा था। पर वे तो भगवान का शुभ-सन्देश देने आये थे। अतः उन्होंने वही कहा जो पढ़ा था। वे अक्षर थे :—

'इक़रा बेइस्मे रब्बे क़ल्लज़ी खलक़'

अर्थात, पढ़ो अपने 'रब' (ईश्वर) का नाम जिसने पैदा किया है। अरब भाषा में 'इस्लाम'[4] शब्द का अर्थ वही है जिसे माहत्मा ईसामसीह ने 'समर्पण' (Surrender) कहा है, जिसे गीता में 'अनन्यशरण' और महाबीर स्वामी ने 'शरण' कहा है। इन शब्दों का अर्थ, आशय और भाव एक ही है, शब्द अनेक।

मोहम्मद साहिब का स्वर्गारोहण ७जून ६३२ ई० में माना जाता है। मृत्यु ज्वर से हुई थी। उनके जीवन में मक्का, मदीना और काबा इत्यादि उनकी कर्मभूमि थी। यही स्थान उनके बाद मुसलमानों के तीर्थ स्थान हुए। उनके धर्म के शुभ सन्देश को देश-देशान्तर

---

१ 'The social structure of ancient Arabia was founded upon blood kinship. A group of men descending or claiming descent from a common ancestor; they were united by common worship and by common habits, but first and foremost by a blood tie, whether genuine or ficticious, which produced an effective brotherhood. The Arab tribe, in fact, was a great family.'

Prof. David de Santillana in '*The Legacy of Islam*' पृ० २८४

२ 'इक़रा' शब्द का अर्थ 'पढ़ो' या 'पढ़' है।

नोटः—'माअना बेक़ारे इन' के पहले 'फव्वल्लाहे' शब्द को मैंने जानबूझकर छोड़ दिया है—ले०

३ अलइतक़ान-फी-उलमिल-कुरान'—श्रीजलालउद्दीन सुयूती द्वारा रचित पृ० ३६

४ 'Islam……an Arabic word *implying* '*submission* (शरण) to God.' Irving. *Mohamed Vol. I* पृ० ७२

में फैला देना उनके अनुयायियों ने अपना परम कर्त्तव्य माना था। अबूबकूर,उमर, उसमान तथा अली उनके पश्चात् खलीफा हुये। अबूबकूर ने अरबवासियों का जिन्हें बेदून (Bedouins) कहते हैं संगठन किया। फिर उमर, उसमान और अबूबकूर ने युगविधान के अनुसार विध्वंस और विनाश को आमंत्रित किया। अबूबकूर ने सीरिया पर आक्रमण किया, उनके 'अमरन ने 'मिस्र' पर। वे सफल हुये। सीरिया,मिस्र, मेसोपोटामिया, अरब के आक्रमणकारियों के हाथ में आ गये। फारस[१] भी ले लिया। काबुल, बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान और सीस्तान इत्यादि प्रदेश ले लिये और ६६४ ई० में यवनों ने प्रथम[२] पदापण भारत में भी किया, किन्तु ७११ ई० तक वे भारत के प्रति हतोत्साहित-से रहे। फिर, भारत में आ ही गये। दाहिर राजा से युद्ध हुआ—अकारण ही। दाहिर परास्त हुआ।

---

१ "The followers of Mohammed were so irritated by the obstinacy of the Persians in defending their independence and their religion that they were deligent in destroying every thing which could keep alive a spirit they had found it so difficult to subdue, cities were razed, temples were burnt, holy priests who officiated in them were slaughtered and the books containing whatever they knew, whether of science, or of their own history and religion were devoted with their possession to destruction.'

History Of Persia Vol I. By John Malcolm   पृ० ४६६

नोट:—किन्तु अन्य विद्वानों के मत में अरबवासी फारसवासियों के लिये 'मुक्तिदाता थे।

देखिये:—*The Preaching Of Islam* By T. W. Arnold.   पृ० १७७

२ "The first Mohammaden entry into India took place in A. D. (year 44 of Hijra) In that year Mohalib, a clever officer penetrated into Multan but brought back an unfavourable report,....... No further steps were taken till 711 A D.whena pretext was seized and Sindh conquered. It happened thus:—The Raja दाहिर was then ruling over Sindh near which country but beyond the limits of his authority, was a sea-port called देवल (Exact site is unknown.Journal of the Royal) Asiatic Society, Vol. I p. 29). An Arab ship was seized there and दाहिर was called on for restitution. He pleaded that देवल was out of his jurisdiction. Mohammed Casim, nephew to Hijaj, sailed from बसरा and seized the offending town. The Arab force then sailed up to the Indus and stormed Hydrabad and Sehwan. दाहिर fell, sword in hand Finally, the whole Sindh was reduced." "Thirty years later not an Arab remained behind."

पृ० ११/१२

Analytical History Of India
By Robert Sewell.

और एक तीस वर्ष के पश्चात्, इतिहासकार बताता है, एक भी अरबवासी भारत में नहीं रह गया था।

किन्तु इनका भी एक विस्तृत साम्राज्य[१] स्थापित हुआ था। दमस्क, तुर्किस्तान, समरकन्द, बुखारा, कैरो, अलेक्जेन्डरिया इत्यादि साम्राज्य के प्रमुख व्यवसायिक तथा शासन केन्द्र थे। बसरा केन्द्र था—भारत, लंका, तथा पूर्वीय द्वीपों की ओर से जल मार्ग का। एल-मन्सूर थल मार्ग का रक्षक केन्द्र था। समरकन्द और बुखारा चीन की ओर जाने वाले मार्ग पर थे। बगदाद से सीरिया तथा भू-मध्य-सागर एवं कुस्तुन्तुनियापोल तक की सूचना रखते थे। कैरो और अलेक्जेन्डरिया से मिस्र का शासन केन्द्रित था।

सम्पूर्ण सागर[२] इनका आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे—फारस की खाड़ी, हिन्द महासागर, चीन के समुद्र, लालसागर, भूमध्य सागर, कैस्पियन सागर इत्यादि। विश्व के थल मार्ग इनके आधीन हो चुके थे। ऐसा कोई स्थान नहीं रह गया था, जहाँ इनके काफिले जाते न हों। जल, थल एवं सैनिक बल में यह युग के भाग्य-विधाता हो रहे थे, सभ्यता के सत्ताधिकारी।

जल एवं थल व्यापार[३] इनका विश्व-व्यापी था।

विध्वंस का मूलमंत्र लेकर तलवार के आधार पर साम्राज्य स्थापित हुआ था।

किन्तु..?

---

१ "Moslem world-empire extending in the eighth century from Morocco and Spain to the borders of China having absorved a grea part of the ancient empires and still seeing large possibilities of extension, regarded in Southern and Eastern Europe as a constant menance, represented indeed in the early Middle Ages (५०० से १००० ई०) the acme of civilization."

२ "Masters of seas, even as of land, no military and naval supremacy which has ever directed the destinies of the nations was so widespread in its geographical field of enterprise as that of Arabs. The whole world was theirs to explore. Their ships furrowed new paths across the seas even as their काफिला trod out new highways over the land and at the root of all their movements was the commercial instincts of Semite. The might of the sword of Islam but carved the way for the slave-owner and merchant to follow......Muslim ships plied the Persian Gulf, the Indian Ocean, the Chinese Seas, the Red Sea, the Mediterranean, the Caspian and many inland waters."

Prof. Sir Thomas H. Holdich. The Gates of India. पृ० १६१—१६२

बार्न्स द्वारा उद्धृत पृ० २६

३ "It is significant that most of Western European trade was chiefly by Byzantines, Muslims, Syrians and Jews."

बार्न्स, पृ० ३३६

इन अरबवासियों ने मोहम्मद साहब के धर्म का बल लेकर अथवा उस 'एकता' को आधार मान कर जिसके महत्त्व की व्याख्या 'खानदानी-खून' ने की थी—सम्भवतः, अरब की भिन्न-भिन्न जातियों को एक करने के विचार से—मिस्र, मेसोपोटामिया, पैलिस्टाइन को विजय करके ईरान, और कहाँ तक कहा जाये—पूर्व में चीन और पश्चिम में स्पेन तक साम्राज्य स्थापित कर लिया, तो इतिहास की कोई ऐसी अन्होनी घटना नहीं जो किसी के मानहानि का कारण हो और मैंने 'भूतल पर मानव के अभिनव चरण' शब्दों द्वारा अरबवासियों के विश्व के इतिहास के चित्रपट पर आने का संकेत किया है तो उनके स्वभाव की क्रूरता अथवा उग्रता के आधार पर नहीं—न 'सूरत' पर, न 'सीरत[१]' पर बल्कि 'मुसव्वर की क़लम पर'—विश्व के विधान के आधार पर मैंने ऐसा कहा है।

विध्वंस ने स्वस्ति वादन किया है। इन अरबवासियों ने योरुप का क्या उपकार किया है यह 'श्री म्योर[२]' के शब्दों में सुनिये :—

> 'यह इन विद्वानों (बग़दाद के विद्वानों) के परिश्रम के फलस्वरूप था कि योरुप के राष्ट्रों को जो उस समय (अर्थात् मध्य-युग में) अन्धकार से आवृत थे, अपनी उचित, किन्तु बिना उपयोग की हुई तथा भुलाई हुई पैतृक सम्पत्ति—ग्रीक विज्ञान तथा दर्शन की पैतृक सम्पत्ति की उन्हें पुनः सुधि हुई।'

योरुप उस समय अन्धकार—अज्ञान के अंधकार की घोर निद्रा में सो रहा था। 'अरब' ने सूर्य के समान पूर्व की ओर से पश्चिम में—योरुप में प्रकाश फेंका था। योरुप का इसी से भला हुआ। अरब की तलवार विध्वंस लेकर आई थी पर ज्ञान की ज्योति ने जीवन का नूतन सन्देश दिया था—पूर्व और पश्चिम को एक कर दिया था। अरब के उत्कर्ष का काल पूर्व और पश्चिम दोनों के ही लिये मंगल का एक महान साधन बना। योरुप ने इस ऋण को खुले शब्दों में स्वीकार किया है और भारत का ज्ञान-भण्डार भी विश्व के मानव के लिये देश-देशान्तरों को लांघ कर अरब होता हुआ योरुप पहुँचा और मानव का उद्धार किया।

किन्तु पक्षपात पर नहीं, तो परिस्थितियों के वश इस्लाम के नाम पर उन्हें संसार

---

१ 'न तुझसे गरज न सूरत से तेरी।
हम तो मुसव्वर की क़लम देखते हैं॥'

२ 'It was through the labours of these learned men (Certain Scholars of Baghdad) that the nations of Europe then shrouded in the darkness of Middle Ages became again acquinted with their own proper, but unused and forgotten patrimony of Grecion science and philosophy.'

Sir William Muir, *The Annals of Early Caliphate.*

पृ० ४५३

का विभाजन करना पड़ा दो भागों में—'दारुल इस्लाम[१]' और 'दारुल हरब'[२]। एक भाग में इस्लाम की 'शान्ति' होगी, दूसरे में 'युद्ध'—'अशांति'।

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'[३] का अर्थ; आशय आधार, और आदर्श तो केवल इतना है कि यदि व्यक्ति विशेष अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है, तो निश्चय ही वह दूसरों के कर्त्तव्य में बाधा डालता है, क्योंकि एक का कर्त्तव्य दूसरे के कर्त्तव्य से सटा है अथवा उस पर निर्भर है। अपने कर्त्तव्य के पालन में 'मरण' को श्रेय और दूसरे के 'कर्त्तव्य' को 'भय' देने वाला केवल इसलिये कहा गया है कि यदि व्यक्ति विशेष अपने कर्त्तव्य को छोड़ कर दूसरे का कर्त्तव्य करने लगे तो न तो वह अपना ही कर पायेगा और न दूसरे का ही। फल यह होगा कि व्यवस्था भंग हो जावेगी। संसार की व्यवस्था को ही मनुष्य ने अपने शब्दों में 'समाज' कहा है और मनुष्य की दार्शनिकवृत्ति ने 'लोक-संग्रह[४]' कहा है किन्तु मोहम्मद साहब के यह शब्द साक्षी हैं कि उन्होंने संसार का विभाजन 'दारुल इस्लाम' और 'दारुल हरब' में नहीं किया :—

> "वास्तव में मुझे यहूदियों के धर्म पर नहीं भेजा गया है, न ईसाई धर्म पर ही कि वे समाज के सुख का उपभोग न कर सकें, वरन मुझे तो ऐसे धर्म के लिये भेजा गया है जो 'सत्य' की ओर झुकता है।[५]"

और यदि परिस्थितियों के वश वह विभाजन किया गया, तो वे परिस्थितियाँ तो केवल यही थीं कि यहूदी, ईसाई और पारसी धर्मों से 'इस्लाम' घिरा हुआ था। पर यहूदी तथा ईसाईयों को स्पष्ट बता दिया गया था कि 'इस्लाम[६]' 'अब्राहम' का धर्म है। 'अब्राहम' न यहूदी, न ईसाईयों के ही थे, वरन वे मानव जाति के थे। मोहम्मद साहिब का कथन था कि, 'मैं किसी नये धर्म की स्थापना नहीं कर रहा हूँ, प्राचीन धर्म की पुनःस्थापना कर रहा हूँ'। सम्भवतः यह बात वही है जिसको गीता में 'धर्म-संस्थापन'[७] कहा है। और सत्य भी यही है–वह ईश्वर किसी धर्म-विशेष का नहीं। यदि तालमुड[८] (Talmud), बायबिल(Bible),कुरान,[९] अवस्ता[१०] (Avesta) और गीता आदि उस 'एक' की व्याख्या अपने-अपने ढंग, अपनी-अपनी भाषा में करें और 'मानव' उसके समझने में असफल रहे और परस्पर के युद्ध का एक कारण बने, तो वह केवल उसकी बुद्धि एवं वृत्ति का युद्ध होगा—उसके मानस (विश्वास), उसके धर्म और धर्मद्वारा निर्देशित 'कर्त्तव्य' का नहीं। सम्भवतः बुद्धि और वृत्ति के किसी ऐसी ही युद्ध को देख कर 'कबीर' ने कहा था:—

> **"आपन मन निश्चल नहीं, और बँधावत धीर।"**
>
> —कबीर।

---

१ "Where Islam reigns supreme." २ Abode of war. ३ गीता ३।३५, ४ गीता ३।२० 'लोक-संग्रह' को देखते हुए भी तू कर्म करने के ही योग्य है।'

५ "Verily I have not been sent on the Jewish religion, nor the Christian, to quit the delights of society ; but I have been sent on the religion inclining to truth." *Cited by Barnes.*

पर यदि इस्लाम को 'विश्वास' चाहिये था—'ईमान', तो अरब की मरुभूमि को 'कर'[१]। और ठीक इसी प्रकार ईसाई धर्म (Cristianity) को 'विश्वास' चाहिये था—'Faith' तो क्रिश्चियन योरुप को 'कर[२]'। यदि इस्लाम ने रंग डाला अनेक जातियों को, अनेक देशों को, तो ईसाई धर्म ने 'जर्मन' (German), ऐंग्लस (Angles), सैक्ज़न (Saxons), जूट (Jute), नार्दम्ब्रिया (Northumbria), केल्टस (Celts), स्लेव्ज (Slavs) इत्यादि को अथवा यों कहिये 'समस्त योरुप' को ईसाई बना डाला। यहूदियों से 'कर' उघाया अन्यथा उनको योरुप में रहने के लिये कोई स्थान[३] नहीं था। इस प्रकार काम दोनों—ईसाईयों तथा यवनों—ने एक ही किया, किन्तु भिन्न भिन्न ढंग से। इस्लाम ने जो काम 'तलवार' की धार से किया था वही काम ईसाई

नोट—कुरान २२ वर्ष (६०६—६३१) ई० में श्रुति रूप प्रकट हुआ था—खजूर की पत्तियों पर से, सफेद पत्थरों पर से और स्मृतियों से। सब से प्रथम ६३४ में अबूबकर द्वारा और फिर ६५० में खलीफा उसमान द्वारा 'कुरान' का संग्रह हुआ है। यही वर्तमान कुरान है। —ले०

१ "The Arabs offered the conquered, it is said, the choice of कुरान or तलवार। The truth is that Arabians did not exterminate Christians. They merely exacted a special tribute from them, the followers of Mohammed being exempt from this tax."

लूकस, पृ० २८७

२ "...But the Jews (यहूदीगण)were also placed under the guardianship of rulers (of the town of Italy, Germany, Poland, Bohemia) in-return for a regular tax. (The fact is) ... Jews were not regarded as constituting an integral part of medieval society. Constantly exposed to public hostility, they were required by law to live in segregated districts called ghettos. Such Jewish quarters were a regular feature of the towns of Italy, Germany, Poland. Bohemia and other countries."

वही पृ० ३६४

३ "Society was first of all Christian, and men and women viewed the relations of the life from the point of view of the Christian faith. Convinced of the truth of their religion and believing that the Jews had crucified Jesus medieval Christians viewed them generally with aversion and often with positive hatred . . . The excited populace during the Black Death in 1348 caused numbers of Jews to be burned alive."

लूकस, पृ० ३६३।३६४

धर्म ने 'कानून' [१] से। इन दोनों में इस अन्तर का कारण केवल एक ही था—योरुप अब तक 'मिस्र' से लेकर 'रोम' तक के अनेक साम्राज्यों को बनते-बिगड़ते देख चुका था और अरब ने केवल 'तलवार' देखी थी और वह भी परस्पर की। किन्तु धर्म 'विश्वास' की वस्तु है, 'कानून' और 'तलवार' के आधीन नहीं। प्रत्येक धर्म का—चाहे वह ईसाई धर्म हो, चाहे यवन धर्म (इस्लाम), चाहे यहूदियों का अथवा इसी प्रकार अन्य जातियों का धर्म–पर आधार उसका 'सत्य' रहा है। कानून और तलवार किसी भी धर्म के आधार बन कर नहीं आये थे, न आयेंगे। इस्लाम की तलवार 'धर्म' के लिये नहीं, 'भूमि' के लिये उठी थी–'सत्ता' (Existence) के लिये। उस युग में इस्लाम 'कारण' (Reasons) के आधार पर अपनी सत्ता (Existence) नहीं स्थापित कर सकता था इसीलिये उसने 'कार्य्य' (Action) को अपनाया था। घटनायें घट रहीं थीं—स्वतः ही, इतिहास की रेखायें बन रहीं थीं—स्वतः ही।

'मोहम्मद साहब', 'खलीफ़ा', 'अरब', 'इस्लाम', और 'इस्लाम का विस्तार', 'तलवार', और 'अश्व'–यही इन अरबवासियों के इतिहास के विषय थे। 'काव्य' और 'प्रेम-गाथायें' उनके हृदय की मधुज्वाल तृप्त करतीं थीं। पारस्परिक वैमनस्यता के कारण "बिल कैफ़'–'बिना पूछे', कैसे ?–की उत्पत्ति हुई थी। खलीफ़ाओं की आज्ञाओं को 'बिल कैफ़' मानना–पड़ता था। हुक्म बजा लाना पड़ेगा–जैसे भी हो। 'जिहाद' का शाब्दिक अर्थ ही 'संघर्ष' था।

इस 'प्रकार' कारणसहित जिज्ञासा ने उनके 'दर्शन' में यदि सूक्ष्म आत्मा की गम्भीर व्याख्या [२] नहीं की, तो 'कार्य्ययुक्त' (Active, Dynamic) 'पुरुष' की व्याख्या निश्चय की। उनका धर्म संसार को छोड़ कर 'खेरा' [३] अथवा 'मसजिदों' में बैठ कर पूजन का उपदेश नहीं करता था, वरन सदैव ही संसार में रह कर संघर्ष से भिड़ने का उपदेश देता था और यह युग की प्रेरणा थी। ग्रीक युग के साथ-साथ 'दर्शन' (Philosophy) का युग योरुप में समाप्त हो चुका था और उधर भारत में आर्य्यों के युग के 'समाप्ति' के साथ 'दर्शन' का युग समाप्त हो चुका था। अरब के इस युग से लगभग २०० वर्ष पूर्व भारत में गुप्तकाल में 'भाष्य' और 'टीकाओं' का युग आ चुका

---

१ "By the time of the Emperor Theodosius death in 395, all Romans had been made Christian by law; every other form of religion was declared illegal . . . Although the church successfully conquered opposing cults such as those of Mithras (फ़ारसवासियों का धर्म), Isis (मिस्र-वासियों का धर्म), Cybele, (मेसोपोटामियावालों का धर्म) and the gods of Greece Rome, it could not eradicate all ancient superstitions; magic was still prevalent."

वही, पृ ३०२

नोट—'still' शब्द का अर्थ यहाँ 'मध्य-युग' का है।—ले०

२ *Islam has little metaphysics.*

था। सम्भवतः यही सब कारण है कि अरब के दर्शन और साहित्य क्षेत्र में 'अनुवाद'[१] का युग आया था—और अफलातून, अरस्तु, गैलिन, उकलैदस (Euclid) तथा ग्रीक भाषा के सम्पूर्ण ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद कर डाला गया। इन अनुवादों के लिये इनके पास एक उपयुक्त[२] भाषा भी थी।

इसके पश्चात् 'मौलिकता[३]' का युग आया। अल-अस्मी ने 'अन्तर' की प्रेमगाथायें लिखीं। अल-गाज़िब एक बड़ा ही धर्मोपदेशक था। अल-जाहिज (मृ० ८६९ ई०) ने 'ईमान' पर अपनी लेखनी उठाई। 'किताब-अल-अग़ानी' ने 'ज्ञान', 'प्रेम', 'युद्ध' और सम्भवतः 'दुःखवाद' की व्याख्या की। इब्न-रुशद ने 'अरस्तू' पर भाष्य लिखा। 'फिरदौसी' का शाहनामा और 'उमर' की 'रुबाइयों' पर भी दृष्टि गई। 'इब्न-सीना' ने वैद्यक पर व्याख्यायें लिखीं। 'मौलाकात' वे कवितायें हैं जो मक्के शरीफ में टंगी हैं। और तुलसी के समान 'भगवन्नाम' की व्याख्या जिन पंक्तियों में की गई है—अल्लाह के ९९ और

---

१ "When Baghdad became a great city after 762, court physicians and scholars gathered there and translated Greek medical, scientific and philosophical works, particularly, of Galen, Ptolemy and Aristotle. At the same time, the Hindu works on mathematics were brought in and rendered into Arabic. "The great era of translation fell between 762 and 900 A. D......After this the Muslims did much original work in the way of elaborating this borrowed and translated information.''

बार्न्स, पृ० २६६

बार्न्स का कथन है कि अरबवासियों ने निम्नलिखित रचनाओं का अनुवाद किया :—

Plato, Aristotle, Neo-Platonic works, Euclid, Archimedes, Ptolemy, Apollonius, Galen, and other Hellenic and Hellenisti writings were paraphrased and translated. वही पृ० २६६

2 The Arabic language did no less miraculous work than the Arabic armies......The wonderful language of the desert adopted itself with incredible suppleness as an instrument for treating the most intricate theological, jurisprudential and philosophical problems, universal history, geography, ethnography, grammar and poetry with the utmost precision and grace."

Islam and Race Problem. By C. H. Snouck Hurgronja

Moslem World of Today. पृ० ८५ पर उद्धृत।

२—हिन्दी साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३

३—देखिए:—लेखक का अरबी फारसी साहित्य का इतिहास

मोहम्मद साहब के २०१ नामों[1] के जप का जिनमें आदेश है और नाम का महत्व—उन पंक्तियों की अन्तिम पंक्ति यह है:—

'और यह हमारे मोहम्मद साहब, यह हमारे प्रभू हैं'[2]

नालन्दा, तक्षशिला और वल्लभी के विश्वविद्यालयों के समान अरब में बग़दाद, मिस्र में कैरो (Cairo) और यवन स्पेन में कारडोवा (Cordova) में इनके विश्वविद्यालय थे।

धर्म के समान इनकी 'कला' अनेक देशों की कला पर आधारित थी। बग़दाद, इस्फाहन, तबरीज़, शिराज़, कैरो, फेज़, कारडोवा, टोलेडो, और ग्राडा, (ईरान, मिस्र, सीरिया, स्पेन इत्यादि में) इनके प्रमुख नगर थे जिनमें इनकी कला का सौन्दर्य बिखरा हुआ था पर केन्द्रित था—मसजिद के कला-सौन्दर्य में। इस 'दर्शन', 'साहित्य' और 'कला' की अद्भुत उन्नति का कारण इनका व्यापार था जो जल एवं थल-व्यापी था।

———

१ "I pray to Thee by the power of Thy guarded secret Names which none of Thy creatures know."

Some Types of Literature in the World Isolam.

By Constance E. Pudwick

२ "And this Our Mohammed, He is our Lord."

एशिया का विस्तार—शक्ति पर शक्ति का प्रहार

(१०००...............................१७०७ ई०)

मानव शक्ति का मूक प्रहसन

वामन के विक्रम ने बसुधा को तीन डगों में नाप लिया था। वह बसुधा केवल तीन डगों की है—उर्वरा, मरुभूमि और विश्व की वृक्षरहित-समतल-भूमि। सागर और पर्वत पृथ्वी की रक्षा करते ही रह गये। विश्व की वन-भूमि कृषि के योग्य बना ली गई। हिममंडित टुन्ड्रा हिमवासियों के लिये छोड़ दिया गया—अणु-शक्ति के रण कौशल के लिये विश्व-भूमि का भावी रणक्षेत्र बना कर छोड़ दिया गया। विश्व का अन्तिम युद्ध वहीं होगा। एक ओर अणु की उष्णता होगी, दूसरी ओर टुन्ड्रा के हिम की शीतलता। और वहीं होगा मानव की शक्ति का मूक प्रहसन। यह मेरी कल्पना नहीं है न भविष्य-वाणी है—ठन्डे और गर्म दिल की कहानी है।

उर्वरा 'स्वर्ग' और 'मोक्ष' की साधन बन गई, मरुभूमि भूक और प्यास से तड़प-तड़प कर मरने वालों की कहानी बन गई और विश्व की वृक्षरहित-समतल-भूमि जीने-वालों की मौत बन गई।

विश्व की वृक्षरहित-भूमि जिसे अंग्रेजी में स्टेप्स (Steppes) कहते हैं योरुप और एशिया का वह भाग था जो राहिन और डानवे से दक्षिणी योरुप और मध्य एशिया होता हुआ अल्ताई पर्वतों तक निकल गया था। दक्षिण की ओर काले सागर, कैस्पियन सागर, काकेशस, हिन्दूकुश, पामीर के प्लेटू तथा शिनशान और अल्ताई पर्वत को स्पर्श करता था। यह भाग लम्बाई में ३००० मील के लगभग था। तुर्क और मंगोल इसी क्षेत्र के निवासी थे।

चीन के इतिहास की रूप-रेखाओं में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वहाँ का स्वर्ण-युग बर्बर जातियों के आक्रमण द्वारा समाप्त हुआ था। और लगभग १२७६ ई० के पश्चात् सम्पूर्ण चीन[१] देश पर मंगोलिया का आधिपत्य हो गया था। योरुप के इतिहास में इस मंगोल देश के निवासी को 'तुर्क' अथवा 'तातर' कहा गया है। यह 'तुर्क' अथवा 'तातर' भी 'भूखे' थे। इन्हें भी हरित-भूमि वाला प्रदेश न कोई स्थान देता था और न कोई धर्म शरण ही देता था। फल यह हुआ इन्होंने 'हरितभूमि' को तलवार के बल पर लेने की ठानी और धर्मों में यवन-धर्म स्वीकार कर लिया सहर्ष। चंगेज खाँ ने यवन धर्म स्वीकार नहीं किया था।

फिर 'अरब' और 'तुर्कों' के मेल[२] ने विश्व के भाग्य का निर्णय किया। इस्लाम पर तुर्क हावी हुआ। चीन, तुर्किस्तान, खुरासान, काश्गार, समरकन्द, बलख-बुखारा, काबुल, बिलोचिस्तान, रूस, भारत, योरुप में रोम, स्पेन, आस्ट्रीया, अरब में बग़दाद,

---

१ देखिये :—टि० १ पृ० ७७

२ "It was the Arabs who dominated politically during the age of expansion and conquest down to about middle of the 11th century... In the middle of 11th century the Arabic ascendancy was supplanted by that of Mongol or Tatar people, the Turks." बार्न्स पृ० २६३

फारस, सीरिया, मेसीपोटामिया और मिस्र—इन सबों ने इस विश्व-विप्लव को देखा, किसी ने रोकर, किसी ने हंसकर।

फारस के प्लेटू को लेकर, दजला और फरात की घाटी की ओर यह तुर्क लोग बढ़े और इसके लेने के पश्चात् १०५५ में बगदाद ले लिया। ई० १०७१ में बाइज़ेन्टायन साम्राज्य को ध्वस्त कर डाला। ई०१०७५ में सीरिया, पैलिस्टायन तथा जेरुसलम पर अपना आधिपत्य जमा लिया। तुर्कों द्वारा पैलिस्टायन तथा जेरुसलम के लिये जाने पर योरुप मे धर्म-युद्ध छिड़ गये। प्रथम धर्म-युद्ध १०६६ में छिड़ा और १००० ई० में योरुपवालों ने पैलिस्टायन तथा जेरुसलम तुर्कों से छीन लिये। इडीसा (Edessa) तथा ट्रीपोली (Tripoli) भी ले लिये, किन्तु तुर्कों के आक्रमण समाप्त नहीं हुये। ई० ११४४ में उन्होंने इडीसा योरुपवालों के हाथ से पुनः छीन लिया और फल यह हुआ कि ११४७ ई० में द्वितीय धर्म-युद्ध आरम्भ हो गया। यह केवल दो वर्ष चला किन्तु विफल रहा। तीसरा धर्म-युद्ध ११८६ में आरम्भ हुआ। जर्मनी, इंगलैन्ड, फ्रान्स—यह तीनों ही पैलिस्टायन लेने के लिये उद्धत हुये पर परस्पर ही झगड़ बैठे। तीसरा धर्म-युद्ध भी विफल हो गया। चौथा धर्म-युद्ध १२०२ ई० में आरम्भ हुआ पर अभाग्यवश १२०६ ई० में चंगेजखाँ रण-भूमि में उतर पड़ा। उसने और उसके वंशजो ने रूस, योरुप और एशिया को झकझोड़ डाला। ई० १२१४ ई० में उत्तर चीन साम्राज्य पर आक्रमण किया और पेकिंग ले लिया। तुर्किस्तान, खीवा, समरकन्द, बुखारा, मर्व, निशापुर, अफगानिस्तान, गज़नी, हिरात, पेशावर और भारत का सिन्ध इसकी झपट में आ गया। सिन्ध लिया नहीं था, उसमे-से होकर निकल गया था।

उसके परपौत्र बाटू, हलाकू, मंगू और कुबले खाँ ने विध्वंस और विनाश को सजीव कर डाला। बाटू (मृ० १२५५ ई०) ने रूस, पोलैन्ड, हंगरी को ध्वस्त कर डाला, मंगू ने सीरिया, फारस, बगदाद, और तिब्बत को ले लिया और अपने भाई कुबलेखाँ को चीन का गवर्नर नियुक्त कर दिया। ई० १२६४ में कुबले खाँ की मृत्यु हो गई। और इसके ठीक ७५ वर्ष पश्चात् १३६६ ई० में तैमूरलंग समरकंद का शासक बना। तुर्किस्तान और खुरासान लेकर यह फारस की ओर मुडा। फारस में तो ७००० सिर मुंडों की एक बुर्ज खड़ी कर दी। वह फारस लेने के पश्चात् भारत में १३६८ में आया। देहली में केवल १५ दिन रहा। पर रात-दिन देहली में अग्नि वर्षा होती रही। लूट चलती रही। ओटोमन तुर्कों को परास्त किया। तैमूर का राज्य देहली से सायबेरिया और चीन से सीरिया तक था। और १४०५ ई० में यह भी मृत्यु को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार १०५० ई० से १४०५ ई० तक अनेक बवन्डर उठे, विप्लव आये। भय और आतंक छाता रहा। तलवारें खिचतीं रहीं। चर्च[१] और मन्दिर मसजिदें बनते रहे। जेरुसलम[२] और कुस्तुनतुनियाँपोल से निर्दयता के समाचार आते रहे। 'चार्लेमैगने' और

१ 'Churches were destroyed or turned into mosques.'

२ 'The land which, as the Scripture says, is flowing with milk and honey, God gave it to the children of Israel. Jerusalem is the best of all lands more fruitful than all others as it were a second Paradise of delights.' *A Source Book for Mediaeval History* पृ० ५१८-५२१

'लुइज'की वीरता और यश के वर्णन से वीरों को उत्तेजित किया गया,उनकी कसमें दिलाई गईं। एक एक[१] लाख में १६ बचे। नारियों पर यवनों द्वारा किये हुये अत्याचारों से पुरुष त्राहि-त्राहि कर उठा। किन्तु रक्त से पृथ्वी तृप्त न हुई, 'स्व' और 'स्वार्थ' से मनुष्य का पेट भरा नहीं। और माना विश्व-विधान भी नहीं। उर्वरा, मरु और वृक्ष-रहित-समतल-भूमि और उनका 'मानव' एक-हो-कर रहा।

ई० १४५३ में कुस्तुनतुनिया भी तुर्कों के हाथ लगी।

पर,

'मन की मन ही माहिं रही'

—गुरु नानक

वह 'मन की मन' में क्या थी? बाईजैन्टाइन (Byzantine Church) चर्च केवल अपने चर्च और साम्राज्य को यवनों के हाथ से बचाये रखना चाहता था। रोमन चर्च (Roman Church) अपनी शक्ति की वृद्धि चाहता था। लार्ड्स चाहते थे—'धन' और 'भूमि।' तुर्क चाहते थे—'भौतिक सत्ता'। किन्तु 'भ्रम' ने सब गड़बड़ा दिया। वह 'भ्रम' क्या था?—यह इतिहासकार बार्न्स के शब्दों[२] में पढ़िये :—

भावार्थ :—

> ई० १०६५ के पश्चात् क्रुजेडस (Crusades) के समय पर वास्तव में यवनों ने ईसाईयों को न भय ही दिखलाया था, न चुनौती ही दी थी। मूलतः ईसाईयों की ही ओर से आक्रमण आरम्भ हुआ। उस समय ऐसा विश्वास किया जाता था कि अरबवालों का व्यवहार ईसाईयों के साथ अच्छा था पर तुर्कों का व्यवहार कठोर था। पर यह आरोप आधार रहित था। वास्तव में क्रुजेडस के पूर्व तुर्कों का व्यवहार ईसाईयों के साथ इतना सुन्दर था कि बहुत से ईसाई लोग बाईजैन्टाइन साम्राज्य के अन्तर्गत ग्रीक ईसाईयों के चर्च द्वारा शासित स्थानों को छोड़कर स्वतः ही अपने मन से तुर्कों की भूमि में बसने को चले गये थे।

---

१ 'Of the 100000 said to be living in Herat, it was stated that only 16 escaped the sword.'   लूकस पृ० ३६२

२ "At the time of the Crusades after 1095, (प्रथम क्रुजेड १०९६ ई०में हुआ था) the Moslems did not actually threaten or challenge the Christians. The aggressiveness then came almost exclusively from the Christians. It used to be believed that the Saracens (अरबवाले) treated the Christians well and that the Seljuk Turks dealt very harshly with them. There seems little basis for this charge. In fact, so well did the Turks treat the Christians on the eve of the Crusades that many Christians went voluntarily to live in Turkish lands in preference to life in the areas controlled by the Greek Christian Church within the Byzantine Empire."

A Survey Of Western Civilization By H. E. Barnes.   पृ० २७४

धर्म-विशेष की ओट लेकर योरुप में आठ धर्म-युद्ध 'Crusades'[१] हुये। फल यह हुआ कि बाईजैन्टाइन साम्राज्य बच[२] नहीं सका। कुस्तुन्तुनियापोल को स्वयं धर्म-रक्षकों (Crusaders) ने ही लूट लिया। रोमन चर्च की शक्ति को धक्का[३] लगा। लार्डस को धन और भूमि नहीं मिली। ग्यारहवी शताब्दी में फ्रांस में तो मनुष्य का मूल्य अश्व[४] से भी कम हो गया था। इतिहासकार बताता है कि पश्चिमी दुनियाँ की भौतिकसत्ता की तुलना में अपनी भौतिक सत्ता क्रे प्रभुत्व को स्थापित करने में यवन (तुर्क) असफल[५] रहे।

और कुस्तुन्तुनियापोल के साथ-साथ अथवा अमेरीका की खोज १४६२ ई० के साथ-साथ विश्व के इतिहास का मध्य-युग 'Middle Ages' भी समाप्त होता है—एक नवीन[६] युग की घोषणा करके :—

'हरि को ऐसोई सब खेल।'[७]

—हरिदास

इस प्रकार यह स्पष्ट हो चुका है कि अरब-यवन तथा तुर्कों के मेल से उस युग के विश्व के भाग्य का निर्णय हुआ था। तुर्कों द्वारा बगदाद लिये जाने पर अरब-यवन शक्ति विनाश हो गई थी। किन्तु अरब यवन, तुर्क और तातर—मह सब मिलकर भी योरुप पर यद्यपि अपनी विजय पताका न फहरा पाये तथापि वे सब उस युग के निर्माण की ओर बढ़े

---

१ "The crusades have been regarded primarily as holy wars, but actually they were much more complex in character. They were also in part feudal forays, commercial and colonizing expeditions and a phase of the long struggle between eastern and western peoples."

Prof. Munro, बार्न्स, द्वारा उद्धत पृ० २७४

२ "The Turks captured Constantinopole in 1453and took over the eastern Christian Empire." बार्न्स, पृ० २७

३ 'The political power of Popes faded away.' वही, पृ० ३७८

४ 'In the eleventh century a French peasant was valued at 38 sous, while a horse was worth 100 sous.'

नोट :—Sous=फ्रांस का सिक्का, 'फ्रैंक' का १/२० भाग

Man's Worldly Goods By Leo Huberman. पृ० ८

५ 'Despite the remarkable achievements of the Muslems during the Middle Ages, they subsequently failed to keep up in material progress with the Christian civilization of the West.'' बार्न्स, पृ० २७६

६ "The Third World Revolution.' वही, पृ० ३८८

७ "हरि को ऐसोई सब खेल।
मृगतृष्णा जग व्याप रही है कहूँ बिजोरो न बेल।।"

—हरिदास

जिसे मैंने 'सम्प्रीति युग' कहा है। इतिहासकार के यह शब्द,[१] सम्भवतः, यौरुप की भावनाओं को स्पष्ट कर सकें :—

भावार्थः—

यवनों के प्रति विद्वेष की भावनाओं से प्रेरित हो और पूर्वी रोम साम्राज्य के ईसाईयों के प्रति तथा उनके प्रति जो अरमीनिया के निवासी थे बड़ी ही श्रद्धा लेकर धर्म-युद्ध के बीरों ने धर्म-युद्ध आरम्भ किये थे, किन्तु उनके हृदयों में एक महान् अन्तर आ गया। वे बाइजैन्टायन के ग्रीक निवासियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे क्यों कि उन्होंने धर्म के नाम पर उन्हें धोका दिया था। अरमीनिया तथा लैवन्टायन की जातियों के प्रति भी उनकी श्रद्धा जाती रही और वे अपने 'शत्रुओं' के गुणों की प्रशंसा करने लगे क्योंकि वे उदार एवं पक्षपात रहित शत्रु थे।

सत्य यह था कि ग्रीक, अरमीनिया तथा लैवन्टायन जातियाँ तो यौरुप मे धर्म-युद्धों में लड़ने गईं थीं—धन के लिये, धर्म के लिये नहीं।

किन्तु तुर्कों के भय[२] से योरुप १६८३ ई० तक मुक्त नहीं हुआ।

इस प्रकार जाति के आधार पर नहीं, गुणों के आधार पर मानव का मूल्यांकन हुआ है। इतिहास का वह विपल्व 'सम्प्रीति' बनकर रह गया। 'यवनों' और 'तुर्कों' के पास भी हरित-भूमि हो गई। उन्होंने भी धन देख लिया, धर्म अपना लिया। शील उनमें भी आ गया। वे भी मनुष्य को पहिचानने लगे।

---

१ "The Crusaders who had begun their warfare with deep hatred for the Mohammedans and great love for the Christian people of the eastern Empire and Armenia, suffered a complete change of heart. They began to despise the Greeks of Byzantian and all other Laventine races, and they began to appreciate virtues of their enemies who proved to be generous and fair opponents."

A Story Of Mankind. By Hendrik van Loon, पृ० १२६

२ "These defeats of (Moslems) removed the last threat of a Turkish conquest of Europe.'   लूकस पृ० २६७

मानव के कीर्त्तिस्तम्भों में :--

भारत का गौरवशाली गढ़ चित्तौड़

(७२८ ई०[1]............१७४६ ई०[2])

'भारत भू पै अब कहां बै बाकें रजपूत'

--(वियोगी हरि—वीर-सतसई, पृ० ८५)

[यह[3] 'तुर्क' और 'तातर', 'एराकी', 'अरब्बी', 'काबिलय' (काबुल के निवासी) 'बल्लोच', 'खुरासान', 'मुलतान', 'खन्धार', 'मीर' और 'बलख-बुखारा', यह 'तेग', 'अरबी पट्टी', और यह 'तुरक्की कम्मान' (कमान) और 'तुरंग' (अश्व)—यह सब मिलकर भूमि से बलिदान मांगने को चले थे। पर भूमि ने किसी देश, जाति अथवा काल-विशेष के पुरुष को अपने को नहीं सौंप दिया, वरन उसे अपनी 'मिलिकियत' बनाकर रक्खा। पुरुष सदैव ही भूमि की 'मिलकियत' बन कर रहा हैं, भूमि पुरुष की नहीं। जिस भूमि को पुरुष जीवन भर अपनी बताता रहा है अन्त में वह उसी में मिल जाता है। यही कुछ देखकर 'कबीर' ने कहा था :—]

'कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेउ बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय॥'

—कबीर

और इतने पर भी यदि पुरुष अपने 'कर्त्तव्य' पर मान करे, तो करे।

ह्वीलर[4] महोदय ने अपने इतिहास में एक तत्त्व इस प्रकार दिया है:-

"Rajput Kingdoms still remain as the *relics* of the old Aryan Aristocracy."

अर्थात्, राजपूत राज्य आज भी प्राचीन आर्य्य शिष्टजन राज्य के स्मारक के रूप में हैं।

---

१ ई० ७२८ में बापा रावल ने 'मोरी' के राजपूतों से 'चित्तौड़' लिया था।—ले०

२ ई० १७०७ में औरङ्गजेब की मृत्यु हुई थी। १६१५ में अंग्रेज 'सूरत' ले चुके थे, १६३६ में 'मदरास', १६६२ में 'बम्बई', १६६० में 'कलकत्ता' और इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् यवनों से भारत की सत्ता अंग्रेजों के हाथ निकलने लगी। ई० १७४६ में मुगल वंश के अन्तिम शासक मोहम्मद शाह की मृत्यु हो गई। राजपूत और यवनकाल में विशेष रूप से और अंग्रेजों के काल में साधारण रूप से 'चित्तौड़' राजपूतों का स्वाभिमान रहा है। आज भी है।—ले०

३ देखिये 'पृथ्वीराज-रासो'

४ *History Of India* By J. Talboys Wheeler. पृ० ३२७

इन शब्दों में से 'Old Aryan Aristocracy' से ह्वीलर महोदय का क्या आशय अथवा अर्थ था—यह तो ह्वीलर महोदय जाने अथावा वे विद्वजन जो इतिहास के पंडित हों। पर 'Old Aryan Aristocracy' अर्थात्,'प्राचीन आर्य्य-शिष्ट-जनता' की व्याख्या उपनिषदों ने की है। माण्डूक्योपनिषद् के शान्ति पाठ के अन्तर्गत शब्द 'देवहितं यदायु' आये हैं। इसका अर्थ है, 'हम लोग देवताओं के लिये हितकर आयु का भोग करें।' देवताओं से आशय 'इन्द्र', 'वरुण', 'मारुत', अथवा अन्य देवताओं इत्यादि का हो, तो हो, किन्तु स्पष्ट अर्थ तो यही है कि देवता केवल 'स्वर्ग', 'अलकापुरी' अथवा 'रम्भापुरी' में ही नहीं रहते हैं। वे इस पृथ्वी पर ही रहते थे, हैं और रहेंगे। पृथ्वी पर के देवताओं को 'मानव' कहते हैं। आर्य्यों का जीवन सदैव ही 'परहित' के लिये होता था। यही भावना 'कृष्णार्पण' बन कर आई। यही अर्थ 'देवहितं' का है।

[किसी राजपूत ने कभी भी किसी निहत्थे पर अपनी तलवार नहीं उठाई। एक तलवार उसे पहले दे दी होगी तब अपनी तलवार उठाकर उसे युद्ध के लिये आमंत्रित किया होगा। शरण में आये को कभी किसी भी दशा में हतोत्साहित नहीं किया। उसकी लज्जा ही रक्खी होगी। शील और संकोचवश कितने बार उन्हें कष्ट झेलने पड़े? कितने बार नव-वधुओं ने अपने माथे का सिंदूर मिटा लिया था।]-'स्मारक' (*relics*) शब्द का प्रयोग करने का तात्पर्य ह्वीलर का, सम्भवतः, यही था।

राजपूतों की उत्पत्ति[१] के विषय में इतिहास की अनेक धारणायें हैं। किन्तु मेवाड़,

१ "During the periods preceding and following the supremacy of the first and the last Gupta Dynasty, many foreign races like the शक, the पह्लव and the हूण had come to India, settled in the country and merged in the older population, having adopted the manners, customs, and religion of their Hindu neighbours. These Hindunised foreigners formed a new race in which the warlike qualities of the sturdy peoples of Central Asia were united with their devotion to and pride in the Hindu religion and traditions. The chiefs of these new races claimed their descent from the old Hindu gods, the Sun and the Moon and Agni. The chiefs and their followers called themselves 'राजपूत'।" *Early History of India.* By N. N. Ghosh पृ० ३२८

राजपूताना के विषय में:—

"राजस्थान में कोई छोटा सा भी राज्य ऐसा नहीं है कि जिसमें थर्मोपोली जैसी रण-भूमि न हो और कदाचित ही कोई ऐसा नगर मिले जहाँ लियोनिडास जैसा वीर पुरुष पैदा न हुआ हो।" —कर्नल टाड

"Rajputana, says Edwin Arnold, is measurelessly old. The blue-blood of Europe is but of yesterday compared with that of haughty families of this Region.'

History of Sirohi Raj. (*Preface*) By Sita Ram

मारवाड़, जैयपुर, चित्तौड़ (पीछे से उदयपुर), जोधपुर, अम्बेर, बीकानेर, किशनगढ़, जैसलमेर, कोटा, बूंदी, मथुरा, कन्नौज, अछलदा, महोबा, काल्पी, अयोध्या, मालवा, बुन्देलखंड, सिरोही, अन्हलवाड़ा (गुजरात), देहली और लाहौर के भग्नावशेष नहीं, वहाँ के 'रजकरण' अपनी उत्पत्ति बताते हैं—चिताओं की क्षार से। और यह चितायें उनकी थीं जिनके गर्भ से राजपूत उत्पन्न हुये थे। और···वे जलीं थी···केवल 'नारी' के गौरव के लिये, अपने लिये नहीं। 'नारी के गौरव' से मेरा आशय 'नारीत्व' से है—नारी किसी भी देश की हो। नारी के गौरव के विषय में इतिहास स्पष्ट बताता है—१८वीं शताब्दी तक पुरुष द्वारा वह शासित रही है। किन्तु नारी के गौरव के प्रति केवल भारत सदैव ही सचेत रहा है। पाश्चात् सभ्यता के इतिहास में—'नारी शासित रही है'—यह बार्न्स के शब्दों[1] में सुनिये :—

> पुरातन अथवा प्राचीन समाज में सामाजिक सम्बन्धों तथा उद्योगिक कार्यों में नारी बहुधा एक मुख्य स्थान ग्रहण किये हुई थी·········
> किन्तु इतिहास के उदय-काल से औद्योगिक क्रान्ति तक सभ्यता पर आदि शासन पुरुष का रहा—'*male-dominated.*'

[भारत की वीरांगनाओं ने यवनों के हाथों से अपनी लज्जा रखने के लिये नहीं, विश्व की नारी की लज्जा रखने के लिये जौहर के शाका बोले थे। ई० १५३४ में गुजरात के बादशाह सुल्तान बहादुर ने चित्तौड़ पर जब आक्रमण किया था तो १३००० वीरांगनाओं ने जौहर किया था। राजस्थान के इतिहास में यह दूसरा 'शाका' कहलाता है।]

यदि योरुप का लार्ड (Knight) योरुप से यवनों के बहिष्कार में सफल हुआ, भारत का राजपूत भारत से यवनों के बहिष्कार में असफल,[2] तो यह 'लार्ड' और 'राजपूत' की 'जय' और 'पराजय' नहीं थी। भारत का राजपूत असफल हुआ था इसलिये नहीं कि

---

१ "In primitive society women often occupied a very prominent position in both social relationships and industrial operations, even though there were few, if any, examples of the matriarchate that early anthropologists once believed to exist. But from the so-called dawn of history down to the Industrial Revolution civilization was *male-dominated.*' बार्न्स पृ० ६५१

२ तु० 'The comparision between the Europan History and Indian History from ancient times through successive stages had enabled us to have a better grasp of the course of events in India......In Europe the Christian barrons saved their independence, and ultimately expelled the Moslems from Spain and Austria. In India the Rajputs fought and fell and the Hindus have no modern history from the 12th Century......Since then the history of Europe is one of independence, progress and civilization ; that of India is one of foreign subjugation and consequent degradation and decline.' दत्त पृ० १५१।१५२

'यवनों' की शक्ति अभेद्य थी, कि राजपूत घरेलू षड्यन्त्रों में खोखले हो चुके थे अथवा हो गये थे, कि उन्हें धर्म का आश्रय नहीं था, कि उनके पूर्व जन्म के कर्म ऐसे-ही थे, कि उनका विधाता सो रहा था, कि वे हतभाग्य थे, कि उन्हें अपनी जन्म-भूमि प्यारी नहीं थी, कि वे शीस देना नहीं जानते थे..............?

'शीस देना'... ...'वीरता' और 'प्रेम'—दोनों का आधार शीस देना है। वीरगति को प्राप्त होता है वह जिसे अपने प्राणों का मोह नहीं होता है, वह जो सदैव ही शीस देने पर उतारु रहता है। प्रेम का भी आधार यही है :—

"प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे, शीस दे लै जाय॥"

—कबीर

किन्तु यह 'शीस' देना भी हो तो 'निष्काम भावना' से—'अर्थ' के लिये नहीं, 'धर्म' के लिये नहीं, 'काम' के लिये नहीं, 'मोक्ष' के लिये नहीं, और न स्वार्थ, न परमार्थ के लिये, यश और मान के लिये नहीं। यह शीस देना हो जय और पराजय के अस्तित्व को मानकर पृथ्वी के भोग (उपयोग) के लिये—'वीर भोग्या बसुन्धरा'। यह शीस देना हो—'जग' और 'जीवन' के लिये। सम्भवतः इसी को गीता में 'समत्व योग[१]' कहा गया है। और सत्य तो यह है कि विश्व के इतिहास में—'जय' और 'पराजय' का कोई मूल्य नहीं। मिस्र, बेबीलोनिया, कैल्डिया, ईरान, ग्रीक, रोम, कारिन्थ, कारथेज और चीन सभी तो साक्षी हैं। वे सब एक ही 'मानव' और एक ही 'भूमि' के थे, हैं और रहेंगे—चाहे 'मानव' की जातियों के नाम अनेक हों—यह मैं स्पष्ट कर ही चुका हूँ।

भारत के इतिहास के एक अंग्रेज इतिहासकार का कथन[२] है :—

> अलेक्जेन्डर की अध्यक्षता में यूनानियों तथा मकदूनियों के आक्रमण से भारत का वास्तविक इतिहास आरम्भ नहीं होता है क्योंकि उसका स्थाई प्रभाव, यदि कोई प्रभाव रहा भी हो, अपर्याप्त था, वरन वह अरबवासियों के आक्रमणों से आरम्भ होता है—उनसे जो महात्मा मुहम्मद साहब के अनुयायी थे और जिन्होंने हिमालय से कन्याकुमारी तक के सभी प्राचीन राज्यों को विवश कर-कर के नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था।

इतिहासकार का कथन है कि नववीं तथा दशवीं शताब्दी में उत्तरी भारत का इतिहास कोरा है। उत्तरी भारत का इतिहास यदि कोरा है, तो इन्हीं शताब्दियों में दक्षिणी भारत में इतिहास-सत्ता जा बसी थी।

---

१ गीता २।४८

२ "The real history of India commencesnot with the incursions of the Greeks and Macedonians under Alexander whose permanent influence was very slight, if indeed any existed at all, but with the invasions of Arabs,the followers of the Great Mahomet who succeeded in subverting nearly all of the ancient kingdoms of India from Himalaya to Cape Comoran."

Analytical History Of India. By Robert Sewell. पृ० १०

हर्ष ही के काल से दक्षिण की मानसत्ता चालुक्यों के अधिकार में रही। दक्षिण में ९ वीं शताब्दी में अमोघवर्ष[1] (८१४-८७७ ई०) एक बड़ा ही प्रतापी राष्ट्रकूट हुआ। वह उस युग के विश्व के चार महान सम्राटों में से एक था। उस युग की विश्व की चार विभूतियाँ थीं—दक्षिणी भारत का अमोघवर्ष, बगदाद का खलीफा, चीन का सम्राट और योरुप में कुस्तुन्तुनिया का सम्राट। यह मैं अन्यत्र[2] भी स्पष्ट कर चुका हूँ।

दशवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते मालवा, उज्जैन, कन्नौज, देहली, और लाहौर में राजपूत शक्ति का निर्माण हो चुका था। इसी दशवीं शताब्दी में भारत के 'मध्य-देश' का और यवनों के 'मध्य-देश'[3] का इतिहास आरम्भ होता है। काबुल और कन्धार के बीच में ग़ज़नी हैं। यही 'ग़ज़नी' यवनों का मध्य-देश था।

अल्पतगीन[3] नामक तुर्क खुरासान और बुखारा के समानी नामक बादशाह का एक गुलाम था। इसी अल्पतगीन ने ९६२ ई० में स्वतन्त्र होकर अपना एक छोटा-सा राज्य बसा लिया था जिसकी राजधानी ग़ज़नी थी। ई० ९७७ में सुबुक्तगीन ने ग़ज़नी का शासन सँभाला और 'अमीर' कहलाया। पर पीछे से खलीफा ने इसे 'नासिरउद्दीन' कह कर अलंकृत किया। ई० ९८६—८७ में सुबुक्तगीन ने और लगभग १४।१५ वर्ष बाद १००० ई० में ग़ज़नी के 'सुलतान महमूद' ने पञ्जाब को अपने तीरे नज़र का शिकार बनाया था। विध्वंस को लेकर ई० १०२६ तक इसके आक्रमणों का क्रम चलता रहा। काबुल और कन्धार के मध्य-देश ग़ज़नी का इतिहास यों समाप्त हुआ था। सुलतान महमूद १०३० ई० में इस आलम से कूचकर गये—गुलिस्तां के लिये दिल में एक आह लेकर। 'गुलिस्तां' की कब्र पर महमूद ने बड़ा शोक मनाया था।

इस मध्य-देश—गज़नी ने अपने इतिहास की रक्त-रंजिमा ज्योति अपने सामन्त—ग़ोर के ग़ोरी[4] को देकर अपनी 'आह' मिटा ली थी और फिर वह भी मिट गई······।

---

१ "Amoghvarsha, who reigned in the ninth century for more than sixty years, was reckoned to be the fourth king among the great kings of the World, the other three being the Khalifa of Baghdad, the Emperor of China, and the Emperor of Constantinopole."

२ देखिये:—पृ० १४० । *A Short History Of India.* By V. Smith पृ० ९४

३ "About A. D. 962. Alptgin, a Turk, who had been a slave in the service of Samani king of Khurasan and Bukhara, established himself in practical independence as master of a principality with its capital at Ghazni between Kabul and Kandhar." वही, पृ० ९७

४ "This remarkable man who laid the foundation of Mohammadan rule in India was the chief of Ghor, a mountanious country in the east of Herat. It was at first a dependency of the Kingdom of Ghazni." स्मिथ, पृ० ९९

ज्योति विलीन हो गई······और जलने[1] लगी ग़ोरी के दामन में।

भारत के 'मध्यदेश' के विषय में देखिये :—

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी पुस्तक 'विचार धारा' के पृ० १ से लेकर १० तक 'मध्य-देश का विकास' शीर्षक लेख में भारत के मध्य-देश' का विकास दिखाया है। आपने लिखा :—

(क) 'मध्य देश शब्द वेद की संहिताओं में कहीं नहीं आया।'

(ख) 'ऐतिहासिक मत के अनुसार ऋग्वेद काल में आर्यों का कर्मक्षेत्र पंजाब था।'

(ग) 'मध्य-देश का द्योतक सबसे प्रथम वर्णन 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मिलता है... यद्यपि 'मध्य-देश'—इन शब्दों का प्रयोग वहाँ भी नहीं हुआ है।'

(घ) 'अतः ऐतरेय ब्राह्मण के समय में पश्चिम में प्रायः कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में फ़रुख़ाबाद के निकट तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में प्रायः चंबल नदी तक का आर्य्यावर्त्त 'मध्य' में गिना जाता था अर्थात् मध्य-देश कहलाता था।'

(ङ) 'मध्य-देश का प्रथम स्पष्ट और प्रसिद्ध वर्णन मनुस्मृति में आया है। सबसे प्रथम गणना 'ब्रह्मावर्त्त' देश की की गई है। यह सरस्वती और दृषद्वती नदी के बीच का भूमि भाग है।'

(च) 'दूसरे स्थान पर 'ब्रह्मर्षि देश' बतलाया गया है। इसमें 'कुरुक्षेत्र', 'मत्स्य', 'पंचाल' और 'शूरसेन' गिनाए गये हैं।'

(छ) 'ब्रह्मर्षि देश में 'ब्रह्मावर्त' आ जाता है।'

(ज) ''ब्रह्मर्षि देश के बाद 'मध्य-देश' गिनाया गया है। इसकी सीमाएँ यों दी हैं—हिमालय और विन्ध्य के मध्य में और विनशन से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम में जो है वह 'मध्य-देश' कहलाता है।''

(झ) 'ऐतरेय ब्राह्मण और मनुस्मृति के मध्यदेश में बहुत अन्तर हो गया है।' उत्तर की सीमा में अधिक अंतर नहीं हुआ है—दोनों ग्रन्थों में हिमालय ही सीमा है यद्यिप वश और उशीनर का नाम मनुस्मृति मे नहीं मिलता।'

(ण) 'ब्राह्मण और सूत्रकाल में जो आर्य्यावर्त्त था वह अब मध्यदेश हो गया था और आर्य्यावर्त्त तो अब समस्त उत्तर भारत—पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक और हिमालय तथा विंध्य के बीच का भूमि भाग कहलाता था।

---

१ "A war ensued which ended by ग़ज़नी being captured and recaptured till it was finally sacked in 1152 (by Alluddin Jahansoz, the 'burner of the World'). All the city was given up to arson, and tomb of Mahmud is said to have been almost only building of importance to escape the flames."

History Of India. पृ० ५६

By H. G. Keene.

(द) 'मध्य-देश' की तीसरी अवस्था का वर्णन विनय पिटक[१] में मिलता है।

(थ) (बौद्ध युग के पश्चात्) 'पाटिलपुत्र' का स्थान 'कन्नौज' ने ले लिया था।' मध्य-देश की सीमा का पूर्व में कम हो जाने का एक यह भी कारण हो सकता है।'

(द) 'बराहमिहिर की बृहत्संहिता (स० ६४४ अर्थात् ५८७ ई०) अधिक प्रसिद्ध और पूर्ण है।'' इस संहिता की 'मध्य-देश' की सीमा पूर्व में मनुस्मृति के समान लगभग प्रयाग तक ही पहुँचती है।''

(ध) 'फ़ाहियान (स० ४५७) का वर्णन है, 'यहाँ से (अर्थात् गताऊल या मथुरा से) दक्षिण 'मध्यदेश' कहलाता है।'

(न) 'मध्य-देश' का अंतिम उल्लेख अलबेरूनी (स० १०८७ अर्थात् १०३० ई०) के 'भारत' के वर्णन में मिलता है। 'भारत' का मध्य 'कन्नौज' के चारों ओर का देश है जो 'मध्य-देश' कहलाता है।

(प) 'मुसलमान काल में 'मध्य-देश' 'हिन्दोस्तान' कहलाने लगा।

(फ) ब्रिटिश शासन में मध्यदेश ने 'मध्यप्रान्त' 'के रूप में जन्म ग्रहण किया।'

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'विक्रमांक' में 'गुप्त-युग में मध्यदेश का कलात्मक चित्रण' शीर्षक लेख में यह दर्शाया है कि उदयगिरि की गुफा में एक रेखाचित्र अंकित है। इस रेखाचित्र में दाहिनी ओर यमुना और बाईं ओर गंगा की धारा है। ऊपर बीच में एक देवांगना इन दो धाराओं के प्रकट होने पर अंजलिमुद्रा में अपनी श्रद्धा प्रकट कर रही है। उसके नीचे गङ्गा और यमुना के जन्म का महोत्सव—गुप्तकालीन परिभाषा में 'जातिमह'—अंकित है। इसमें ६ स्त्रियाँ नृत्य और गीत का प्रदर्शन कर रही हैं। बीच में एक स्त्री नृत्य कर रही है और शेष सप्ततन्त्री, वीणा, वंशी, मृदङ्ग और कांस्यताल बजा रही हैं...। संगीतात्मक दृश्य के नीचे बाईं ओर की वारिधारा में मकर वाहन पर खड़ी हुई गङ्गा की मूर्त्ति है और दाहिनी ओर जल-धारा में पूर्ण घट लिये हुए कच्छप पर यमुना खड़ी है। दोनों पूर्वाभिमुख हैं।...गङ्गा और यमुना के मूर्त रूप के बाद प्रयागराज में उनके संगम का दृश्य अंकित है। गुप्तकाल में 'प्रयाग' साम्राज्य की शक्ति का प्रधान केन्द्र था।' समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति साक्षी है। कालिदास ने अपने युग की इन उदात्त भावनाओं को संगम की भव्य प्रशस्ति (रघुवंश १३।५४।५७) लिखकर अमर किया है। इस रेखाचित्र में नीचे की ओर अपार जलराशि दिखाई गई है और मध्य में स्थित एक पुरुष मूर्त्ति है...वह स्वयं समुद्र की प्रतिमा है।' रघुवंश में कालिदास ने सुन्दर वर्णन कर दिया है।

---

१ जातक ३, ११५। बौद्ध युग में 'बिहार' भी मध्यदेश के अन्तर्गत आ गया था।
नोट :—ब्रकेट के अन्दर के शब्द मेरे हैं। —ले०

२ 'विचार धारा' पृ० १२ पर एक टिप्पणी में आप लिखते हैं :—
'मनुस्मृति ६, १७, सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियों के जो मध्य में है उस देवताओं के रचे हुये देश को 'ब्रह्मावर्त' कहते हैं।'
नोट :—'दृषद्वती का वर्तमान नाम 'घग्घर' है।'

किन्तु, राजपूत-युग में उस 'मध्यदेश' की—जिसको नरपति नाल्ह 'मम्भदेश' कहते हैं–उसकी सीमाओं के अन्तर्गत मथुरा, अयोध्या, कन्नौज[१], अछलदा, उरई,* महोवा,* काल्पी, काशी, प्रयाग, मगध, और सम्पूर्ण राजपूताना—मेवाड़, मारवाड़, जैपुर, चित्तौड़, (उदयपुर), जोधपुर, अम्बेर, बीकानेर, किशन गढ़, जैसलमेर, कोटा, बूँदी, सिरोही, मालवा[२], अन्हलवाड़ा, देहली[३], अजमेर, आलीसर, कुडालदेश, मड़ोवर, सौराष्ट्र, गोंडवाना, सांभर, तोडा, टोंक, देवगिरि, धार, उज्जयिनी, चंदेरी खेड़ला—रींवाँ (बघेल खंड)[४] और पूर्व में उड़ीसा और गया तक की सीमायें मेरी दृष्टि में आती हैं। ध्यान रहे यह मेरी दृष्टि है—विद्वजन इन सीमाओं को अपने मत के अनुसार निर्धारित कर लें। और यह भी न भुलाना चाहिये कि इस 'मम्भदेश' का सम्पर्क आर्य्यों के 'ब्रह्मावर्त्त', 'ब्रह्मर्षिदेश' अथवा 'आर्य्यावर्त्त'—उत्तरी भारत—'देहली' और 'लाहौर' से राजपूत-युग में कभी टूटा नहीं। और न दक्षिण[५] से। पश्चिम में 'सुमरा' और पूर्व में 'पाल' और 'सेन' राजपूत थे।

राजपूत-युग का इतिहास इसी 'मध्य-देश' का इतिहास है। राजपूत काल में इसी इसी 'मध्य-देश' के इतिहास में एक दाह संस्कार हुआ था।

वह दाह संस्कार था—बौद्ध साहित्य तथा बौद्ध कला का। यह बौद्ध साहित्य वह था जो एक युग में विश्व[६] साहित्य था। एशिया और योरुप सभी इस साहित्य से प्रभावित थे। बौद्ध साहित्य के प्रति बायबिल (Bible) भी आभारी है—ऐसा मत श्री रुडोल्फ सैयडेल(Rudolf Saydel)का है। इस दाह संस्कार में राजपूतों ने बौद्ध मठों का विनाश, मठाधीशों एवं बौद्ध भिक्षुओं का बहिष्कार (भारत से नहीं, उनके मठों से), और बौद्ध ग्रन्थों का भी दाह संस्कार किया है और इतिहासकार का कथन तो यहाँ तक है कि दसवीं शताब्दी

---

१ कन्नौज के राठौर। राठौरों से पहले कन्नौज में 'गहरवार' थे।—ले०

२ मालवा के पमार। *महोवा के चन्देले।

३ देहली, सांभर और अजमेर के चौहान।

४ बघेलखंड के बघेले। *उरई के 'मायल'

५ दक्षिण के राष्ट्रकूट राजपूत थे।

६ देखिये पृ० १३८ टि० १

७ "For it was in the Dark Ages that religious persecution began in India. Monasteries were demolished, monks were banished, and books were burnt, and wherever the राजपूत became rulers, Buddhist edifices went down and Hindu temples arose. By the end of the tenth century Buddhism was practically stamped out from India, and the work of destruction was completed by the Moslems, who succeeded the राजपूत as masters of India. So complete was the work of destruction that modern antiquarians, who have collected Bubbhist scriptures from लंका and बर्मा, नैपाल, तिब्बत, चीन, जापान and all parts of Asia have failed to glean any valuable texts from India."

नोट :—श्रीदत्त जी ने 'योरुप' का नाम नहीं लिया है। –ले० दत्त, पृ० १५१

का अन्त होते होते बौद्ध धर्म भारत से मूलत:[1] नष्ट हो गया और राजपूतों के पश्चात् उस धर्म का सम्पूर्ण विनाश यवनों ने किया। एक भी मूल्यवान बौद्ध ग्रन्थ न प्राप्त हो सका था—जिसे भारत—भगवान बुद्ध के देश का—कहा जाये। राजपूत काल में मठों—बौद्ध मठों को धूलि में मिलाकर मन्दिरों का निर्माण हुआ था।

किन्तु, इस 'मध्य-देश' का इतिहास 'चित्तौड़' से आरम्भ होकर सांभर—अजमेर, लाहौर, देहली, कन्नौज, अयोध्या, मेवाड़, मारवाड़, जैपुर और मालवा होता हुआ 'चित्तौड़' पर समाप्त होता है।

इतिहास के अन्तिम काव्यमय शब्दों में राजपूत सत्ता का सौन्दर्य—'स्वाभिमान'—देश के प्रत्येक कण में, वीर की प्रत्येक नस में और क्षत्राणी के प्रत्येक गर्भ में—'स्वाभिमान', 'गर्व', अथवा 'अभिमान' नहीं, 'स्वाभिमान'—'गौरव' और 'आत्म विश्वास' युग के इतिहास के पन्ने लौटता रहा है।

और १०३० ई० से १२ वीं शताब्दी के अन्त तक (११६२ ई०) का इतिहास, रक्त[2] के टीके में, माथे के बेने[3] में, केसरिया बागे में, वीर की भुजाओं में, रणभेरी के निनाद में, जलती हुई चिताओं[4] की प्रचण्ड ज्वालाओं में और यदि इतिहास के उत्थान और पतन

---

१ तु० आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' पृ० ५ पर लिखते हैं :—

"आठवीं, नवीं शताब्दी में बौद्ध महायान सम्प्रदाय लोकाकर्षण के रास्ते बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। वह तन्त्र, मन्त्र, जादू, टोना, ध्यान, धारणा, आदि से लोगों को आकृष्ट करता रहा।"...जिन दिनों हिन्दी साहित्य का जन्म हो रहा था उन दिनों भी बङ्गाल, मगध तथा उड़ीसा में बड़े-बड़े बौद्ध बिहार विद्यमान थे जो अपने मारण, मोहन, वशीकरण, और उच्चाटन की विद्याओं से और नाना प्रकार के रहस्यपूर्ण तांत्रिक अनुष्ठानों से जन समुदाय पर अपना प्रभाव फैलाते रहें।"

नोट :—'मध्य देश' के विषय में (पृ० ३) आपने लिखा—"यह मध्य देश वैदिक युग से लेकर आज तक अतिशय रक्षणशील और पवित्र्याभिमानी रहा है॥"

२ "The child बाप्पू रावल soon became known as the most daring son of the forest. One day after a deed of more than ordinary daring, the youths who accompanied him declared that they would elect him as their king. One of them, to note their choice, cut his finger and with the blood issuing from the wound made royal mark' (तिलक) on his forehead." *Native States of India.* पृ० १०

By Col. G. B. Malleson.

३ क्षत्राणियों का सुहाग-शृङ्गार

४ "Historians have referred to the fort (गढ़ चित्तौड़) as a symbol of the most glorious traditions of Rajput valour, heroism and pride of race and clan. It was in this fort that thousands of Rajput women committed 'जौहर' thrice, when the besiegers were about to storm it. ...पद्मिनी and करुणावती...persihed but restored चित्तौड़ to Rajput,'

में, अथवा राजपूत की जय और पराजय में मिलता है, तो 'रासों'॰ और छनकती हुई 'आल्हा' में भी मिलेगा।

ई० ७२८ में बाप्पू[१] रावल ने 'चित्तौड़' लिया था—'मोरी' के राजपूतों से।

यह स्पष्ट ही है कि 'मालवा' और 'उज्जयिनी' जैन और बौद्ध युग से, 'हर्ष' के युग से, गुप्त-काल से सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक क्षेत्र में अपने-अपने स्थान ग्रहण करते हुये चले आ रहे थे। इसी मालवा की राजकुमारी[२] से 'रावल' का सम्बन्ध हुआ था। रावल ने 'चित्तौड़' को अपना गढ़ बनाया—गढ़ चित्तौड़ ही राजपूतों का 'स्वाभिमान' था। इसी चित्तौड़ से उसने सम्पूर्ण राजपूताना पर शासन किया था

और यह[३] कैसे भुलाया जा सकता है कि गङ्गा के उत्तरापथ पर 'कुरु' और 'पांचाल' यदि आ बसे थे, तो आर्य्यगण पूर्व की ओर बढ़ते हुये—'कौशल' और 'काशी' भी पहुँच गये थे—'तिरहुत' (जनकपुर) में भी पहुँचे और 'मगध-काल' के समाप्त होने पर पुनः इतिहास उत्तरापथ पर आ जाता है—'कन्नौज',—गुप्ताकाल का 'कन्नौज' भारत के इतिहास का 'स्वाभिमान' हो जाता है। 'कन्नौज' के पश्चात् 'विक्रम' की 'उज्जयिनी' भारत का उज्ज्वल यश गाती रही। इस प्रकार लौट फेर कर—'कन्नौज' से 'उज्जैन' और 'उज्जैन' से 'कन्नौज', कन्नौज से 'देहली', अजमेर, और मारवाड़[४], अयोध्या से मेवाड़[५], और

१ "Bappu Rawal reigned in the eighth century, his capture of चित्तौड़ having taken place about 728 A. D. ....with the exception of जैसलमेर, writes the learned author of the 'Annals and Antiquities of Rajasthan.' Malwa is the only dynasty of these races which has outlived eight centuries of foreign domination in the same lands where conquest placed them. The Rana still possessed nearly the same extent of territory which his ancestors held when the conquerer from ग़ज़नी first crossed the 'blue waters' of the Indus to invade India."   *Native States of India.*

॰पृथ्वीराज तथा अन्य रासो   By Col. G. B. Malleson.   पृ० ६।११

२ "Bappu Rawal established a great reputation, connected himself by marriage with the royal house of मालवा, expelled the barbarians...finally fixed the seat of his Government at चित्तौड़ where he ruled the whole of Rajputana."   वही, पृ० १०

३ देखिये :—दत्त, पृ० ४६, १४१, १४३

४।५ 'चौहान dynasty of अयोध्या was transferred to the remotest west, to the ancient city of चितौड़ on the fertile lands of मेवाड़, राठौर dynasty of कन्नौज was transferred to still further to the west, to the sands of मारवाड़ beyond अरावली hills...At the same time the dynasties of लाहौर and देहली faded away from history."

History of India. By Talboys Wheeler.   पृ० ३२७

नोट :—कर्नल टाड की पुस्तक 'राजस्थान' भाग १, अध्याय २-३ देखिये।

चित्तौड़–यही क्षेत्र 'मध्य-देश' के रणकौशल का परिचय देता रहा। कर्नल टाड ने लिखा :—

"The Rajput Empire of remotest antiquity is represented in the present day by the three kingdoms, मेवाड़, मारवाड़, जैपुर, better known as चित्तौड़ or उदयपुर, जोधपुर, अम्बेर। Mewar is the land of wheat and rice and barely,"

अर्थात्, दूरवर्ती...प्राचीन राजपूत साम्राज्य का प्रतिनिधित्व वर्तमान काल के मेवाड़, मारवाड़, जैपुर करते हैं......। मेवाड़ गेहूँ, चावल और जौ का प्रदेश है। इस प्रकार वर्तमान राजपूताने के 'मेवाड़' और "जैपुर'—प्राचीन 'अयोध्या' की, और वर्तमान 'मारवाड़'—प्राचीन 'कन्नौज' की परम्परा में थे—ऐसा स्पष्ट होता है।

किन्तु, इतिहास बताता है कि कन्नौज के राठौर वंश की नींव 'चन्द्रदेव' ने डाली थी। इस वंश का पञ्चम अथवा अन्तिम राजा जयचन्द (११६०—६१ ई०) था। पर मोतीलाल मनोरिया अपनी पुस्तक 'राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा' के पृ० ६ पर लिखते हैं :—

> "जोधपुर राज्यान्तर्गत डीडवाने के पास कन्नौज के राजा 'भोज देव' का वि० स० ६०० (सन् ८४३ ई०) का लेख प्राप्त होने से तथा अलवर में कन्नौज के सामन्तों का प्रभुत्व होने से निशिचत है कि दसवीं शताब्दी के अन्त तक राजस्थान का एक बहुत बड़ा भाग कन्नौज के आधीन था।"

इससे स्पष्ट होता है कि 'कन्नौज' की श्रेय-परम्परा गुप्त-काल से चली आ रही थी और बाद में राठौरों ने उसे अपना गढ़ बनाया है।

इसी प्रकार विक्रम[१] की 'उज्जयिनी' का भी इतिहास विमल मार्ग से चला आ रहा था। उज्जयिनी राजपूत-युग में मालवा की राजधानी थी। 'मालवा की राजधानी थी'—इससे मेरा आशय मालवा की 'गुर्जर प्रतिहार जाति' की राजधानी से है। आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'पूर्वी राजपूताना और मालवा' में गुर्जर प्रतिहार जाति की ध्वजा फहर रही थी। इसी वंश के नागभट्ट ने कन्नौज पर विजय पाई थी और राजधानी उज्जयिनी' से 'कन्नौज' चली गई थी।

इस प्रकार सांभर, अजमेर, और देहली के चौहान—'अयोध्या' की परम्परा में आये थे, गहरवार, राठौर, और चंदेले—'कन्नौज' की में, और पमार तथा प्रतिहार राजपूत 'उज्जयिनी' नगरी की परम्परा में थे। स्पष्टतः राजपूत-युग में गुप्त-काल[२] के 'कन्नौज,' 'अयोध्या' तथा 'उज्जयिनी' की परम्परा टूटी नहीं। वह परम्परा 'कुरु' और 'पांचाल' की थी—आर्यों की।

इस 'अजमेर' को अजयपाल चौहान ने बसाया था। वीसल देव विग्रह द्वितीय ने अपनी राजधानी 'सांभर' से हटा कर 'अजमेर' बनाई थी। अजमेर 'अजयमारु' शब्द का विकृत रूप है। 'अजयमारु' शब्द का अर्थ है अटूट गढ़—वह गढ़ जो अजय हो। पृथ्वीराज चौहान—पिथौरा राय ने चौहान वंश को देहली और अजमेर में उज्वल किया था।

---

१ "Neither Roland (of France) nor Arthur (of England) is the subject of so much romance literature as विक्रमादित्य of Ujjain." दत्त, पृ० १४४

२ देखिये पृ० १३१

पृथ्वीराज तराइन के युद्ध ११६२ ई० में गोरी से परास्त हुआ ? देहली और अजमेर पर यवनों का आधिपत्य हो गया। चौहान राजपूतों ने 'रणथम्भौर' को राजधानी बना लिया।

['चित्तौड़' के विषय में 'कैसरलिङ्ग' के शब्द हैं कि 'विश्वभूमि पर अन्य कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ चित्तौड़ की-सी वीरता अथवा मृत्यु को आह्वान करने की तत्परता अथवा क्षमता इसी मात्रा में रही हो।' 'एडविन[1] आरनोल्ड का कथन है कि राजपूताना प्राचीन से प्राचीनतम है और इस क्षेत्र की तुलना में योरुप का नील रक्त काल का है।']

सिसौदिया वंश के महाराणा प्रताप 'राणा' कहलाते थे। चित्तौड़ को 'बाप्पू' रावल ने लिया था। उपनाम'रावल'से 'राणा'करने वाला व्यक्ति'राहप'[2]था। यह ११६३ से १२७५ ई० की बात है। इसके लगभग २८ वर्ष पश्चात् १३०३ ई० में अलाउद्दीन ने जब चित्तौड़ पर आक्रमण करके 'पद्मिनी' को मांगा था, १५३४ ई० में गुजरात और मालवा ने गढ़ चित्तौड़ घेर लिया था और १५६७ ई० अकबर की सेना ने मेवाड़ पर जब आक्रमण किया तब केसरिया बागे पहन कर राजपूत 'विजय' अथवा 'मृत्यु' का आह्वान करने निकल पड़े और वीरांगनायों ने धधकती हुई ज्वालाओं में बाल बच्चों समेत प्रवेश करके अपने सतीत्व की रक्षा की थी। [बापा, सांगा, महाराणा कुंभकरण और राणा प्रताप की उज्ज्वल कीर्त्ति इसी 'चित्तौड़' का स्वाभिमान है। 'चित्तौड़' राजपूतों का स्वाभिमान है।]

—'चित्तौड़ चम्पा है, प्रताप[3] उसकी सुगन्ध है'

—कविता कौमुदी पृ० ३१५

चम्पा के फूल पर भंवरा नहीं जाता।

---

१ देखिये पृ० १५८ टि० १

२ श्री मैलेसन अपनी पुस्तक "*Native States Of India*" के पृ० ११ पर लिखते हैं :—

"In alliance with his brother-in-law, Pirthri Raj the Hindu King of Delhi, सामर्षी went forth to meet the Tatar invaders of India......The battle which ensued and lasted three days (in 1193 A. D.) and terminated in the defeat of Hindus and death of सामर्षी and all his chief ......was succeeded by his son, कर्ण and he, a few years later, by his cousin, Rahap (राहप) son of Samarshi's brother. "This prince first changed the title of Soverign of Udaipur from Rawal to Rana by which it has ever since been known. From Rahap to Lakasmi, a space of half a century passed in confusion and strife and Lakasmi succeeded to his father's throne in 1275 A. D."

३ महाराणा प्रताप (१५७२—१५६७ ई०)

भारत पर नवचन्द्र—हिन्दोस्तान पर हिलाल*
(१००० ई०[1]..........१२०६[2]......१७४६ ई०[3])

शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा अथवा द्वैज के समान आकार और शोभा में इसी विश्व-भूमि पर आज से लगभग ४००० वर्ष पूर्व एक ऐसा रमणीक एवं धन-धान्य से परिपूर्ण स्थल था जिसके लिये उपयुक्त नाम न प्राप्त होने पर इतिहासज्ञों ने 'उर्वर नवचन्द्र'[4] कहा है। एकद, सुमेर, मेसपोटामिया, पैलिस्टाइन, फोनीशिया और सीरिया का प्रदेश वह स्थल था।

यह स्पष्ट हो चुका है—उर्वरा की ओर मरुभूमि ने आकांक्षाओं की दृष्टि से देखा है।

अरब मरु-भूमि का इसी पृथ्वी पर का स्वर्ग यही 'नवचन्द्र' था। इसी के लिये अरबवासियों में ही नहीं सम्पूर्ण सामीभाषावादी जातियों में एक उत्कट लालसा भरी हुई थी—अतृप्त आकांक्षाओं से वे परितप्त थे।

यही 'नवचन्द्र' यवन आत्म-सत्ता का गौरव-चिह्न बन कर आया है। ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी के योरुप के धर्म-युद्धों में एक ओर ईसाई थे, दूसरी ओर अरब-यवन तथा तुर्क, पर इतिहासकारों ने इन्हें 'क्रास'[5] (Cross) और 'क्रिसेन्ट' (Crescent) शब्दों से व्यक्त किया है। यवन—चाहे वह अरब का बासी हो, चाहे तुर्किस्तान, खुरासान, सीस्तान, काबुल, समरकंद, बलख-बुखारा, ग़ज़नी, मिस्र, सीरिया, टर्की, यमन, इराक़, मराको, कारडोवा, ट्युनीशिया, अलजीरिया, लीबिया, लेबनान, जारडन, भारत, पाकिस्तान,

१ महमूद ग़ज़नी का प्रथम भारत-आक्रमण।

२ कुतुबुद्दीन द्वारा भारत में यवन-साम्राज्य की स्थापना — १२०६ ई०।

३ मुगल वंश का अन्तिम बादशाह मोहम्मद शाह की मृत्यु—भारत में यवन-राजसत्ता का अन्त।

४ 'Fertile Crescent' (वह भाग जिसमें एकद, सुमेर, मेसोपोटामिया, पैलिस्टाइन, फोनीशिया और सीरिया सम्मिलित थे।)

नोट :—प्रो० जेम्स हेनरी ब्रस्टेड (James Henry Breasted) ने इसे 'उर्वर नवचन्द्र' कहा है।

देखिये :—पृ० ६४ टि० १

५ ईसाईयों का धर्म-चिन्ह

*उर्दू में 'हेलाल', अरबी में 'हिलाल'। —ले०

पेशावर, अथवा शयाम का बासी हो, चाहे वह गुलाम, अफ़ग़ान, पठान, खिलजी, तुग़लक, सैय्यद, लोदी, तुर्क और मुगल हो, चाहे वह शिया हो, चाहे सुन्नी पर इस 'नवचन्द्र' में—'हिलाल' में—इन सबों ने एक समान अपने आत्म-गौरव और स्वाभिमान को देखा है। 'हिलाल का परचम'—यवन-पताका साक्षी है। 'हिलाल' शब्द का अर्थ है 'नवचन्द्र' और 'परचम' का अर्थ है 'पताका'।

भारत की स्थायी विजय अरबों की नहीं, तुर्कों की थी। अरब के बीन कासिम ने ७११ ई० में सिन्ध को पदाक्रान्त कर डाला था। बस!

भारत में तुर्कों का इतिहास वस्तुत: १००० ई० से आरम्भ होता है—भारत पर महमूद ग़ज़नी के प्रथम आक्रमण से।

महमूद ग़ज़नी तुर्क था। ग़ोरी तुर्क था। पर 'कुतुबुद्दीन ऐबक' ग़ोरी का तुर्की गुलाम था, कुतुबुद्दीन का गुलाम 'शमसुद्दीन इल्तुतमिश' था और इल्तुतमिश का 'बलबन'।

भारत का प्रथम यवन सम्राट 'कुतुबुद्दीन ऐबक' माना जाता है पर बग़दाद के खलीफ़ा की ओर से पहला 'सुलतान-ए-हिन्द' इल्तुतमिश हुआ है।

यह साम्राज्य १२०६ ई० में स्थापित हुआ था—कितने रक्तपात से ?...कितनी लूट से और कैसे !

ईसवी १००० से १०२६ तक महमूद ग़ज़नी ने मुलतान, लाहौर, कांगड़ा, थानेश्वर, मथुरा, वृन्दावन, कनौज, बुन्देलखंड, चंदेरी, ग्वालियर, अन्हलवाड़ा और सोमनाथ को और उसके नियालतग़ीन ने बनारस को पदाक्रान्त कर डाला। लूट डाला। अतुल वैभव, धन-सम्पत्ति, मान-मर्यादा—सब कुछ लुट गया। सोमनाथ का मन्दिर लुट गया, ध्वस्त कर डाला—मूर्त्ति[१] तोड़ डाली गई—मन्दिर को जला दिया। किन्तु, फिर आग ग़ज़नी[२] में भी लग गई। ग़ज़नी सात दिन, सात रात जली[३]। केवल महमूद का मकबरा जलने से बचा था। यह आग स्वत: नहीं लग गई थी—ग़ोर और ग़ज़नी वंश के वैमनस्य और परस्पर के विरोध ने लगाई थी। मुहम्मद ग़ोरी वहाँ का शासक बना दिया गया। शक्ति के पीछे शक्ति लगी हुई है—ऐसा विधान है।

भारत पर तुर्कों का द्वितीय चरण मुहम्मद ग़ोरी का था जिसने ११७३ से ११९४ में उच्छ, पेशावर, सिन्ध, लाहौर, देहली, अजमेर, मेरठ, कन्नौज और बनारस को ले डाला। देहली और अजमेर के पृथ्वीराज ने ११९१ ई० में उसे ऐसा बुरी तरह से परास्त किया कि भागते ही बना था, पर दूसरी वर्ष ११९२ ई० में उसने पृथ्वीराज से अपनी प्रतिशोध-भावना का मूल्य चुकवा लिया। डाक्टर ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में ११९२ का तराइन का युद्ध राजपूत शक्ति पर 'असाध्य आघात' था। ई० ११९४ में कन्नौज का

१ "Mahmud captured the fort, entered the temple......broke the लिंग to pieces, looted the temple and burnt it to the ground."

Elliot. Vol. II cited in *Somnath, the Shrine Eternal*. पृ० ३४

२ देखिये :—पृ० १६२ टि० १

३ नोट :—स्मिथ के अनुसार यह ग़ज़नी ११५० में सात दिन-रात जली थी।

जयचंद परास्त हुआ। कनौज का राज-कोष लूट लिया गया। बनारस के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया।

इसके पश्चात् ग़ोरी के गुलामों का इतिहास आरम्भ होता है। ग़ोरी के चार गुलाम थे। ऐबक ने अन्हलवाड़ा, ग्वालियर, महोवा (चन्देलों की राजधानी), कालिंजर, बदायूँ ले लिया और बख्तियार ने बिहार और बंगाल को। बिहार का बौद्ध धर्म नष्ट कर दिया गया।

इस प्रकार देहली और अजमेर के चौहान, कन्नौज के गहरवार, महोबा के चन्देले राजपूतों की शक्तियों का विनाश करके, उनका धन और वैभव लूट करके, बिहार और बङ्गाल को मिटा करके, सोमनाथ और बनारस के मन्दिरों को नष्ट करके, बौद्ध धर्म के दीपक को मगध में ही बुझाकर भारत में यवनों का प्रथम साम्राज्य स्थापित हुआ था।

'आर्य्य' संस्कृति 'सामी' संस्कृति से टकरा गई थी।

किन्तु सोमनाथ के मन्दिर के जलाये जाने पर चाहे कोई नौ-नौ आंसू रोये और चाहे अट्ठारह पर शिव की शक्ति (मङ्गल-शक्ति) के वश का नहीं कि वह महमूद को रोक सकती। कारण स्पष्ट है। राजपूतों ने जब बौद्धों के मठों और विहारों को जलाया[1] था तो दो आंसू किसी ने डाले नहीं थे।

ईसवी १२०६ बड़ी ही महत्वपूर्ण वर्ष थी। इस वर्ष में ३ महत्वपूर्ण घटनायें घटीं। पंजाब में एक खोखर द्वारा ग़ोरी मार दिया गया, ऐबक भारत के प्रथम यवन-साम्राज्य का प्रथम सम्राट (सुलतान) हो गया, और मंगोलिया की राजधानी कराकोरम से मंगोल तुर्क चंगेज खाँ (१२०६-१२२७ ई०) विध्वंस और विनाश को लेकर निकल पड़ा। उत्तरी चीन, तुर्किस्तान, खीवा, समरकन्द, बुखारा, मर्व, निशापुर, अफ़गानिस्तान, ग़नी, हिरात और पेशावर इन सबों ने उस विप्लव को देखा था। हिरात में एक लाख में केवल १६ बचे थे—ऐसी नंगी वह तलवार थी। भारत बाल-बाल बच गया। पर भारत की पश्चिमी सीमा युगों के लिये मंगोल-आक्रमणों के भय का एक कारण बन गई। भारतीय यवनों को पश्चिमी सीमान्त की ओर से निरन्तर भय लगा रहता था। शक्ति ने शक्ति को दबा रक्खा था। मुगलों के पश्चात् अंग्रेजों को भी इस ओर से—अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्तान, क़ाबुल, कन्धार और खैबर दर्रे की ओर से भय लग रहा था। मध्य एशिया की ओर से भारत आने का थल मार्ग यही है।

तुर्कों द्वारा बग़दाद लिये जाने पर अरब-यवन-शक्ति विनाश हो गई थी। खलीफाओं का महत्व जाता रहा था। इल्तुतमिश ने खलीफा की दी हुई उपाधि—'सुलतान-ए-हिन्द'—में अभिमान देखा हो तो हो अन्यथा उसके पश्चात् बलबन (१२६६-१२८६ ई०) ने ऐसी उपाधियों की ओर निगाह उठाकर भी नहीं देखा और फिर किसी ने नहीं देखा। खलीफाओं का जमाना जाता रहा, उनकी खिलअतों, सनदों और मोहरों का ज़माना जाता रहा। बग़दाद का उदय ७५० ई० में हुआ था। १०५५ ई० में सल्जूक तुर्कों ने इसे ले लिया था। ई० १२६५ के निकट मंगोल तुर्क चंगेज खाँ के वंशज हलागू

१ देखिये पृ० १६४ टि० ७

ने बग़दाद की जनता को तलवार के घाट उतार दिया था। चंगेज़ खाँ के वंशजों ने चीन,[1] पश्चिमी एशिया, अरब, हंगरी, पोलैन्ड, भारत और रूस[2] किसी को छोड़ा नहीं। तैमूरलङ्ग ने देहली से सायबेरिया और चीन से सीरिया तक अपना अधिकार जमा लिया था। उसने २५ सितम्बर १३६८ ई० को सिन्ध को पार किया था—यह स्पष्ट हो चुका है।

और इधर १२०६ ई० से ४ वर्ष के पश्चात् १२१० ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक के गुलाम शमसुद्दीन इल्तुतमिश ने देहली की बागडोर संभाली, उसके पश्चात् उसके गुलाम बलबन ने। यवन-साम्राज्य की सीमायें भारत में विशेष बढ़ी नहीं क्योंकि पश्चिमोत्तर सीमान्त की ओर से मंगोलों का भय खाये जा रहा था। इल्तुतमिश ने खीवा के जलालुद्दीन को टाल कर चंगेज खाँ के प्रलयकारी आक्रमण से देहली बचा ली। टालने का बहाना केवल इतना था कि देहली की जलवायु जलालुद्दीन के स्वास्थ के लिये लाभप्रद न होगी। चंगेज़ इसी जलालुद्दीन के पीछे लगा हुआ भारत में सिन्ध तक आया था। सिन्ध को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। ग़ोरी का गुलाम कुवैचा वहां का शासक था। जलालउद्दीन के भारत से चले जाने पर चंगेज भी लौट गया। इल्तुतमिश ने अल्लाह का शुक्रिया अदा किया और एक ठन्डी सांस ली। इल्तुतमिश ने रणथम्भौर, इन्दौर और उज्जयिनी नगरी को ध्वस्त कर डाला। उज्जयिनी का महाकाली का मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया। सिन्ध के कुवैचा और पंजाब के इलदुज को भी मार डाला।

इल्तुतमिश के पश्चात् ३० वर्ष तक (१२३६ ई० से १२८६ ई०) उमरा और उल्माओं के षड़यन्त्र चलते रहे। विद्रोहों की अग्नि भड़कती रही। यवन-साम्राज्य की सत्ता हिलती रही—राज्य के लिये भाई और बहिन में झगड़ा हो गया—रज़िया और बहराम शाह लड़ बैठे। उल्माओं ने फायदा उठाया। अमीरों ने बहराम को सुलतान घोषित कर दिया। मंगोल सरदार बहादुर ताहिर भारत पर चढ़ आया। लाहौर सामना न कर सका। वजीर निजामुलमुल्क ने सुलतान और अमीरों को लड़ा दिया। अमीरों ने सुलतान का बध कर डाला। वजीर की जालसाजी का जब पता चला तो वह भी तलवार के घाट उतार दिया गया।

राज्य की ऐसी परिस्थिति में बलबन ने देहली की इज्जत रक्खी। मंगोल 'बग़दाद' और 'गज़नी' लेकर लाहौर में आ गये। निरन्तर सिन्ध को लूटते रहे थे। बलबन ने उन्हें परास्त कर लिया। यह देखकर अमीर और उल्मा भय से काँप उठे। बलबन ने उनकी जागीरें छीन लीं। वे ठन्डे पड़ गये। किन्तु १२८६ ई० में वह स्वयं परलोक सिधार गया। गुलाम वंश का अन्त हो गया। गुलाम वंश का अन्तिम शासक कैकबाद था जो विलास-प्रिय एवं निकम्मा था। और इतिहास 'गुलामों' से 'अमीरों' का हो गया—'अमीरों' से मेरा तात्पर्य अफ़ग़ानिस्तान के एक गांव 'रब्लज़' के निवासी खिलजियों से है—'अफ़ग़ानों' और 'पठानों' से। पर बरनी के आधार पर यह खिलजी भी 'तुर्क' थे। सर हेग के आधार पर यह अफ़ग़ानिस्तान में रह चुके थे और पठानों—

---

१ याग्ट्सी नदी तक।

२ रूस में तुर्कों का आधिपत्य लगभग २०० वर्ष तक रहा—१४८० ई० में यह शक्ति वहाँ विनाश हुई थी।—ले०

के-से हो गये थे। तुर्क इन्हें तुर्क नहीं मानते थे। तुर्क तुगलक वंश वाले भी थे। सैय्यद अपने को पैगम्बर का वंजश मानते थे। लोदी अफगान थे। कुछ भी हो पर निश्चय ही 'खिलजी', 'तुगलक', 'सैय्यद' और 'लोदी'—इन सब में काल पाकर एक भारतीयता आ गई थी। वह कट्टरता और कठोरता जाती रही थी जिसके लिये 'तुर्क' खूँख्वार थे।

गुलाम वंश के पश्चात् खिलजी वंश का उदय हुआ। दास-वंश का जब अन्त हुआ था तो देहली दरबार में दो दल थे, आज की भाषा में 'ग्रूप' कहिये,—बलबन-ग्रूप और खिलजी-ग्रूप। जलालुद्दीन खिलजी ने अपने विपक्षी की आशाओं पर पानी फेर कर देहली के तख्त को संभाला किन्तु सन्त-स्वभाव, सहिष्णु और उदार राज-सत्ताधारियों से शासन का सञ्चालन नहीं होता है। जलालुद्दीन के लिये एक दुर्ग के जीतने के बदले एक मुसलमान का रक्त कहीं अधिक महत्व रखता था। वह ऐसा ही कहा करता था। रणथम्भौर के दुर्ग पर उसने आक्रमण तो किया किन्तु बिना ही जीते चला आया। मंगोलों से विवश होकर उसे लड़ना पड़ा। मंगोल परास्त हुये। सन्धि हो गई।

अपने चचा की अनेक दुर्बलताओं से जलालद्दीन के भतीजे अलाउद्दीन खिलजी (१२९५—१३१६ ई०) का मन खीज गया। अलाउद्दीन की देवगिरि की विजय की शुभ सूचना पर जलालुद्दीन बड़ा प्रसन्न हुआ था। अपने भतीजे से मिलने गया तो अवसर पाकर लायक भतीजे ने उसका काम तमाम[1] करा दिया और देहली का तख्त अलाउद्दीन यों अपने माफिक लौट सका था।

मंगोलों को हार पर हार देकर, उनसे निवृत्त होकर अलाउद्दीन ने सिन्ध, लाहौर, अवध, बंगाल, जैसलमेर, अजमेर, मेवाड़, रणथम्भौर, चन्देरी, चित्तौड़, अन्हलवाड़ा, उज्जैन, और दक्षिण में वारङ्गल, गुजरात, सूरत, सौराष्ट्र, प्रभासा, सोमनाथ, द्वार समुद्र और मदूरा—इन सब को ले लिया। भेलसा और देवगिरि देहली की गद्दी पर बैठने से पूर्व ही ले चुका था। सोमनाथ का मन्दिर एक बार पुनः ध्वस्त हुआ। महाराष्ट्र प्रान्त उजाड़ दिया गया।

यह जीत और हार की कहानी, भारत में जब जब वंश बदलता था, तब तब एक बार पुनः आरम्भ और समाप्त होती थी।

खिलजी वंश के अन्त होने के ठीक १२ वर्ष बाद १३३२ ई० में राजधानी 'देहली' से 'देवगिरि' लाई गई थी। यह मुहम्मद बीन तुगलक के काल (१३२५—१३५१ ई०) की बात है। क्यों लाई गई थी—यह तो इतिहास के पंडितों का विषय है पर निश्चय ही यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसे इतिहास में बीसवीं शताब्दी मानती न हो। मुहम्मद बीन तुगलक उस समय यह नहीं जानता था कि उसके ज़माने के मंगोल केवल भेंट लेकर ही सन्तुष्ट हो जायेंगे और चलते-चलते रास्ते में पड़ते हुये 'सिन्ध' और 'गुजरात' उजाड़ भी दिये जायेंगे तो वह उन्हें फिर बसा लेगा। मंगोल उसके ज़माने में 'देहली' पर भी आ धमके थे। ई० १९४७ के भारत और पाकिस्तान के बटवारे के समय क्या भारत ने कभी सोचा था कि 'गरीब रइय्यत' को भी स्थानान्तिरित करना पड़ेगा?

---

१ इलाहाबाद के जिले में 'कड़ा' नामक स्थान पर जुलाई १२९६ में रमज़ान के महीने (हिजरी ६९५) में अलाउद्दीन ने अपने चचा जलालुद्दीन को मरवाया था।

बीन तुग़लक ने अपने काल में २३ सूबों का राज्य भोगा था—इतना विशाल साम्राज्य था कि इतिहासकार स्मिथ लिखता है कि उसका राज्य उसके पूर्ववर्त्तियों से कहीं[१] विशाल था। इन शब्दों का कारण यह भी हो सकता है कि उसने सम्पूर्ण भारत के अतिरिक्त उत्तर में 'कुमायूँ' को भी आधीन कर लिया था। उसने चीन से राजदूतों का विनमय (Exchange of Ambassadors) भी किया था। चीन के मंगोल सम्राट ने भारत में एक राजदूत भेजा था। इब्नबतूता तुग़लक की ओर से चीन में राजदूत बन कर गया था। और सबसे बड़ा काम उसने यह यह किया था कि चीन के राजदूत को हिमालय-प्रदेश स्थित बौद्ध-मन्दिरों का पुनः निर्माण करने की आज्ञा दे दी थी। फीरोज तुग़लक शान्त स्वभाव का था। मुस्लिम-रक्त बहाना उसे न पसन्द था।

वह 'हिलाली परचम' इस तौर पर हिन्दोस्तान में गड़ा था—यवन-पताका भारत पर इस प्रकार लहराई थी। यहाँ 'गाड़ने' का स्पष्ट अर्थ 'यवन राज्य स्थापना' का अथवा उसमें योग देने का है।

इस 'परचम' को ६५० ई० से १००० ई० तक 'अरब', 'हस्पानिया' (स्पेन), 'मराको', 'करडोवा', 'मिस्र', 'सीरिया', 'समरकन्द', 'बुखारा' इत्यादि पर अरबों ने गाड़ा था। फारस की खाड़ी, भू-मध्य सागर, हिन्द महासगर, चीन सागर, और कैस्पियन सागर इत्यादि पर वह लहरा चुका था। उस 'परचम' को अरब की 'खिलअत' ने और खलीफाओं की हुकूमत ने गाड़ा था, अरब के खन्दानी-खून ने और मजहबी कलाल ने गाड़ा था, गज़नी और ग़ोर की शानो-शौकत ने गाड़ा था, अफगान और पठानों[२] की कद्रे-हिन्दोस्तान ने गाड़ा,...तुर्की तलवार, तुर्की घोड़ों ने और तुर्की हूरों ने गाड़ा था...कत्ले आम[३], नंगी तलवार और तैमूर के इस शाही फरमान ने उस 'परचम' को देहली में गाड़ा था :—

"काफ़िर और ईमान न लाने वाले का, वह कहीं भी मिले, बध करदो'। देहली की मसजिद (फीरोज की बनाई हुई देहली की मसजिद) में बैठकर अल्लाताला की शान में उसने यह गुणगान किया था :—

---

१ '...Domination far larger than that of any of his predcessors.'
A Short History Of India. By V. Smith.   पृ० १२३

२ 'तारीखे-सोराठ' के पृ० ११२ पर उसके लेखक ने महमूद गज़नी के सोमनाथ के प्रथम आक्रमण के समय मुग़ल नारियों के विषय में लिखा :—

"Shah Mahmud took to his heels in dismany and saved his life, but many of his followers of both sexes were captured......Turks, Afghans and Mughal female prisioners, if they happened to be virgins, were accepted as wives of Indian soldiers......The bowels of others, however, were cleansed by means of emetics and purgatives and thereafter the captives were married to men of similar rank." Low females were joined to low men.''

Cited in Somnath, the Shrine Eternal. By K. M. Munshi पृ० ३५

३ देहली में १००००० व्यक्ति तैमूर की तलवार के घाट उतारे गये थे।

'हे प्रभू ! इन नास्तिकों एवं मूर्ति पूजकों ने अपना सम्पूर्ण समर्पण मुझे कर दिया ठीक उसी भाँति जिस भाँति एक भेड़ कसाई के सम्मुख अपना समर्पण कर देती है।'

यवन इतिहास की ८६२ वर्षों (६३४ ई०—१५२६ ई०) में से विशेषकर ५०० वर्षों में भारत की यही भूमि रक्तरंजित हो गई थी—इतना रक्त बहा था कि एकद, सुमेर, पैलिस्टाइन, मेसोपोटामिया, फोनीशिया और सीरिया की उर्वरा भूमि भारत के इस रक्त से तृप्त हो गई होती, पर सत्य तो यह है कि यह रक्त 'धर्म' के लिये नहीं, 'राज्य' के लिये बहा था। कुरान में 'सद्भावना का मन्त्र' है, 'विद्वेष' का नहीं। कुरान की आज्ञा तो यवनों को यह है कि पड़ोसी भी यदि उनसे भय खा जाये तो वे उसे इतना अश्वासन दें कि वह उनकी ओर से सर्वथा निश्चिंत और निर्द्वन्द हो जाये।

भारत का अतुल वैभव लुट गया था पर अरबों और तुर्कों की तृप्ति हुई नहीं, भारतीय वीरांगनायें छाती से बच्चों को लगाकर नारीत्व के गौरव हेतु धधकती हुई ज्वालाओं में प्रवेश कर गईं, पर यवनों के हाथ लगीं नहीं। भारतीय रणकौशल, दर्पोभिमान, श्री, विजय, और कीर्त्ति, केसरिया बागा, पट्टका, कटार और देवी चामुण्डा के वरदानों वाला दुधारा, वीर भुजाओं में खौलता हुआ रक्त, और रक्त का तिलक—यह सब इन लूटमार के आक्रमणों से, नंगी तलवारों से, शक्ति पर शक्ति के प्रहार से दबे नहीं। राजपूत शक्ति के 'मध्य-केन्द्र' पर यवनों की पताका न लहरा सकी।

और...१५२५ ई० से पूर्व ही कश्मीर, सिन्ध, राजपूताना, गुजरात, मालवा, चित्तौड़, मेवाड़, गौंडवाना और सुदूर दक्षिण में हिन्दू राज्य विजयनगर स्वतन्त्र हो गये। और दक्षिण में बहमनी बंश ५ भागों में विभक्त होकर एक एक भाग—बरार, अहमदनगर, गोलकुंडा, बीजापुर और बीदर स्वतन्त्र हो गये।

मुगलों को ऐसा ही देश मिला था।

भारत के इतिहास में एक नवीन अध्याय आरम्भ हुआ। इस 'नवीन अध्याय' से मेरा आशय है कि अब तक भारत को जिनका भय था वे घर ही में आ गये। देहली के सुलतानों को पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेशों की ओर से 'मंगोलों' या 'मुगलों' का भय पिछली लगभग ३ शताब्दियों से सताता रहा था। मुगल भारत में आगये और लग भग २२३[1] वर्ष तक सीमान्त प्रदेशों की ओर से भारत को कोई भय नहीं रहा। गज़नी और तैमूर की एक बार पुनः स्मृति कराने १७३६ ई० में 'नादिर शाह' और १७४७ ई० में 'अहमद शाह दुर्रानी' इस ओर से भारत आये थे। दूसरा मेरा आशय केन्द्रीय एवं सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था से है। यह शासन व्यवस्था अकबर ने भारत को दी थी। यही व्यवस्था अंग्रेजों के शासन की आधार-शिला बनी थी। मुगल-युग भारत का द्वितीय 'स्वर्ण-युग' था।

भारत में बाबर (१५२६—१५३० ई०) ने मुगल-साम्राज्य की नीव डाली थी। बाबर ने लिखा :—

'सर्वशक्तिमान की दया और कृपा से यह जटिल कार्य्य मुझे सरल हो गया और

---

१ १५२६—१७४६ ई० के २२३ वर्ष।

वह विशाल सेना आधे दिन के अन्दर ही धूलि में मिल गई'। यह जटिल कार्य्य १५२६ ई० का पानीपत का युद्ध था। देहली का सुलतान इब्राहीम लोदी अपने १५००० सैनकों समेत उस रण-क्षेत्र में काम आया था। शुक्रवार २७ अप्रैल १५२६ को बाबर देहली और आगरा का बादशाह हुआ। काल्पी, धौलपुर और बियाना उसके हो गये थे।

मेवाड़ का राणा सोचता था कि बाबर भी तैमूर के समान लूट-मार कर पुनः अपने देश को लौट जायेगा और वह देहली का अधिपति हो जावेगा। पर हुआ ठीक इसके विरुद्ध। खनवा के युद्ध में 'राणा सांगा' और 'बाबर' के भाग्यों का निर्णय हुआ था। सांगा बियाना लेकर सीकरी की ओर बढ़ा। बाबर की सेना का एक अंग समाप्त कर दिया। बाबर के दल का उत्साह भङ्ग हो गया। बाबर ने 'जिहाद' बोल कर अपनी सेना को उत्तेजित कर दिया। जिहाद का केवल एक ही मूल-मंत्र है—'इस्लाम खतरे में है।' पर बाबर ने जिन शब्दों से सेना को उत्तेजित किया था वे शब्द थे :—

'आइये हम सब कुरान हाथ में लें शपथ लें कि जब तक प्राण रहेंगे युद्ध से पीछे नहीं हटेंगे।'

जिहाद से सेना में एक नवीन स्फूर्ति का संचार हो गया था। बाबर विजयी हुआ। राजपूत-शक्ति विनष्ट हो गई। बाबर ने 'अफगान' और 'राजपूत' शक्ति को तोड़ दिया। उस समय भारत की यही दो शक्तियाँ थीं।

बाबर की राजसत्ता भारत में स्थापित हो गई, फिर घाघरा[1] के युद्ध में बाबर ने बिहार भी ले लिया। बङ्गाल के नसरत खां से सन्धि करली। इस प्रकार सिन्ध से बिहार तक और हिमालय से दक्षिण में मालवा तक उसका राज्य हो गया। १५३० ई० में बाबर इस असार संसार को छोड़ कर चल बसा।

बाबर के पुत्र हूमायूँ[2] (१५३०—१५५६ ई०) ने अपने पिता का राज्य खो दिया। शेरशाह सूरी से परास्त होकर वह इधर-उधर भटका र मृत्यु से पूर्व उसने अपने खोये हुये राज्य के पुनः प्राप्त कर लिया। यही उसके शासन-काल की इतिश्री थी।

भारत पर मुगलों का सर्व प्रथम आक्रमण तैमूर का था। भारत के मुगल तैमूर के वंशज[3] थे। तैमूर से ठीक १२८ वर्ष पश्चात् बाबर भारत में आया था। मुगल मंगोलिया छोड़ने पर ईरान में रह चुके थे—ईरानी सभ्यता का उपभोग कर चुके थे। इसी कारण धर्मान्धता के स्थान पर सहिष्णुता और धार्मिक स्वतन्त्रता उनके साथ आई थी।

---

१ मई ६, १५२६ ई०

२ हुमायुँ का जन्म ६ मार्च १५०८ ई० में काबुल में हुआ था।

३ "Tamerlain's offspring brought in the knowledge of Mohammad, but imposed it on none by the law of conquest, leaving conscience at liberty."

A General Collection of the Best and Most Interesting Voyages.'
By John Pinkerton Vol VIII. पृ० ६४

किन्तु हुमायूँ के काल के समाप्त होते-होते अथवा अकबर के युग* के आरम्भ होते-होते एक महान घटना भारत में घट चुकी थी।

ई० ६६४ से १५५६ ई० तक, अरबों और तुर्कों के काल तक, ग़ज़नी, गोर, गुलाम, अफगान, पठान और तुर्क चंगेज खाँ और तैमूर—सैय्यद और लोदी—बाबर, शेरशाह, और हुमायूँ के काल तक भारत के नगरों, मठों, मन्दिरों और विहारों को नष्ट-भ्रष्ट करके मसजिदों, इमामबाड़ों, जियारतो, मकबरों और मीनारों को खड़ा कर लिया गया था। जज़िया, जकात, खिराज और खाम से हिन्दूओं को दुर्बल बना डाला था। जागीरों से मुसलमानों को मोह डाला गया था।

पीर,[1] पैगम्बर, मुल्ला और मुर्शिद, हज्ज, ईद, शबेबरात, रोजे[2] और नमाज, ईमान, काबा और कलमा, तसबीह[3] और कुरान, सिजदा[4] और सलाम, हक़-हलाल, रूह और कालिब, शरय,[6] मारफत,[7] उफ़्वा[8] और लाहूत,[9] रियाज़त,[10] शगल,[11] ज़िक्र,[12] वहदतुलवजूद,[13] हुलूल,[14] तनासुख[15] और निजात,[16] बुत,[17] हबीब, महबूब, इश्क, आशिक, माशूक, साकी और शराब, शराब-ए-मुहब्बत और अहले-वतन—एक ओर से भारतीय संस्कृति, भाव और भाषा में घुसकर यह सब और दूसरी ओर से 'चेतना', 'सम्प्रीति' और 'मंगल' लेकर यह सब—श्री शंकर,[18] यामुनाचार्य्य,[19] रामानुजाचार्य,[20] निम्बार्काचार्य्य,[21] माधवाचार्य्य,[22] नामदेव,[23] रामानन्द,[24] विद्यापति,[25] कबीर,[26] चन्डीदास[27] रैदास,[28] जयदेव,[29] नानक,[30] बल्लभाचार्य,[31] सूर,[32] परमानन्द, कुम्भनदास, कृष्णदास,

* १५५६ तक। अकबर का युग (१५५६—१६०५ ई०)

१ गुरु (आध्यात्मिक)
२ व्रत
३ माला
४ दण्डवत
५ आत्मा
६ धर्म
७ ज्ञान
८ कर्म
९ सत्य
१० तप
११ अभ्यास
१२ ध्यान
१३ अद्वैत
१४ अवतारवाद
१५ आवागवन
१६ मोक्ष
१७ मूर्ति

१८ श्री शङ्कर जन्म ६८६ ई० दक्षिण प्रदेश
१९ यामुनाचार्य्य जन्म ९५३ ई० दक्षिण प्रदेश
२० रामानुजाचार्य्य जन्म १०१७ ई० दक्षिण प्रदेश
२१ निम्बार्काचार्य्य जन्म ११६२ ई० दक्षिण प्रदेश
२२ माधवाचार्य्य जन्म १२३८ ई० दक्षिण प्रदेश
२३ नामदेव जन्म १२७० ई० महाराष्ट्र
२४ रामानन्द जन्म १३०० ई० उत्तर प्रदेश
२५ विद्यापति (१३६०—१४४८) ई० मिथिला
२६ कबीर (१३७०—१४४४) ई० उत्तर प्रदेश
२७ चंडीदास १४वीं शताब्दी का अंतिम भाग बङ्ग देश
२८ रैदास जन्म १३९८ ई० उत्तर प्रदेश
२९ जयदेव जन्म १४०० ई० मिथिला
३० नानक (१४६९—१५३८) पंजाब
३१ बल्लभाचार्य्य जन्म १४७८ ई० चम्पारन (बिहार)
३२ सूर (१४७८—१५८३) ब्रज
३३ परमानन्द, कुम्भनदास, कृष्णदास
—समृद्धिकाल १५५० ई०

नोट :—विशेष परिचय के लिए देखिये :—

चतुर्भजदास[१], नन्ददास,[१] गोविन्दस्वामी[१], छीतस्वामी[१], महाप्रभु चैतन्य[२], जायसी,[३] कुतबन,[४] मन्झन, मीरा,[५] नरसी[६], तुलसी,[७] दादू[८], नरोत्तमदास[९], विट्ठलनाथ[१०], रहीम[११] (१५५६ ई०) यह सब एक 'राम',[१२] एक 'रहीम', एक 'कृष्ण', एक 'करीम' द्वारा यार को यार से मिलाते रहे थे :—

'यार तक पहुँचा दिया बेताबये दिल ने मेरे।
इक तड़प में मंज़िलों का फासला जाता रहा।'

—जलील मानिकपुरी

दुई को दिल से दूर करने के लिये धार्मिक कट्टरता, पारस्परिक वैमनस्यता, और पक्षपात को, मनुष्य के प्रति मनुष्य के अविश्वास को मिटाने में यह सब प्रयत्नशील रहे थे।

प्रयत्न दो विभिन्न संस्कृतियों—'सामी' और 'आर्य' संस्कृति को 'एक' करने का नहीं था। एक तो वे थीं हीं। यवन और तुर्क 'सामी' संस्कृति के थे, हिन्दू 'आर्य' संस्कृति के।

श्री चौधरी ने अपनी 'पुस्तक'[१३] का परिचय देते हुये लिखा :—

"Communal fraternity may be of two kinds: Sentimental and Intellectual...... The later mutual love for the languages and literatures......The consequence in the medieval age has, therefore, been the fusion of Mohammadan and Hindu culture and civilization. The innermost heart of the Indian people is always alert to receive the *truth,* whatever be the source, it knows no barrier...of caste and creed."

अर्थात्, समाज सम्बन्धी बन्धुता दो प्रकार की होती है—एक रसमय (भाव विषयक) दूसरी मानसिक (ज्ञान सम्बन्धी)। मानसिक बन्धुता में एक दूसरे की भाषा तथा साहित्य के लिये परस्पर प्रेम होता है—फल यह हुआ कि मध्यकालीन भारत में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति एवं सभ्यता का परस्पर विलयन अर्थात् मिलन हुआ। भारतीय व्यक्ति का हृदय सत्य को ग्रहण करने के लिये सदैव ही सावधान रहा है—वह सत्य किसी भी ओर से आया हो अथवा आता हो...धर्म और जाति के किसी भी प्रतिबन्ध को वह नहीं मानता।

यम. टाउनसेन्ड अपनी पुस्तक (*Asia and Europe*) पृ० ४३ पर लिखते हैं :—

"Ninety per cent of the whole body of the Muslims are Indians by blood, as much children of the soil as the Hindus, retaining many of the old pagan superstitions, and only Musalmans because their ancestors embraced the faith of the Great Arabian."

---

१ समृद्धिकाल १५६७ ई०, २ (जन्म १४८६ ई०), ३ (१४९२—१५४२)
४ जन्म १४९३ ई०, ५ (१५०० – १५६३ ई०), ६ (१५००—१८००),
७ (१५२३—१६२३), ८ (१५४४—१६०३), ९ (जन्म १५४५ ई०),
१० जन्म १५३० ई० ११ जन्म १५५६ ई०

१२ 'पूरब दिशा हरि को बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहि मां खोजो, इहै करीमा रामा॥'

—कबीर

१३ *Muslim Patronage to Sanskritic Learning*
By Jitendra Vimal Chaudhari- पृ० ८०-९०

अर्थात्, (भारत की) समस्त यवन जाति में ६० प्रतिशत में भारतीय रक्त प्रवाहित हो रहा है, वे इस भारत भूमि के वैसे ही बालक हैं जैसे हिन्दू, उनमें अनेकानेक पूर्व अन्धविश्वास भरे हुये हैं और वे यवन हैं तो केवल इसलिये कि उनके पूर्वजों ने अरब के धर्म को स्वीकार कर लिया था।

और डा० बेनी प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'जहाँगीर का इतिहास' में लिखा :—

'भारतीय मुग़ल सम्राटों के राजभवनों में यवनों और हिन्दुओं दोनों के उत्सव एक समान उत्साह और समारोह से मनाये जाते थे। विजया को सम्राट के हाथी और अश्व सजधज कर मेले में निकलते थे। रक्षाबन्धन के दिन सम्राट की कलाई में राखी बांधी जाती थी। दीपावली की रात्रि में राज भवन में दीप-ज्योति जगमगा उठती थीं—जुआ तक खिलाया जाता था। शिवरात्रि को महलों में उत्सव होता था। ठीक इसी प्रकार 'ईद' और 'शबेबरात' भी उतने ही उत्साह से मनाये जाते थे।'[1]

इस प्रकार जब-तक, जब-तक भारत में अकबर महान का शासन (१५५६ ई० में) आरम्भ हो तब-तक, तब-तक 'सहिष्णुता' की कोमल भावनाओं से—'प्रेम' और 'एकता' की भावनाओं से—भारत की विचार-भूमि गीली और समतल हो चली थी। धार्मिक 'कट्टरता' और 'पक्षपात', 'भेद-भाव' और 'द्वैता'— इनमें मेल घुस बैठा था। 'भारत' यवनों का अब 'अहलेवतन' हो चला था। पर सत्य यह है वे दोनों संस्कृतियाँ दो नहीं, एक थीं।

किन्तु, 'देहली के आरम्भ के सम्राटों के दिनों से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक योरुप में वह समय था जब योरुप धर्म के नाम पर अनर्थ और अत्याचारों द्वारा अपने विशाल द्वीप को शमशान भूमि बनाने में प्रयत्नशील हो रहा था। लोग धर्म-रक्षा हेतु योरुप के विभिन्न प्रदेशों से, आयरलैन्ड, इंगलैड, फ्रान्स, स्वीडन, स्पेन इत्यादि से अमरीका भागे हुये चले जा रहे थे। केथोलिक, एग्लीकन, लूथरेन, प्युरिटन, प्रेसबिटेरियन, कवेनेन्टर जीवित जलाये जा रहे थे। इतिहासकार टोरिन्स[2] के शब्द है :—

'कट्टर ईसाई धर्म के नाम पर फाँसियाँ खड़ी कर रहे थे...बेड़ियाँ कस रहे थे... कैथोलिक और प्युरिटन लोगों का रक्त निरन्तर टपक रहा था।'

---

१ *History Of Jahangir* By Dr. Beni Prasad पृ० १३३

२ "During the reigns of the earlier Emperors of Delhi, to the middle of the 17th century, complete tolerance was shown to all religions. Shall they who build the tombs of those who at that very time, were busily employed in making Europe one mighty charnel of persecution, and in colonising America with fugitives for consciences sake, rise up in judgment against India, or load the breath of history with the insolent pretence of having then enjoyed a truer civilization ? What if they were taken at their word and called forth with the Covenanter's blood, and the Catholic blood and the Puritan's blood dripping quick from the orthodox hands that all that time were building scaffolds, reveting chains and penning penal 'Acts of Unformity." ?

Empire in Asia. How We Came By Vol II. By W. M. Torrens पृ० ६६।६७

योरुप की भूमि यदि शमशान नहीं हुई तो निश्चय ही विरस हो चुकी थी। सूख चुकी थी। योरुप में धार्मिक 'कट्टरता' और 'पक्षपात' से लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे।

भारत की उस गीली भूमि पर—विचारों की समतल भूमि पर—यवनों और हिन्दुओं के मादरेवतन और मातृभूमि पर—'सामी' और 'आर्य्य' संस्कृति के मध्य विन्दु पर भारत का वह 'नवचन्द्र' इसी भूतल पर उतर कर आ गया था। इस 'नवचन्द्र' से मेरा आशय भारत के सांस्कृतिक संविधान से है—'सुरक्षा', 'सुशासन', 'सामर्थ्य', और 'विक्रम' से है—तुलनात्मक दृष्टि से 'अकबर' 'जहाँगीर' और 'शाहजहां' के युग की महानता से है।

और १४ फरवरी १५५६ ई० को सल्तनते मुग़लिया का ताज मृत्यु द्वार से लौटे हुये १३ वर्षीय बालक अकबर ने पंजाब के गुरदासपुर जिले के कालानूर में ईटों के एक चबूतरे पर पहना था। उस दिन ताज पोशी पर न कोई झन्डा लहराया था, न किसी को इस ताज का पता चला था। वह चबूतरा और बाग आज भी है मगर हिन्दोस्तान पर उस दिन भी कोई 'हिलाली परचम' नहीं था। तुर्कों, अफ़गानों और पठानों ने, अमीरों, उल्माओं, नवाबों, वजीरों और शाहों ने उसे उखाड़ कर फेंक दिया था। 'काबुल' को मिर्जा मुहम्मद हकीम दबाये हुये था। 'पंजाब' में कुछ जिले अकबर के पास थे, शेष पर सिकन्दरशाह सूरी अपना अधिकार जमाये हुये था। 'सिन्ध' और 'मुलतान' में स्वतन्त्र यवन-सत्ता स्थापित हो चुकी थी। मुहम्मद शाह आदिल और उसका सिपैहसालार हेमू विक्रमादित्य बना हुआ 'आगरे' और 'देहली' पर शाही हुकूमत कायम करने के लिये तिलमिला रहा था। भारत के दक्षिण में बरार, बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुंडा, और बीदर में 'शाहों' की हुकूमत कायम हो चुकी थी। बिहार, उड़ीसा और बङ्गाल में नवाबी छा रही थी। मेवाड़, मालवा, गुजरात, जोधपुर, बूंदी, जैसलमेर, चित्तौड़, और गोंडवाना और सुदूर दक्षिण में विजयनगर—यह सब स्वतन्त्र हो चुके थे। यह राजपूत अथवा हिन्दू राज्य थे। राजपूतों की शक्ति किसी का झंडा गाड़ने अथवा·········को नहीं उत्पन्न हुई थी।

क्षत्राणियों ने गर्भ इसलिये नहीं धारण किये थे, लाल इसलिये नहीं जन्मे थे, जन्मोत्सव पर बधाईयाँ इसलिये नहीं गाईं गईं थीं; धनुर्विद्या इसलिये नहीं सिखाई गई थी, लक्ष्य-भेद इसलिये नहीं बताया गया था, विवाह की सुपारी[1] इसलिये नहीं भेजी गई थी, गुडी इसलिये नहीं उछाली गई थी, द्वारचार और मंगल इसलिये नहीं गाये थे, चित्तौड़ की वर-यात्रा इसलिये नहीं की गई थी, स्वयंबर मंडप इसलिये नहीं रचाये गये थे, मंडप के नीचे किसी की माँग इसलिये नहीं भरी गई थी, मंगल-आशीर्वाद इस लिये नहीं दिये गये थे, सिन्दूर की पिटरिया इसलिये नहीं संजोई गई थी, गांठ इसलिये नहीं जोड़ी गई थी, बिदाई के समय वर-बधू पर चंवर इसलिये नहीं डुलाये गये थे, और सासुरे में चावलों से गोदी इसलिये नहीं भरी गई थी, और...और सुहाग की बेला में घूंघट की ओट वीर भुजाओं के आलिंगन में नकबेसर इसलिये उलझ कर नहीं रह गई

---

१ 'हुई सोपारी मनि हरष्यो छइ राव।
बाजित्र बाजइ नींसाणो घाव॥'
—नरपति (बीसलदेव रासो)

थी·········· ·····कि बहिन की 'राखी'—भाई के प्रति बहिन की 'मंगल-कामना' को और माँ के 'दूध' को कोई लजा दे, अपनी संस्कृति से गिर जाये।

राजपूतों की कलाई में बहिन की राखी ने, दुधारे में मां के दूध ने, फेंटा और कटार ने, स्वाभिमान के बीड़े ने, रण के उत्साह ने, घोड़ों की बागों ने, फड़कती हुईं भुजाओं ने, रण-भेरी के निनाद ने, रणक्षेत्र ने, रणकौशल और चक्रव्यूह ने, हाथी, अश्वों और उन पर से तीरों की बौछारों ने,···उनके दुर्गों ने—'अजयमारु' (अजमेर), 'रणथम्भौर', 'कालिंजर' और 'चित्तौड़' ने—दुर्गों के परकोटों ने, उनके चारों ओर खुदी हुईं खाइयों ने—उनके राष्ट्र, गौरव, और आत्म-सम्मान ने···उजड़ती हुई खेती-बारी ने,...लुटते हुये गांव और नगरों ने, टूटते और जलते हुये मठ और मन्दिरों ने, 'आर्य्य' संस्कृति पर 'सामी' संस्कृति के किये हुये आघातों ने,···और जौहर के शाकों में जली हुई राख ने···चप्पा चप्पा भूमि पर जमें हुये रक्त ने—इन सब ने किसी के झंडे को उखाड़ने की शक्ति नहीं दी, सबों को अपना-सा बना लेने का गौरव दिया था।] इस 'सा' शब्द में जो 'अपना' से जुड़ा है, यदि मैं यह कहूँ, 'आर्य्य संस्कृति' की 'समता' भरी हुई है, 'सामी' संस्कृति की 'विषमता' नहीं, तो निश्चय ही इसका अर्थ यह होगा कि 'सामी' संस्कृति में विषमता है या नहीं यह तो बाद की बात होगी, पर निश्चय ही 'आर्य्य संस्कृति' को मैं 'विषम' बना डालूंगा। दूसरे को बुरा कहने के पहले मनुष्य को निश्चय ही स्वयं बुरा होना पड़ेगा। और ध्यान रहे बैर बैर से नहीं मिटता है, बुराई बुराई से नहीं मिटती है। बुरा कोई भी नहीं। कबीर ने बुरा किसी को नहीं कहा था।

'बैर बैर से नहीं मिटता है'—इन शब्दों के लाने से मेरा यहां ऐसा कोई आशय नहीं है कि मानों मैं महात्मा बुद्ध जी के 'शब्दों' को विश्व दर्शन का मूल स्रोत अथवा मूल मन्त्र बता कर अपने पाठक को किसी ऐसे मार्ग की ओर ले जा रहा हूँ जहाँ वह 'हिन्दू' और 'बौद्ध' दर्शन में कोई भेद-भाव खड़ा करले अथवा बौद्ध दर्शन की महानता में बह जाये अथवा १९४७ ई० के भारत विभाजन—भारत और पाकिस्तान को देख कर यह मान बैठे कि लगभग ४००० वर्ष पूर्व से यह संस्कृतियां—'आर्य्य' और 'सामी' संस्कृति—दो भिन्न धाराओं में चली आ रहीं थीं और अन्त में भी दो ही रहीं—भारत हिन्दुओं का हो गया, पाकिस्तान यवनों का। 'हिन्दु और यवन न एक थे, न हैं, न होंगे—क्योंकि वे एक दूसरे से विभिन्न संस्कृति की उपज हैं'—ऐसा नहीं है, नहीं है। संस्कृतियों में भेद नहीं है, भेद छल, कपट और अविश्वास में है। ध्यान रहे किसी राजपूत ने निहत्थे पर तलवार नहीं चलाई थी। न किसी के 'चरित्र' अथवा 'सतीत्व' पर आँच आने दी। आज का भारत 'धर्म' अथवा 'अर्थ' पर नहीं, 'मानव' के आधार पर खड़ा है।

अकबर के पूर्व देहली के सुलतानों में से बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद बीन तुग़लक़, फीरोज़ तुग़लक़ और शेरशाह सूरी ने विशेष ध्यान देश की आन्तरिक सुव्यवस्था और शासन की ओर दिया। देहली के सुलतानों के सम्मुख पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेशों की ओर से मुगलों के आक्रमणों के भय के कारण सेना का एक विकट प्रश्न सदैव ही रहता था। इसके अतिरिक्त उनकी राजसत्ता सदैव ही हिलती रही।

गुलाम[१], खिलजी[२], तुगलक[३], सैय्यद[४], लोदी[५] और सूरी[६] के लगभग ३५० वर्ष के शासन काल में मंगोलों के आक्रमणों ने, अमीरों के षड़यंत्रों और विद्रोहों ने, सुलतानों की सम्पूर्ण भारत विजय की आकांक्षा ने केन्द्रीय शासन व्यवस्था के लिये न कोई अवसर ही छोड़ा था और न कोई शासन-सूत्र ऐसी स्थिति में टिक ही सकता था। किन्तु यदि यह कहा जाये कि वर्तमान भारत की शासन-पद्धति का बीजारोपण इस काल में हो चुका था तो यह इतिहास का कोई ऐसा कथन नहीं होगा जिसका आधार इतिहास में ढूढ़ें न मिले। आज से दश वर्ष पूर्व के भारत पर लगाये हुये 'कन्ट्रोलों'[७] को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानों ६०० वर्ष पूर्व का खिलजी-युग भारत में पुनः आ गया हो। खिलजी (अलाउद्दीन खिलजी) युग में बाजारों में बिकने वाली वस्तुओं की एक सूची बन गई थी, व्यापारी रजिस्टर्ड हो गये, भाव निर्धारित[८] कर दिये, वस्तुओं के मूल्य दूकानों में टांग दिये गये। मन्डी स्थापित हो गई। अमीरों को मूल्यवान वस्तुओं को खरीदने के लिये 'परमिट' लेना पड़ता था। फसलें खेत में ही बिक जातीं थीं। दोआबे का किसान एक मन से अधिक अनाज अपने यहाँ नहीं रख सकता था और अमीर १२ मन से अधिक नहीं। सुलतान कपड़ा बाहर से मंगाता था। पर हां उस युग में 'चोरबाजारी' और 'बेईमानी' नहीं हो सकती थी। 'कम तोलने वाले का उतना ही गोश्त काट लिया जावेगा'—यह दण्ड था। ब्लैकमार्केट हो, तो कैसे ? किन्तु बीसवीं शताब्दी की दृष्टि में यह दण्ड अमानुषिक है। पर अलाउद्दीन खिलजी ने यह 'कन्ट्रोल सिस्टम' इसलिये नहीं निकाला था कि प्रजा का हित हो वरन वह तो 'सेना' की पूर्ति के लिये था। अलाउद्दीन ने अपनी सेना के सैनिक को वेतन देना जागीर देने की अपेक्षा कहीं उचित समझता था। अलाउद्दीन ने और अलाउद्दीन से पूर्व बलबन ने अमीरों की जागीरें भी छीन लीं थीं। यह 'जागीरें' इल्तुतमिश ने देना आरम्भ किया था। इन जागीरों के बदले अमीरों को सेना में जाकर योग देना पड़ता था। पर इल्तुतमिश से कहीं अधिक चतुर यह जागीरदार थे जो सेना में योग देने के समय पर 'रिश्वत' (उत्कोच, घूस) से अपना काम निकाल लिया करते थे। जाते वे कभी नहीं थे। इसी तिकड़म को देखकर बलबन ने 'जागीरें' छीन लीं। इनके छीनने के अन्य भी अनेक कारण हैं पर इनके देने का मुख्य कारण सेना-शक्ति का नियोजन था। किन्तु बीसवीं

---

१ गुलाम वंश (१२०६—१२९० ई०)

२ खिलजी वंश (१२९० - १३२० ई०)

३ तुग़लक़ वंश (१३२०—१४१२ ई०)

४ सैय्यद वंश (१४१४—१४५१ ई०)

५ लोदी वंश (१४५१—१५२६ ई०)

{ बाबर (१५२६—१५३० ई०)
{ हुमायूं (१५३०—१५५६ ई०)

६ शेरशाह सूरी (१५४०—१५४७ ई०)

७ देखिये:—Essential Supplies (Temporary Powers) Act XXIV Of 1946 तथा उससे सम्बन्धित अनेकानेक सरकारी आज्ञायें।

८ तु० Price Control

शताब्दी में भारत में जब 'ज़मीदारी' का उन्मूलन होने लगा तो ज़मींदारों ने समझा कि भारतीय सरकार (प्रादेशिक सरकार[1]) उन पर कोई आफ़त बरपा कर रही है—उन्हें लूटे ले रही है। वे यह भूल गये कि ज़मींदारी का उन्मूलन तो ४००० वर्ष पूर्व से होता हुआ चला आ रहा था। मिस्र, बेबीलोनिया, ईरान, ग्रीक, कारिन्थ, कारथेज, रोम इत्यादि की भूमि एक-एक के हाथ से युगों-युगों से निकलती हुई चली आ रही थी। भारत की बड़ी-बड़ी 'रियासतें', 'जागीरदार', 'ज़मींदार', 'लैन्डलार्ड'—इन्हीं का एक विशाल अथवा विराट रूप थीं। इंगलैन्ड, फ्रान्स, स्पेन, पुर्तगाल, हालैन्ड—एक शब्द में 'योरुप' कहिये—इन सबों ने सामन्तवादी युग (Feudalism) को देखा था जिसमें किसान ने अपने 'रक्त' और 'पसीने' से लार्ड की भूमि जिसे 'Fief' 'फ़ीफ़' कहते थे, जोती, बोई और काटी थी। ग्यारहवीं शताब्दी[2] में फ्रान्स में तो किसान का मूल्य एक घोड़े से भी कम रह गया था। भूमि के इस धीरे-धीरे एक-एक के हाथों से निकलने का परिणाम आज यह हुआ कि विश्व में 'सहसत्ता'—'सह-अस्तित्व' (Co-Existence) की भावनायें मानव को उद्वेलित करने लगीं। जब तक भूमि रहीं, बँटती रही। जब तक भू-गर्भ में रत्न रहे—सोना, चांदी, कोयला, लोहा, पेट्रोल—खानें खुदती रहीं। पर आज मानव को भूमि के प्रति आशङ्का हो उठी है—सम्भव है भूमि अब अन्न-दान बढ़ती हुई जन-संख्या को न दे सके, इसीलिये वह 'मंगल' और 'चन्द्र' प्रदेशों की खोज की ओर उद्यत हो रहा है—निश्चय ही यह भुला कर कि भूमा का बरदान 'धन-धान्य' है। यह कविता अथवा भावुकता नहीं है। कठोर सत्य है।

पर 'भूमि' का मालिक कौन है—यह प्रश्न आज का नहीं, पुराना है। सामान्तवादी युग के पश्चात् योरुप में जब राज-सत्ता पर पूर्ण अधिकार 'राजा' का हुआ तो देश-देश की भूमि राजाओं की हो गई। ई० १८३५ में प्रथम बार विश्व के इतिहास में 'समाजवाद' (Socialism) शब्द का प्रयोग हुआ। उस समय इस शब्द का क्या अर्थ था यहां यह मेरा विषय नहीं है। पर आज का रूस भूमि को राष्ट्र की कहता है, वह तो व्यक्ति को भी राष्ट्र का ही कहता है। निश्चय ही भूमि को अभी दो डग और उठाना है—एक डग में विश्व के प्रत्येक देश की भूमि 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन' की हो जावेगी और द्वितीय डग में 'विश्व' के मानव की।

इन यवनों के काल में भूमि का मालिक 'किसान' था। पर हिन्दू किसान की बड़ी दुर्गति थी। न वे भूमि ही छोड़ कर भाग सकते थे, न भर पेट भोजन ही मिल पाता था। भर-पेट भोजन से मेरा तात्पर्य केवल इतना है कि उनके पास केवल 'जीविका-मात्र' के लिये पैसा छोड़ा जाता था। 'कर' अनेक थे—जज़िया, जकात, खिराज, खाम, भूमिकर, चराई-कर, गृह-कर और सिंचाई-कर (पैदावार का १/१०)। अलाउद्दीन के युग में ५०% भूमि-कर लगता था। हाँ, आय-कर नहीं था। भूमि-कर वसूल करने के लिये ठेके की प्रथा थी। ठेकेदार, मुकद्दम और चौधरी ठेके से कहीं अधिक रुपया वसूल कर लेते थे। गयास-

---

१ देखिये :—U. P. Zamindari and Land Reforms Act, 1950

२ देखिये पृ० १५५ टि० ४

उद्दीन तुग़लक़ ने इस प्रथा को बन्द कर दिया। इतिहास ऐसा मानता है कि फ़ीरोज़ ने यह 'कर' कम कर दिये थे।

फ़ीरोज तुग़लक ने अपने यहाँ 'शरय' (शरीयत) को 'कानून' बना दिया। मुफ्ती कानून बताता था, काज़ी फैसला देता था। यही 'शरय' नाना रूपों से निकलती हुई अंग्रेजों के काल में 'मुस्लिम कानून' बन गई। अंग्रेजों ने भारत में आने पर हिन्दुओं और यवनों दोनो के कानूनों को अपना लिया था। हिन्दुओं की 'स्मृतियों' को ले लिया और यवनों की 'शरय' को ले लिया और 'हिन्दू-ला' (Hindu Law) तथा 'मुस्लिम-ला' (Muslim Law) रच डाले। यह कानून आज भी 'हिन्दू' और 'यवनों' के व्यक्तिगत मामलों में लागू हैं। फीरोज़ के युग में भी 'शहर के निट्ठलों' पर विशेष ध्यान रक्खा गया था। उनकी एक सूची बना ली गई थी। आज की भाषा में इन निट्ठलों को १०९[1] अथवा ११०[2] का 'गुन्डा' या 'बदमाश' कह लीजिये। उसके युग में इन्हें योग्यतानुसार कार्य दे दिया जाता था और आज के युग में इनसे केवल एक 'जमानत' लेकर छोड़ दिया जाता है और जमानत न देने पर कम से कम एक साल के लिये कारागार भेजकर पिन्ड छुड़ा लिया जाता है। जेल में यह लोग 'दुबाड़ा' (दुबारा) (Habitual) कहलाते हैं। इस यवन काल में सरकारी रुपया गबन[3] करने वालों को तथा सरकार के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। फीरोज़ ने अपने युग में 'जागीरों' की प्रथा पुनः स्थापित कर दी थी। दीवाने खैरात (जहाँ दान दिया जाता था), मदरसे[4], मकतब और मतब (औषधालय) भी फीरोज़ ने खोले थे।

इस यवन-काल की राजसत्ता का विशेष स्तम्भ 'गुप्त-चर' प्रथा रही है।

इस प्रकार इस काल में उपरोक्त सब वंशों की बाह्य नीति 'एक' रही थी—पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेशों की ओर से मंगोलों के आक्रमणों से सुरक्षित रखना। गृह-नीति भी 'एक' रही—अमीर-उलमाओं को दबाये रखना, राजपूतों को मिटाये रखना। उनका 'सैनिक शासन' तथा 'रण-कौशल[6]' उच्च कोटि का हो—यही उनकी राजनीति थी। उनकी धर्मनीति—'कट्टरता' में देशियों का विदेशियों के प्रति और विदेशियों का देशियों के प्रति अविश्वास भी भरा हुआ था।

---

१ "A person who has no ostensible means of subsistence or who can not give a satisfactory account of himself...........".

Section 109 Criminal Procedure Code.

२ "A person who is by habit a robber; thief or a forger......."

Section 110. Criminal Procedure Code.

३ भारतीय दंड विधान—धारा ४०९

४ भारतीय दंड विधान—धारा १२१ 'अ' के समान

५ बरनी के अनुसार—४० मसजिदें, ५०० सराय, १०० औषधालय, ५० बांध और २५० पुल—फीरोज़ ने बनवाये थे।

६ War-Strategy.

शेरशाह सूरी के युग में 'रइय्यत' शासन-पद्धति की आधारशिला बनकर आई। शेरशाह ने इसी भारत-भूमि पर जन्म[1] लिया था—हिसारफ़ीरोज़ा में। जौनपुर[2] में पढ़ा था। लगभग २१ वर्ष तक अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध किया था। शेरशाह ने शासन का अनुभव अपनी 'जागीर' पर ही कर लिया था। पर उसकी सौतेली मां के कारण, फिर, यह जागीर उसके हाथों से निकल गई थी। उसने बिहार के सुल्तान मुहम्मद लोहानी के यहां नौकरी कर ली।

आगरे में जाकर उसने मुगल-शासन भी देखा था।

बिहार में जब सुल्तान लोहानी की मृत्यु हो गई तो उसका पुत्र जलालुद्दीन अपनी माता[3] की संरक्षणता में बिहार की गद्दी पर बैठा। शेरशाह जिस प्रकार अपने स्वामी की सेवा करता रहा उसी प्रकार इस नाबालिग़ जलालुद्दीन की सेवा में रहा। बंगाल के नबाब नसरत खां ने मौक़ा पाकर 'बिहार' को अपना बनाना चाहा। बिहार और बंगाल में युद्ध छिड़ गया। शेरशाह विजयी हुआ। शेरशाह का भाग्य यों चेता।

शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन से स्पष्ट हो चुका है कि वह एक 'जागीरदार' से बढ़कर हुमायूँ से टक्कर लेने वाला कैसे हो गया? उसके पास अपना एक चरित्र था। उस चरित्र में विशेषता केवल इतनी थी कि यदि वह सेवक बनकर रहा, तो, और स्वामी बनकर रहा, तो वह अपने प्रति सदैव ही सत्य रहा। लोहानी की मृत्यु पर अथवा बिहार की विजय पर 'बिहार' का शासन वह स्वयं दबाकर बैठ सकता था। लोहानी की स्त्री दूदू[4] बीबी को अपनी बेगम बना सकता था और उस 'साहबजादे' को कहीं खोखरों में गाड़ देता। पर······पर भारत-भूमि का इतना असर है। इस भूमि पर जन्म लेने वाला व्यक्ति इस भूमि पर बहे हुये रक्त से नहीं, मां के दूध की धारों से अपने 'विश्वत्व'[5] को—'विश्व भावनाओं' को—'बन्धुत्व', 'प्रेम', और 'एकता' को गले गले तक सींचता रहा है। जब तक दम रहा है,सत्य पर अड़ा रहा है। उसने विश्वासघात कभी नहीं किया। 'विश्वासघात कभी किया है,'—सम्भव है, यह मेरी भावुकता हो, पर ऐसा नहीं है, नहीं है। यदि किसी ने विश्वासघात किया है तो निश्चय ही वह अपने को धोखा दे बैठा। संस्कृतियों ने निष्कपटता सिखाई है—वह संस्कृति चाहे 'आर्य्य' हो,चाहे 'सामी'। शेरशाह ने इस 'बिहार' विजय पर वहां का अपने को शासक घोषित नहीं कर दिया था, न विजय-बल से उसे दबा बैठा। जब तक बिहार के अमीरों द्वारा जलालुद्दीन के कान शेरशाह के विरुद्ध न भर दिये गये थे और जब तक जलालुद्दीन शेरशाह के विरुद्ध बंगाल के नबाब से स्वयं न जाकर मिल गया था, तब तक शेरशाह ने बिहार का स्वतंत्र शासक बनने के विषय में सोचा भी नहीं था।

इस प्रकार इल्तुतमिश द्वारा चलाई हुई 'जागीर-प्रथा ने' —आज से ७५३ वर्ष पूर्व की 'जागीर प्रथा' ने छोटे-छोटे आदमियों को भी 'भूपति'—'ज़मींदार', 'जागीर-दार'—बनने का अवसर दे दिया था। 'ज़मींदार' और 'रइय्यत' का सम्पर्क बहुत ही

१ जन्म १४८६ ई०

२ जौनपुर उस समय 'शिक्षा और संस्कृति' का केन्द्र था।

३ बिहार के जीते जाने पर भी जलालुद्दीन ही वहां का शासक रहा।

४ सुल्तान मुहम्मद लोहानी की स्त्री दूदू बीबी थीं। दूदू बीबी की मृत्यु के उपरांत बिहार पर बंगाल के नबाब नसरत खां ने चढ़ाई की थी।

निकट का हो गया था। नवाबी और बादशाही घर घर में पहुँच चुकी थी। दो बीघे[1] वाल भी अपने को सुल्तान से कम समझने का कोई कारण नहीं ढूँढ़ पाता था। 'रइय्यत'में रह गया—'किसान'। किसान न किसी के लेने में था, न देने में। वर्षा नहीं हुई,तो रो बैठा। टिड्डीदल आ गया, तो भाग्य ठोंक बैठा। लगान के माफी की दरख्वास्त दे दी। यदि माफी नहीं हुई, तो पेट काट कर लगान दे दिया। कोई फौज लेकर उसके खेत में से निकल जाये, फसल बरबाद हो जाये अथवा कोई जमींदार जुल्म ढा ले,तो किसान अपनी झोपड़ी में बैठकर दो चार आंसू ढाल ले, अपने ईश्वर को कोस ले या पेट में सर देकर सो रहे पर गोरीधन की याद में कोई फगुआ गाने का साहस नहीं कर सकता था, अर्थात् खुश नहीं हो सकता था। शेरशाह ने अपनी 'रइय्यत' और 'किसान' को 'खुशहाली' बख्शने का पहला क़दम उठाया था। किसान से उसकी भूमि की उपज का १।४ 'कर' रूप वह लेता था। 'कबूलियत' और 'पट्टा'—यह उसी के युग के हैं। कबूलियत किसान की ओर से और पट्टा सरकार की ओर से होता था। 'कर' 'पैदावार' और 'रुपये' में—दोनों में लिया जाता था। इसने वह सब रीतियाँ बन्द कर दीं जिनसे अनिधकार रूप में किसानों से पैसा ले लिया जाता था। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह किसी किसान को न लूटता था, न दास बनाता था और न उसके खेत में से होकर फौज को निकालता था। इसकी भूमि व्यवस्था 'रैयतवाड़ी प्रथा' कहलाती थी जिसको अङ्गरेजों ने भी अपना लिया था।

इसी भाँति उसकी दृष्टि न्याय पर भी थी। माल[2], दीवानी[3] और फौजदारी[4]—तीनों प्रकार की अदालतें थीं। 'शिक़दार', 'मुन्सिफ' और 'काजी' होते थे। इनमें से शिकदार फौजदारी के मुकद्दमें करता था, मुन्सिफ माल के और काजी दीवानी के मुकद्दमे करता था। किन्तु एक बार अभियोग के प्रमाणित होने पर दण्ड कठोर दिया जाता था। न्याय की समानता उसके युग की विशेषता है। पञ्चायत-प्रथा भी थी जहां काजी दीवानी के मुकद्दमे करता था। किन्तु चोरी, डकैती और हत्या का पता लगाने का उसका बड़ा ही विचित्र साधन था। कहीं भी चोरी, डकैती अथवा हत्या (क़त्ल) हो जाये और यदि चोर, डकैत और हत्यारा नहीं पकड़ा जा सका तो ओरे-धोरे के गांव के 'मुकद्दम' या 'मुखिया' पकड़ लिये जाते थे। यह वही बात थी जो रसकिन[5] ने एक बार इंगलैन्ड को सुझाई थी। किन्तु यदि आज का समय होता तो चोरी, डकैती एक न पकड़ी जाती और मुकद्दम सैकड़ों जेल चले जाते। उस समय प्रजा चोर, डकैतों और हत्या करने वालों को पकड़वाने

---

१ शेरशाह के युग में यह 'बीघा' ३६०० वर्ग गज का होता था। यह सिकन्दरी गज है। अलाउद्दीन के काल में भूमि 'जरीब' से नापी जाती थी। इसने रस्सी से नपवाना आरम्भ किया था।

२ Revenue.

३ Civil.

४ Criminal.

५ John Ruskin. (1819—1900)

में पूर्ण सहयोग देती थी। आज अपराधियों को पकड़वाने का कानून* होते हुये भी जनता ऐसा करने में हिचकती है। न पकड़वाने वाला का ही विश्वास किया जा सकता है, न पकड़नेवाले का ही। पुलिस का अफसर उस समय भी 'कोतवाल' कहलाता था। 'मोहतसिब' लोगों के चरित्रों को देखा करता था।

शेरशाह ने डाक का भी प्रबन्ध किया। उस युग के पोस्ट आफिस सराय की चौकी में होते थे। लगभग १७०० सरायें थीं। एक सराय से दूसरी सराय तक डाक घोड़े पर और पैदल जाती थी। योरुप में यह डाक 'कोचिज़' (बग्घियों) में जाती थी। व्यापारियों की रक्षा का भी विशेष प्रबन्ध था।

इस प्रकार शेरशाह की शासन व्यवस्था बहुत कुछ मानों में वर्तमान शासन पद्धति की आधारशिला बनकर आई थी।

अकबर को 'शासन-पद्धति' किसी उत्तराधिकार अथवा 'दाय में' नहीं मिली थी। पर उसकी शासन-पद्धति केवल एक विचार को लेकर चली थी। वह विचार केवल इतना था—'बलवान निर्बलों पर अत्याचार न करें'[१] :—

"—See ! that strong may not oppress the weak."

दीवाने आला (वजीर), दीवान, सूबेदार, सद्रे सुदूर, सद्र[२], कोतवाल, थानेदार, मोहतसिब[३], तहसीलदार, कानूनगो, अमीन, मुकद्दम, पटवारी, करोड़ी[४],—काजी-उलकुज्ज़ात[५], काज़ी[६],—बख्शी[७], मीर अतिश या दरोगे-तोपखाना, सिपहसालार[८], नाज़िम, फौजदार, दरोगे-डाक-चौकी, हरकाराह, वाके-नवीस, अखबार-नवीस, और खान-ए-सामान[९]—प्रत्येक विभाग के बड़े-से-बड़े शासक से लेकर छोटे-से-छोटे शासक को सचेत रहना पड़ता था कि वह किसी निर्बल पर अत्याचार तो नहीं कर रहा है। बलवान दुर्बलों पर अत्याचार न करें—'कबीर' के शब्दों में यह भावना कैसी स्पष्ट आई है :—

'दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव के स्वास से, लोह भस्म हो जाय॥'

—कबीर

---

* देखिये :—(भारतीय) 'अपराध-विधि' (Criminal Procedure Code). धारा ४२, ४३, ४४, ४५ तथा ५६

१ *Mughal Administration* By Jadunath Sarkar पृ० ८१।८५।८६

२ प्रधान

३ चरित्र-निरीक्षक

४ लगान वसूल करने वाला

५ प्रधान न्यायाधीश

६ न्यायाधीश

७ सेनाध्यक्ष

८ सेनापति

९ रसोई अध्यक्ष

अकबर ने इसी से 'बकाया' किसानों से बहुत आसान किश्तों में वसूल करने का हुक्म सादिर किया था अर्थात् शेष का केवल ५ प्रतिशत प्रत्येक फसल के अवसर पर वसूल करने की अकबर की आज्ञा थी।

अकबर की न्याय व्यवस्था भी अपने ढङ्ग की थी। सूबे का काज़ी न्याय करता था, उसके विरुद्ध अपील 'दीवान' के यहाँ होती थी या क़ाज़ीउलक़ुज़्ज़ात के सम्मुख। पर उस समय 'वकील' नहीं होते थे। अकबर का 'वज़ीर' 'वकील' कहलाता था। न्याय शीघ्र से शीघ्र किया जाता था। अकबर स्वयं सप्ताह में एक बार[१] न्यायाधीश का आसन ग्रहण करता था। उसके सम्मुख हत्या के मामले पेश होते थे। दीवानी के भी बड़े-बड़े मामले पेश होते थे। फांसी किसी को नहीं दी जाती थी जब-तक फांसी की सजा अकबर द्वारा आदेशित[२] न हो जाये। फांसी मंगलवार[३] को दी जाती थी। फांसी दिये जाने वाले व्यक्ति के सम्बन्धियों को कुछ 'रकम' भी दी जाती थी। अकबर के 'दण्ड' भी अपने विचित्र ढङ्ग के थे। बाल कटाकर, काला[४] मुँह करके सड़कों पर घुमाया जाता था। किन्तु यह कोई नवीन अथवा विचित्र बात नहीं थी। हिन्दुओं के युग में प्राचीन हिन्दू-दण्ड-शासन-पद्धति में 'अङ्ग-भङ्ग' दण्ड का एक रूप था। किन्तु अपराधी को 'प्रायश्चित' तथा 'अनुताप' की भी व्यवस्था थी। व्यवस्थायें अपने-अपने युग की अपने ढंग की हैं पर युग-युग के पुरुष ने विधानों की 'काट' निकाल ली है और उन्हें अपनी ओर मोड़ लिया है। बरनीअर के शब्द[५] है :—

> 'काज़ी और उसके क्लर्क को कुछ थोड़े से पैसे देकर और झूठे गवाहों के खरीदने में कुछ और खर्चा करके मुकद्दमे को जीता जा सकता था अथवा मुकद्दमों में तारीखों पर तारीखें पड़वाई जा सकती थीं।'

कुछ भी हो, विद्वानों का कथन है कि अकबर की न्याय व्यवस्था उस युग के विश्व के अन्य किसी राष्ट्र की न्याय व्यवस्था से किसी रूप में कम नहीं थी। अकबर के युग में दण्ड कठोर के अतिरिक्त अनिश्चित था। सजायें साल, दो साल, तीन साल, सात साल और चौदह वर्ष अथवा आजीवन की नहीं थीं।

---

१ 'Once a week the Emperor giveth judgment for crimes capital and civil.' Roe: *Letter to Lord Carew*, January 17, 1616.

२ 'When any man deserves death, a courier is despatched (to the Emperor) to know his pleasure'. Thevenot. *Travels* Part III पृ० १६

३ '*Tuesday*' was the day of execution.' William Finch.

४ 'The face of the culprit was blackened, his hair cut, and he was paraded through the streets.' Encyclopaedia of Islam पृ० १३२

५ 'A few rupees to the Kazi or his clerk and a few more expanded over buying false witnesses, would have gained the litigant his cause or prolonged it as long as he pleased.'

Bernier.

यदुनाथ सरकार[1] का कथन है :—

"मुगल साम्राज्य में…समस्त प्रदेशों में शासन पद्धति एक थी, एक भाषा (फारसी भाषा) थी—सारी, तमाम सरकारी मिसलों, फरमानों, सनदों, माफियों, परवानों, पत्रों और रसीदों में एक फारसी भाषा का ही प्रयोग होता था। वजन भी एक समान, एक-से मूल्य, एक नाम…एक-सी धातु…सरकारी कर्मचारियों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर तबादिले भी होते थे। एक साम्राज्य के आधीन सब लोग इस विशाल देश की एकता का अनुभव करते थे।"

यदुनाथ सरकार के आधार पर अकबर के साम्राज्य में २० सूबे थे। स्मिथ ने १५ बताये हैं। उस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत निम्नलिखित सूबे थे जो शासन के एक सूत्र में बंधे हुये थे :—

'काबुल, लाहौर, मुलतान, देहली, आगरा, अवध, इलाहाबाद, अजमेर, गुजरात, मालवा, बिहार, बङ्गाल, खानदेश, बरार, अहमदनगर।' उड़ीसा, काश्मीर और सिन्ध—यह भी उसके सूबे थे—ऐसा भी इतिहासकारों का मत है।

किन्तु इस विशाल साम्राज्य को 'बन्धुत्व' और 'मैत्री' शासन की एकता ने ही नहीं दी थी। शासन का संचालन[2] फारसी भाषा से होता था। देश की भाषा संस्कृत और हिन्दी थी। लेनपूल महोदय का कथन है :—

'अकबर के समय से पूर्व हिन्दू फारसी का अध्ययन नहीं करते थे।'

—लेनपूल

और 'आइने-अकबरी' मे यच० ब्लाकमैन ने लिखा :—

'इसलिये हिन्दू यवन शासकों मे राजनैतिक क्षेत्र में निम्नस्तर पर थे।'

लेनपूल महोदय ने, फिर, लिखा, 'टोडरमल की शासन पद्धति की एक विशेषता यह थी कि उन्होंने विधान बना दिया था कि सम्पूर्ण राज का लेखा हिन्दी के स्थान पर फारसी भाषा में रक्खा जायेगा।' फल यह हुआ कि १८ वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते फारसी यवनों की अपेक्षा हिन्दुओं में अधिक फैल गयी।' धन-लाभ के लिये फारसी का अध्ययन आवश्यक हो गया था।

संस्कृत भाषा में फारसी का रंग चढ़ गया। 'श्री हुँमायु-कुल-तिलक-मणे', 'श्रीरकर धरणीपाल', 'गाज़ी जलाल उद्दीन क्षितिप-कुल-मणे', जहाँगीर को प्रथम 'शयामं यज्ञोपवीत', मुद्दफफरशाह को 'पार्थिव यशोरशेः', निज़ामशाह को 'अयं कामो निज़ामो,' शाहजहाँ को 'श्री मच्छाहिजंहा' और शेरसाह को 'सेरशाह-क्षितिप-कुलमणेरश्व,कोठीश्वरस्य' आदि संस्कृत शब्दों से विभूषित किया गया था।

---

१ *Mughal Administration* By Jadunath Sarkar. पृ० १२९।१३०

२ 'Before the time of Akbar the Hindus as a rule did not study Persian'. *Medieval India* By Lanepeole.

इस प्रकार भारत में अकबर के काल के समाप्त होते-होते फारस के इब्न-सीना[1] की 'शिफा', सुलतान महमूद की 'गज़ल', उनसुरी[2] के 'क़सीदे', फरुख्खी[3] के 'हदाइक़्युसियर' उसका 'दीवान', फिरदौसी[4] का 'शाहनामा', युसुफ़-जुलेखा, 'असादी[5] के 'मनुघरा', निज़ामुल[6]-मुल्क का 'सियासत-नामा', उमर खैयाम[7] की रुबाइयाँ, आबु-सईद[8]-इब्न-अब्बुल ख्वार का रिसाला—'हूरों का रिसाला,' बलख के सनाई[9] का 'कारनामा'(कर्मवाद) 'अक़लनामा' (बुद्धिवाद), हमीदी की 'मक़ामात[10]', निज़ामी की 'शीरीं-फरहाद', 'लैला-मजनू', सादी की 'गुलिस्ताँ','बोस्ताँ', हाफिज़, अनवरी—और फारस साहित्य के 'क़सीदे', 'ग़जल', 'जबाब', 'ताज़िया' (जोशीले खेल) 'तसनीफ़' (वीरता के गीत), 'क़ाफ़िया', 'तसबीब' (शोक गीत), 'तर्ज-बन्द', 'तरकीब-बन्द', 'मसनबी', 'मरसिया', 'हजो' (उपहास्य काव्य)', 'मिसरा', 'मतला' (पद की प्रथम पंक्ति), 'नसर' (गद्य), 'नसरे मुसज्जा' (गद्य काव्य)—और शराब, साकी और शबाब--इन सब के लिये स्थान हो गया।

इसी प्रकार १४६५ से १५६२ ई० तक के काल में 'अरब' के अन्तर्गत 'स्पेन' (हसपानिया), 'सिसली', 'मराको', 'ग्राडा' के 'जलाल' व 'मुब्राशाह' (यवन-स्पेन के लोक-गीत) इत्यादि को भी स्थान हो गया। 'सूर' कहा करते थे:—

'मधुबन तुम कत रहत हरे'

—सूर

और 'अब्दुल रहमान' अपने 'खजूर' (जिसको 'सीरिया' से लाकर 'कारडोवा' में अपने बाग़ में लगाया था) से कहा करता था :—

---

१ बुखारा के इब्न-सीना (जन्म ६८० ई०—१०३७ ई०)

२ 'उनसुरी' सुलतान महमूद ग़ज़नी के दरबार का राजकवि था। महमूद के दरबार में ४०० कविगण थे। उनसुरी (मृ० १०४० या १०५० ई०) को ३ नये विशेष स्थान प्राप्त थे।

३ फरुख्खी सीस्तान के थे। महमूद के राजकवि थे।

४ 'तुस' नामक नगर का फिरदौसी (ज० ६३५ ई०—१०२०—१०२५ ई०)

५ 'असादी' भी 'तुस' नगर का था। महमूद का राजकवि था। इसने 'संघर्ष-काव्य' (मनुघरा) की रचना की थी। इसका पूरा नाम 'असादी-अबु-नसर-अहमद-बे-मन्सूर' था।

६ निजामुल मुल्क ने १०६१—६२ ई० में 'सियासत नामा' रचा था जो 'राजनीति' पर एक उत्तम ग्रन्थ है।

७ जन्म १०२३ ई०—मृ० १०४६ ई० या १०४६ ई०

८ जन्म ६६७ ई०—१०४६ में मृत्यु

९ ई० ११३१ में स्वर्ग पधारे

१० अरब के 'अल-हरीरी' की 'मक़ामात' के समान इन्होंने अपनी 'मक़ामात' रचीं थीं।

'ओ खजूर! तुम इस पश्चिम में एक अपरिचित के समान हो। अपने गृह पूर्व से दूर—बहुत दूर, मेरे समान ही अभागे हो। रो लो! किन्तु होता कुछ नहीं। ओ हताश वृक्ष! तुम बोलते क्यों नहीं। पर तुम मेरे प्रति सहानुभूति दिखलाने को नहीं बनाये गये हो।'

इस प्रकार 'फारसी[1]' और 'अरबी साहित्य*' भारत में श्री-वृद्धि को प्राप्त हुआ। प्रो० सरकार ने मुग़ल शासन को भारत-शासन-पद्धति की पृष्ट-भूमि में 'अरब और फारस-' पद्धति को कहा है :—

'Perso-Arabic system in Indian setting'.

'तुलसी' ने जब भाषा (हिन्दी) में 'रामायण' रची तो :—

'का भाषा' का 'संस्कृत' प्रेम चाहिये सांच'

—तुलसी

शब्दों में अपने को व्यक्त किया था। 'जायसी' ने अपने को यों व्यक्त किया :—

'तुरकी, अरबी, हिन्दवी, भाषा जेती जाति।'
जामे मारग प्रेम का, सबै सराहैं तासि॥

—जायसी

फारसी का इतना बोल बाला[2] रहा कि उस काल से लगभग ५०० वर्ष तक भारत उस भाषा से प्रभावित रहा। डा० ईश्वरी प्रसाद ने अपनी श्रद्धाञ्जलि अकबर की हिन्दी-श्रद्धा के प्रति यों दी : —

"Akbar's sympathy...and his patronage of Hindi Literature made a deep impression upon Hindus".

अर्थात्, अकबर की सहानुभूति···तथा हिन्दी के लिये उसकी संरक्षणता—इन दोनों ने हिन्दुओं पर गहरा प्रभाव डाला। किन्तु सन्तों के आंसुओं से भारत की भूमि गीली थी—वे सन्त दुनियां की दृष्टि में चाहें 'हिन्दू' थे, चाहें 'यवन'। भाषा में 'प्रेम' से देश की भूमि गीली हुई है।

---

१ "...the Persian which as a result of Arab conquest of Persia and its acceptance of the religion of Arabs had grown into a form of speech which certainly bore on it the hall mark of Islam."

२ "...So great was the vogue given by them (Muslims) to Persian that not only during the days of their long domination of nearly 500 years, but even under British rule down to 1852, it remained the languge of the Court and of Administration."

The Influence of English Literature on Urdu Literature.
By Sayyid Abdul Latif. पृ० ६

*लेखक के अरबी और फारसी साहित्य के इतिहास के लिये देखिये **'हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३'**

'नाक़िब' । 'तुम लिखोगे' और...अब्दुल क़ादिर ! तुम नाक़िब की मदद पर रहोगे'—नाक़िब को अकबर का यह आदेश था।

मगर नाक़िब तो न लिख सके। मुल्ला शेरी और थानेश्वरवाले सुलतान हाजी भी नाकामयाब रहे। शेख फैजी ने तरजुमा किया और इस तरह पर (आज की मद्रा में) ५६०००० रुपये खर्च करके 'रज़्मनामाह' तैय्यार हुआ। उसकी प्रतियाँ उल्माओं और अकबर के दरबारियों में बंटवा दी गईं। नाम उसका 'रज़्मनामाह' था पर वह थी 'महाभारत'। तुलसी अपनी रामायण १५७४ ई०[२] में आरम्भ कर चुके थे। अकबर के युग में अब्दुल कादिर ने 'रामायण'[१] का तरजुमा (अनुवाद) किया। संस्कृत से फारसी तथा अरबी में अनेक अनुवाद हुये—'राजतरङ्गिणी', 'लीलावती', 'हरिवंश', 'नल-दमयन्ती' (लैला-मजनू के ढङ्ग पर) और 'पञ्चतंत्र'। दाराशिकोह ने जो अपनी शान्ती—अपनी आत्मा की शान्ती अन्य कहीं न खोज सका था 'उपनिषद' (कुछ ही उपनिषद) का अनुवाद 'सीरुलअकबर' का नाम देकर किया। 'योगवशिष्ठ' का भी अनुवाद फारसी में हुआ। फैजी ने 'गीता' का अनुवाद फारसी में किया था। 'कुरान' पर भी भाष्य और टीकायें लिखी गईं। दारा की दूसरी पुस्तक 'नादिरुन्निक़ात' वेदान्त पर फारसी में रचना है।

यहाँ यह भी नहीं भुला देना है कि कोल्मबस का जहाज १४६२ ई० में अमरीका जा लगा था। इससे ठीक १४ वर्ष पूर्व भारत में ब्रज के अन्तर्गत 'सीही' नामक स्थान पर 'सूर' जन्म ले चुके थे। १४६२ में मलिक मोहम्मद जायसी ने उत्तर प्रदेश के रायबरेली के जिले में 'जायस' नामक ग्राम में जन्म लिया था। और ८ वर्ष बाद 'मीरा' मध्य प्रदेश के चौकड़ी ग्राम में जन्मी थी। 'सूर', 'जायसी' और 'मीरा'—उसी युग के हैं जिस युग की 'अमरीका' और पश्चिम के लिये 'भारत'। भारत में कोलम्बस का जहाज १४६८ ई० में आ लगा था। 'सूर' ने १४७८ ई० मे, जायसी ने १४६२ मे और मीरा ने १५०० ई० मे जन्म लिया था।

उस युग तक पश्चिमी विश्व का मानव देश-देश को देख चुका था और देश, देश मिस्र, कैल्डीया, ईरान, ग्रीक, रोम, जर्मनी, स्पेन, इटैली, फ्रान्स, पुर्तगाल, इंगलैन्ड, आयरलैन्ड, स्काटलैन्ड, अरब, सीस्तान, बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, समरकन्द, बुखारा, मर्व, नेशापुर और रुस की भूमि मानव के पगों से निकल चुकी थीं, अमरीका भारत और अफरीका को डगें नाप चुकी थीं; सात समुद्रों को पार किया जा चुका था, गोया, मलाका, ज़ावा, और चीन तक पश्चिम के मानव की पहुँच हो चुकी थी। कोलम्बस स्पेन देश का था, वास्को-डे-गामा पुर्तगाल देश का। 'डियाज़' (Diaz) तथा मैगलन (Magellan) भी पुर्तगाल देश के थे। विश्व के इतिहास में प्रथम बार समुद्र मार्ग से विश्व के चारो ओर घूमने का श्रेय पुर्तगाल निवासी मैगलन को था। मैगलन ने 'विक्टो-रिया' नामक जहाज में यह चक्कर लगाया था। पर......... कब ?

---

१ 'सम्बत सोलह सौ इकत्तीसा।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥'
—तुलसी

२ वि० स० १६३१—५७ = १५७४ ई०।

जिस समय विश्व दर्शन की भावना लेकर 'मैगलन' जैसी निर्भय आत्मा समुद्र पर चक्कर लगा रही थी ठीक उन्हीं दिनों 'तुलसी' जैसी 'विश्वआत्मा' इसी भारत भूमि पर उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के 'राजापुर'नामक ग्राम में उतर रही थी। 'मैगलन' ने १५२२ ई० में चक्कर लगाया था, 'तुलसी' ने १५२३ ई०[२] में जन्म लिया था।

इससे ठीक ५१ वर्ष बाद—१५७४ ई० में जब तुलसी ने रामायण रची अथवा रचना आरम्भ किया ,तो तुलसी 'भारत' में और तुलसी के विभीषण 'लंका' में सोच रहे थे :—

'रावण रथी विरथ रघुबीरा'

—लंका काण्ड

'हे नाथ ! पता नहीं, आप कैसे जीतेंगे ? न आपके पास रथ है, न पैरों में जूते :-

'नाथ न रथ नहि तनु पदत्राना।
केहि विधि जीतब रिपु बलवाना ।।'

—लंका काण्ड

और रावण को देखो ! उसके पास क्या नहीं है ? फिर, राम ने विजय का 'अर्थ' बता दिया :—

'जेहि जय होय सो स्यंदन आना'

—लंका काण्ड

उस रथ की राम ने व्याख्या की। बताया उस रथ के दो[३] पहिये हैं—एक 'शौर्य्य', दूसरा 'धैर्य।' ठीक इसी प्रकार 'विश्व' के रथ के दो पहिये हैं—'पश्चिम' और 'पूर्व'। पश्चिम में 'शौय्र्य' है—सेना और अस्त्र-शस्त्र की शक्ति, लोहा, कोयला, इस्पात, सोना, चाँदी, रेडियम, जलयान, वायुयान, और सभ्यता की शक्ति, बुद्धि और विज्ञान की शक्ति, तो 'पूर्व' में 'समष्टि,' 'चेतना', 'सम्प्रीति' और 'मंगल' की शक्ति है—'धैर्य्य' की।

'डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मङ्गलमय वृद्धि।'

—प्रसाद

इसी को विज्ञानवेत्ता विलियम हारवे[४] (१६२८ ई०) ने अपने शब्दों में यों व्यक्त कर दिया :—

'In nature ... ... reward ever exceeds the promise.
अर्थात्, प्रकृति में······वचन से फल अधिक है।

---

१ "The credit of going round the world for the first time in history across the seas goes to a Portuguese named Magellan who completed the voyage on a ship known as Victoria in 1522."

Leo Huberman, पृ० ५७

२ कुछ विद्वानों का मत है कि तुलसी का जन्म १५३२ ई० में हुआ था।—ले०

३ 'सौरज धीर जाहि रथ चाका'

—लङ्का काण्ड

४ William Harvey. (1578—1657)

गैलिलियों ने[1] यों कहा :—

"..................*And it still moves.*"

—विश्व आज भी चलता है, चलेगा।

वेदों ने कहा :—

'धुज कुलिस अंकुस कंज जुत बिन फिरत कंटक जिन्ह लहे'

—उत्तरकाण्ड

विभीषण का मन श्री-चरणों की ओर चला गया। तुलसी उन काँटों को नमस्कार करके चले गये। और अकबर··· ?

अकबर 'सुलहकुल'—विश्वशान्ती बनकर चला गया। अकबर १६०५ में गया और 'तुलसी' उससे १८ वर्ष बाद—१६२३ ई०[2] में।

किन्तु, केवल हिन्दी भाषा के ही प्रति अकबर की श्रद्धा नहीं थी। बङ्गला भाषा को भी प्रोत्साहन मिला। बङ्गाल के शासकों ने 'रामायण' और 'महाभारत' का अनुवाद बङ्गला 'भाषा में भी कराया। दिनेशचन्द्र सेन[3] ने अपने 'बङ्गला साहित्य के इतिहास' में लिखा, बङ्गला भाषा को साहित्य के पद तक पहुचाने में···अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बङ्गाल विजय करना था।'

और अकबर का वह विशाल साम्राज्य ?—वह विशाल साम्राज्य जिसका व्यापार सम्बन्ध अमरीका में मेकस्किो और पश्चिम में इङ्गलैन्ड तक से था, अरब से माल आता-जाता था, ईरान, टर्की, शाम, इथोपिया (अफरीका), लंका, बरमा, मलाया, चीन, जापान, फिलीपाइन के व्यापारी भारतीय करघों पर बने हुये कपड़े, सिल्क, दरी, कालीन और सूती कपड़ा खरीदा करते थे—वह विशाल साम्राज्य जिसमें 'गुजरात'[4] उस समय व्यापार का एक विशाल केन्द्र था—वह साम्राज्य जहांगीर (१६०५—१६२८) तथा शाहजहाँ (१६२७—१६५८ ई०) के काल की सुख-समृद्धि भोग कर औरङ्गजेब (१६५६—१७०७ई०) के काल में विनाश को प्राप्त होने लगा। क्यों विनाश को प्राप्त हुआ—यह इतिहास का गम्भीर विषय है पर निश्चय ही राजपूत, मराठे, और सिक्ख अपना समन्वय औरंगजेब से न कर पाये। अकबर ने राजपूतों से विवाह सम्बन्ध द्वारा मेल बढ़ा लिया था। औरंगजेब ने अपनी धार्मिक कट्टरता से उस विशाल साम्राज्य की सत्ता को हिला दिया था।

---

१ Galileo Galilei (1564—1642)

देखिये पृ० २६ टि० २

२ 'सम्बत सोलह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥'

वि० स० १६८०—५७ = १६२३ ई०

३ *History of Bengali Language and Literature.*
By Dinesha Chandra Sen   पृ० १०

'बङ्गला साहित्य के इतिहास' के लिये देखिये :—

हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३

४ सौराष्ट्र के साहित्य के इतिहास के लिये देखिये :—

हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन भाग ३

औरंगजेब केवल इतनी सी बात न समझ सका कि 'खुदा केवल मुसलमानों का ही खुदा नहीं है, बल्कि तमाम इन्सानों का खुदा है।'[1]

और यह कैसे भुलाया जा सकता है कि दक्षिण में मराठा शक्ति उत्पन्न हो चुकी थी—'पूना', 'सितारा', 'कोल्हापुर', 'नासिक', और 'रायगढ़' में हिन्दुत्व खौल उठा। यवन काल की पिछली ६७४ वर्षों में दबी हुई निष्प्राण हिन्दू-शक्ति सजीव हो उठी। इस यवन काल में यवनों की तलवार से हिन्दुओं के रक्त की टपकती हुई एक एक बूंद, कट कट कर गिरती और तड़पती हुई एक एक लाश, उजाड़े हुये गांव और नगरों की एक एक दीवार, लूटे, तोड़े और जलाये हुए मठों और मन्दिरों की एक एक ईंट, खेतों में से निकलती हुई फौजों से रौंदी हुई एक एक फसल, 'ज़ज़िया', 'जकात', 'खिराज' और 'खाम' से दबे हुये एक एक हिन्दू की कराहट, लुटे हुये घर की एक एक चीज, लुटी हुई माँग और छिनी हुई गोदी—टूटे हुये यज्ञोपवीत, कुचली हुई धर्म भावनायें, बीन बीन कर गिराईं हुईं धर्म-ध्वजायें, गिराये हुये चरित्र और रह रह कर मेटी हुई हिन्दू अथवा आर्य-संस्कृति—यह सब एक एक करके महाराज शिवा जी से उसके रक्त का बलिदान मांगने १६७४ ई० में 'रायगढ़' पहुँचे थे। ठीक उसी समय 'शिवा जी' का 'रायगढ़' में राज्याभिषेक[2] हुआ था—शिवा जी 'छत्र-पति' बने थे।

यह कविता नहीं है—इतिहास की वे छोटी-छोटी कणियाँ हैं जिन्हें पकड़ कर आज भी 'बिषमता' फैलाने की कुचेष्टायें की जा सकती हैं, यवनों के प्रति रौद्रत्व खड़ा किया जा सकता है, हिन्दुओं को देश निकाला दिया जा सकता है और द्वेष के महल चुने जा सकते हैं, किन्तु वे सब मिलकर उस समय (मराठा-शक्ति काल में) भी ऐसा करने को एक एक हिन्दू को वर्जित करते रहे हैं—विषम से नहीं, 'विजय' 'सम' की प्रतिज्ञा से हुई है, 'तलवार' और 'छल-कपट' से नहीं, 'सत्य' से हुई है।

हिन्दूपति शिवा जी की यवन-रक्त से रंगी हुई तलवार की एक एक लपक में 'सम' की प्रतिज्ञा थी। यह प्रतिज्ञा उसके दो दलों के बीच खड़े होकर की थी। एक दल 'यवनों' का था—उनका जो थल-मार्ग से भारत आये थे और दूसरा दल 'अंग्रेजों' और 'डच' का था–उनका जो जल-मार्ग से भारत आये थे। 'जल' और 'थल' के बीच खड़े होकर

---

१ यह शब्द महाराज सवाई जयसिंह ने १६७८ ई० में औरंगजेब से कहे थे।
देखिये :— *Rise of Maratha Power* By Ranade पृ० ८१

२ दिल्ली सम्राट की दृष्टि में 'शिवा जी' एक 'जागीरदार' का पुत्र था—कहीं का 'राजा' नहीं। शिवा जी के पिता शाह जी भोंसले बीजापुर के आदिलशाही वंश के राजभक्त थे। शिवा जी के पिता अपने को उदयपुर के सिसोदिया वंश का मानते थे और इनकी माता जीजाबाई देवगिरि के यादव वंश की थी—लक्खजी की पुत्री। शिवा जी का जन्म जुन्नर के निकट 'शिवनेर' के दुर्ग में १६ फरवरी १६३० ई० में हुआ था। शिवा जी का राज्याभिषेक तो इसलिये आवश्यक था कि वे 'सम्राट' की समानता कर सकें। उनके राजयाभिषेक में हिन्दू, यवन, डच, पुर्तगालवासी तथा अंगरेज सम्मिलित थे।

३ शिवा जी की मृत्यु ४ अप्रैल १६८० ई० में हुई थी।

शिवा जी ने—महाराष्ट्र देश ने—मराठा-शक्ति ने 'सम' की प्रतिज्ञा की थी। भारत से उस समय एक साम्राज्य जा रहा था, भारत में धीरे धीरे उस समय एक साम्राज्य आ रहा था। मुगल साम्राज्य जा रहा था, अंग्रेजों का साम्राज्य आ रहा था। सूरत में अंग्रेजों की फैक्ट्री[1] बन चुकी थी। हाथ की बनाई हुई तलवारें जा रही थीं, फैक्ट्री की बनी हुई तोपें[2] आ रहीं थीं।

मराठा शक्ति दो के बीच थी और अकेली[3]। बदले की भावना से प्रेरित होकर भी हिन्दू किस किस से बदला लेता? इसीलिये एक एक हिन्दू को वर्जित किया गया था। यवनों की तलवारों का उत्तर तलवारों से, अङ्गरेजों की चालों[4] का उत्तर चालों से देने का प्रश्न मराठा शक्ति के सम्मुख था पर ऐसा करने को देश की भूमि का एक एक कण मना कर रहा था। कर दिया था। करते हुये चले आ रहे हैं—कर देंगे। भारत में 'दक्षिण' और 'महाराष्ट्र' भू-भाग की संकुचित लम्बी-लम्बी घाटियों, नर्मदा और ताप्ती के बीच की पहाड़ियों, कन्दराओं, खोहों, टेढ़े-मेंढ़े मार्गों, ऊबड़-खाबड़, ऊँची-नीची, ढालू और पथरीली भूमि का यह इतिहास है, भारत की समतल[5] भूमि की तो बात ही क्या? इसी से मैं कहता

१ ई० १६१५ में अंग्रेज 'सूरत' ले चुके थे, १६३६ में मदरास और १६६२ में बम्बई भी अंग्रेजों के हाथ लग चुकी थी।

'We first had commerce, commerce produced factories, factories produced garrisons, garrisons produced armies, armies produced conquests, conquests had brought us into our present position.'

Sir Phillp Francis. (14th March 1804.) In the House of Commons.

२ तोपें यवनों के पास भी थीं पर अंग्रेजों की तोपों के समान नहीं।—ले०

३ " ... ... when the English appeared on the scene, Marathas were left to fight their own battles, quite unsupported by the people, had they done so, the trubulent Rajas of the hills* and the coast might have given us a great deal of trouble.'

Mr. J. Beams in his 'Note on the *History of Orrisa.*'
"*Journal of the Asiatic Society of Bengal 1883.*

*मयूरभंज और नीलिगिरि पहाड़ियां।

४ लार्ड वेल्सली (Lord Wellesley) ने मराठों पर अङ्गरेजी सेना का खर्च डालने (Subsidiary Policy) की नीति ग्रहण की थीः—

"The measure of subsidizing a British force, even under the limitations which the Peshwa has annexed to that proposal, must immediately place him in some degree in a state of dependence upon the British power."

Secert Letter dated 23 June 1803. From H. C. Edmonstone, Secretary to Government, Dt. Col. Close, Resident at Poona.

५ 'ब्रह्मावर्त', 'ब्रह्मर्षि देश' अथवा 'आर्यावर्त्त देश'।—ले०

हूँ भारत भू-पर जन्म लेने वाला व्यक्ति टेढ़ा, कुचाली, कपटी, छली और विषम से भरा हुआ होता हुआ भी स्वतः 'सम' की ओर ढुलक जाता है। इसी 'सम' को 'समदृष्टि' कहते हैं। निश्चय 'छली' 'विश्वासी' का कुछ बिगाड़ नहीं पाया है।

देहली के राजसिंहासन पर आने के पूर्व औरङ्गजेब दक्षिण,[1] गुजरात,[2] बल्ख़ और बदख्शा,[3] मुलतान और सिन्ध[4], कन्धार[5] और फिर दक्षिण--इन प्रदेशों में विभिन्न पदों पर शासन की बागडोर सम्भाल चुका था। राजसिंहासन पर आने से पूर्व अपने पिता शाहजहां को आगरे[7] के किले में बन्द कर डाला था। अपने भाई 'दारा' और 'मुराद' का बध करवा दिया था। 'शुजा' भय से भाग गया था।

देहली के राजसिंहासन पर वह १६५६ ई० में आरूढ़ हुआ था।

और १६ वर्ष के अन्दर :—

राज्य के उत्सव—नौरोज, होली, मुहर्रम और अपनी वर्षगाँठ—बन्द कर दिए। सोने-चाँदी से सम्राट को तोलने की प्रथा समाप्त कर दी गई। दरबारी संगीत बंद कर दिया गया। भांग की खेती बन्द। जुआ और शराब पर भी मोहतसिब की कड़ी नजर। वेश्यायें अपना विवाह करलें अन्यथा उन्हें राज्य में कोई स्थान नहीं। सिक्कों पर 'कलमा' का खोदा जाना बन्द। हिन्दू कोई पालकी में न चले। अरबी घोड़े पर बिना आज्ञा न बैठे। हिन्दुओं के ढङ्ग पर हाथ उठा कर कोई सलाम न करे, सिर्फ 'अस्सलामअलेकुम' कहे। नये मन्दिर बनवाना बन्द कर दिया। कोई सती न हो—सती प्रथा का निषेध कर दिया गया था।

और १६ वर्ष बाद·····································?

निश्चय ही औरङ्गजेब की धार्मिक कट्टरता अपना विकट रूप १६७२ ई० से दिखाती है। इसके दो वर्ष बाद १६७४ ई० में शिवा जी रायगढ़ में छत्रपति बना, मराठा शक्ति का संगठन होने लगा। इससे ५ वर्ष पश्चात् १६७६ ई० में हिन्दुओं पर 'जजिया' लगाया गया, उनके मन्दिर[8] खसाये गये। यह जजिया वह 'कर' है जो

---

१ १६३६ ई० में
२ १६४४ ई० में
३ १६४७ ई० में
४ १६५२ ई० में
५ १६५२ ई० में
६ १६५३ ई० में
७ १६५८ ई० में
८ औरङ्गजेब ने १६७६-८० में २५२ मन्दिरों को गिरवाया था :—

१६३ उदयपर में, ६३ चित्तौड़ में, ६६ अम्बेर (जयपुर) में।

मासिरे आलमगीरी (इलियट और डावसन, ग्रंथ ७ पृ० २२ के आधार पर।)

नोट : सम्भव है इन मन्दिरों में 'देवदासियों' तथा 'वेश्याओं' के नाचने, गाने तथा अन्य किसी प्रकार के भ्रष्टाचार की प्रथा रही हो।

हिन्दुओं पर लगाया जाता था और जिसको अकबर ने बन्द कर दिया था। मारवाड़ के राजा जसवन्त सिंह के बच्चों को पकड़ कर देहली में लाया गया था, सम्भवतः, यवन बनाने के विचार से। राजपूत शक्ति विरुद्ध हो गई थी।

स्पष्टतः ज्योंही औरङ्गजेब[1] को दक्षिण में शिवा जी की छत्र-छाया में हिन्दू शक्ति का निर्माण होता हुआ दीखता है त्यों ही उत्तर में वह हिन्दुओं को और कस डालता है। बीजापुर और गोलकुण्डा के 'शियाओं' से सुन्नी औरङ्गजेब की कैसे निभ सकती थी ? दक्षिण की ओर से इस प्रकार औरङ्गजेब चिन्तित हो उठा। हिन्दुओं के विरुद्ध जो कुछ किया जा सकता था, उसे कर डाला। किन्तु यह 'धर्म' की नहीं, 'राज' की शक्ति थी।

राजसिंहासन पर बैठने के दो वर्ष पूर्व १६५७ में दक्षिण में 'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा' मुगल साम्राज्य की पराधीनता से निकल गये थे। ई० १६८६ में बीजापुर और १६८७ में गोलकुण्डा पुनः लेने पर औरंगजेब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और काबुल से चिटगांव तक का स्वामी हो गया था। भारत के सीमान्त प्रदेश की ओर से इस समय कोई आने वाला नहीं था—शक्ति पर शक्ति का प्रहार हो तो कैसे ? इसीलिये दक्षिण की ओर मराठा शक्ति का निर्माण हो गया। औरंगजेब के अन्तिम दिवस—आयु के अन्तिम २० वर्ष इसी मराठा शक्ति के विनाश में लगे रहे। किन्तु············!

किन्तु, हिन्दुओं की विजय-पताका शिव की 'विध्वंस' शक्ति ने नहीं, शिव की 'मङ्गल' शक्ति ने फहरायी है। 'सोमनाथ' का विध्वंस महमूद गज़नी ने ६ जनवरी १०२६ ई० में और अलाउद्दीन खिलजी ने १३०० ई० किया था। अपनी मृत्यु से केवल ६ वर्ष पूर्व अर्थात् १७०१ ई० में औरंगजेब ने शहजादे मुहम्मद आज़िम को जो उस समय गुजरात का बादशाह था 'सोमनाथ' के मन्दिर का विध्वंस करने का 'फरमान'[2] दिया था। ऐसा ही एक फरमान इससे लगभग ३२ वर्ष पूर्व (१६६९ ई०) में दे चुका था। किन्तु············!

किंतु, 'राजपूत' और 'मराठों' की 'हर हर महादेव' की जय-ध्वनि ने भारत की इसी भूमि पर, फिर, शिव की 'मंगल' शक्ति को उतार दिया था। ध्यान रहे मराठा शक्ति का जन्म 'देवगिरि' में हुआ था—'यादव' वंश में—भारत की उस भूमि में जहाँ वीरत्व तिलमिलाता था, तो धमनियों में रक्त की पिपासा दौड़ती थी, शङ्करदेव के जीते-जी जहाँ से ५० मन सोना, ७ मन हीरे-जवाहरात, ४० हाथी तथा सहस्रों घोड़े लूट कर अलाउद्दीन ले न जा सका था, जहाँ मुहम्मद बीन तुगलक के युग में 'दिल्ली' उठकर चली गई थी, जहाँ बीजापुर और गोलकुण्डा के 'शाहों' को औरङ्गजेब ने बन्द कर रक्खा था और उसी भूमि के निकट १७०७ ई० में औरङ्गजेब की कब्र[3] बनी थी।

औरंगजेब के फरमानों में 'शिव की विध्वंस शक्ति' तो केवल इसलिये थी, अलाउद्दीन खिलजी और महमूद गज़नी के शिव-मन्दिर सोमनाथ के विध्वंस में शिव का विध्वंसात्मक तांडव नृत्य तो केवल इसलिये हुआ था कि यवनों के भारत आने के

---

१ औरंगजेब (१६१८—१७०७)

२ औरंगजेब की आज्ञा।

३ औरंगजेब की 'कब्र' (सादा-सा मकबरा) दौलताबाद के निकट 'रौजा' अथवा 'खुल्दाबाद' नामक ग्राम में है।

पूर्व राजपूतों ने बौद्धों के मठों और बिहारों का विनाश[1] किया था, यद्यपि बौद्ध धर्म के विनाश के अनेक और भी कारण[2] थे।

'शिवाजी' तथा 'मराठा शक्ति' ने रक्त तो लाखों यवनों का बहाया, महाराष्ट्र की घाटियों तथा पहाड़ियों को लाशों से पाट दिया, 'बीजापुर' और 'गोलकुन्डा' के राज्यों को शिवा जी ने तलवार के बल पर ही लूटा, 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' तलवार की नोक पर ही वसूली गई, 'सूरत' (अंग्रेजों की कोठी नहीं) लूटा गया, सोना, चांदी, मोती, हीरा—यह सब तलवार की धार पर ही लिये गये। पूना में राजनैतिक जीवन आरम्भ करके, रायगढ़' में राजधानी स्थापित करके, औरंगाबाद के निकट के नगरों को लूटकर, बगलाना, खानदेश, कोल्हापुर, जिञ्जी को लूटा, रामनगर, फोन्डा, कन्नड़, कर्नाटक,—यह सब शिवाजी ने नीति, कूटनीति, लूट, रक्तपात इत्यादि से ही लिये पर एक इंच भी शिवाजी अपनी 'सम' की प्रतिज्ञा से हटा नहीं—यवनों की धर्मान्धता से बदला लेने के लिये हिन्दुओं को उत्तेजित नहीं किया, उन्हें धर्मान्ध नहीं बना डाला, 'धर्मान्धता' का उत्तर 'धर्मान्धता' से नहीं दिया गया, यवनों की 'मसजिदें', 'इमामबाड़ों' और 'मकबरों' को नहीं लूटा, नहीं तोड़ा, नहीं जलाया—कब्रों को नहीं खोद डाला। किसी यवन 'हरम' को नहीं टटोला। किसी यवन-नारी के सतीत्व पर आँच नहीं आने दी। 'धर्म' के आधार पर राष्ट्र नहीं निर्मित किया, देश नहीं बाँटा गया।

मराठा-शक्ति का संगठन 'धर्म' के आधार पर नहीं, 'धर्म' के नाम पर नहीं, 'धर्म' के लिये नहीं, लूट के लिये नहीं, रक्तपात के लिये नहीं, कूटनीति के लिये नहीं, 'जाते' और 'आते' हुये साम्राज्यों के सन्तुलन हेतु—उस शक्ति का निर्माण हुआ था। शिवाजी से औरंगजेब के छक्के छूटने लगे थे, 'सींधिया[3]' और 'होल्कर[4]' से अंग्रेजों के छक्के छूटने लगे थे।

मराठा-शक्ति के प्रति अंग्रेजों के [5]यह भाव थे :—

'Yet the complete consolidation of the British Empire in India, and the future tranquility of Hindostan......could never exist till a sufficient bridle was put in the mouth of Maratha Power.'

---

१ देखिये पृ० १६४ टि० ७

२ देखिये पृ० १६५ टि० १

सम्भव है राजपूतों ने 'बौद्ध धर्म' की कु-विद्याओं (मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन) तथा 'तांत्रिक अनुष्ठानों' को मिटाने के लिये बौद्धधर्म पर आघात किया हो ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार औरंगजेब को कहा जाता है कि उसने एक वर्ष में उदयपुर, चित्तौड़ और अम्बेर के २५२ मंदिरों को गिरवाया था और इस गिरवाने का कारण यह भी बताया जाता है कि सम्भव है वहाँ मंदिरों में देवदासियों तथा वेश्याओं के नाचने तथा व्यभिचार की प्रथा रही हो। देखिये पृ० १६७ टि० ६

३ दौलतराव सींधिया

४ जसवन्तराव होलकर

५ James Stuart Mill Vol. VI. पृ० २८६—८७

अर्थात् भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को पूर्ण रूप से स्थापित करना तथा उसमें शान्ती स्थापित करना उस समय तक सम्भव नहीं जब तक मराठा शक्ति के मुँह में लगाम न दे दी जाये।

सींधिया शक्ति के प्रति यह[1] विचार था :-

"The Power, whose views might be most apprehended, and whom it is most important to hold in check is certainly Scindhia ?

"....if any serious contest should arise......the most important operations should be directed against Scindhia's possessions to the destruction of his power in Hindostan ; and that no probability exists of any important contest in the Deccan."

अर्थात्, जिस शक्ति का हमें सबसे अधिक भय हो सकता है...और जिसका रोक कर रखना सबसे अधिक आवश्यक है...वह शक्ति 'सींधिया' है।'

यदि कोई घोर युद्ध हुआ...तो सींधिया की शक्ति के विनाश की ओर लगना होगा...दक्षिण में किसी अन्य की ओर से युद्ध की सम्भावना नहीं।

और होलकर द्वारा अंग्रेज अपनी 'पराजय' और 'क्षति' को देखकर भयभीत हो गये। ८ जून १८०४ ई० को गवर्नर जनरल वेल्सली ने जनरल 'लेक' को दिये हुये उत्तर में लिखा :—

"......the honour of the British arms has been disgraced."

अर्थात्, ब्रिटिश शास्त्र प्रतिष्ठा कलंकित हो गई।

किन्तु, ठीक जिस प्रकार पिछली ६७४ वर्षों (१००० ई०[2] से १६७४ ई० तक) के इतने विस्तृत काल में भारतीय जन 'भारतीय' अथवा 'आर्य्य' संस्कृति से साम्य रखता हुआ अथवा उससे पूर्ण रूप से मेल रखता हुआ भी 'मानवता' का सुखद सन्देश लेता और देता हुआ भी, 'प्रेम' और 'एकता' की ओर अग्रसर होता हुआ, कराता हुआ भी कोई अपनी स्वतंत्र सत्ता न स्थापित कर सका—स्वतंत्रता के संग्राम अनेक किये, और लगभग २७३ वर्षों तक अंग्रेज जाति की पराधीनता भोगी—यवनों और हिन्दुओं दोनों ने,—एक शब्द में उन सबने जो भारत भू पर बसकर भारतवासी हो गये थे—चाहें वे पहलव रहे हों, चाहें यूनानी, चाहे हूण, शक, अथवा अन्य किसी जाति के, जो जब भारत आये थे तब विदेशी थे पर जब परतन्त्रता भोगी तब भारतवासी थे—ठीक उसी प्रकार औरंगजेब 'सामी' संस्कृति से पूर्ण रूप से साम्य रखता हुआ— 'कुरान' और 'हदीस[3]' के

१ *Most Secret and Confidential Letter*, 7th January 1803
Marquis Wellesley,

२ ई० १००० में महमूद ग़ज़नी के भारत पर प्रथम आक्रमण से १६७४ ई० में अर्थात् शिवाजी के राज्याभिषेक तक के ६७४ वर्षों के काल में और शिवाजी के राज्याभिषेक से १६४७ ई० अर्थात् भारत के स्वतंत्रता दिवस (१५ अगस्त १६४७ई०) तक के २७३ वर्षों के काल के बेलोर ग़दर, १८५७ ई० के ग़दर, १६४२ ई० का स्वतन्त्रता संग्राम इत्यादि।

३ पैगम्बर साहब के प्रवचन। देखिये :—'**मौलाना रूम की हदीस**।'

उसूलों पर चलता हुआ भी, 'ज़ज़िया' और 'तलवार' से यवन-धर्म की रक्षा करता हुआ भी—धर्म के लिये इतनी श्रद्धा, सुन्नी समाज के लिये इतना आदर, हिन्दुओं के प्रति इतना विद्रोह, शियाओं पर इतनी झूंझल, डच और अंग्रेजों के लिये इतनी रहम-दिली[१] लेकर भी और एक ऐसी जिन्दगी लेकर जिसने 'धन' नहीं, 'धर्म' कमाया था, जिसने 'यश' नहीं, अपने लिये 'फकीरी' कमाई थी, जिसमें साम्राज्य के लिये क्षण-क्षण पग-पग पर 'चिन्तायें' और 'भावी आशंकायें' भरी रहीं, जिसमें-से मुग़लिया शान-ओ-शौकत निकलकर दूर खड़ी हो गई थी, जिसमें किसी राज-प्रासाद के द्वारे पर हाथियों की पाषाण मूर्तियों को भी खड़े रहने देने की क्षमता न रह गई-थी, जिसमें टोपियां सीं कर गुजर करने का एक ऊँचा ख्याल था, जिसमें बीबी के हाथ की बनाई हुई रोटी पर ही क़नात कर लेने में कुल बादशाहत ख़त्म हो गई हो, जिसमें हर नमाज़ में अल्लाह का शुक्रिया था, जिसमें शाही खजाने में से अपने खर्च के लिये एक-एक पैसे पर मोहर थी···और अपनी जिन्दगी के आखीर फरमाने-वसीयत में अपनी टोपियों की कमाई का पैसा अपने 'कफन' और 'कब्र' पर खर्च करने का हुक्म था—वह औरंगजेब, प्रश्न केवल इतना है, इतिहास के पन्नों को कलंकित क्यों कर गया और आत्मग्लानि से उसकी आत्मा मरणशय्या पर क्यों तड़प उठी ? उस तड़प में भी निकला शब्द 'यवन' ही । पर क्यों ?

मरणशय्या पर पड़ा हुआ औरंगजेब अपने पुत्रों को आदेश देता है :—

'देखना ! किसी 'यवन' का रक्त न बहे' ।[२]

'यवनों' के प्रति कैसा अनोखा प्यार था ?

किन्तु, इस 'यवन' शब्द के स्थान पर उसके मुँह से यदि 'मनुष्य' शब्द निकला होता यों :—

'देखना ! किसी 'मनुष्य' का रक्त न बहे',

तो निश्चय ही 'हिन्दू' और 'यवन' का भेदभाव उसके शब्दों में मिट जाने के कारण उसका 'पाप' और 'कलंक' सब धुल गया होता और निश्चय ही उसकी उज्ज्वल

---

१ टॉरिन्स (Torrens) महोदय ने अपनी पुस्तक '*Empire in Asia*' के पृ० ४।५ पर लिखा :—

"Likely enough his native subjects around them were jealous and disposed to be quarrelsome. Why should not Firanghees defend themselves as best as they might ? Poor people ! They had come a long way, and seemed to work hard, he would not interfere."

नोट :—औरंगजेब की प्रजा ने औरंगजेब से फिरंगियों (अंग्रेजों) के विरुद्ध उनके अत्याचारों की शिकायत की तो औरंगजेब ने उत्तर दिया···'वे गरीब हैं । इतनी दूर से आये हैं, कितनी मेहनत करते हैं, वह उनके बीच में नहीं बोलेगा ।'

२ "I know not who I am, where shall I go or what will happen to this sinner, full of sins.........It should not happen that musalmans be killed."

कीर्त्ति से भारत भूमि धन्य हो उठती। ध्यान यह भी रहे केवल भारत की भूमि ही नहीं, विश्वभूमि, विश्वभूमि के रजकण मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं खोज पाये हैं—कौन यवन है, कौन हिन्दू—यह वे न समझ पाये हैं, न समझ पायेंगे। विश्वभूमि का बासी मानव है 'हिन्दू' अथवा 'यवन' नहीं। पर उस युग के यवनों के लिये 'भूमि' नहीं, भूमि का बासी 'काफिर'—ईमान न लाने वाला—था।

और यही शब्द औरंगजेब के मुँह से यदि यों निकलते :—

'देखना! किसी 'प्राणीमात्र' का रक्त न बहे।'

तो निश्चय ही उसके शब्दों, भावों, विचारों और जीवन में 'सामी' और 'आर्य्य' संस्कृति परस्पर मिलकर उसकी 'तलवार' को चूम लेतीं। 'प्राणीमात्र' शब्द उस शक्ति का द्योतक होता जिसके भय से कोई भी निष्पक्ष इतिहासकार औरंगजेब को कलंक मढ़ने का साहस न कर पाता, इतिहास के पन्नों को कलंकित न कर पाता। पर ....!

पर औरंगजेब के शब्द थे 'यवन'। निश्चय ही इस शब्द में 'शिया' और 'सुन्नी' का भेद-भाव उसकी दृष्टि में तब मिट चुका था, अन्यथा वह यों कहता :—

'देखना! किसी 'सुन्नी' यवन का रक्त न बहे।'

कोई यदि यह कहे कि औरंगजेब तो सिर्फ अपने को 'अल्लाह' का नौकर[1] मानता था—अल्लाह के दिये हुये हुक्म को बजा लाना उसका काम था; और उसने यदि कठोरता तथा कट्टरता से हिन्दुओं या यवनों का रक्त बहाया तो ऐसा करने में अल्लाह का ही हुक्म बजाया था, तो हो सकता है कि यह भावना ठीक वैसी ही हो जिस प्रकार गीता में 'निमित्तमात्र' शब्द से व्यक्त है। गीता में यों कहा है :—

'तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा'[2]

यह 'निमित्तमात्र' बन जाना उतना सरल नहीं है जितना यहाँ लिख देना। अपनी सत्ता को भगवान की सत्ता में लय कर देना उतना सरल नहीं है जितना यहां कह देना। 'निमित्तमात्र' बनने की भावना आते ही···नंगे और भूके रहकर दुनियां की एक-एक चीज के लिये भगवान का मुँह ताकना पड़ता है। दुनियां की आपत्तियां भगवान लाकर सामने ही खड़ा कर देता है। कलंक वह मढ़ दे, दोष वह लगा दे। वह भी काम करने पड़ते हैं जिनके करने में अपनी ही आत्मा से घृणा[3] होने लगती है—'अपने' से। चीत्कार पग-पग पर मिलता है। बच्चे बिलखते हैं, स्त्री रोती है—एक-एक दाने को तरसता है—एक-एक पैसे को कहनी-अनकहनी सुननी पड़ती हैं। स्वर्ग का मोह उसे नहीं सताता। पृथ्वी का स्वर्ग उसके लिये नहीं है। भगवान की दौलत उसके नहीं है। लोग ताने देते हैं तो चुपचाप सुनना पड़ता है, छींटे कसते हैं, तो मुँह ताक कर रह जाना पड़ता है। 'हाय' निकलती है तो लोग मुँह नोचने को तैयार हो जाते हैं। दो मुट्ठी चावलों को वह भगवान की 'नियामत' समझता है, अपना 'अधिकार' नहीं।

---

१ "*.....servant of God*'. औरंगजेब (स्मिथ द्वारा अनूदित)

२ गीता ११/३३

३ गीता अ० १८, श्लोक ५९/६० (स्वभाव सब कुछ करा लेता है)

किन्तु, फिर, ···फिर उसे※आग जला नहीं पाती, पहाड़ से गिरने पर उसे चोट नहीं लगती, वह धनपति तो नहीं हो जाता है पर बात उसकी कहीं नहीं गिरती; उसे झूठा कहते हैं, पर कहने वाले मुँह की खाते हैं, उसके लिये कोई जाल रच कर देखे, फिर रचने वाला स्वयं ही न फंसे, तो कहे। उसके लिये मान नहीं मिलता है पर उसके हृदय को कोई ठेस भी नहीं लगती है। उसके आंसुओं से गंगा-यमुना तो नहीं बहती हैं पर संसार सागर सूख जाता है।

औरङ्गजेब के देहली के शाही तख्त[1] पर आने के लगभग ४३ वर्ष पूर्व इंगलैन्ड में जेम्स प्रथम (१६०३-१६२४) और लगभग १६ वर्ष पूर्व फ्रान्स में लुइज चौदहवें (१६४३—१७१५) भी अपने को ईश्वर की ओर से राज शासन करने के लिये आये हुए मानते थे—वे ऐसा समझते थे कि उन्हें दैवी अधिकार[2] प्राप्त हैं। जून २०, १६१६ ई० को 'स्टार चैम्बर' में भाषण देते हुये इङ्गलैण्ड के जेम्स प्रथम ने कहा :—

'... ... encroach not upon the prerogative of the Crown.'

'... ... That which concerns the mystery of king's power is not lawful to be disputed; for that is to wade into the weakness of princes, and to take away the mystical reverence that belongs unto them that sit on the throne of God.' [3]

अर्थात्, 'राजमुकुट के ऐकान्तिक अधिकारों का उलंघन न करो।'

···राजन् की शक्ति के रहस्य से जो कुछ भी सम्बंधित है उसके लिये विवाद करना शास्त्रोक्त नहीं क्यों कि ऐसा करने का अर्थ तो राजकुँवरों की दुर्बलताओं में पैर जाने का होगा और उस रहस्यात्मक भक्ति को छीन लेने का होगा जो भगवान के सिंहासन पर आरूढ़ होने वाले के प्रति होती है।

फ्रांस का लुइज चौदहवां भी ऐसा ही विश्वास करता था कि वह फ्रांस का शासन दैवी अधिकारों से करता था—भगवान ने उसे फ्रान्स के शासन के लिये नियुक्त किया था। पर वह 'युग' का 'महान शासक' बन गया था।

इन चारों भावनाओं में—इङ्गलैंड और फ्रांस की दैवी-अधिकारों की भावना में—औरङ्गजेब की कट्टरता की भावना और 'गीता' के 'निमित्तमात्र' की भावना में—अन्तर तो आकाश और पाताल का हो सकता है—तुलना किसी प्रकार भी नहीं', पर ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना है कि इङ्गलैण्ड और फ्रांस की उस दैवी-अधिकारों के युग ने उन देशों के राजन् के प्रति 'प्रभू-भक्ति' दी, राजन् को भगवान का रूप देकर 'न्याय' के प्रति 'श्रद्धा' दी—'न्याय' को समानता दी। राजन् के मन में 'प्रजावत्सलता' के भाव का बीजारोपण हुआ और प्रजा के हृदय में 'राज-भक्ति' आई। न्याय के सम्मुख मनुष्य

१ औरङ्गजेब देहली के तख्त पर १६५६ ई० में बैठा था।

२ Divine Rights.

३ Works of James. I पृ० ५५६/५५७ (१६१६ का संस्करण)

※'उसे' अर्थात् 'निमित्तमात्र बनने वाले' को।

के प्रति मनुष्य का भेद-भाव मिट जाता है। एक एक जन समान हो जाता है। किन्तु उस युग में 'जेम्स' तथा उसके पुत्र ने दैवी अधिकारों का अर्थ 'निरंकुशता'[१] का कर लिया था। 'स्वेच्छाचारिता', 'निरंकुशता', तथा 'कट्टरता'—चाहें वह 'धर्म' की हो, चाहे 'राज्य' की हो—प्रजा को उत्पीड़न दे देती हैं। फिर, व्यक्ति अपने से समन्वय नहीं कर पाता है, 'शासन' और 'राज्य' से, 'अर्थ' अथवा 'धर्म' से समन्वय की तो बात कौन कहे ! प्रजा को 'मन में मनोरथ की भाँति रखने की भावना' के निकल जाने पर स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता तथा कट्टरता आ जाती है। पर लुइज चौदहवां प्रजा हित में रत रहता था।

पर प्रजा को 'मन में मनोरथ' की भांति रखने की भावना, सम्भव है, राम-राज्य में रही हो, आर्य्य-काल में रही हो, इतिहास के स्वर्ण-युगों में रही हो, भारत में विक्रम-युग में रही हो, गुप्त-काल में रही हो, अरब में खलीफाओं के युग में रही हो, इङ्गलैण्ड के एलिज़ेबेथ के युग में रही हो, अकबर के युग में रही हो पर आज के युग में, विशेषकर महरानी विक्टोरिया के पश्चात्, इतिहास के पन्नों में यह भावना 'तथ्य' रूप ढूंढ़े नहीं मिलती है। 'मन में मनोरथ' की भांति का स्पष्ट अर्थ राजन् की 'प्रजावत्सलता' का है।

और जिस प्रकार 'जेम्स' और उसके पुत्र के युग में 'दैवी अधिकार' की वह भावना 'निरंकुशता' का रूप लेकर इतिहास के पन्नों को कुंठित कर उठी थी, पर बाद में वही भावना 'राजभक्ति', 'प्रजावत्सलता',[२] न्याय के प्रति 'श्रद्धा', और न्याय की 'समानता' की आधारशिला बन कर आई थी ठीक उसी प्रकार औरंगजेब की वह 'अल्लाह के नौकर' की भावना अपने युग में विकट कट्टरता बन कर आई थी पर बाद में दो संस्कृतियों का 'एक' सन्देश देकर गई है :—

> 'देखना ! मनुष्य मनुष्य के भेद-भाव पर राज-सत्ता न
> स्थापित हुई है, न स्थिर रही है, न स्थापित होगी, न स्थिर रहेगी।
> और धर्म-ध्वजा ? भेद-भाव पर न वह फहरी है, न फहरेगी।'

इस कट्टरता के लिये औरंगजेब ने अपने जीवन और अपने साम्राज्य का बलिदान किया था। जेम्स को इतिहासकारों ने 'क्रिस्तानी देश का चतुर-मूढ़' (Wisest Fool of Christendom) शब्दों से स्वागत किया है, उसके पुत्र 'चार्ल्स प्रथम' को (जो दैवी अधिकारों में पिता के समान विश्वास करता था) फांसी[३] पर लटकना पड़ा। पर लुइज चौदहवां योरुप का 'महान' बन गया था क्योंकि उसकी 'निरंकुशता' का अर्थ प्रजा का 'हित' था।

और अब उस 'निमित्तमात्र' की व्याख्या तथा उसका अर्थ फारस के उमर खैय्याम[४] की 'भावना' में देखिये :—

---

१ Absolutism

२ देखिये:—'विश्व में—मानव की विजय घोषणा' शीर्षक अध्याय।

३ चार्ल्स प्रथम को ३० जनवरी १६४९ को फांसी दी गई थी।

४ उमर खैय्याम का जन्म १०४८ ई० के लगभग और मृत्यु ११३२ ई० के लगभग बताई जाती है।—ले०

इमाम-अबूबकर-अहमद-बिन-हुसेन-बिन-अली ने खैय्याम के दामाद मुहम्मद बगदादी से सुन कर लिखा कि खैय्याम इब्न सीना[1] की 'शिफ़ा' नामक पुस्तक पढ़ रहे थे। पढ़ते पढ़ते जब वे 'वहदत' (एकत्व) और 'कसरत' (अनेकत्व) के अध्याय पर पहूँचे तो उन्होंने पुस्तक उठा कर रख दी। वसीयत की। नमाज पढ़ी। उस वक्त से न कुछ खाया, न पिया। रात को नमाज पढ़ते पढ़ते अपने 'अल्लाह' से कह उठे :—

> 'हे भगवन्! मैंने तुम्हें जानने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। तुम मुझे क्षमा करो क्योंकि तुम्हारे विषय में जैसा भी कुछ ज्ञान (मारफ़त) मुझको है, तुम तक पहुँचने का मेरा यही एक-मात्र साधन है'।

यह उनके अन्तिम शब्द थे।

यदि कोई खैय्याम के एकमात्र साधन में न विश्वास करे तो अरब के नज़्म उद्दीन कुबरा (जन्म १२२१ ई०) के इन शब्दों में निश्चय विश्वास आ जायेगा :—

'भगवान तक पहुंचने के उतने ही मार्ग हैं जितनी उसकी सम्पूर्ण सत्ता की श्वासें।'

किन्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो औरङ्गजेब की एक एक श्वास अपने विरुद्ध खड़ी हुई सम्पूर्ण सत्ता से लोहा ले रही थी। 'कुरान' की एक एक आयत, 'हदीस' का एक एक उसूल, 'शरय' का एक एक कानून, अरबी और फारसी की एक एक 'पंक्ति', तलवार की एक एक लपक, घोड़े की एक एक टाप, खून से लथपथ जमीन का केवल उतना-सा टुकड़ा जिस पर कालीन बिछाकर घमासान युद्ध में भी ठीक वैसे ही जैसे नैपोलियन तोपों के नीचे सो लेता था वह नमाज पढ़ लेता था, 'वह' और उसके 'फरमान' का एक एक लफ्ज, उसका चरित्र, और 'फतवा-ई-आलमगीरी'—इनके अतिरिक्त उसके साथ और कोई नहीं था। जेल में उसका पिता विरुद्ध था, पुत्र विरुद्ध थे और कब्रिस्तान में उसके भाई और भतीजे विरुद्ध थे। हरम में उसकी बीबी विरुद्ध थी—अकेली बीबी और वह भी विरुद्ध, दरबार में सरदार विरुद्ध थे, राज्य में हिन्दू, सिक्ख और यवन विरुद्ध थे; मुगलिया दरबारी शान विरुद्ध थी--न नाच थे और न गाने, न कसीदे, न पच्चीकारी, न साहित्यकार, न कलाकार। सोने-चाँदी से शहन्शाह को तोले जाने वाला रिवाज उठ गया था, शहर के मेले और उत्सव विरुद्ध थे, बंद थे। मोहर्रम उसने बंद करा दिये थे, अपनी वर्षगाँठ उसने बन्द करा दी थी। नित्य प्रति युद्ध लगे रहते थे, व्यवसाय, व्यापार और मजदूर की मजदूरी विरुद्ध थी। मुसलमानों पर चुङ्गी थी नहीं, हिन्दुओं पर चुङ्गी थी, मुसलमानों के जरिये हिन्दू अपना चुङ्गी का काम निकाल लेते थे, दफ्तरों में रिशवतें बढ़ गईं। न्याय था, पर दण्ड नहीं। हिन्दू किसान जजिया से दब रहा था, मुसलमानों के पास कोई जागीर थी नहीं। युद्ध के कारण खजाने में पैसा नहीं था, कर ६३ हटा दिये गये थे—

---

१ इब्नसीना (६८०–१०३७)

२ 'फतवा-ई-आलमगीरी'—इस्लामी कानून का सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता है।

३ औरंगजेब का बड़ा लड़का 'सुल्तान' आजन्म कारागार भोगने को भेज दिया गया था, दूसरा पुत्र 'मुअज्ज़म' ८ वर्ष के कारागार भेज दिया गया था और तीसरा पुत्र 'आज़म' नजरबन्द कर लिया गया था।

राहदारी, पानदारी और तम्बाकू पर की ड्यूटी हटा दी गई थी। भांग बन्द थी, शराब बन्द थी, जुआ बन्द था और शहर की वेश्यायें[1] उसके विरुद्ध थीं। उत्तर में पंजाब विरुद्ध था, पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेशों में युसुफजई, अफ़रीदी और खटक कबीले वाले विद्रोह करे पड़े थे, दक्षिण में महाराष्ट्र विरुद्ध था। बीजापुर और गोलकुण्डा से पुरानी दुश्मनी थी। पूर्व में बिहार, बंगाल और आसाम तक अपनी-अपनी घात में थे। मध्यदेशिया राजपूत तो न विरुद्ध थे, न अनुकूल, अपनी जिन्दगी के लाले लिये पड़े थे,...और तो और, उसकी टोपियाँ जिनको सीं कर वह अपनी गुजर करता था वे भी विरुद्ध थीं—बादशाह, शहन्शाह के हाँथ की सिलीं टोपियाँ और ऊँचे भाव न बिकें ? कैसी अनोखी विरुद्धता थी ? भारत के स्वतंत्र होने के पूर्व भारतीय कांग्रेस के नेता को जनता में मिली हुई एक एक अंगूठी, गले की सोने की जंजीर की एक-एक लड़ और भेंट में श्रद्धापूर्वक दिये हुये गुलाब के फूल की एक एक पंखुड़ी काफी ऊँचे भाव हाथों हाथ 'नीलाम' हो जाती थी। इसके अतिरिक्त उसकी मरण-शय्या विरुद्ध थी।

आत्मग्लानि, कलंक, पक्षपात, पाश्चाताप सभी कोई उसकी शय्या के पास खड़े थे, और अन्त में उसकी 'कब्र' भी विरुद्ध थी क्योंकि उसने कब्रों पर छत बनवाना अपने युग में बन्द कर दिया था। पर इन सबमें सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि आज का, औरंगजेब के बाद का, इतिहास—इतिहासकार भी विरुद्ध है। औरंगज़ेब के जमाने में लोग उसे 'आलमगीर-जिन्दा-पीर' कहा करते थे।

किन्तु 'राम' और 'भरत' जैसे चरित्र वाले व्यक्ति आज संसार में ढूँढ़े नहीं मिलते हैं, पर 'मन्थरा' घर-घर में मिल जाती है। 'विक्रम', 'अकबर' और 'महारानी विक्टोरिया' जैसे उदार सम्राट आज ढूढ़ें नहीं मिलते हैं पर औरंगजेब जैसे 'डिक्टेटर' देश-देश में मिलते हैं—'हिटलर[2]' को अभी अधिक समय नहीं हुआ है, 'मुसोलिनी'[3], और 'फ्रैन्को'[4] का अभी इतिहास भी नहीं रचा गया है। पर यह 'डिक्टेटर' भी अपने अपने विभाग के होते हैं—अपनी अपनी शक्ति के—कोई सैनिक बल[5] का, कोई 'अर्थ-बल[6]' का, कोई 'शासन[7]' का। आज का चपरासी भी बड़े साहब के 'डिक्टेटरशिप' (निरंकुशता) की छोटी मूर्ति है। और सबसे बड़ी निरंकुशता' 'लाल फीते'[8] में है।

पर ध्यान रहे यह छोटे-छोटे 'डिक्टेटर' बड़े-बड़े डिक्टेटरों को कलंकित करने में व्यस्त रहे हैं—एक कारण रहे हैं। औरंगजेब की 'कट्टरता' और 'निरंकुशता' में 'अल्लाह के नौकर' की भावना थी—उसकी कट्टरता में अल्लाह का हांथ था या नहीं मैं नहीं कह

---

१ ई० १६६५ में
२ जर्मनी का निरंकुश शासक
३ इटली का निरंकुश शासक
४ स्पेन का निरंकुश शासक
(२–४: द्वितीय विश्व युद्ध के भाग्य विधाता)
५ Military Dictator.
६ Economic Dictator.
७ Administrative Dictatorship.
८ Red Tapism

संकता, पर उसकी 'कट्टरता' को पेश करने में इतिहासकारों का हाँथ निश्चय है—वे इतिहासकार चाहें उस युग के रहे हों, चाहे आज के। और यदि इतिहासकारों का हांथ नहीं है, तो निश्चय ही उसने अपने लिये, अपने जीवन के लिये, अपने सुख के लिये, मन के लिये, और शरीर के लिये कुछ भी नहीं किया था।

'राज्य' और 'धर्म' के लिये उसने जो कुछ किया—चाहे 'राज्य' की वेदी पर 'धर्म' का बलिदान कर दिया हो, चाहे 'धर्म' की बेदी पर 'राज्य' का बलिदान कर दिया हो—पर जो कुछ किया वह उसने 'नग्न तलवार' के आधार पर नहीं किया था, 'नग्न सत्य' के आधार पर किया था। यदि अकबर के समान औरंगजेब भी राजपूतों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करता, तो सम्भव है हिन्दू अधिक प्रसन्न होते, औरंगजेब हिन्दुओं के प्रति अधिक सहिष्णु हो गया होता, पर निश्चय ही औरंगजेब जैसा व्यक्ति ऐसी नीतियों में विश्वास नहीं करता था, यदि जहांगीर के समान औरंगजेब भी हिन्दुओं को आर्थिक सहायता का प्रलोभन देकर उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करवा देता, यदि जहांगीर के समाने औरंगजेब भी केवल 'आशीर्वाद' को इतना बड़ा 'अपराध' मान लेता जिसके लिये जहाँगीर ने सिक्ख गुरु अर्जुन को प्राण दण्ड और उनके पुत्र को १२ वर्ष का कारागार जैसा दण्ड दे दिया था, तो सम्भव है 'हिन्दू' और 'सिक्ख' समय को देखकर चुप हो रहते पर निश्चय ही औरंगजेब ऐसा कुछ खुल्लम-खुल्ला करने में डरता नहीं था और 'आशीर्वाद' को 'अपराध'—मृत्यु दण्ड के योग्य 'अपराध' मानने का उदाहरण तो इतिहास में केवल एक ही है, दूसरा नहीं, न है न होगा; यदि शाहजहाँ के समान औरंगजेब भी यवन त्योहारों पर खूब धन लुटाता, जो हिन्दू इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते उनके प्रति शाहजहाँ के समान उदारता दिखाता, शाहजहाँ के समान उनके अपराध क्षमा कर देता, इस्लाम धर्म के मान लेने पर हिन्दुओं को पैतृक सम्पत्ति में (हिन्दू धर्म के विरुद्ध) भाग देता, तो सम्भव है हिन्दू और मुस्लमान और अधिक सुखी हो जाते पर निश्चय ही औरंगजेब यह सब कुछ करने को तैयार नहीं था क्योंकि वह राज्यकोष को 'धरोहर' समझता था? त्योहार न वह अपने मनाता था, न दूसरों को मनाने देता था। हिन्दुओं के प्रति उसकी कट्टरता तो उस दिन से विकट रूप धारण कर लेती है जबसे उसने हिन्दुओं को अपनी शक्ति का निर्माण करते देखा। हुमायूँ की-सी हिलती हुई रजसत्ता के बीच— आपत्तियों और संकटों के बीच खड़ा हुआ दृढ़ प्रतिज्ञ, कर्मनिष्ट, सत्यपरायण और बाबर की-सी शक्तिवाला औरंगजेब अकबर के १८ और अपने २४ सूबों को देखकर अल्लाह का शुक्रिया अदा करता था। पर उसे 'अल्लाह' के सामने 'राज्यमद' नहीं आया अन्यथा 'अल्लाह' को छोड़ स्वयं को 'अल्लाह' घोषित कर डालता। उस 'नग्न सत्य' से मेरा आशय 'खरी बात' से ही है। औरंगजेब ने सम्पूर्ण राज्यशक्ति को खरी बात कह कह कर केवल अपने में 'एकत्रित' कर लिया था।

'अविश्वास' और 'भेद-भाव' पर साम्राज्य को स्थिर रखने के अनेकानेक प्रयत्नों में असफल औरंगजेब साम्राज्य को खसा कर दक्षिण चला गया था—वहाँ जहां १६३६ में—जब

---

१ अपने पुत्र 'शाहशुजा' को आशीर्वाद देने के अपराध में जहाँगीर ने सिक्ख गुरु अर्जुन को प्राणदण्ड और उनके पुत्र को १२ वर्ष का कारागार दिया था।

उसकी आयु केवल १८ वर्ष की थी—उसकी जीवन लीला आरम्भ हुई थी और वहीं वह समाप्त—वहां जहाँ उर्दू भाषा का जन्म हुआ था, वहां जहाँ और जिस ओर से एक दूसरा साम्राज्य भारत आ रहा था पर 'धर्म' के लिये नहीं, 'अर्थ' के लिये। किन्तु मनुष्य-मनुष्य के भेद-भाव पर 'अर्थ' भी टिका नहीं। ब्रिटिश साम्राज्य जिस ओर से आया था उसी ओर से चला गया—इतिहास की यह एक अनोखी घटना है—इस विचार[1] से और भी अनोखी कि अंग्रेजों के भारत आने तक जो भी भारत आया, वह भारत में टिक कर रह गया था। अंग्रेज भारत से चले गये।

भारत की 'स्वतन्त्रता' का अर्थ तो केवल इतना है कि भारत की दृष्टि में विश्व के किसी भी देश, जाति अथवा पुरुष के प्रति 'भेद-भाव' नहीं—न था, न है, न होगा। भारत की यही 'विश्व-आत्मा' है।

तूफानों से लड़ती हुई लहरों को जितना समय शान्त होने में लगता है उतना ही समय 'तलवारों' और 'छल और कपट' के आधार पर ली हुई राज-सत्ता को अपने विकास में लगता है। किन्तु भारत की 'धर्म' और 'अर्थ' परीक्षा में लगभग पूरे १००० वर्ष लगे थे—१००० से १९४७ ई०—'ग़ज़नी' के प्रथम आक्रमण से अंग्रेजों के स्वदेश की ओर लौटने तक का काल ९४७ वर्ष होता है।

एक अंग्रेज विद्वान का कथन[2] है :—

'Subjugation to a foreign yoke is one of the most potent causes of the decay of national character.'

अर्थात्, किसी राष्ट्र के चरित के अधःपतन के सबसे प्रबल कारणों में एक कारण उस राष्ट्र का किसी विदेशी जाति के आधीन हो जाना है।

किन्तु मेरी लेखनी नहीं, 'विश्व-आत्मा' निर्णय करेगी———————मानव-चरित्र————राष्ट्रीय-चरित्र[3] किस-किन बलिदानों, साधनों और सिद्धियों से निर्मित हुआ है ? एक जर्मन-विद्वान का कथन है :—

'Character is formed in the stormy blows of the World,'

Goethe.

अर्थात् विश्व के झन्झा के झोके में चरित्र[4] का निर्माण हुआ है।

ज़िन्दगी की मुहब्बत सिर्फ टक्करों से है। विश्व का विशाल एवं विराट साम्राज्य एक एक जन के 'चरित्र' पर टिक कर रहा है—टिकेगा। 'राज' 'प्रजा हित' पर टिका है—टिकेगा। शासक 'प्रजा' की 'श्रद्धा' पर टिका है—टिकेगा।

---

१ देखिये पृ० ११२ टि० २

२ *Principles of Sociology* By Prof. E. A. Ross पृ० १३२।१३३

३ देखिये पृ० ५२ टि० ४

४ भारतीय जन के 'चरित्र' के विषय में ग्रीक इतिहासकार 'एरन' का कथन है :—

"They are remarkably brave, superior in war to all Asiatics, They are remarkable for simplicity and integrity: So resonable as never to have recourse to a law suit and so honest as neither to require locks to their doors nor writings to bind their agreement. No Indian was ever known to tell an untruth."

और वह 'लाहोर' जहाँ 'लव' और 'कुश' ने निष्कंटक राज्य किया था आज पाकिस्तान में है—भारत और पाकिस्तान दो[1] हो गये, वह कार्य्य हुआ जिसको यवन साम्राज्य अपने लगभग ८०० वर्षों के इतिहास में न कर सका था। किन्तु 'भारत' और 'पाकिस्तान' दो भले ही हो गये हों, अंग्रेज भारत से चले भले ही गये हों, इंगलैण्ड भारत से दूर हो गया हो, चाहें निकट, पर आज विश्व-भूमि का एक एक देश, विश्व का एक एक जन न 'धर्म' के बन्धन मे रहना चाहता है, न 'अर्थ' के। अब तक के इतिहास में इसी 'जाग्रति' का नाम 'स्वतन्त्रता' रहा है पर युग का सन्देश न 'स्वतन्त्रता' का है, न 'परतन्त्रता' का, विश्व की 'एकता' का है—ऐसी 'एकता' का जिसके अहङ्कार में मानव[2] का सौन्दर्य[3] खेलेगा।

मगर इन्सानी फितरत को न इन्सान समझ पाया है, न अल्लाह, न उसकी कुदरत। न तवारीख़ की सदिद्यॉं समझ पाई हैं, न सदिद्यों की तवारीख़।

ऐ हिलाली परचम !......आख़िरी सलाम।

देहली का 'लाल किला', 'कुतुबमीनार', 'जामामसजिद', 'दिवानेख़ास', फीरोज़ की 'मसजिद', देहली में फीरोज़ और हुमायूँ का 'मक़बरा', फीरोज़ द्वारा बसाया हुआ फीरोज़ाबाद, फतेहाबाद और जौनपुर, अजमेर की 'मसजिद', ग्वालियर का ग़ौस का 'मक़बरा', पानीपत और सम्भल में बाबर द्वारा निर्मित 'मसजिदें', फतेहाबाद की 'बड़ी मसजिद', सहसराम में शेरशाह का 'मक़बरा', सिकन्दरा में 'अकबर का मक़बरा', आगरे का 'क़िला', 'दीवानेख़ास, 'इबादतखाना', 'आगरे के क़िले में जहाँगीरी महल', फतेहपुर सीकरी में 'राजा बीरबल का महल', 'बुलन्ददरवाज़ा', 'दीवानेखास', बदायूँ की 'ज़्यारत', इलाहाबाद[4] और अटक के 'क़िले', बीदर का 'मकतब', गुलबर्गा की 'जामामसजिद', बीजापुर का 'गोलगुम्बद' और 'रौज़ा' में औरंगजेब की 'क़ब्र'—यह सब और सल्तनतें-मुग़लिया का 'ताज'—आगरे का 'ताज महल' इसी भारत भूमि पर आज भी खड़े हैं उसी

---

१ ई० १६३७ से १६४७ तक 'मुस्लिम लीग' की नीति भारत-बँटवारे की रही—'एक' से 'दो' होने की और फल यह हुआ कि १६४७ ई० में बँटवारा हो गया—'भारत' और 'पाकिस्तान' दो हो गये। पर इतने पर भी पाकिस्तान सन्तुष्ट नहीं हुआ। आज से ५ वर्ष पूर्व चौधरी खलीकुज़मा ने भारत के ४ करोड़ मुसलमानों के लिये भारत से एक और अलग स्थान मांगा है। आज (१६५६ ई० में) यह मांग विकट रूप धारण कर रही है।—ले०

'—*A separate homeland' for four crores of Indian Muslims.*'

—Pakistan Muslim League.

२...'*Man......the measure of all things.*' —Protagoras.

३ '*Beauty and Dignity of Man.*'

४ इलाहाबाद का क़िला—अशोक द्वारा निर्मित।

नोट :—द्वितीय विश्व युद्ध के काल (अगस्त १६३६ से सितम्बर १६४५ ई०) में अंग्रेजों ने भारत का सम्पूर्ण सोना इलाहाबाद के किले में छिपाकर रक्खा था।

वैभव और गौरव से मगर गोलकुण्डा का 'कोहनूर'[१] एक बार जो इंगलैन्ड गया तो अभी वापिस नहीं आया है—यह सच है पर वहाँ भी 'राजमुकुट' को ही सुशोभित करता है। उस राजमुकुट में विश्व की शोभा रही है।

आगरे का 'ताज महल'[२] भारत की स्वतन्त्रता के ठीक ३०० वर्ष पूर्व बन[३] कर पूरा हुआ था—१६४७ ई०[४] में।

अकबर के दरबारी अब्दुस समद पोस्त के दाने पर कुरान की पूरी आयत लिख सकते थे—अगर यह सच है, तो हो सकता है, मगर इन्सान के दिल पर 'कुरान' और 'वेद' की इतनी छोटी-सी बात न उतर पाई है :—

'ऐ इन्सान! इन्सानियत[५] की क़द्र[६] कर।'

इन्सानियत पर फ़ख़[७] अल्लाह को भी हो जाता है।

———

१ कोहनूर हीरा गोलकुण्डा में पाया गया था। पहले मुगल सम्राटों को मुकुट में रहा। पर १८४६ ई० में यह हीरा महारानी विक्टोरिया की भेंट किया गया। अब ब्रिटिश राजमुकुट को यह 'हीरा' सुशोभित करता है। पर इस हीरे के दो टुकड़े हो गये हैं।

२ "Miracle of miracles, the final wonder of the World."

"The Taj Mahal, perhapes the highest artistic achievement of the Moslems in India ranks with the supreme architectural creations of other civilizations as, for example, the temple of at Karnak, the Parthenon, St. Sophia, and the Gothic churches of Christendom."

लूक्स पृ० ३४४।३४५

३ ताजमहल का बनवाना १६३२ ई० में शाहजहाँ ने आरम्भ किया था।

४ भारत का स्वतन्त्रता दिवस १५ अगस्त १६४७ ई०।

५ मानवता

६ सराहना

७ अभिमान (परस्पर का विश्वास)

नोट :—यह 'अभिमान' इस प्रकार का होता है:—

'अस अभिमान जाय नहिं मोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

—तुलसी।

स्वामी को सेवक पर, सेवक को स्वामी पर अभिमान हो। भगवान को भक्त पर, भक्त को भगवान पर भरोसा हो।—ले०

भारतीय भाषाओं में :—

मानव की मधुर भावना—नारी का अंचल

मानव विस्मृति की ओर

(१६६० ई०[1]......१७६१ ई०[2]......१८३३ ई०[3])

'माशूक़ जो था अपना वाशिंदः दकन का था'

—मीर

भारत के दक्षिण में १३४७ ई० में जो साम्राज्य 'बहमनी साम्राज्य' के नाम से स्थापित हुआ था वह १५२६ ई० में ५ स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया था। वे पाँच राज्य थे—बरार, अहमदनगर, बीदर, बीजापुर और गोलकुण्डा। 'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा' के लिये ही औरंगजेब ने अपनी आयु के अंतिम दिवस समाप्त किये थे। दौलताबाद के निकट 'रौज़ा' में २० फरवरी १७०७ तदनुसार 'जुमा' (शुक्रवार) को उसकी कब्र बनी थी। किन्तु बीजापुर और गोलकुण्डा को जीत कर १६८६ ई० में बीजापुर के 'शाह' को और १६८७ ई० में गोलकुण्डा के 'शाह' को दौलताबाद के 'क़िले' में औरंगजेब ने 'बन्द' कर रक्खा था। यह दौलताबाद 'देवगिरि' थी।

'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा' के आश्रय में एक ऐसी भाषा का जन्म हुआ जिसे उस समय 'दक्किनी' कहा जाता था। कविता उस समय वहाँ 'दक्किनी' में होती थी पर

१, २, ३ 'विस्मृति-युग' का आरम्भ मैंने १६६० से किया है। इससे लगभग ५५ वर्ष पूर्व १६०५ ई० में अकबर महान का शासन काल समाप्त हो चुका था। १६०५ से १६२७ ई० तक जहाँगीर और १६२७ से १६६० ई० तक शाहजहाँ ने मुगल-साम्राज्य का परिचालन किया। मई१६५६ से १७०७ ई० तक औरंगजेब ने साम्राज्य की बागडोर संभाली। औरङ्गजेब के पश्चात् लगभग ५४ वर्ष तक साम्राज्य की सत्ता हिलती रही। १७६१ से १८५८ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन रहा। किन्तु १८३३ में विश्व की विराट भूमि में—ब्रिटिश साम्राज्य में एक महान घटना घटी। वह घटना मानव के इतिहास की एक उत्सव-घटना थी—विश्व-भूमि से 'दासता'* का निर्वासन हुआ। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में १८३३ ई० में 'पद्माकर'—रीति-युग के अन्तिम कवि—की मृत्यु हुई थी। पद्माकर का जन्म बांदा में १७५३ में हुआ था और मृत्यु कानपुर में १८३३ ई० में। ई० १८३५ में विश्व इतिहास में 'Socialism' 'समाजवाद' शब्द का प्रथम बार प्रयोग हुआ था—अपने समाज को पहिचानना 'स्मृति-युग' का प्रथम चरण था।—ले०

* Act Abolishing Slavery in the British Empire was passed in 1833.

छन्द 'हिन्दी'[1] का होता था—विद्वानों का ऐसा मत है। यही भाषा आगे चलकर 'उर्दू'[2] कहलाई। 'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा' के शाहों ने 'दक्खिनी' में काव्य की रचना की। गोलकुण्डा के मुहम्मद कुली कुतुब शाह (१५८०-१६११ ई०) ने इस भाषा में एक 'दीवान' रचा, 'वज़ी' (१६००—१६५० ई०) ने १६०६ ई० में 'कुतुब मुशतरी' की रचना की, 'ग़व्वासी' ने 'अरब की अलिफ-लैला' का अनुवाद दक्खिनी में किया। तूतीनामा लिखा। 'इब्न निशाती' ने १६५५ ई० में 'फूलबन' लिखा, 'तबी' ने 'किस्सा-ऐ-बहराम-ब-गुल-अन्दाम' (प्रेम कहानी) लिखा और बीजापुर के 'कमाल खाँ रुस्तमी' ने १४६६ ई० में 'ख़बर-नामा' लिखा, 'नसरता' ने 'गुलशन-ए-इश्क़' १६५७ ई० में लिखा। 'अलीनामा' और 'मेराजनामा' भी लिखे। मिर्ज़ा (१६६०) ने 'मरसिया' लिख डाले। मीरन हाशिमी ने 'युसुफ़-जुलेखा' रच डाली। मगर औरंगाबाद के 'वली' ने लिखा :—

'जिस वक्त ऐ सरीजन! तू बेहिजाब होगा।
हर ज़र्रा तुझ झलक सूं जू आफ़ताब होगा'॥

—वली

'वली' साहब का जन्म १६६८ ई० में हुआ था और मृत्यु १७४४ ई० में—औरङ्गजेब के ठीक ३७ वर्ष बाद। इनकी कब्र 'औरङ्गाबाद' में बनाई गई थी, उसकी 'दौलताबाद' के निकट 'रौज़ा' में। 'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा' को नष्ट करने से औरङ्गजेब ने 'दक्खिनी' या 'उर्दू' को भी नष्ट कर दिया था। पर............?

औरङ्गजेब की मृत्यु[3] के ठीक १२ वर्ष बाद 'देहली' के तख्त पर मुहम्मद शाह (१७१६—१७४८ ई०) की २६ वर्ष की हुकूमत शुरू हुई। मुहम्मद शाह के ज़माने में ही—उसके देहली के तख्त पर आने के १२ वर्ष बाद—'उर्दू' के 'देहली-स्कूल' की प्रथम शताब्दी (१७३०—१८३० ई०) आरम्भ हुई।

'उर्दू' तुर्की भाषा का शब्द है और उसका अर्थ है 'सेना'। 'ज़ुबाने-उर्दू' का अर्थ है 'सेना की भाषा'। 'ज़ुबाने-उर्दू-ए-मोअल्ला' का अर्थ है 'राज सेना'। किन्तु 'उर्दू' का शब्द भाषा के अर्थ में लगभग ५५० वर्ष (१२०६ से १७५० ई०) तक प्रयोग में नहीं

---

१ 'The poem was in Dakhini but Hindi meters were employed throughout'.

History of Urdu Literature.
By T. Grahame Baily. पृ० ५७

२ 'उर्दू साहित्य का इतिहास' के लिये देखिये :—
हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३

३ औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् ५ वर्ष तक बहादुरशाह ने शासन किया, जहाँनदार ने ११ महीने और फर्रुखसियर ने ६ साल (१७१३—१७१६ ई०) तक। मुहम्मद-शाह के युग में २० वर्ष तक अपेक्षाकृत शान्ति रही। ई० १७३६ में फारस का नादिरशाह और १७५६ ई० में फारस के 'अहमदशाह दुर्रानी' का देहली पर आक्रमण हुआ। ई० १७६० में मराठों द्वारा देहली त्रस्त रही, १७८८ ई० में रुहेलों द्वारा त्रस्त, फिर १८०४ ई० में होल्कर का देहली का आक्रमण असफल हो गया।—ले०

आया। अमीर खुसरो 'हिन्दुई' कहा करते थे। 'ज़ुबाने-देहली' या 'ज़ुबाने-हिन्दोस्तान' तो कहा जाता था, 'ज़ुबाने-उर्दू' नहीं। अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में (लखनऊ-स्कूल के) 'मुसहफी' की कविता में प्रथम बार 'उर्दू' शब्द का प्रयोग 'उर्दू-भाषा' के अर्थ में हुआ। अली इब्राहीम खां ने 'तज़्किरे-गुल्ज़ारे-इब्राहीम' में १७८३ ई० में और 'मुसहफी' ने 'तज़्किरे-शुयरा-ए-हिन्दी' में १७९४ ई० में 'ज़ुबाने-उर्दू' शब्दों अथवा 'वाक्य' का प्रयोग 'उर्दू भाषा' के अर्थ में किया। अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक 'हिन्दी' और 'रेख़्ता' का प्रयोग करते थे—'उर्दू' शब्द और उसको 'भाषा' के अर्थ में नहीं। 'रेख़्ता' शब्द फारसी भाषा का है। इसका अर्थ 'गिरी-पड़ी' अथवा 'मिला हुआ' का है—एक ही चरण (Verse) में दो भाषायें—'अरबी' और 'फारसी' अथवा 'अरबी' या 'फारसी' और 'हिन्दी' या 'उर्दू'। 'रेख़्ता' वह भी कहलाता था जिसमें हिन्दी भाषा में 'अरबी' और 'फारसी' के शब्दों का प्रयोग हो जाता था। सम्भव है, 'खटमलमल' और 'रहपटअली' जैसे शब्द रेख़्ता के ही शब्द हों। अमीर खुसरो ने १३ वीं शताब्दी में यह 'रेख़्ता' बनाया था। और १८३८ ई० में (लखनऊ स्कूल) के उर्दू शायरों (नासिक के युग के) ने इस 'रेख़्ता' शब्द का प्रयोग करना बन्द कर दिया और 'उर्दू' शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ।

उर्दू का आदि कवि कौन है?—यह प्रश्न ठीक वैसा है जैसे हिन्दी में। हिन्दी का आदि कवि कौन है? बीजापुर के शाह 'मुहम्मद कुली कुतुब शाह', औरंगाबाद के 'वली' और 'शुज़ाउद्दीन नूरी गुजराती'—इन्हीं तीनों के विषय में विद्वानों के अपने अपने मत हैं। पर 'वली' को ही 'उर्दू' का आदि कवि मानने की ओर विद्वानों का झुकाव अधिक है। 'खुसरो' को प्राचीनतम उर्दू का कवि माना है। 'वली' साहब एक बार 'देहली' भी तशरीफ लाये थे और उसी वक़्त से देहली की शायरी ने रंग पकड़ा था।

'वली' ने एक 'ज़र्रे' (कण) में आफ़ताब' (सूर्य्य) की भावना की थी यदि वह सरीजन (माशूक) बेहिजाब (बे पर्दा) हो जाये। कितनी सजीव एवं ऊँची भावना थी! और 'ज़र्रा' 'आफ़ताब' बनेगा तो केवल इसलिये कि उस 'ज़र्रे' पर उस 'सरीजन' की झलक पड़ेगी। 'वली' साहब के 'झलक' शब्द का अर्थ सम्भवतः ठीक वैसा ही है जैसा 'बिहारी' की इस[1] पंक्ति से स्पष्ट होता है :—

'जा तन की झांईं परे, श्याम हरित द्युति होय'

—बिहारी

'वली' साहब से 'बिहारी' बहुत पूर्व हुये थे—वली का जन्म १६६८ का था और बिहारी का १६०३ ई०[2] का और उन दोनों में अन्तर उत्तर और दक्षिण का था। यहाँ 'बिहारी' और 'वली' की तुलना का प्रश्न मेरे सामने नहीं है। 'झलक' और 'झाँई'—

१ 'मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांईं परे, श्याम हरित द्युति होय॥'

—बिहारी

२ बिहारी का जन्म लगभग १६६० वि० सं० और मृत्यु वि० सं० १७२० अर्थात् १६०३—१६६३ ई० 'बिहारी का युग' था।—ले०

शब्दों की 'उपयोगिता' और 'यथार्थता' को देखकर स्पष्ट होता है कि मानव की भावनाओं में कैसा उद्भुत साम्य होता है—'देश' और 'काल' का अन्तर नहीं। हिन्दी भाषा में 'बिहारी' को 'रीति काल' का प्रथम कवि मानते हैं। कण-कण में सूर्य की भावना करने वाला उस 'सरीजन' में कवि किस सौन्दर्य को देख रहा होगा—'बिहारी' तो 'राधा नागरि' को देखते थे। 'श्याम' रंग वाली नहीं, 'हरी' नहीं, कोई लाल साड़ी वाली मियां 'फाइज़' को भी देखने को मिल गई, पर उसे देखकर उनकी अक़्ल गुम हो गई थी :—

'तुफ बदन पर जो लाल सारी है।
अक़्ल उसने मेरी बिसारी है॥'

—फाइज़

मगर 'शायर' को यह लाल साड़ी वाली 'राधिका' से ऊँची जँची :—

'दिल फरेबी का अदा उसकी अनूप'
रूप में राधिका सूँ भी सरूप॥'

—फाइज़

यह 'फाइज़' साहब भी 'वली' के समकालीन थे। श्री गोयलीय जी ने 'आजकल उर्दू' (अगस्त १९५० ई०) में प्रकाशित जनाब मसऊद हसन साहब रिजवी के खोजपूर्ण लेख के आधार पर लिखा है, 'उत्तरी भारत के जिन उर्दू शायरों का हाल अब तक मालूम हुआ है, सम्भवतः, उनमें 'फाइज़' से पुराना कोई नहीं है।' 'फाइज साहब' उत्तर के थे इसीलिये 'राधिका' उनको दीखी।

किसी भी हिन्दी कवि ने उस युग में ऐसा सौन्दर्य नहीं देखा और न ऐसे सौन्दर्य की कल्पना ही की जो 'राधा' के सौन्दर्य से अधिक हो। हिन्दी के कवि ने 'राधिका' में 'दैवी' अथवा 'परम' सौन्दर्य अर्थात् 'अलौकिक सौन्दर्य' देखा था—'उर्दू' अथवा 'दकिक्नी' के कवि ने 'लौकिक सौन्दर्य' देखा। मगर 'वली' ने अपने 'सरीजन' में 'अलौकिक सौन्दर्य' ही देखा था। अन्यथा 'सरीजन' की झलक से 'ज़र्रा' आफ़ताब नहीं बन जाता—ज़र्रे को आफ़ताब बन जाने की भावना कवि नहीं कर पाता। काव्य में तो भावनाओं का खेल होता है—ऊँची भावना, ऊँचा काव्य।

आज के 'छायावाद' में 'कण-कण' की भावना :—

'अलि! मैं कण कण को जान चली'

—महादेवी वर्मा

कोई नई नहीं है, बहुत पुरानी है। न रूप नया है, न अर्थ। किन्तु कण कण को विरले ही जान पाते हैं।

मैं नहीं कह सकता कि 'वली' के उस 'कलाम' पर उस युग में 'मुकर्रर' की आवाज आई या नहीं मगर इस युग में तो निश्चय सुनने वाले की एक नज़र 'ज़र्रे' पर जायेगी और दूसरी 'आफ़ताब' पर उठेगी। 'ज़र्रा' भी दीखेगा, 'आफ़ताब' भी दीखेगा मगर 'सरीजन' नहीं दीखेगा। 'वली' का 'सरीजन' तो पर्दे में था। यह पर्दा 'दुई' का है—'द्वैता' का। कोई 'द्वैता' मिटाले, तो 'एकता' दीखे। किन्तु 'द्वैता' मिटती नहीं, न मिटी है, न मिटेगी इसीलिये 'एकत्व' में 'अनेकत्व' और 'अनेकत्व' में 'एकत्व' को देखना पड़ता है। फिर

उस 'साम्य' का अनुभव होता हैं जिसमें भावनायें उठकर विश्व में फैल जाती हैं, विश्व भावनाओं में समा जाता है और तब कोई लिख डालता है :—

'अलि ! मैं कण कण को जान चली'।

'किरण' के एक एक 'कण' में रवि-शशि का साम्य है।

'आज़ू'[१], 'मज़मून'[२], 'अहसन'[३] 'यकरङ्ग'[४], 'आबरू'[५], 'हातिम'[६], 'मज़हर'[७], 'नाज़ी'[८], 'फ़ुगां', 'सौदा'[१०], 'मीर'[११], 'क़लीम'[१२], 'क़ायम'[१३], 'दर्द'[१४], और 'सोज़'[१५] ने देहली पर 'नादिरशाह'[१६] और 'अहमहदशाह दुर्रानी'[१७] के हमलों का जमाना भी देखा, हमले भी देखे, देहली के शाहों की रंगीनी तबियत भी देखी, देहली की गलियां भी देखी, अपनी हालत भी देखी और पैग़ाम (सन्देश) भी भेजा क़ासिद (संदेश-वाहक) द्वारा यों कह कर:—

'मेरा पैग़ामें वस्ल[१८] ऐ क़ासिद।
कहियो सबसे उसे जुदा करके॥'

—मज़मून

और गली में गये बेताब होकर :—

'क़ौल आबरू का था न जाऊँगा उस गली।
हो करके बेक़रार देखो आज फिर गया॥'

—आबरू

१	सिराज उद्दीन अली खां	'आज़ू'	(१६८६—१७५६)
२	शरफ उद्दीन	'मज़मून'	(१६८६ से पूर्व जन्म—१७४५ के लगभग मृत्यु)
३	मुहम्मद अहसन	'अहसन'	समकालीन
४	मुस्तफा खाँ	'यकरग	समकालीन
५	नज़्मउद्दीन शाह मुबारक	'आबरु'	(१६६८—१७८१)
६	ज़हूर उद्दीन हातिम	'हातिम'	(१६६६—१७४१)
७	मिर्ज़ा जान जाना	'मज़हर'	(१६६६—१७८१)
८	मुहम्मद शाकिर	'नाज़ी'	(मृ० १७१४ ई०)
९	अशरफ अली खां	'फ़ुगां	(मृ० १७७२ ई०)
१०	मुहम्मद रफी	'सौदा'	(१७१३—१७८०)
११	मुहम्मद तक़ी	'मीर'	(१७२४—१८१०)

नोट:—'सौदा' और 'मीर' की जोडी ऐसी है जैसे 'बिहारी' और 'देव' की।—ले०

१२	मुहम्मद कलीम	'कलीम'	(समृद्धि काल १७५० ई०)
१३	क़याम उद्दीन	'क़ायम'	(मृ० १७८७ या १७९५ या इसके बीच)
१४	मीर दर्द	'दर्द'	(१७१६ ई०—१७८५ ई०)
१५	मुहम्मद मीर सोज़	'सोज़'	(१७२० ई०—१७६८ ई०)
१६	नादिरशाह का भारत (देहली) पर आक्रमण		१७३९ ई०
१७	अहमदशाह दुर्रानी का भारत (देहली) पर आक्रमण		१७५६ ई०
१८	मिलन-सन्देश		

'माशूक़' को कुछ पता नहीं कि 'आशिक़' ने उसकी गली के कितने चक्कर लगाये ?

'आशिक़ तेरी गली में कई बार हो गया'

—दर्द

'माशूक़' से शिकायत भी की :—

'न सैरे बाग, न मिलना, न मीठीं बातें हैं !'
यह दिन बहार के ऐ जां ! मुफ्त जाते हैं।।"

नाज़ी—

और दिन चले गये तो चले गये मगर ज़िन्दगी ही दर्दे-सर हो गई :—

'जुदाई से तेरी ऐ सन्दली रङ्ग।
मुझे यह ज़िन्दगी दर्दे सर है।।"

—यकरंग

किन अदाओं पर मरने वाला मर गया जो दर्दे-सर ले गया ?

'सौदा' साहब फ़रमाते हैं :—

'सौदा ! जहाँ से आके कोई कुछ न ले गया।
जाता हूँ एक मैं दिले पुर-आर्ज़ू लिये।।'

—सौदा

और 'मीर' साहब ने फ़रमाया:—

'दिल ढाय कर जो काबा[1] बनाया तो क्या हुआ'

—मीर

और यह

'नगर भी सौ मर्तबा लूटा गया'

—मीर

मगर वह 'नगर' हृदय का था। यह हृदय-नगरी कभी बसती है, कभी लुटती है। एक ओर देहली लुटी, एक ओर हृदय की नगरी। देहली लुट-लुट कर बस भी गई, पता नहीं देहली के शायर दिल में किसी को बसा सके या नहीं, और

'जिसको नित देखते थे अब उनका।
देखना ही ख्यालो ख्वाब हुआ।।'

—सोज़

पर प्रश्न यह है कि नित किसको देखते थे ? उत्तर है—किसी 'तिफ़ले-परीरु' को:—

'यहाँ देखे कई तिफ़ले परीरू।
अरे रे रे, अरे रे रे, अरे रे।।'

—सोज़

मगर यह सब कुछ 'दर्द' बन गया था 'दर्द' के दर्द में :—

'हमें तो बाग तुझ बिन ख़ानये मातम[2] नज़र आया।'
'इधर गुल फाड़ते थे जेब, रोती थी उधर शबनम।।'

—दर्द

---

१ मुसलमानों का तीर्थ स्थान।

२ दुखपूर्ण

'दर्द' ने देखा कि शबनम (ओस) भी रोती है। ओस रोई हो या न रोई हो मगर दिल में अगर कोई बसा न हो, तो न 'दर्द' ही होगा, न कोई रोयेगा ही और न कोई गायेगा ही। और यह 'दर्द' ही 'ज़र्रे' को 'आफ़ताब' बना देता है—वह 'सरोजन' छिपा ही रह जाता है।

'खुदा इश्क़ है या इश्क़ खुदा, तो यह खुदा जाने,
मगर इश्क़ और खुदा में खुदी* नहीं है—यह आलम जाना······
—तो इश्क़ से[१]।'

मगर शुअरा (कवियों) ने शायरी में इश्क़ भी फरमाया तो किसी कमसिन छोकरे से, 'नाज़नी' से बहुत कम। यह 'तिफ्ले परीरु' कोई यौवनावस्था को प्राप्त सुन्दरियाँ नहीं थीं—'छोकरे' थे। डाक्टर ईश्वरी प्रसाद ने लिखा :—

'Pederasty, so common among the Mughals of the Central Asia corrupted Muslim society and Aurangzeb's Mohatsibs could do nothing to stop the evil'.[२]

अर्थात्, छोकरेबाजी ने जो मध्य एशिया के मुग़लों में सामान्य रूप से फैली हुई थी यवन समाज को भ्रष्ट कर दिया और इस दुर्वृत्ति के रोकने में औरंगजेब के मोहतसिब कुछ न कर सके थे।

किन्तु 'छोकरों' को माशूक़ बनाने की भावना किसी अरबी, फारसी अथवा तुर्की साहित्य की नहीं थी। न किसी को इसकी हविस ही थी। यह भावना 'उर्दू' (सेना) की शारीरिक क्षति की पूर्ति के लिये आई हो, तो हो। अमरदपरस्ती (छोकरेबाजी) ने 'उर्दू' अर्थात् सेना की मजबूरियों को खिल्अत बख़्शी हो, तो हो। ज़माना जो निकल जाता तो हसरतें रह जातीं। लोगों के 'जनाज़े' तो निकल गये, मगर किसी का 'ज़माना' नहीं निकला। छोकरों की आँखों का 'सुरमा' शमशीर (तलवार) लिये फिरता था:—

'सुरमे ने उसकी चश्म के शमशीर खींच ली'
—मुसहफी

आंखों के 'तीर' और 'शमशीर' से परीशां होकर देहली के बाकलाम (योग्य) शायर[३] 'मीर', 'सौदा' और 'सोज़' इत्यादि 'लखनऊ' चले गये। यह 'मुसहफी साहब' अमरोहे के रहने वाले थे। आप कभी देहली, कभी फैजाबाद, कभी लखनऊ में 'खिजां' और 'बहार' देखते रहे। और अगर यह शुअरा 'तीर' और 'शमशीर' से परीशां नहीं हुये, तो अपनी मजबूरियों से (गरीबी से) लखनऊ चले गये। न जाते तो क्या करते?

'तेरे चे में अगर आये भी तो ठहर ठहर के चले गये।'
—मुसहफी

---

१ लेखक *स्वार्थ विश्व

२ *Short History of Muslim Rule In India.* पृ० ६६६
By Dr. Ishwari Persad.

३ 'दर्द' देहली में ही रहे।—ले०

देहली का ज़माना निकल गया। शायरी देहली के 'छोकरे' से हटकर 'लखनऊ' की 'नाज़नी' (नारी) पर पहुँच गई—'चोली', 'कंघी' और 'चोटी' पर:—

'चोली मसकी, बन्द हैं टूटे, सर के बाल परीशाँ हैं।
इस बिगड़े आलम पै तेरे लाख बनावट कुर्बां हैं॥"
—हसरत

यह 'चोली', 'कंघी' और 'चोटी'—यह लखनऊ की नाज़ुक ख़्यालियाँ हैं। 'सुबह बनारस', 'शामें लखनऊ' और 'शबे (रात्रि) मालवा'—यह किसी बुजुर्ग ने कहा है। मगर बंगाले में 'कंघी' और 'चोटी' तो शाम को-ही होती है। लखनऊ के 'मियां रंगीन' तो डोली के कहारों से यह भी पूँछ लेते थे :—

'ज़रा घर को रंगी के तहक़ीक़ कर लो।
कि यां से कै पैसे डोली कहारों॥'
—रंगीन

'तारीखें अदबे उर्दू'[१] का सुयोग्य लेखक इन 'रंगीन' साहब के विषय में लिखता है, 'रङ्गीन साहब' तो ज़िन्दगी निहायत ऐशो-इशरत (विलास) में परियों के जमघट में गुजारते थे'।

श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय ने अपने 'शैरे-ओ-सुखन', भाग प्रथम, पृ० ६२ पर लिखा, 'कुदरत का करिशमा देखिये कि इधर मुस्लिम सल्तनत का सितारा डूब रहा था और उधर शायरी का आफ़ताब आसमान में चढ़ रहा था। उर्दू शायरी का प्रारम्भ ही सल्तनत के ज़वाल (अवनति) से हुआ है, इसलिये ज़वाल के वक्त सल्तनत में ऐय्याशी, क़ाहिली, बुज़दिली (कायरता) वगैरह जो ऐब (दुर्वृतियाँ) आ गये थे वे सब शायरी में भी चिमट गये।' जो कुछ भी हो, पर देहली के 'छोकरे' और लखनऊ की 'नाज़नी' से ऐसा मेरा कोई आशय नहीं है कि उर्दू काव्य के विषय केवल इन्हीं तक सीमित होकर रह गये थे। शाहों की मचलती हुई रंगीनी तबियत दिल की हक़ीक़त में ग़मज़दा थी। मगर 'बेगम' फिर भी 'कनीज़' थी—नारी दासी-भावना नहीं छोड़ पाई है।

पञ्जाब में 'उर्दू' शब्द का प्रयोग 'सेना के बाजार' के रूप में प्रथम बार १७ वीं शताब्दी में दामोदरकृत लहंदी भाषा में रची हुई 'हीर' नामक रचना में हुआ है।

देहली की शायरी—देहली-स्कूल की शायरी सिर्फ 'सोज़' तक ही समाप्त होकर लखनऊ की शायरी नहीं बन गई थी। 'फिराक़', 'हसन', 'बक़ा', 'बेदार', 'बयान', 'मुसहफी', 'हसरत', 'हिदायत', 'जुर्रत', 'इंशा', 'नसीर', 'यक़ीन', 'असर', 'नज़ीर', 'रासिख़', 'क़ुदरत', 'जिया', 'आफ़ताब', 'ज़ौक़', 'ग़ालिब', 'शेफ्ता', 'मोमिन', 'तसक़ीन', 'नसीम', 'दाग़', 'आजाद', 'हाली', और मजरुह इत्यादि[२] भी उसी स्कूल के थे।

---

१ पृ० २३८ (अदबे = साहित्य) 'तारीखें-अदबे उर्दू' अर्थात्, 'उर्दू-साहित्य का इतिहास।'

२ 'देहली' और 'लखनऊ' स्कूलों की शायरी तथा 'उर्दू साहित्य के इतिहास' के लिए देखिये :—हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३

नोट :—ब्रिकेट में 'शब्दार्थ' मैंने दे दिये हैं। —ले०

इनमें से 'इंशा' साहब का हिन्दी में बड़ा मान है। 'रानी केतकी की कहानी' आप की रचना है। आपका पूरा नाम 'सैय्यद इंशा उल्लाह खां' था। आपने हिन्दी में कहानियों के रूप में 'गद्य' लिखा था। इनके पिता मीरमाशा उल्लाह खाँ 'नज़फ' के रहने वाले थे पर फिर देहली आकर बस गये थे। 'इंशा' का जन्म 'मुर्शिदाबाद' में हुआ था। पर जब आप योग्य हुये तो देहली चले आये और शाह आलम के दरबार में रहने लगे। फिर लखनऊ चले आये। वहाँ नबाब सआदतअली खां के दरबार में गये। 'इंशा' हसोड़ थे। इंशा की 'कुलियात', 'दरियाए लताफ़त' और 'रानी केतकी की कहानी' प्रमुख रचनायें हैं। यह 'कुलियात' एक अजब रचना है—इसमें 'उर्दू' का दीवान, 'रेख्ता' और 'फारसी' का छोटा दीवान, उर्दू और फारसी के 'कसीदे', मसनवी, बिना नुक़्ते की मसनबी, 'शिकारनामा', खटमल, मच्छर की हजो, चंचल प्यारी हथिनी की मसनबी, मुर्ग, साहूकार की मसनबियाँ, क़िते और पहेलियाँ इत्यादि हैं। 'दरियादे लताफ़त' उर्दू का प्रथम व्याकरण है। किन्तु हिन्दी जगत में 'इंशा' का मान 'रानी केतकी की कहानी' के कारण है। यह ठेठ हिन्दी की गद्य रचना है। किन्तु 'इंशा' को 'रानी केतकी की कहानी' के रचने की प्रेरणा कहां से मिल गई ?

'इंशा[1]' ने १८०२ ई० में अपनी पुस्तक 'दरियाये लताफ़त' में प्रथम बार 'पंजाबी' का प्रयोग भाषा के रूप में किया था। 'पंजाबी' शब्द का प्रयोग 'लहंदी', 'सिक्खी', 'पंजाबी', 'पूर्बी-पंजाबी' तथा 'निर्मलाई' भाषाओं के सामूहिक रूप को किया गया था। 'अवधी' भाषा को 'इंशा' 'पूर्बी' द्वारा संकेत करता था और ब्रजभाषा को 'भाखा' अथवा 'ब्रजी' शब्द द्वारा। किन्तु 'पंजाबी', 'पूर्बी' व 'ब्रजी'—इन तीनों को वह 'हिन्दी' के नाम से घोषित करता था। 'मारवाड़ी' शब्द से वह 'राजस्थानी' का बोध कराता था। किन्तु 'ज़ुबाने-रोहतक', 'ज़ुबाने-सोनीपत', 'ज़ुबाने-देहलवी', 'अम्बाल्वी' (अम्बाले देश की बोली) तथा 'बुन्देलखंडी' इत्यादि का भी भाषाओं के रूप में प्रयोग होता था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'पंजाबी' में 'कश्मीरी' तथा 'डोगरी' भाषा नहीं आती है। 'पंजाबी' भाषा 'साहसकृति' अर्थात् 'गाथा' अर्थात् 'प्राचीन हिन्दवी' तथा हिन्दी भाषा (भाखा), 'लंहदी' तथा 'लाहौरी' (सिक्खी) का समावेश है। लहंदी के अंतर्गत 'पोथाहारी', 'धनाई' 'मुलतानी' 'डेराजती', 'बहाबलपुरी', 'पन्छी' तथा 'शाहपुरी' बोलियाँ आती हैं। प्राचीन 'हिन्दवी' में चन्दबरदाई ने अपनी कविता की थी। इसमें रामानन्द, गोपीचन्द, गुरु नानक, अर्जुन देव तथा गुरु गोविन्द सिंह ने अपने 'शब्द' और 'श्लोक' लिखे थे। ग्यारह से पन्द्रहवीं शताब्दी तक प्राचीन पंजाबी का प्रयोग होता था जिसमें 'लहंदी', 'अरबी', 'फारसी' तथा 'हिन्दवी' शब्दों का बाहुल्य था। किन्तु १५ से १८वीं शताब्दी तक 'लहंदी' का प्रयोग कम होता गया और 'हिन्दवी' का अधिक। आधुनिक 'पंजाबी' १६वीं शताब्दी से आरम्भ होती है। इस प्रकार आधार कण उसमें 'हिन्दी' के थे।

'इंशा' की 'रानी केतकी की कहानी' की रचना के बहुत पूर्व से 'पंजाबी साहित्य' में 'आदिग्रंथ', 'दोहरा', 'विचारमाला', 'शब्द', भागवत गीता का 'अनुवाद', 'कवि-तरंग', 'कवित्त,' 'सवैया', शुथराशाह के 'श्लोक' और रेख्ता की रचनाओं के अतिरिक्त 'त्रिया-

---

१ इंशा की मृत्यु १८१७ ई० में हुई थी।

चरित्रों' की भरमार हो रही थी—लाहौर की 'जगजोतिमती', देहली की 'जाटनी', बृन्दावन की 'राधिका', मारवाड़ की 'शीतलमती', 'चन्द्रावती', बनारस को 'विश्वमती', 'उर्वशी', 'अहिल्या', 'तिल्लोत्तमा', 'नलदमयन्ती', मछली बन्दर की 'द्रौपदी', रूम की 'ज़ुलेखा', बदख्शां की 'ग़ुग़लानी', अकबर की 'रानी', 'भोगमती', 'जहांगीर' और 'नूर-जहां', 'कृष्ण और रुक्मिणी', 'देवयानी', 'चित्तौड़ के रत्नसेन', 'धार नगरी के भरथरी', गुजरात की 'विजयकुवँरि' और अपने यहां (पंजाब) की 'मिर्जा साहिबां', 'बाजमती', 'रांझा' और हीर', 'महीबाल-सोहनी', 'रूप-वसन्त', 'ससीपुन्नन,' 'जहांदार व बहरोज-बान', 'कामरूप' और 'कामलता' और अरब व फारस की कहानियाँ—लैला-मजनूं 'प्रेम-पिटारी', प्रेम-फुलवारी', 'तुह्फे-बे-नज़ीर', 'शीरीं-फरहाद' और ऐसी लगभग ४०५ कहानियां रचीं, सुनी और कहीं गईं थीं।[२]

किन्तु आर्य-युग में यह 'पञ्जाब' भारत का 'सारस्वत प्रदेश' था—वह पुण्य भूमि जहाँ अतीत को रूप मिला था, जहां प्रथम बार ऋषि-हृदय में वैदिक मन्त्रों का आरोह और अवरोह हुआ था, जहां ब्राह्मण ग्रन्थों, 'उपनिषदों' तथा 'आरण्यकों' का प्रतिपाद्य हुआ था, जहां 'ज्ञान' के उपदेश दिये गये थे, जहाँ—कटास पर 'युधिष्ठर' और 'धर्मराज' की भेंट हुई थी, मुररी में पांडवगणों का हिम में तिरोभाव हुआ था, लाहौर और कसूर में 'लव' और 'कुश' ने निष्कंटक राज्य किया था, पिन्डी (रावलपिन्डी) के समीप राम और लक्ष्मण कुण्ड पर विश्वामित्र ने तपस्या की थी, झेलम में तिल्ला स्थान पर बालनाथ ने 'नाथ-सम्प्रदाय' स्थापित किया था, मुलतान में प्रहलाद भक्त ने अपने ईश्वर को पहिचाना था, स्यालकोट पर राजा 'रिसालु' (दूसरी शताब्दी) ने शासन किया था, और कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'गीता' सुनाई थी।

किन्तु भारत का वह 'सारस्वत प्रदेश' केवल इतना ही नहीं है—उसमें 'कश्मीर' भी सम्मिलित है—वह प्रदेश जहां 'श्रीनगर' में श्री शङ्कराचार्य ने अपना चौथा मठ स्थापित किया था, जहां पाणिनी की व्याकरण, 'अष्टाध्यायी' और कलहन की 'राजतरंगिणी' की रचना हुई थी, जहाँ की ओर तक्षशिला का विश्वविद्यालय—ईसा के पूर्व ५वीं शताब्दी का विश्वविद्यालय युग युग में आलोक बिखेरता रहा था, जहां 'व्यास' और 'वेदान्त' तो रह गये पर ब्राह्मण धर्म के नियमों एवं विधियों को समूल उखेड़ कर फेंक दिया गया था, जहां बौद्धों के धर्मविशेषों का आदिस्थान था, और जहाँ आज भी भारत का 'न्याय' है—वह भूमि जहाँ का इतिहास संस्कृत में 'क्षेमेन्द्र', 'हेला', और 'जोनराज' ने रचा है।

कश्मीरी[२] साहित्य केसरिया साहित्य है—परन्तु यह 'केशर' ऐसी नहीं है जिसके वाण लगने से पुरुष काम पीड़ित हो 'हाय', 'हाय' कर बैठे। इस साहित्य में दिल के 'घाव' बहुत कम हैं मगर नजर के 'तीर' ज्यादा। प्राकृतिक सौन्दर्य की अनूठी उपमायों में 'संयोग' और 'वियोग' का सूक्ष्म दर्शन है।

इस प्रकार 'पञ्जाबी साहित्य में' 'त्रिया-चरित्र' की व्याख्या हो चुकी थी। उर्दू साहित्य में 'छोकरे', 'नाजनी', 'चोली', 'कंघी' और 'चोटी' की व्याख्या हो रही थी। 'किन्तु...!

१/२ पञ्जाबी तथा कश्मीरी साहित्य के इतिहास के लिये देखिये :—

किन्तु 'सम्प्रीति युग[1]' अर्थात् विद्यापति, कबीर, सूर, ब्रज के अष्टछाप, जायसी, मीरा, तुलसी, दादू, नरोत्तमदास, रहीम, केशव, मलूकदास, सेनापति, सुन्दर-दास, और मायादास इत्यादि के पश्चात् 'अँगिया' हिन्दी भाषा में भी मसकती रही:--

'सरकि सरकि सारी, दरकि दरकि आंगी'
औचक उचैहि कुच फरकि फरकि उठें ॥'

—देव

और 'छाती' और 'छैल' को भावनाओं से 'हिन्दी' भी मुक्त न रही :—

'लरिका लेवे के मिसुनि लंगर मो ढिङ्ग आय।
गयो अचानक आंगुरी, छाती छैल छुवाय ॥'

—बिहारी

और

'जोबन के मद ते मतिराम भई मतिवारिन लोग निहारें।
जात चली यह भांति गली, बिथुरी अलकें, अचंरा न सभारें ॥'

—मतिराम

और

''फहर फहर होय पिउ को पीत पटु।
लहर लहर होय प्यारी को लहरिया ॥'

—पद्माकर

ई० १६०५ में अकबर के युग अन्त होने के साथ संस्कृत साहित्य की यशोगान की परिपाटी—'नारी' की नहीं, नारी के प्रति पुरुष की उच्छृंखल भावनाओं की परिपाटी–कुच-कच-कटाक्ष और कालिदास के सम्भोग[2] की, वैभव और विलास की, भरत के 'नाट्यशास्त्र', धंनजय की 'रसरीति' और वात्स्यायन के 'कामसूत्र' की, 'नायक' 'नायिकाओं' के विभ्रम-विलास एवं लावण्य की, उनकी दूतियों की, हाव, भाव, हेला, अंग, प्रत्यङ्ग कीं, अयत्नज, स्वभावज, रस, रीति, गुण और अलंकार की, ऋतु-वर्णन की, राजा-महाराजाओं के ऐश्वर्य, अकर्मण्यता, वीरता[3] और उदारता की, कहीं, कहीं नीति और प्रशस्तियों की, 'उपमाओं' और 'कल्पनाओं' की और इसी प्रकार 'अरबी' और 'फारसी' की यशोगान[4] की पद्धति, रहस्यात्मक अन्योक्तियों की, इश्क, साकी, शराब[5] और शबाब की, सुलूक और सलीके की, जवानी और ज़हर की, इक़रार की और इन्कार

१ सम्प्रीति युग (१३६०—१६६०)

देखिये:—हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग २.

२ कालिदास ने 'कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में 'हर-पार्वती' का सम्भोग वर्णन किया है।

३ देखिये:—'भूषण' का काव्य।—ले०

४ देखिये:—'फिरदौसी का शाहनामा'

५ फारसी साहित्य में 'शराब'—

की, अफ़सोस और अजाब की, ख़ुमारियों के झोकों की, मजलिसों और क़द्रे-उल्माओं की और अरब के 'घात' और 'प्रतिघात' की और 'ईमान' की—इस प्रकार की परिपाटी और पद्धतियों को लेकर पर अपनी परम्परा (समष्टि) से साम्य रखकर—हिन्दी साहित्य लगभग दो सौ वर्ष के लिए (१६६०—१८३३ ई०) उस काल में जिसे मैंने 'विस्मृति युग' कहा है—हिन्दी साहित्य 'नागपुर,' मेवाड़, जयपुर, बीकानेर, चित्तौड़, नरबलगढ़, रीवाँ, बुन्देलखंड, रायगढ़, कृष्णगढ़, बूंदी, पन्ना, ओरछा, दतिया, अलवर, उदयपुर, कोटा, झांसी, आगरा, ब्रज, मथुरा, वृन्दावन, इटावा, अछलदा, कानपुर, कन्नौज, फर्रुखाबाद, फतेहपुर, इलाहाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, काशी, अयोध्या, लखनऊ, श्रीनगर(गढ़वाल), दिल्ली, बुलन्दशहर, मेरठ, पंजाब, और अहमदाबाद (गुजरात) इत्यादि में कभी मोंछे टेहता रहा :—

'जिहिं मुच्छन धरि हाथ कुछ जग सुजस न लीन्हो'

—गड्डु

और यों तो चूड़ियों की झन्कार सुनकर चौंक पड़ता ही था :—

'तनक तनक तामैं झनक चुरीन की'

—देव

किन्तु, यह 'राम' और 'कृष्ण' का देश था—भगवान 'बुद्ध' का देश था—हिन्दी की जन्म-भूमि। पर..!

पर स्पष्ट अर्थ मेरा केवल इतना है—शृंगार के माधुर्य्य में पुरुष अस्तित्व खोजता था क्योंकि पुरुष 'धर्म' और 'अर्थ' की बलिवेदी पर, 'देश' और 'भूमि' के अतिक्रमण पर, यवनों और तुर्कों के आक्रमण पर, लूट-मार, धर्म-परिवर्तन, द्वैष-विद्वैष, घात, अपघात, प्रतिघात, अविश्वास, हिलतीं हुईं सत्ताओं पर, गिरते हुये चरित्रों पर, रणक्षेत्र को छोड़ कर 'महलों' में घुस जाने पर, महलों में यौवन की प्याली से छन छन कर ढलती हुई मदिरा पर, ऐश्वर्य, वैभव और विलास अरुणिमा पर, अन्तःपुर की सूनी मधुशाला की 'प्रतीक्षा' पर, पार्थिव जीवन की ममता पर, और :—

'गुलगुली गिल मैं गलीचा हैं, गुनीजन हैं चाँदनी है, चिक है, चिरागन की माला है,
कहै पदमाकर है गजक गिजाहू सजी सेज है, सुराही है, सुरा है और सुप्याला है,
....
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है, सुबाला है, दुसाला है, विसाला चित्रसाला है,

—पद्माकर

'गलीचा', 'चाँदनी', 'चिक', 'चिराग़', 'गजक', 'गिजा', 'सेज', 'सुराही', 'सुरा' 'प्याला', 'तान', 'सुबाला,' (कोई हसीन-सी) 'दुशाला' और 'चित्रशाला'—उन सब पर और इन पर देश का धन-धान्य, ऐश्वर्य्य और वैभव लुटा कर और अपनी अपनी[२] जय और पराजय पर, यश-अपयश पर, आत्म-सम्मान, स्वाभिमान और राष्ट्रीय गौरव को मेटकर, मिटा कर, मिटवा कर, अपने[२] अपने विश्वास पर धर्म के धक्के खा कर—फूट,

१/२ यवन तथा हिन्दुओं दोनों से मेरा आशय है।—ले०

कलह, विद्रोह, भेद-भाव, असमानता, अन्याय पर सामर्थ्यहीन होकर—छल-कपट और विश्वास-घात पर संस्कृति को धोका देकर—पुरुषत्व के वीर्य को खोकर पुरुष नारी के अंचल की ओट चला गया।

किन्तु भारतीय नारी का यह गौरव रहा है कि उसने पुत्र के अतिरिक्त अपने अंचल को किसी अन्य को छूने नहीं दिया है। अपने 'पुरुष' के लिये **'नारी के अंचल'** का अर्थ नारी की **'साधना-शक्ति'** का है। समर्पणशील नारी ने उस युग के सामर्थ्यहीन पुरुष को साधना की शक्ति दे दी थी...!

किन्तु पुरुष नारी के प्रति उच्छृंखल भावनायें भरता रहा, पर.........! पर नारी ने जब अपने 'मंगल' रूप को भुला दिया तो पुरुष पतित हो गया ! वह पुरुष चाहें यवन हो, चाहें हिन्दू, और वह 'नारी' चाहें 'राजभवन' की हो, चाहे 'झोपड़ी' की। वह देश चाहें भारत हो, चाहे अरब, चाहें इंगलैंड, जर्मनी, स्पेन, रोम अथवा इटली हो।

'भारतीय नारी'– शब्दों का प्रयोग करने से ऐसा मेरा कोई आशय नहीं है कि मानों मैं तुलनात्मक दृष्टि से किसी अन्य देश की नारी के गौरव के प्रति कोइ उदासीन भाव दिखा रहा हूँ। पति का देश पत्नी का[१] देश है, पर 'गृह' नारी का है, 'देश' पुरुष का। इस दृष्टि से 'नारी' के लिये 'भारतीय' अथवा 'योरुपीय' जैसे विशेषण कोई विशेष महत्व नहीं रखते।

भविष्यत् की प्रतीक्षा करता हुआ 'अतिक्रमण' युग का साहस था। शौर्य्य-बल-विक्रम-वीर्य और प्रताप में नहीं, लोक-प्रकम्पन शब्दों में था, पर मन ही मन हताश था··· खिन्न। नख-शिख-कुच-कटि वर्णन युग का रसतत्व हो, तो हो, पर प्रत्येक 'ध्वनि' में एक चिन्तित स्वर था,···प्रत्येक 'अलंकार' केवल जी का एक बहलाव था···और प्रत्येक 'गुण' मानों विकल और अस्तित्व-विहीन-सा। फिर उठ न सकी थी वह...शेष शक्ति...देश की।

यह 'ध्वनि', 'अलंकार[२]' और 'गुण' हिन्दी को 'केशव' (१५५५ ई०—१६१७ ई०) ने दिये थे। केशव संस्कृत और हिन्दी के संगम पर हैं। 'माधुर्य' और 'प्रसाद' गुणों पर विमोहित केशव का प्रत्येक प्रयास एक छन्द था। छन्द एक काव्य था और काव्य एक कला थी। इस कला में प्रकांड विद्वता थी। पर 'केशव' और 'तुलसी' के युग में 'हिन्दी' को नहीं, मान 'संस्कृत' को प्राप्त था। तुलसी ने 'रामायण' भाषा में रची, केशव ने रामचन्द्रिका :—

'रामचन्द्र की चन्द्रिका[३] भाषा करी प्रकाश'

—केशव

---

१ 'On marraige a woman acquires the domicile of her husband.'

देखिये:—**'भारतीय विधान'**, धारा ५

२ केशव की 'कविप्रिया' अलंकार प्रधान है।

३ केशव की 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य है।

किन्तु 'भाषा' में 'रस'[१], 'रीति', 'ध्वनि', 'अलंकार', 'भाव', 'विभाग', 'अनुभाव', 'वक्रोक्ति', शब्दों की शक्ति--'अभिधा', 'लक्षणा', 'व्यंजना', उपमायें, 'कल्पनायें' छंद, प्रास, अनुप्रास इत्यादि संस्कृत से लाकर हिन्दी में रख दिये गये थे। उस परिपाटी को पकड़ कर उस युग का काव्य जिसे मैंने 'विस्मृति युग' कहा है शब्द और अर्थ के सौंदर्य में खो गया, किन्तु 'भाषा' को रूप दे गया। 'राम' और 'कृष्ण' की भूमि पर-से उस यवन-काल की विषमता में 'हिन्दी' अस्तित्व ग्रहण करती रही।

केशव[२] की आयु जब १८ वर्ष की थी तब अकबर ने आमीरों के प्रदेश—'गुजरात' (जो आज सौराष्ट्र कहलाता है) पर १५७३ ई० में आक्रमण किया और उसे अपने साम्राज्य का अंग बना लिया और जब इनके जीवन के केवल १७ वर्ष शेष रह गये थे तब १६०० ई० में मलिक अम्बर ने दक्षिणी गुजरात पर आक्रमण किया और इनकी मृत्यु के पश्चात् २७ वर्ष तक वहां राजनैतिक शान्ती रही। मुगल काल में गुजरात धन-धान्य से पूर्ण एवं समृद्धिशाली देश था—'काम्बे', 'सूरत', और 'घोघा'--यह तीनों ही जग-विख्यात बन्दरगाह थे। अहमदाबाद बड़ी ही सुन्दर नगरी थी।

किन्तु 'अहीर' और 'आभीर'—यह एक थे। 'अहीर' 'ब्रज' के थे :—

'अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावें'

—रसखान

और 'आभीर' गुजरात के। 'अहीर' और 'आभीर' दोनों ही गोचारक थे। विद्वानों का मत है यह आभीर सिन्धु तट पर बसे थे और ईसा के १५० वर्ष पूर्व 'गुजरात' में जा बसे थे। इस प्रकार 'ब्रज' से 'गुजरात' का सम्बन्ध टूटा नहीं—और न 'हिन्दी' और 'गुजराती' का। 'ब्रज' से 'द्वारिका' कृष्णा भी गये थे। अनूप-अर्नत (दक्षिणी और उत्तरी गुजरात) सौराष्ट्र, अवन्ति (मालवा-उज्जयिनी), शूरसेन (मथुरा)—यह सब सीमाओं से सीमाओं पर बँधे हुये आर्य्यों के उपनिवेश थे।

यह गुर्जर देश[३] वह भूमि है जहां पयोषिणी (ताप्ती) और नर्मदा बहती है, 'पयोषिणी' पर मार्कन्डेय ऋषि का आश्रम था और नर्मदा पर च्यवन और भृगु ऋषि का। निकट ही आबू पर्वत पर मुनि वशिष्ठ का आश्रम था और सिद्धपुरा में कपिल मुनि का। महाराज युधिष्ठर के चरणों ने भी (महाभारत—वन पर्व) इस पुण्यशीला भूमि को पवित्र किया है। और वह स्थल भी 'प्रभाषा' से थोड़ी ही दूर पर है जहाँ गीता के कृष्ण नहीं, महाभारत के राजदूत नही, अर्जुन के सारथी नहीं, 'मीरा' के 'गिरधर नागर' और 'नरसी' के 'सांवरिया'—अहीरों के, यादवों के 'यदुनाथ'—श्रीकृष्ण बहेलिये के बाण से घायल होकर 'मथुरा', 'वृन्दावन' और 'द्वारिका' को छोड़कर चले गये थे, किन्तु इसी विश्व में—कहीं ? यहीं, कहीं, इसी विश्व-भूमि के रज-कण में।

किन्तु १६ वीं शताब्दी में 'अरबी' और 'फारसी की लहर 'देहली' और 'लाहौर' से

---

१ केशव की 'रसिक प्रिया' रस-प्रधान है।

२ नोट :—केशव के अन्य ग्रंथ हैं—'विज्ञान-गीता', 'वीर सिंहदेव चरित्र', 'जहाँगीर चन्द्रिका', 'नखशिख', 'रत्न बावनी'

३ श्री के० एम० मुन्शी के 'गुजरात ऐंड इटस लिट्रेचर' के आधार पर, पृ० १, ११, १२, १६।—ले०

गुजरात भी आई थीं। 'मिराते सिकन्दरी' (गुजरात का प्रथम इतिहास) १५३६ में रची गई। काव्य धारा 'फारसी', 'अरबी' और उर्दू में बह चली। 'तारीख', 'दीवान', 'क़ाफ़िया', 'क़सीदा' 'क़िस्से', 'नामाह'—'शाहनामा', 'जार्जनामा' और 'फतुवा' इत्यादि की रचना होने लगी। भगवान दास (१६८१—१७४६ ई०) ने 'सूरत' के नवाब की शान में एक 'दीवान' लिखा। रणछोड दीवान ने 'तारीख सोराठ' (सौराष्ट्र का इतिहास) लिखा। ठाकुरदास देहली के शाह की ख़िदमत में हर साल एक 'क़सीदा' भेजते थे। रत्नबाई ने 'क़यामुद्दीन पीर' की शान में अनेक गीतों की रचना की। ई० १७३१ में 'फतुवे-आलम-गीरी' भी रची गई।

ई० १६४० में तेलंगाना के वेक्टांधुरीन का कथन था :—

'गुर्ज्जर देशश्वलुर्योः सुखाकरोति'।

अर्थात्, गुर्जर देश दूसरा स्वर्ग है।

और यहाँ का व्यक्ति—'रति के तुल्य सुन्दरियों के साथ आमोद-प्रमोद में जीवन व्यतीत करता था। नारी का सौंदर्य-शोभन अपूर्व था—मुख कमल के समान और वाणी अमृततुल्य—'सुधा धोरणी'।

नारी के भीगे पलकों पर एक आश्वासन तो था, हृदय में, सम्भवतः, एक विश्वास हो, तन-मन में एक अल्हाद हो,......पर नारी का गौरव ?

नारी का जीवन और उसका गौरव केवल इतना है—'कोई उसे सन्देह[१] की दृष्टि से न देखे'। बस! इतना ही उसका सम्पूर्ण समाज है। पर समाज स्वयं परतन्त्र था। श्री 'मुन्शी' का कथन है कि नारी केवल एक 'दासी'[२] बनकर रह गई थी! आठ[३] वर्ष की आयु में 'माता' और १६ वर्ष की आयु में 'विधवा'—नारी का यहाँ-तक पतन हो गया था। यवनों के कारण बाल-विवाह होने लगे थे। नारी कलह-प्रिय हो चुकी थी। सास-ससुर काँटे बन चुके थे।

'रूप-चन्द्र कुवंरि रास' में 'सुहाग' अपनी माता से कहती है, "माँ! तुम अपने हाथों मुझे मार डालो। मुझे नरक में भेज दो, पर किसी ऐसे व्यक्ति को मुझे न सौंप देना जो मूर्ख हो।" वही 'सुहाग' अपने मकान के सामने पान वाले की दुकान से पान लेते हुए 'रूप-चन्द्र' को देखकर अपने आपे को खो बैठी थी। पर उसकी[४] आयु १७ वर्ष

---

१ 'But in 15th century Bhalana bewailed their (women's) lot, if they keep themselves tidy, they are suspected of immorality."

Gujrat and Its Literature पृ० १७५

By K. M. Munshi.

२ 'Treated as slaves.' वही, पृ० १७४

३ भीम (१४८५ ई०)

४ "She(सुहाग)attains her seventeenth year. The flood of youth increases, and Kamdev, the god of love and youth, comes and lives in her body." Gujrat and Its Literature. पृ० १६६

By K. M. Munshi.

की भी तो हो चुकी थी। उसका मन लहरा खा रहा था। यौवन की तरंगें उठ रही थीं। उसके अङ्ग अङ्ग में काम का बास हो चुका था।

'कमलिनि सरवर बसे, सूर्य बसे आकाश
जब देखे पिउ आपनो, तब ते थाय विकास :'
—न्याय सुन्दर

कमलिनि सरबर में बसती है, सूर्य आकाश में। कितना अन्तर है ! पर सूर्य को देखकर कमलिनी खिल उठती है—बस ! पर कवि की भावना में नारी जब अपने पति को देखती हैं तो उसका सम्पूर्ण विकास हो जाता है। कमलिनी के खिलने के कारण का उसे पता चल जाता है। विकास की थाय उसे लग जाती है। कलियाँ क्यों मुस्करा उठती हैं, संसार क्यों सुन्दर हो जाता है—और स्वर्ग इसी पृथ्वी पर क्यों उतर आता है—उसे यह सब पता चल जाता है। इस भावना में कमलिनी स्वयं सूर्य नहीं बनना चाहती है पर सूर्य में अपने अस्तित्व को मिलाकर 'विकसित' होना चाहती है—खिलकर विश्व को 'सुख' से भर देना चाहती है। किन्तु नारी के लिये कवि के 'विकास' शब्द का अर्थ संकुचित नहीं है, बड़ा ही महत्वपूर्ण है। 'विकास' शब्द का स्पष्ट अर्थ है—पति-पत्नी का प्रेम—परस्पर के सुखी जीवन का—ऐसे 'सुख' का जिसकी कल्पना-मात्र से दूर से देखने वाले सुखी हो जायें, समाज गर्व कर उठे—राष्ट्र में स्वाभिमान भर जाये—जीवन देवतुल्य हो जाये, पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आये—दाम्पत्य जीवन सुखी हो जाये। गृह मुस्करा उठे।

इसी 'मुस्कराहट' ने नारी को सतीत्व का बल दिया है।

वह गुर्जर देश 'धनवन्ती' जैसी नारियों से भी रिक्त नहीं हुआ है। तुलसी की 'भवानी'[१] के समान 'धनवन्ती' अपने पति से कहती है, 'मुझे तुम्हारे बिना अपने पिता के यहाँ भी तो कोई आदर की दृष्टि से देखने वाला नहीं।' यह 'धनवन्ती' कवि 'न्याय-सुन्दर' की रचना थी।

किन्तु १७०० ई० से १८५२ ई० तक के काल को श्री मुन्शी ने 'कलह' शब्द से व्यक्ति किया है—यह 'कलह' घर की भी थी, बाहर की भी, मराहठों ने—पेश्वा, गायकवाड तथा सींधियां ने 'गुजरात' को लूटना अपना उद्देश बना लिया था।

और १६३३—१७३४ ई० तक का युग 'परमानन्द' का था। गुजराती साहित्य के 'अखय' नामक भाषाप्रेमी से बढ़कर भाषा से प्रेम इन परमानन्द को था। परमानन्द कहते थे :—

—'ए आश पूरो हरि'
हे हरि ! मेरी आशा पूर्ण करो,

और वह आशा केवल इतनी थी :—

---

१ 'पिता भवन जब गई भवानी।
दक्ष त्रास काहु न सनमानी॥'
—तुलसी (बालकाण्ड)

"......धारो गिरा गुर्जरी
पादे पाद रसाल, भूषणवती, थायो सखी उपरी।"

'गुजराती भाषा में सांगोपांग वर्णन हो सके, पद-लालित्य हो। कोमल कान्ति-वाली हो। मधुर हो, अलंकारयुक्त हो। अपनी अन्य सखियों में—'सखी जनथ की'—वह श्रेष्ट हो। संस्कृत भाषा के पद को ग्रहण करें।'

किन्तु इस भाषा के साहित्य के इतिहास में भी 'विस्मृति-युग' ठीक वैसे ही आया है जैसे 'हिन्दी' भाषा के साहित्य के इतिहास में। इस युग को श्री मुन्शी ने 'श्रान्त', निष्प्राण[१]' शब्दों से व्यक्त किया है। यह युग १६३४ से आरम्भ होकर १८५२ तक जाता है पर १७६७ ई० में 'दयाराम' जैसी महान आत्मा का जन्म चन्दोदा ग्राम में हो चुका था। यह ग्राम नर्मदा के निकट था (है)। इस महान आत्मा का युग १८५२ ई० में समाप्त हो जाता है और यहीं पर 'विस्मृति-युग' समाप्त होता है।

'सेज हमारी फुलड़े आनन्द उर न समाय.'

—दयाराम

किन्तु यह 'फूलों की सेज' किसी श्याम-सलोनी के लिये नहीं सजाई गयी थी। यह तो दयाराम की 'गोपी' की भावना थी। पर वह नटवर सुन्दर श्यामलो आयो नहीं। भावनायें उठ गईं और युग 'विस्मृति' से 'स्मृति' की ओर ढ़ल गया।

किन्तु आश्चर्य यह है कि गुर्जर देश की नारी आवेश की थपकियों में—मन की उमङ्गों में—अपने मङ्गल रूप को भुला कर नीचे की ओर ढल क्यों गई? कारण स्पष्ट है—गुजराती साहित्य में यह नारी विस्मृति-युग से पूर्व 'सम्प्रीति-युग' में एक 'बहु' बन कर आई थी।

गुर्जर देश शिव-पूजक था (है)। ई० ५०० में गुजरात को 'ब्राह्मण' तथा 'बौद्ध धर्म' प्रभावित करता रहा था। पर बल्लभीपुरा के उत्थान के साथ जैन 'साधुओं' को भी स्थान हो गया था। संस्कृत भाषा से—'कालिदास', 'भवभूति', 'वाण', 'दण्डी', 'माघ' इत्यादि से गुजरात प्रभावित होता रहा—'उज्जयिनी नगरी' से। पर जैनियों के हरिभद्र (७५० ई०), उद्योतम (७७६ ई०) तथा सिद्धार्षि (६०६ ई०) 'संस्कृत', 'प्राकृत' एवं 'अपभ्रंश' में रचनायें रचते रहे और ६७३ ई० में 'धनपाल' ने संस्कृत को साहित्यक भाषा स्वीकार कर लिया। धनपाल की रचना 'तिलकमंजरी' है।

गुर्जर देश शिव-पूजक होने के कारण, समुद्र तट पर होने के कारण, धन-धान्य से पूर्ण एवं समृद्धिशाली होने के कारण 'नीरस धर्म कथाओ' को अपनाना गुर्जर देश के लिये कठिन था। जैन साधुओं ने युग की इस दुर्बलता को पहिचान लिया था और शीघ्र ही उन्होंने 'धर्म-कथाओं' में एक 'नवबधू' लाने का आयोजन कर डाला। उद्योतम

---

१ "To this weary, lifeless age came a genuine poet. In 1767 Dayaram was bron in Chandoda village."

Gujrat and Its Literature

ने बताया कि वह 'बधू'[१] शुभ हो, आभूषणों से युक्त हो, वाणी की कोमल हो और मेरे शब्दों में, यदि यह हंसगामिनी नहीं, तो चाल उसकी रासबधाये की हो। पर वह 'नव-बधू' 'कहानी'[२] थी—किसी 'नागर-नागरिया' की। गुजरात के 'नागर सेठ' को एक 'नागरिया' भी चाहिये थी। इस प्रकार उस विस्मृति-युग' के पूर्व जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है गुजराती साहित्य में 'धर्म' कथाओं में समाजिक कथाओं का समावेश हो चुका था। 'तरङ्गलोल' अथवा 'तरङ्गवती' एक ऐसी ही रोचक कहानी थी। गुजराती साहित्य में कहानियों का युग १३३० ई० से १६५२ ई० का था। 'ढोला मारू' तथा 'माधव-कामकुन्डल' गुजरात की प्रमुख कहानियाँ हैं। 'ढोला मारू' की रचना कुसललभ (१५०४ ई०) ने की और गणपति (१५०३) ई० ने 'माधव-कामकुंडल' की।

'मारू' ने भावना की :—

—'पावस आयो प्रीतम।'

—कुसललभ

पर 'मारू' का 'ढोला' नहीं आया और न 'कामकुन्डल' का 'माधव' रुका।

किन्तु 'ढोला मारू' के रचियता की भावना में 'मारू' के तन से 'कस्तूरी' की सुगन्ध आती थी—कैसी सजीव कल्पना है ? यह था श्री 'मुंशी' का गुर्जर देश और गाँधी का 'गुजरात'[३]।

और यह है कवि रवीन्द्र का...... ..'बंग देश'।

यह 'बंग देश'......'विजय' और 'मङ्गल' काव्य का देश है......और यह है 'बंग देश' की 'नारी'—'कञ्चनमाला':—

---

१ 'Udyotama laid down that a story should be like a newly wedded wife, decked with ornaments, auspicious, moving with graceful steps, sentimental, soft in speech, and ever pleasing to the minds of men."

२ "......The धर्म कथा with this object in view, was given a peculiar turn in Gujrata. The stories of kings did not appeal to the commer cial classes but the social धर्म कथा dealing with the love affairs of a Nagara Setha, or a wealthy man's daughter ... ... as a substitute for heroism and renunciation according to Jaina tenets as the end of life caught the popular imagination."

Gujrat and Its Literature. पृ० २३
By K. M. Munshi.

३ 'गुजराती साहित्य के इतिहास' के लिये देखिये :—
हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३
देखिये :— Gujrat and Its Literature.

'तुम्हीं मेरे मोतियों के हार हो[1]
तुम्हीं मेरी मांग के सिन्दूर हो।'*
—कञ्चन

आर्य्यावर्त्त के 'सारस्वत' (पञ्जाब), 'कान्यकुब्ज' (कन्नौज), 'मिथिला' (बिहार) 'उत्कल' (उड़ीसा) तथा 'गौड़' (बङ्गाल) प्रदेशों का परस्पर विनिमय युग युग के इतिहास में इन प्रदेशों के एक निकट सम्पर्क का द्योतक है।

बङ्गाल की प्राचीन भाषा 'पांचाली' थी। इस भाषा का सम्बन्ध 'पांचाल' देश से स्वीकार किया गया है। सारस्वत प्रदेश से 'शक' सम्वत् बङ्गाल में आया था। 'ताल' और 'नाद' मिथिला से गये थे। वैष्णव भक्ति 'नवद्वीप' में उपजी थी। महाप्रभू चैतन्य[2] का जन्म नवद्वीप में हुआ था। वहाँ से वे 'पूरी' (जगन्नाथपूरी—उड़ीसा में) गये थे। फिर 'दक्षिण देश', और 'महाराष्ट्र' और 'गुजरात' होते हुये 'वृन्दावन' और वहाँ से फिर 'गौड़' (बङ्गाल) पहुँचे थे। बौद्ध-धर्म (महायान स्कूल) की भावनायें 'उड़ीसा' से गईं थीं पर उड़ीसा में जगन्नाथपुरी में 'बौद्ध धर्म' तथा 'वैष्णव' भक्ति का परस्पर मिलन हुआ था। भगवान बुद्ध बङ्गाल में 'धर्मठाकुर' बनकर आये हैं। 'जयदेव', 'विद्यापति', चन्डीदास और 'महाप्रभू चैतन्य[2]' की भक्ति भावना 'बंग देश' को प्लावित करती रही और वही वहाँ के 'विजय' और 'मङ्गल' काव्य की आधारशिला बनकर आई थी। 'मिथिला', 'उत्कल' और 'गौड़' देश का ऐसा सुन्दर समन्वय है—जहाँ भाषायें तो ३ हैं—मैथिली, 'उड़िया' और 'बंगला' पर 'भाव' एक हैं। मैथिली और 'बङ्गला' से मिलकर एक नवीन बोली का जन्म हुआ था जिसे 'ब्रज' बोली कहते हैं पर **'बंगला साहित्येर कथा'** के विद्वान् लेखक का कथन है 'बङ्गाल की इस 'ब्रज' बुलि का कोई सम्पर्क 'ब्रज भाषा' से नहीं है। सोलहवीं, सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी का बंगला का गीतकाव्य इसी 'ब्रज' (बंगला की ब्रजबुलि) बोली में है।

किन्तु इन शताब्दियों से पूर्व के युग में जब भक्ति की धारा बह रही थी—जब वैष्णव भक्ति उमड़ रही थी तब 'बंगला' भाषा 'हिन्दी' का योग लेकर चली थी। बंगला साहित्य का इतिहासकार लिखता है :—

"Bengal in the Vaishnava Period was subject to the influence of Hindi...Many of the great masters of Vaishnava faith lived in Vrindaban and there was a constant exchange of ideas between the people of that place and those of Bengal...Hindi had already grown to be the lingua franca of all India united under the suzerain power of

१ 'कंचनमाला' नामक 'बंगला कहानी में 'कंचन' का पति अपनी समुद्र यात्रा आरम्भ करने के पूर्व अपनी 'कंचनलता' से कहता है, 'मैं तुम्हारे लिये मोतियों का हार लाऊँगा'। इस पर 'कंचन' ने उपरोक्त उत्तर दिया था।—ले० *लेखक

२ महाप्रभू का जन्म १४८६ ई० में फाल्गुन मास की ढोलपूर्णिमा को नवद्वीप में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री 'जगन्नाथ' और माता का नाम 'शचीदेवी' था। इनका विवाह 'विष्णुप्रिया' के साथ हुआ था। आयु केवल ४८ वर्ष की थी। ई० १५४४ में आपने वैकल्प वास किया था।—ले०

the Muslim Emperor of Delhi. Those who had the propaganda of there faith to carry to all Indians could not help taking recourse to the most convenient vehicle already available for approaching them."[1]

अर्थात्, वैष्णव-युग में बंगला हिन्दी से प्रभावित हुई थी। वैष्णव भक्ति की महान आत्मायें वृन्दाबन में रहती थीं और वहाँ के तथा बङ्गाल के लोगों में विचारों का आदान-प्रदान निरन्तर होता रहता था। देहली के यवन सम्राट की छत्रछाया में उस समय सम्पूर्ण भारत एकता ग्रहण कर चुका था और 'हिन्दी' सम्पूर्ण भारत की भाषा हो चुकी थी···उन लोगों के लिये जिन्हें अपने 'धर्म' को फैलाना था—उनके लिये लोगों तक पहुँचने के लिये 'हिन्दी' का माध्यम बड़ा ही सुगम था।

और फल यह हुआ हिन्दी भाषा के अनेकानेक शब्दों का समावेश बङ्गला भाषा में किया गया। और इस प्रकार 'बङ्गला' भाषा भी 'हिन्दी' से अनुप्राणित हुई। किन्तु यह उस 'युग' का इतिहास है जिसे मैंने 'सम्प्रीति-युग' कहा है। मैंने सम्प्रीति-युग को १३६० ई० से १६६० ई० तक के काल को कहा है।

इसी 'सम्प्रीति-युग' में 'बङ्गला' का भाव 'विजय' और 'मङ्गल' काव्य में होकर निकला। बङ्गला काव्य में किसी न किसी देवता अथवा देवतुल्य मानव की महिमा कीर्त्तित होती थी। इसीलिये काव्यों के नाम 'विजय' अथवा 'मङ्गल' शब्द से युक्त होते थे। 'बङ्गला साहित्य की कथा[2]' में स्पष्ट किया गया है कि 'देव माहात्म्य सम्बन्धी गीत के अर्थ में 'मङ्गल' शब्द का प्रथम व्यवहार जयदेव ने किया था।'

'बंगला साहित्य' दशवीं शताब्दी के 'चार्यापदों' से आरम्भ होकर जयदेव की 'गीति काव्य' की परम्परा को पकड़ कर पन्द्रहवीं शताब्दी तक 'धर्म' और 'भक्ति' की ओर मुड़ गया था। बंगला में चण्डीदास ने 'मधुर भाव' को अस्तित्व और रूप दे डाला था। गीति काव्य की धारा बंगला साहित्य में 'प्रधान धारा' रही। पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में कृत्तिवास ओझा जी ने बंगला भाषा में 'रामायण पांचाली' की रचना की। हिन्दी में तुलसी ने अपनी रामायण १५७४ ई० में आरंभ की थी। बंगला साहित्य में काशीरामदास ने 'महाभारत' की रचना की और पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में 'वृन्दावन दास' ने 'चैतन्य भागवत' की रचना की। और फिर 'चैतन्य चरितामृत',[3] 'चैतन्य चन्द्रोदय कौमुदी',[4] 'चैतन्य संहिता'[5] और 'चैतन्य मंगल'[6] रचे गये।

---

१ *A History of Bengali Language and Literature.*
By Dinesh Chandra Sen   पृ० ६००

२ बरेली कालिज के प्रो० पं० भोलानाथ ने हिन्दी में 'बङ्गला साहित्येर कथा' का अनुवाद 'बङ्गला साहित्य की कथा' शीर्षक देकर किया है। इसी अनूदित 'कथा' का पृ० ६ देखिये। 'बंगला साहित्येर कथा' के रचियता डा० सुकुमार सेन हैं।—ले०

३ 'चैतन्य चरितामृत' १६ वीं शताब्दी (१५४२ ई०) के उत्तरार्द्ध काल की रचना है। कविराज 'कृष्णदास' की रचना है।

४ पुरुषोत्तम सिद्धान्त वागीश।

५ भागीरथ बन्धु।

६ जयानन्द (यह काव्य जन-साधारण के लिये रचा गया था)

किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत होते-होते दरगाहों में मिठाई चढ़ना, कुरान पढ़ना, यवनों के त्योहार मनाना (किन्तु उसी प्रकार मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के त्योहार मनाये जाते थे) और 'सत्यपीर' की भी पूजा होने लगी थी।

बंगाल देश पर तुर्कों का आक्रमण बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के सन्धिकाल में हुआ था—प्रथम आक्रमण गोरी के गुलाम बिन बख्तियार का था। लगभग २ शताब्दियों के लिये 'बंगला साहित्य' निष्प्राण हो गया था। किन्तु फिर...............?

फिर 'भक्ति' की भावना उमड़ी, महाप्रभु चैतन्य ने बंग देश को नवीन स्फूर्ति दे दी—साहित्य में इसे 'प्रथम जागरण' कहा है। महाकाव्यों का निर्माण हुआ और देवी-देवताओं के प्रति एक नवीन भावना लेकर 'बंगला काव्य' का सृजन हुआ। यह ऊपर स्पष्ट भी किया जा चुका है। किन्तु वह 'मंगल काव्य' क्या था?

'मङ्गल काव्य' का बड़ा ही सजीव एवं सुन्दर वर्णन 'अमृत बाजार पत्रिका' में प्रकाशित एक लेख[१] में हुआ है।

बंगला के 'विजय' और 'मंगल काव्य' में—'धर्ममंगल'—'मनसामंगल[२]', 'चंडी

"१..................The मंगल काव्य represent the major effort of the Bengali language for about three centuries and they give a true picture of the society in Middle Ages as also of a spirit of timid oppartunism and of abiding for safety at all costs that degraded the religious life of the people. Here we have neither the bold philosophical speculation of चार्य्यापद nor the spiritual ecstacy of वैष्णव faith but a sort of every day devotion that prays for favour, protection and wordly advancement as a price for worship offered. In them we have seen for the first time a realistic portrayal of home life with its squalid poverty and equally suqalid suqabbles of' co-wives', the envy of neighbours, business and usuary practised at none too high a level of morality, intrigues in court, and camp and tortuous diplomacy......But we have also seen the iron strength of character and unwavering constancy of purpose, wifely devotion... heroism in low places, a simple faith in divine providence...an epitom of Bengali life..."

Amrit Bazar Patrika. February 28, 1955.

२ 'मनसामंगल'—शिव पुत्री 'मनसा' के माहात्म्य तथा उसके पूजन की महिमा पर यह काव्य है। यह १६वीं शताब्दी में रचा गया था। मनसा देवी (देवी बेहुला) पर लगभग ६० रचनायें हैं। हरीदत्त द्वारा रचित 'मनसामंगल' प्राचीनतम है। बंगला भाषा तथा साहित्य के इतिहासकार श्री दिनेश चन्द्र ने इन्हें १२ वीं शताब्दी का बताया है।—ले०

मंगल[१]', 'शीतलामंगल'[२] 'दुर्गामंगल'[३], 'कालिकामंगल',[४] 'चन्डिकामंगल',[५] 'गङ्गा', 'श्री'[६], 'सरस्वती'[७] और 'षष्ठीमंगल'[८]—'शिवमंगल',[९] 'कृष्णमंगल',[१०] 'मुकुन्दमंगल[११] 'गोविन्दमंगल',[१२] तथा 'भारत पांचाली[१३] अथवा 'पांडवविजय', 'गोविन्दविजय[१४] और 'छड़ागान',[१५] 'कचड़ा'[१६], 'देवताओं की पांचाली'[१७] और 'प्रेम-भक्ति-चन्द्रिका', 'प्रेमविलास', 'रसकलिका', 'रसमंजरी', 'रसकल्पवल्ली', 'अनुरागवल्ली', 'पदावली' और जायसी के 'पद्मावत' की-सी १७ वीं शताब्दी की 'पद्मावती'[१८]—बंगला के इस साहित्य में बंगला जीवन के नित्यप्रति की एक झलक है—उस जीवन की जिसमें यवनों की कठोरता के कारण आँखों में आँसू थे, भरोसा भगवान और देवी-देवताओं का था और जिसमें डाह था, ईर्ष्या थी, द्वन्द-प्रतिद्वन्द था, मन की जीत थी, हार थी, नित्यप्रति का इतिहास था, कल्पनायें थीं, भावनायें थीं, विश्वास था और इन सब के अतिरिक्त समाज था, देश था, धर्म, धन और व्यवहार था और ··· जीवन अभिवादन के लिये 'चरित्र' का बल था।

---

१ इसी प्रकार 'चंडीमंगल' अनेक हैं। माधवाचार्य्यकृत 'चंडीमंगल' प्राचीनतम है।

२ 'शीतला देवी' पर रचा हुआ 'शीतलामंगल' बंगला साहित्य में कम हैं, पर उड़िया साहित्य में अधिक। बंगला में देवकीनन्दन ने 'शीतलामंगल' की रचना की।

३ आशु कवि भवानी प्रसाद। रूप नारायण घोष ने भी 'दुर्गामंगल' रचा।

४ कृष्णराम

५ द्विजकमललोचन

६ शिवानन्द

७ दयारामदास

८ कृष्णराम

९ चन्द ने (१६५६–१६८२ ई०) में रचा था

१० कृष्ण काव्य बंगला साहित्य में अधिक है। 'कृष्ण-प्रेम-तरंगिणी' भागवत के 'आधार' पर रची गई है। वैष्णव कवि 'पदकर्त्ता' कहे जाते थे—'मुरारि गुप्त', 'लोचन दास' तथा 'बलराम दास' पदकर्त्ता थे। कृष्ण-मंगल-काव्य भवानीदास घोष ने १७ वीं शताब्दी में रचा था।

११ हरिदासकृत

१२ कविचन्द्रकृत

१३ काशीरामकृत (भारत पाँचाली अथवा पांडव विजय)

१४ अभिरामकृत

१५ जिन छन्दों में पूजा का विधान, मन्त्र और छन्द हैं उसे 'छड़ा' अथवा 'छड़ागान' कहते हैं।

१६ साधू लोग 'छड़ागान' को कचड़ा कहते हैं।''

१७ कृष्ण काव्य। १८ सैयद-अलाओल (१६४५—५२)

नोट :—'छड़ागान', 'व्रत कथा' तथा 'देवताओं की पांचाली' बंगला के लोक-साहित्य के अंतर्गत आते हैं।

'जगन्नाथमंगल' में जगन्नाथपुरी के जगन्नाथ देव के माहात्म्य को दर्शाने वाली पौराणिक कथा का वर्णन हैं। यह रचना गदाधर की है और १६४२-१६४३ ई० में रची गई थी।

सत्रहरवीं शताब्दी के अन्तिम चरण (१६८६-८७ ई०) में 'रायमंगल' की रचना अपना एक विशेष महत्व रखती है। इसमें भारत के सुन्दरवन के व्याघ देवता 'दक्षिणराय' के माहात्म्य की कहानी है—'मगर देवता',[1] 'कालूराय' और 'पीर बड़ खाँ गाजी' की कहानी हैं।

बंगला का लोक-साहित्य बंगला की एक अपूर्व निधि है।

''मलंचमाला' तथा 'कंचनमाला' की कथायें इस लोक-साहित्य के अंतर्गत आती हैं। इन दोनों नारियों की कथायें 'त्याग', ''बलिदान' तथा 'पति-भक्ति'—एक शब्द में यों कहिये एक 'अबला' की जीवन-कथा है।

किन्तु यह 'लोकगीत' ६ राग अथवा ३६ रागनियों के स्वरों में नहीं, जीवन के अर्न्तस्वरों—हृदयग्राही स्वरों—'जयदेव', 'विद्यापति', 'चण्डीदास' तथा 'चैतन्य' की 'प्रेम', 'आनन्द', 'मङ्गल' और 'विजय' की भावनाओं को स्पर्श करके जीवन के अर्न्ततम स्वरों में गाये जाते हैं। नित्यप्रति के जीवन के सुख-दुःख को इन लोकगीतों की मधुर ध्वनियों में 'बंगाल' भुलाता रहा है—भुलाता रहेगा।

बंगला साहित्य[2] की अमर कृतियाँ साक्षी हैं।'

और यह 'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा[3]' नहीं है...यह भारत का दक्षिण है—वह तपोभूमि है, जहाँ नर्मदा ने श्रीं शङ्कर जैसे योगीराज[4] के चरणों का प्रक्षालन किया था, जहाँ मद्रास से २६ मील की दूरी पर नारियल, ताल, खजूर, सुपारी, बट, पुन्नाग तथा नागकेशर से सुशोभित श्रीपेरेम्बधूरम नामक रम्य वनस्थली ने श्री रामानुजाचार्य्य जैसे यतिराज[5] को 'जन्म दिया था, जहाँ मद्रास प्रान्त के बिलारी जिले में निम्बापुर

---

१ देखिये :—पृ० १६ तथा टि० ४। मिस्र देश के ओंबस तथा फायूम नगरों में मगर-मच्छ की पूजा होती थीं क्योंकि उस देश में 'नील' नदी बहती थी। बंगाल तट से लगकर 'सागर' (बंगाल की खाड़ी) बहता है। अतः साहित्य में ऐसी भावनाओं का आना स्वाभाविक है।—ले०

२ 'बंगला साहित्य के इतिहास' के लिये देखियेः—

हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३

३ 'यह बीजापुर और गोलकुण्डा नहीं हैं'—इन शब्दों के प्रयोग करने से मेरा ऐसा कोई आशय नहीं है कि मानों मैं 'उर्दू' भाषा के प्रति कोई उपेक्षा का भाव दिखा रहा हूँ। नकारात्मक 'नहीं' का प्रयोग करने में मेरा आशय केवल इतना था कि 'बीजापुर और गोलकुण्डा'—यह दोनों राज्य बहमनी वंश के अन्तर्गत थे और १५२६ ई० में स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर बैठे थे। बीजापुर में आदिलशाही और गोलकुण्डा में 'कुतुबशाही' राज्य थे। 'तैलंगाना' की भूमि 'गोलकुण्डा' कहलाती थी।—ले०

४ नर्मदा के तट पर श्री शंकर 'योगीराज' कहलाते थे। —ले०

५ श्री रामानुजाचार्य्य 'यतिराज' कहलाते थे।—ले०

स्थान में श्री निम्बार्काचार्य्य ने जन्म लिया था, जहाँ मद्रास प्रान्त के मंगलूर जिले के अन्तर्गत 'उडूपीक्षेत्र' से दो-तीन मील दूरी पर वेलिलग्राम में श्री माधवाचार्य्य जन्में थे, जहाँ भारत का 'सुन्दर' और 'दंडक' वन था (है,) जहाँ ऋष्यमूक[१] पर्वत पर अग्नि को साक्षी देकर 'राम' और 'सुग्रीव' की मित्रता[२] हुई थी, जहाँ राम ने 'अनन्य भक्ति' की व्याख्या की थी :—

"सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप-राशि भगवन्त॥"

—तुलसी

जहाँ "गोदावरी', 'कृष्णा', 'तुङ्गभद्रा' और 'कावेरी' की लहरों पर खड़े होकर मानव ने साहित्य को रूप दिया था, जहाँ पांडया राज्य के अंतर्गत मणिमुक्ताओं से सुशोभित 'कवाट' नगरी में 'विद्या' और 'विनय' एकत्रित हो गई थी, जहाँ-से वह 'कवाटपुरम' नगरी द्वारिका के समान सागर में अलक्षित हो गई थी, जहाँ तमिल 'नाद'[३] पांडया, चोला और चेरी की कीर्ति को ध्वनित करता रहा है, जहाँ 'श्री सोम सुन्देश्वर' तथा 'देवी मिनाक्षी' मन्दिरस्थ हैं और जहाँ एक युग में इसी पृथ्वी पर 'रम्भापुरी[४]' थीं (है)...और!

और विद्वानों का मत है—'भक्ति द्राविण ऊपजी', किन्तु दक्षिण की 'शिव-सूक्तियाँ' साक्षी हैं—भक्ति में ऐसा भेद नहीं है।

दक्षिण की निष्काम भावना श्री शंकर, रामानुजाचार्य, यामुनाचार्य, निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य, तथा अनेकानेक सन्तों और भक्तों द्वारा पुनः 'राम' और 'कृष्ण' के देश—'अवध' और 'ब्रज' को—हिन्दी की जन्मभूमि की ओर मुड़ी, गंगा और यमुना के सङ्गम पर 'प्रयागराज' पर आ मिली, फिर 'काशी' और भगवान बुद्ध के देश को श्रद्धाञ्जलि देती हुई, 'विदेह' की ओर मुड़ गई, 'मिथिला' और 'पुरी (उड़ीसा की जगन्नाथपुरी) होती हुई महाप्रभू चैतन्य के देश—'बङ्गाल' में जा मिली और फिर 'ब्रज' से आदान-प्रदान होता ही रहा। किन्तु यह भक्ति 'मध्यदेश' के 'चम्पारण्य' (रायपुर) होती हुई गई थी। मध्यदेश के चम्पारण्य में श्री बल्लभाचार्य्य—डा० दीनदयाल गुप्त[५] के अनुसार 'काशी' से

---

१ "आगे चले बहुरि रघुराई।
ऋष्यमूक पर्वत नियराई॥"
—तुलसी (किष्किन्धाकाण्ड)

२ "तब हनुमन्त उभयदिसि, कह सब कथा बुझाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥"
—तुलसी (किष्किन्धाकाण्ड)

३ "The hymns of the Tamil saints of the Shiva cult between 600-800 show an emotional ferver and a catholicity which paved the way for the best devotional literature in vernacular of Northern India."

The Making of India. By A. Yusuf Ali. पृ० ६२

४ 'दक्षिण की नगरी 'वालेहुल्लूर' रम्भापुरी कहलाती थी।—ले०

५ 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के रचियता।

'चम्पारण्य' के रास्ते में—१४७८ ई० में जन्म थे। श्री बल्लभाचार्य की माता का नाम 'इलम्मा' था और पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट। यह उत्तरादि तैलंग ब्राह्मण थे। और इनके जन्म के लगभग ६७ वर्ष पश्चात् १५१५ में इनके छोटे पुत्र श्री विट्ठल जी ने 'चरणाद्री' (चुनार) में जन्म लिया था। पश्चिम में यह भक्ति 'महाराष्ट्र' से पण्ढरपुर होती हुई, सौराष्ट्र में 'मीरा' और 'नरसी' के द्वारा उपजी और वहाँ से पुनः मध्यदेश होती हुई 'ब्रज' में पहुँची—'राम' और 'कृष्ण' के देश में—भगवान 'बुद्ध' के देश में। किन्तु यह 'भक्ति' वैष्णव भाव को लेकर चली थी,अथवा 'हर हर महादेव' को अथवा 'रामानन्दी तिलक' को लेकर गई थी—यह तो भक्तगण जाने पर निश्चय ही वह भक्ति मानव 'सम्प्रीति' को लेकर चली थी और उत्तर की ओर दूर देश—'कुरुक्षेत्र' होती हुई, 'कशमीर' और'कामरूप देश' (आसाम) होती हुई शङ्कर[1] के 'कैलाश' की ओर निकल गई थी। श्री शङ्कर[2] की 'भारत की दिग्विजय' साक्षी है और साक्षी हैं भारत के वे चारों 'शङ्कर-मठ'* जो शङ्कर ने स्थापित किये थे। 'द्वारिका','गया'और'जगन्नाथपुरी'—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण साक्षी है।

किन्तु, यह तो भक्ति के 'सूत्र' हैं जहां चाहो जोड़ लो, जहाँ चाहो तोड़ लो। चाहे 'प्रयागराज' पर 'उत्तर' और 'दक्षिण' का सङ्गम बना लो। श्रीरामानन्द जी ने इसी प्रयागराज में जन्म[3] लिया था। रामानन्द जी की भक्ति 'उत्तर' और 'दक्षिण' के संगम पर है—'काशी' में 'कबीर' को दीक्षित किया था—'रामानन्द चेतायें[4]—अयोध्या में 'राम' की कीर्त्ति गाई थी। भक्ति की सीमायें नहीं होतीं। भक्ति 'उत्तर' से 'दक्षिण' आई हो अथवा 'दक्षिण' से 'पूर्व', 'पश्चिम' होती हुई 'उत्तर' की ओर निकल गई हो तो यह विद्वजन जानें अथवा भक्तजन परखें, मेरा जैसा मूढ़ समझे, तो क्या ?

—'सबसे भले वे मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगतगत[5]।'

भक्ति तो केवल 'सचराचर' (स + चर + अचर) को लेकर चली है। 'सचराचर' में केवल एक ही रमे हुये 'रूप' को देखना भक्ति की चरमावस्था है। 'सचराचर' का अर्थ है—विश्व—विश्व की सम्पूर्ण सत्तायें, चाहें वह 'चर' हों, चाहे 'अचर'। सम्पूर्ण विश्व की एक-एक श्वास में 'एकत्व' स्थापित करना, उस 'एकत्व' में 'अनेकत्व' को भी भुला न देना और उस 'अनेकत्व' में पुनः 'एकत्व' स्थापित करना ही भक्ति है—नीरस नहीं, सरस। 'कर्म' से, 'ज्ञान' से, 'बुद्धि' से, 'मन' से और 'प्रेम' से—'आत्मा' से यह सम्बन्ध स्थापित होता है—'अनेकत्व' में 'एकत्व' दीखता है, 'एकत्व' में 'अनेकत्व' दीखता है। भक्ति नौ प्रकार की बताई है—'नवधा भक्ति'—'श्रवण', 'कीर्तन', 'स्मरण', 'पाद सेवन', 'अर्चन', 'वंदन', 'दास्य', 'सख्य' और 'आत्म-निवेदन'। किन्तु भक्ति में यह 'प्रकार' नहीं हैं—नहीं हैं। भक्त का मन बड़ा ही विचित्र होता है—भक्त की आँखों में आँसू भगवान के चरणों को प्रक्षालन करने को

---

१ भगवान शिव-शङ्कर

२ श्री शङ्कराचार्य्य *कांची, गोबर्धन, शृंगेरी और ज्योतिर्मठ

३ रामानन्द जी का जन्म प्रयागराज में १३०० में हुआ था। इनके पिता का नाम पुष्प सदन शर्मा था और माता का नाम सुशीला।—ले०

४ कबीर

५ तुलसी

नहीं आते हैं, पर प्रक्षालन कर जाते हैं, भक्त के हृदय में भगवान के 'अर्चन' की भावना नहीं उठती है, पर 'अर्चन' हो जाता है, भक्त की 'स्मृतियों' में भगवान उतर नहीं पाता है, पर रोम रोम में थिरक जाता है, भक्त भगवान को नमस्कार' नहीं कर पाता है, पर स्वतः ही मस्तक श्री-चरणों में झुक जाता है, भगवान का भक्त 'दास' कब तक बना रहे, सखाभाव रखता हुआ भी कौन भक्त भगवान से नहीं लड़ा[1] है, और 'श्रवण', 'कीर्तन' और 'आत्मनिवेदन' किसी समय विशेष को सीमित अथवा निश्चित होकर नहीं रह गये हैं। श्याम के 'सूर' साक्षी हैं, ब्रज की 'गोपियाँ' साक्षी हैं, राम के 'तुलसी' साक्षी हैं, अवध की 'गलियाँ' साक्षी हैं।

'दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकों को सुलाते समय, रोते हुये बच्चों को लोरी देते समय, घरों में छिड़काव करते समय, झाड़ू देते समय, प्रेमपूर्ण चित्त से आँखों में आँसू भरे, गद्गद वाणी से श्रीकृष्ण के गुणगान[2] गोपियाँ किया करती थीं।' वे ऐसी गवांरिन थीं—ऐसी निष्कपट, निश्छल, सरल हृदया थीं—कि अस्वस्थ श्रीकृष्ण के लिये वे अपनी चरण धूलि तक देने को तैयार थीं, दे दी थी, जबकि नारद विश्व में घूम चुके थे—बीमार पड़े हुये भगवान को औषधि रूप में कोई अपनो चरण धूलि देने को तैयार नहीं था। भक्त के पास 'भावनाओं' के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है। भक्ति का अर्थ—'सरला'[3] का है—सरल हृदय का। उस सरल हृदय में विश्व समाया हुआ होता है।

किन्तु यह भक्ति उत्पन्न कैसे होती है? श्रवण से? कीर्तन से? स्मरण से? अर्चन से? आत्मनिवेदन से? बन्दन से? 'दास' अथवा सखाभाव से? अथवा पाद सेवन से? यह तो भक्त जन जाने?। पर भक्ति उत्पन्न होती है भगवान के एक 'धक्के'[4] से जब तक वह 'धक्का' नहीं लगता है, तब तक न हृदय थलथलाता है, न आँखें छलछलाती हैं और न कंठ रुंध पाता है। इस 'धक्के' का जब तक असर रहता है भक्त इसी संसार में रहता हुआ भी भाव की एक ऐसी लीलामय भूमि में उठ जाता है जहाँ 'भक्त' और 'भगवान' दो नहीं, 'एक' थे और 'एक' हो जाते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है कि धक्के के उतर जाने के बाद भक्त और भगवान पुनः दो हो जायें। भारत भूमि का 'रजकण' साक्षी है, विश्व का कण-कण साक्षी है और सचेत है मानव का पल, पल, क्षण, क्षण। भक्त जो कुछ करता है—भला या बुरा—वह 'भगवान' के निमित्त, भगवान जो कुछ करता है—भला या बुरा—वह भक्त के निमित्त किन्तु इस विश्व में भेद न भगवान ढूँढ़ पाता है, न भक्त। इसी को गीता में 'निमित्तमात्र'[5] होना कहा है। गीता का आश्वासन है—'मेरा भक्त नष्ट नहीं होता है।'[6] इस 'मेरा' शब्द में 'सचराचर भरा हुआ है। यही

१ 'आज हौं एक एक कर टरिहौं।
कै हमहीं कै तुम्हीं माधव अपन भरोसे लरिहौं॥" —सूर

१ 'हौं मचला लै छाँड़िहौं' जेहि लाग अरयो हौं'

२ श्री मद्भा० १०।४४।१५ —तुलसी (विनय-पद २६८)

३ स+र+ल+अ = सरस्वती + रमा + लक्ष्मी + ओंकार = 'सम-योग'।—ले०

४ भक्त के धक्के से भगवान के पीर होती है।—ले० (तु० गीता ४।११)

५ गीता ११।३३ (देखिये:—पृ० २०२)। ६ गीता ९।३१

'शिवं' हैं—यही 'सत्यं', यही 'सुन्दरम' है। यही 'विश्व', यही 'मङ्गल' है। यही 'दृढ़ विश्वास' है।

> 'यदि कोई योग्य पहनने वाला न हो तो सुन्दर-सा गुंथा हुआ हार कुम्लाह जायेगा, ठीक इसी प्रकार यदि कोई न 'सराह' सके तो सुन्दर-सी रचना भी व्यर्थ होगी।'
>
> —जनन

यह 'जनन' दक्षिण के कनाड़ी साहित्य अथवा कन्नड़ भाषा के उदयीमान कवि थे। इन्होंने १२०६ ई० में 'यशोधरा-चरित' की रचना की थी।

किन्तु दक्षिण की अनेक भाषाओं में 'तमिल', 'तैलगू', 'मलयालम' तथा 'कनाड़ी' में कनाड़ी भाषा के एक सुन्दर तथा महान काव्य में इन १८ अंगों का वर्णन एक नियम-सा है। वे १८ अंग हैं:—

'सागर', 'पर्वत', 'नगर', 'राजन','विवाह','राजकुमार', सूर्योदय', 'चन्द्रोदय', 'उद्यान', 'जल-बिहार', 'जल-चयन', 'सम्भोग', 'वियोग', 'गम्भीर चिन्तन'. 'दूतिका'. 'यात्रा', 'शत्रू की पराजय' और 'ऋतुवर्णन'।

कनाड़ी भाषा की जटिलता यमक समासों के कारण है। दक्षिण की भाषाओं में 'तमिल' को छोड़ कर अन्य सब भाषाओं के साहित्य में 'कनाड़ी साहित्य' प्राचीनतम है। 'तमिल' भाषा का साहित्य ईसा की दूसरी शताब्दी का, 'तैलगू' का दशवीं शताब्दी का और 'मलयालम' का १३ वीं शताब्दी का है—विद्वानों का ऐसा मत है। कनाड़ी साहित्य का आरम्भ ६ वीं शताब्दी से होता है। प्राचीन रचनाओं में दो प्रकार की रचनाओं का वर्णन नरिंपुतंग (८१५—८७७ ई०) ने अपने 'कविराज मार्ग' में किया है। वे जिनमें 'काण्ड' और 'वृत' होते हैं 'बेदन्दे' कहलाती हैं और दूसरी जिनमें 'काण्ड' के साथ 'वृत', 'आँकड़ा', 'चौपदी', 'गीतिका' तथा 'तिवदी' होती है 'छत्तना' कहलाती हैं। किन्तु नागवर्मा के 'काव्यावलोकन' में 'गद्य', 'पद्य', तथा 'गद्य-काव्य'—इन तीनों प्रकार की रचनाओं का वर्णन है। 'गद्य' को 'कथा' अथवा 'आख्यायिका' कहते हैं। 'चरण' एवं 'सर्ग' में रची हुई रचना काव्य कहलाती है। गद्य काव्य को 'चम्पू' कहते हैं। १. २. ३. ४ चरणों में भाव की पूर्ति को 'इदुकुंगाबम' कहते हैं और 'कुलका' वह कहलाती है जिसमें इनसे अधिक चरणों में भाव की पूर्ति होती हैं। अनिर्यामित पदों की रचना को'कोस' कहते हैं। नरिंपुतंग ने जिसे 'छत्तना' कहा है उसी को नागवर्मा द्वितीय (१२वीं शताब्दी) अपने काव्यावलोकन में 'बजनेगाबम' कहता है और 'बेदन्दे' को 'मिलवदू'[१] कहता है। 'जनन' का 'यशोधरा चरित' एक-मात्र 'मिलवद्' है। 'मिलवद्' में १२ पाद होते हैं जिनमें 'काण्ड' के बीच-बीच में 'वृत'[२] छंद का प्रयोग होता है। इन रचनाओं के अतिरिक्त एक और प्रकार की रचनाये होती हैं जिन्हें 'वचन' कहते हैं।' 'वचनों' में धार्मिक तथा दार्शनिक तत्वों का स्पष्टीकरण होता है। एक-एक 'वचन' में एक-एक 'तत्व' और 'सत्य' रख दिया जाता है।

---

१ किसी बाजे पर बजाई जाने वाली रचना।—ले०

२ तुलना कीजिये हिन्दी के 'सनियम परिवृत्तता','अनियम परिवृत्तता', 'विशेष परिवत्तता', 'अविशेष परिवत्तता' से। —ले०

'कनाड़ी' साहित्य की रचना अधिकतर बौद्ध, जैन, शैव तथा ब्राह्मणों की है। इनमें जैनियों का योग अपूर्व है। इनके पश्चात् १२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक 'ब्राह्मणों' के साथ 'वीर शैव' की रचनाओं का बाहुल्य है और इसके पश्चात् 'ब्राह्मणों' की रचनाओं का उल्लेख आता है। जैन लोग 'बेदन्दे', 'छत्तना' तथा 'मिलवद्' के रूप में रचनायें करते थे। वीर शैव अधिकतर 'वचन' लिखते थे। और ब्राह्मण लोगों ने 'रामायण', 'महाभारत', 'भागवत', 'पुराण', तथा 'वेदान्त' दर्शन पर लिखा है। 'शब्दागम' (व्याकरण), 'युक्तागम' (युक्ति) तथा 'प्रमाणागम' (दर्शन),'काव्य', 'नाटक', और 'ललित-कलाओं' को अपना विषय बनाया था। जीवनी, इतिहास, कोष, व्यवहार गणित, विज्ञान और संस्कृति और वात्स्यायन तथा कोका के समान 'मदन तिलक','मन्मथ विजय' 'अगंज बोध' नामक कामसूत्रों की भी रचना हुई है।

इस साहित्य में ९वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक—'कविराज मार्ग'[१] 'चन्द्रप्रभा पुराण'[२], 'शूद्रक'[३], 'हरिवंश'[४], 'आदिपुराण'[५], 'विक्रमार्जुन विजय',[६] 'पम्पा भारत[७]', 'शांति पुराण[८]', 'सौंदर्य पुराण[९]', 'अजीत पुराण[१०]', 'गद्दयुद्ध[११]' 'कादम्बरी'[१२], 'जातक तिलक'[१३],'सुकुमार चरित'[१४], 'पंचतंत्र'[१५], 'मदन तिलक'[१६] 'रामचंद्र चरित पुराण'[१७], 'मालीनाथ पूराण'[१८], 'ब्यवहार गणित'[१९], 'गो-विद्या'[२०], 'काब्यावलोकन'[२१], 'कर्नाटक-भाषा-भूषन'[२२], 'वस्तुकोष'[२३], 'कर्नाटक-कल्याण-कारिका'[२४] (वैद्यक पर रचना), 'लीलावती'[२५], 'अर्धनेमी पूराण'[२६], 'चन्द्र-प्रभा

---

१ नरिपुतंग (८१५—८७७ ई०)
२ श्री विजय (९वीं शताब्दी)
३।४ गुणवर्मा द्वितीय (८८६—९१३ ई०)
५।६।७ पम्पा प्रथम (९४१ ई०)
८ पोना (९३९—९६८ ई०)
९ सौंदर्य (९७८ ई०)
१०।११ रन्ना (९७३—९९७ ई०)
१२ नागवर्मा प्रथम (दशवीं शताब्दी)
१३ श्री धाराचार्य (१०४९ ई०)
१४ शान्ति नाथ (१०१८—१०४२ ई०)
१५ दुर्गासिंह (१०१८—१०४२ ई०)
१६ चन्द्रराज (ग्यारहवीं शताब्दी)

नोटः—१२वीं शताब्दी में 'होयसाल' के राज्य के अन्तर्गत 'मैसूर' आ गया, तब......।—ले०

१७।१८ नागचन्द (बारहवीं शताब्दी) (इसे 'पम्पा रामायण' भी कहते हैं)
१९ राज्यादित्य (बारहवीं शताब्दी)
२० कीर्त्तिवर्मा (बारहवीं शताब्दी)
२१।२२।२३ नागवर्मा द्वितीय (बारहवीं शताब्दी)
२४ जगदाल सोमनाथ (बारहवीं शताब्दी)
२५।२६ नेमीचन्द (बारहवीं शताब्दी)

पुराण'[१], 'जगन्नाथ-विजय'[२], 'शृङ्गाररत्नाकर'[३], 'कुसुमावली'[४], 'गिरजा-कल्याणी'[५], 'हरीश्चन्द्र काव्य'[६], 'दीक्षा-बोध' तथा १२वीं शताब्दी में शैव लेखकों ने 'वचन'[७] लिखे। तेरहवीं शताब्दी में 'यशोधरा चरित'[८], 'अनंतनाथ पूराण'[९], 'पार्सवनाथपूराण'[१०], 'कुमुन्देद् रामायण'[११], 'रतिमाला'[१२], 'त्रिपुरदहन'[१३], 'हरि चरित'[१४], 'अभिनय दश-कुमार-चरित'[१५], (नलचरित के आधार पर), 'अद्भुद काव्य'[१६], 'धर्मनाथ पूराण'[१७], 'शास्त्रासार'[१८], 'मंगराज निघट्'[१९], 'अश्व-विद्या'[२०], 'मन्मथविजय'[२१], 'वासवपुराण'[२२], 'पद्मराजपुराण'[२३], 'जीवनधाराचरित'[२४], 'वैद्यामृत'[२५], 'तोरवेरामायण'[२६], 'माधवालंकार'[२७], (दण्डी के 'काव्यासर' का

१ अग्गल
'कांति देवी'—जैन कवियत्री ने भी अपनी फुटकल रचनायें की हैं।—ले०
२ रुद्रभट्ट
३ काम
४ देव
५ हरीश्वर
६ राघवान्का
७ केरियापदमरस
८ (१) वासब (२) 'प्रभूदेव' (३) 'सिद्धराम' (४) 'कोंदागुली-केशिराज'
९ जनन (१२०९)
१० पार्सव पंडित (१२३० ई०)
११ कुमुन्देद्
१२ रत्ताकवि
१३ शिसुमापन
१४ पूलाल वेदन्दनाथ
१५ चन्द्ररस
१६ सोमराज (१२२२ ई०)
१७ बाहुबलि पंडित (१३५२ ई०)
१८ वृत्तिविलास
१९ मंगराज द्वितीय
२० अभिनव चंद्र
२१ कविमाला
२२ भीम कवि
२३ पद्मानुका
२४ भाष्कार (१४२४ ई०)
२५ श्रीधरदेव
२६ कुमारवाल्मीकि
२७ माधव

अनुवाद), 'शिवयोगंगाभूषण'[१], 'मदनतिलक'[२], 'अनुभवसार'[३], 'त्रिसठी-पूरातन चरित'[४] (शिव के ६३ भक्तों की कथा) और १६वीं शताब्दी में 'वीरशैव पूराण',[५] 'कुमार रामचरित',[६] 'वीरभद्र विजय',[७] 'भैरवेश्वर काव्य'[८], 'रमानाथ विलास[९]', 'सिद्धेश्वर पूराण',[१०] 'रसरत्नाकर',[११] भारतेश्वर चरित',[१२] योगरत्नाकर',[१३] 'शिवगीत'[१४], रचे गये और 'कला' के लिये 'नवरस अलंकार',[१५] 'मोहन तरगिंणी',[१६] और १७वीं शताब्दी में वहाँ भी राजा महाराजाओं का यशोगान होने लगा। महाराजा मैसूर के यशोगान का वर्णन 'अप्रतिम वीर' नामक रचना में है*।

और,

> "हे वानर! तुम पाण्डया राजन की मणिमुक्ताओं से विभूषित कवाट नगरी में पहुच कर वहां भी सीता की खोज करना।"[१७]
>
> —किष्किन्धाकाण्ड

किष्किन्धा में सुग्रीव के यह शब्द थे।

यह कवाट[१८] नगरी दिव्य नगरी थी—'विद्या' और 'विनय' की केन्द्रस्थली। यह मणि

---

१ गुरुबासव
२ कालरस
३ शिवयोगी
४ सुरंगकवि
५ मालनराय
६ नन्जुन्दा
७ वीरभद्रराज
८ नन्जुन्द (किक्करी के)
९ सदाशिवयोगी
१० तोन्तादय्या
११ सल्वा
१२ रत्नाकर बानी
१३ सन्त एअर
१४ त्रिमूलभट्ट
१५ तिम्मा
१६ कनकदास

*'कनाड़ी साहित्य के इतिहास' के लिये देखिये:—

हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३

१७ 'ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम्।
युक्तं कवाटं पांडयाना गता, द्रक्ष्यथ वानराः॥

—किष्किन्धाकाण्ड (४१—१९)

मुक्ताओं से विभूषित थी—इतना तो कौटिल्य के अर्थशास्त्र से स्पष्ट हो ही जाता है। कवाटंनगरी का प्रदेश ही तमिल साहित्य की जन्म भूमि थी। और वह साहित्य वहीं[1] फूला और फला। पाण्डया राज्य की राजधानी 'दक्षिणी मदूरा' से 'कवाटंपुरम' और वहां से वर्तमान 'मदुरा' में आई थी।

'मदूरा' एक तीर्थ स्थान है। 'श्री सोम सुन्देश्वर' तथा 'देवी मीनाक्षी' वहाँ मंदिरस्थ हैं। मन्दिर के भीतर एक पुष्कर है जिसका नाम स्वर्ण-कमल तड़ाग है। एक युगमें (तीसरे संघ काल में) इस तड़ाग में एक दैवी पटरा (दो हाथ वर्ग लम्बा-चौड़ा तख्ता—'संघ पल्लकाई') था जिसके विषय में यह कहा जाता था कि निर्दोष कवियों एवं कविताओं को परखने का यही एक दैवी साधन[2] था।

पांडया काल के लम्बे राज्य काल में 'पंडितों के तीन 'संघ' हुये हैं। प्रथम संघ दक्षिणी मदूरा में था। इस 'संघ' के सदस्य 'मुनि अगस्त', 'शिव' और 'कुबेर' थे। द्वितीम 'संघ' 'कवाटंपुरम' में था और तृतीय संघ वर्तमान 'मदूरा' में। विद्वानों का मत है कि प्रथम संघ ३००ई० पू० में बना[3] था। और तब से निरन्तर ऐसा ही ८०० ई० तक चला आ रहा था।

इस तृतीय संघ काल के पाँच महाकाव्य थे—'चिन्तामणि'[4], 'वलयपत्ति', 'कुंडलकेसिं', 'सिलापदीकरम' और 'मोनिमेकलाय'। 'तोलिकापियम' व्याकरण था। संघ की अन्य विशेष रचनायें—'इटटीटाँगी', 'पत्तूपत्तू' और 'पदनेनकिल्कानक्कू' थीं। इनमें 'तमिल नाद', 'ऋतुवर्णन' (शिशर वर्णन) प्रेम, गांधर्व विवाह, व्यापारिक सम्बन्ध तथा दक्षिणी भारत की राजनैतिक घटनायें—इन सबका वर्णन हैं। कहते हैं कि 'पतिनपलाई' नामक रचना पर यूरुतिरन कन्नर को कारीकला नरेश कारीकरकोलन ने १६ लाख पास पारितोषिक रूप में दिये थे। उस समय रचनाओं के मुख्य विषय 'अर्थ' 'धर्म' और 'काम' थे। इनमें से धर्म (तमिल—'अरम') की विशेष व्याख्या १८ लघु काव्यों ने की है। 'नालिदिअर' तथा 'त्रिकुरुल' ने 'अर्थ (तमिल—'पुरुल'), 'धर्म' (तमिल—'अरम') और 'काम' (तमिल—'इनबम') की व्याख्या की है। शेष १६ काव्यों में 'नीति' और 'धर्म' की व्याख्या है।

आश्चर्य यह है कि तमिल साहित्य के दो महाकाव्य—'सिलापदीकरम' तथा 'मोनिमेकलाय'—ऐसे अनूठे महाकाव्य हैं जिनकी कथाओं को पढ़ कर यह देखते ही बनेगा कि चोला की राजधानी 'कवीरापुम्पत्तीनम' को केन्द्रस्थल बना कर चेरी और

---

१ तोलकापीअम (Tolkappiyam) के आधार पर। —ले०

२ 'तमिल साहित्य के इतिहास' के लिये देखिये :—

हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन, भाग ३

३ *Educational Review*—October 1928.

४ Cintamani, Valayapatti, Kundalkesi, Silappadikaram, Monimeklai, Talkappiyam, Ettwytongi, Pattupattu, Padinenkilkanakku.

काव्यों की नामावली के लिये देखिये :—

Studies In Tamil Literature and History पृ० ३८
By V. Ramchandra Dikshsitra.

'पाँडया' दक्षिण में और उत्तरी भारत में 'अवन्ति' और 'मगध' तक के मानव-जीवन का कैसा सजीव चित्रण है—जिसमें एक साध्वी नारी का 'आत्मसमर्पण' है, 'हाहाकार' और 'रोष' है, एक नर्तकी के प्रेम में फंसे हुये पति के प्रति 'अनुराग' है, 'तप' है और एक नर्तकी का 'क्षोभ' है, 'आत्मग्लानि' है, सत्कर्म की 'आकांक्षा' है, और जीवन के हाहाकार को धोका न देने की 'क्षमता' भी है, 'कोवलान' की मृत्यु का वर्णन सुन कर संसार के प्रति क्षोभ और असंतोष लेकर बौद्ध भिक्षुक बन कर एक सेविका के रूप में जीवन व्यतीत करने का 'साहस' भी है। उस नर्तकी का नाम 'माडवी' था और उस सती का नाम 'कन्नकी' था। पर 'माडवी' और 'कोवलान' से जो पुत्री उत्पन्न हुई थी उसी का नाम 'मोनि-मेकलाय' था। यही मोनिमेकलाय दूसरे महाकाव्य 'मोनिमेकलाय' की रचना का आधार बन कर आई है। 'सिलापदीकरम' महाकाव्य की रचना इलांकीआडडगल ने की थी और 'मोनिमेकलाय' महाकाव्य को 'सत्तनार' ने रचा था। और आश्चर्य यह है रचियता दो हैं; पर 'भाव' एक है।

उस साध्वी नारी का आत्मसमर्पण इन शब्दों में था :—

> 'स्वामी! और तो मेरे पास कोई वस्तु नहीं है। यही एक आभूषण (सिलाम्बू—पैर का कड़ा) है। इसे ही ले जाइये। बाजार में बेंच लीजिये।'

किन्तु आपत्ति तो कह सुन कर नहीं आती। कन्नकी जैसी सती नारी का पति कोवलान उस कड़े को लेकर बाजार में बेंचने गया पर चोर समझ कर पकड़ लिया गया।

यह कोवलान एक धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र था। माडवी नर्तकी के वश हो उसी में अनुरक्त हो गया था। सम्पूर्ण सम्पदा खो डाली थी। लुटा डाला था वैभव। किन्तु फिर एक रात्रि को वह अपनी साध्वी नारी के पास पुनः लौट आया था। और उसी रात्रि को उस नगरी को छोड़ कर वह अपनी स्त्री समेत 'मदूरा' जाना चाहता था पर उसके पास जीने-मरने को कुछ भी नहीं था। कन्नकी के पास वही एक कड़ा था। और उस आभूषण के साथ ही 'कन्नकी' का सुहाग भी चला गया। उसके माथे का सिंदूर मिट गया। चोरी के अपराध में पाण्डय नरेश ने कोवलान को प्राणदण्ड दे दिया था। फिर साध्वी नारी का 'हाहाकार' और 'रोष' देखिये—उस 'महाकाव्य' में।

विद्वानों का मत है कि यह दोनों महाकाव्य ईसा की दूसरी[१] 'शताब्दी' के हैं पर कुछ विद्वानों का ऐसा भी विश्वास है कि यह महाकाव्य छटी[२] शताब्दी के पूर्व के नहीं हैं। जो कुछ भी हो यह विद्वानों का विषय है।

तीसरे संघ के कविश्रेष्ट नक्कीरर थे। यह शिव-भक्त थे। 'किरर', 'नक्कीरर' तथा 'नक्कीर'—इन तीनों नामों से यह साहित्य में विख्यात हैं। सम्भवतः ईसा की दूसरी शताब्दी में इनका आविर्भाव हुआ था! यह पाण्डया राजन बंगचूणामणि के अति प्रिय थे। संघ के द्वितीय प्रसिद्ध कवि 'कपिलर' थे। दर्पी नक्कीरर ने भी इनकी प्रशंसा की है। 'अहनारू', 'पुरानारू', 'कुरुन्तोगी', 'नरीनाई' इत्यादि ग्रन्थों में इनकी कविता का समावेश है। संघकाल के अन्य प्रमुख एवं श्रेष्ट विद्वान (कवि) 'परनार'

---

१ *Studies in Tamil Literature and History* पृ० ८२/८३

२ *Journal of Oriental Research Vol. 2* २२०—२२२

'अव्वयार' (कवियत्री), 'सात्तनार', 'इलान्कोआडिगल' इत्यादि थे। इस प्रकार इस तीसरे संघकाल का 'साहित्य अनेक अमूल्य 'कृतियों' से ही नहीं वरन मानव के जीवन से ली हुई उन 'सम' और विषम' की व्याख्याओं से भी पूरित है जो युग युग का इतिहास बन कर आई हैं।

किन्तु इस साहित्य में 'शिव' साहित्य-की-मूल-धारा में—'मंगलरूप' प्रवर्त्तित हुये हैं।

'रम्भापुरी' (बालेहुल्लूर), 'आन्ध्रदेश', 'उज्जयिनी', 'काँची', 'कर्नाटक', 'काशी', 'केदारनाथ' और शैलक्षेत्र कैलाश—इन्हीं क्षेत्रों में शैव धर्म के भिन्न-भिन्न नाम के धर्म-पीठ स्थापित हुये थे—आज से लगभग १३०० वर्ष पूर्व। 'शिवाद्वैत'—यही इस धर्म का मूल मन्त्र है। काँची में 'एकाम्रेश्वर', काशी में 'विश्वनाथ', उज्जयिनी में 'सिद्धेश्वर' प्रभाषा के 'सोमनाथ', और मदूरा के 'सोम सुन्देश्वर' और इसी प्रकार अन्य उपरोक्त क्षेत्रों में एक 'भाव' किन्तु अनेक 'नाम' से भगवान शिव का पूजन होता है। किन्तु यह 'शिव' भी किसी 'व्यक्ति', 'धर्म', 'क्षेत्र', अथवा भूमि विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। यदि कोई 'शिव' को 'भगवान' कहने से 'डरे' अथवा उन्हें 'भगवान' न माने, उनके भगवान होने के नाते इस बीसवीं शताब्दी में उनके 'नाम' से चिढ़े, तो जो मन आवे करे पर 'तुलसी' ने 'शिव' का अर्थ स्पष्ट कर दिया है। 'शिव' का अर्थ है—'विश्वास' :—

'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'

—तुलसी (बालकाण्ड—मंगलाचरण)

अर्थात्, 'श्रद्धा-विश्वासरूपी उमाशङ्कर की बन्दना करता हूँ।'

'तुलसी' ने यह शब्द १५७४ ई० में कहे थे। 'हिन्दी' और 'तमिल' का यहाँ मिलन हुआ है।

और यों वह भक्ति की धारा 'दक्षिण' से 'उत्तर' पहुँच गई थी अथवा 'उत्तर' से 'दक्षिण' चली आई थी—'मङ्गल' के लिये—'विश्व-मङ्गल' के लिये—मानव 'सम्प्रीति' के लिये। 'सम्प्रीति' का अर्थ हैं—सब पर एक-समान प्रीति—'सचराचर'। 'सचराचर' में 'विश्व' भरा हुआ है और विश्व में 'मंगल'[1]।

—मंगलमय है विश्व।

तमिल साहित्य में 'शिव-भक्ति' भरी हुई है। शैव सन्तों में प्रमुख सन्त माणिक्क वाचक, सन्त तिरुज्ञान साम्बान्दर, संत अप्पार स्वामीगल, संत सुन्दरमूर्ति, संत नन्दनार, मीप्पोरुल नायनार, तिरुल नीलकण्ठ यलपानार, अम्मइयर तथा नारी संत अव्वई इत्यादि हैं।

तमिल के 'कुरुल' (गीता जैसा ग्रन्थ) का वचन है :—

'विद्वानों की दृष्टि में प्रत्येक दीपक दीपक नहीं है। दीपक वह है जिससे सत्य का प्रकाश हो'।

—कुरुल[2]

---

१ देखिये :—पृ० ६७ टि० २

२ वल्लूवर द्वारा रचित 'कुरुल' की पंक्ति २६८ का अनुवाद। —ले०

और श्रीमद्भगवद्गीता का कथन है :—

'हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि, चाण्डालादि जो कोई भी हो, वे भी मेरी शरण में आकर परम गति को प्राप्त होते हैं ।'

गीता ९।३२

महाराष्ट्र के विदर्भ (बरार) देश में और देवगिरि (दौलताबाद) में—ईसा की १३वीं शताब्दी में दो युग प्रवर्तक अथवा दो महान घटनायें घटीं। विदर्भ देश में 'महानुभाव पन्थ' का उदय हुआ और देवगिरि में मराठा 'क्षत्रीवंश' का । आश्चर्य यह है कि देवगिरि वह है जो राजपूत युग में क्षत्राणियों की—जौहर के शाकों[१] में क्षत्राणियों की राख से विशाल भारत के कण कण को आत्मगौरव की प्रेरणा देता रहा है । राजपूत शक्ति का इसने ह्रास देखा था—जौहर के शाके देखे थे—बीजापुर और गोलकुण्डा के शाहों को अपने किले में बंद देखा था और इसी से इसने मराठा 'क्षत्रीवंश' का 'उदय' भी देखा था । यह 'वंश' यादव वंश था । महाराष्ट्र की शासनसत्ता इसी वंश के हाथ पहुँची और इस वंश ने 'मराठी भाषा' को 'राज भाषा' बना लिया था । इस वंश ने लगभग २०० वर्ष तक शासन किया । मराठी साहित्य की श्रीवृद्धि का यह एक महान कारण है ।

दूसरी घटना 'महानुभाव पन्थ' का उदय होना है। इस 'पन्थ' का जन्म और 'वारकरी पन्थ' का जन्म तो साथ-साथ हुआ था पर वे दोनों दो मार्ग की ओर मुड़ गये—एक पण्ढरपुर की ओर मुड़ा और दूसरा वहीं लीलाओं तथा मंगल गीतों (महदम्बा के धवले) में सीमित होकर रह गया । जो पण्ढरपुर की ओर मुड़ा था वह वारकारी (विट्ठल) पन्थ अर्थात् 'भागवत पन्थ' था । उस महानुभाव पन्थ के आद्य पुरुष थे—'श्री गोविन्द गुरु' और प्रवर्त्तक थे 'श्रीचक्रधर' (हरपाल देव) और 'वारकारी पन्थ' के 'श्रीविट्ठल-पन्त' । श्रीज्ञानेश्वर जी इन्हीं के पुत्र थे ।

इस पन्थ के ७ ग्रन्थ मुख्य हैं पर 'श्रीचक्रधर' ने किसी ग्रंथ की रचना स्वयं नहीं की । समय-समय पर इनके श्रीमुख से जो वचन निकलते रहे वे ही संग्रहीत कर लिये गये। श्रीचक्रधर के शिष्य महीन्द्र व्यास या महीभट्ट ने 'लीलाचरित' नाम से एक मराठी ग्रन्थ लिखा जिनमें श्रीचक्रधर की १५०० लीलाओं का वर्णन है । श्रीचक्रधर का काल १२६३ से १२७१ अर्थात् ८ वर्ष का था। इस पन्थ के उपास्य देव 'श्रीकृष्ण- तथा 'दत्तात्रेय' थे । चक्रधर का अर्थ है 'श्रीकृष्ण'—'चक्र के धारण करने वाले' । इस पन्थ का आदि ग्रंथ 'सिद्धान्त-सूत्र' अथवा 'आचार्य्य-सूत्र' है जिसकी रचना १२८८ ई० में केशवराज सूरि ने की थी । इसमें १६०९ सूत्र हैं । इस पन्थ का विश्वास 'श्रीमद्भगवद्-गीता' और 'श्रीमद्भागवत' में था । अन्य ग्रन्थ हैं भास्करकृत 'शिशुपालवध', 'एकादश स्कन्ध', नरेन्द्रकृत 'रुक्मिणीस्वयंवर', नारोव्यासकृत, 'ऋद्धिपुरवर्णन', दामोदरकृत 'वत्सहरण', विश्वनाथकृत, 'ज्ञानबोध' और रवलोव्यासकृत, 'सह्याद्रिवर्णन' । यह सभी ग्रन्थ प्राचीन मराठी भाषा में हैं ।

'महानुभाव' के प्रवर्त्तक श्रीचक्रधर ने स्त्रियों और शूद्रों को सन्यास दिलाना

---

१ देवगिरि (देवगढ़) में पद्मिनी ने जौहर का शाका किया था ।—ले०

आरम्भ कर दिया। इसी से यह पन्थ उस समय सर्वमान्य न हो सका था। इसके अतिरिक्त एक कारण और था। इस पन्थ के लोग १३६३ ई० तक तो 'काषायवस्त्र' धारण करते रहे पर पीछे यवनों के युग अथवा काल में इन्होंने काले वस्त्र पहिनना आरम्भ किया और 'शाहपोश' कहलाने लगे। यवनों के कृपापात्र हो गये। ज़जिया भी इनसे न लिया गया। परिणाम यह हुआ कि लोग इस पन्थ को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। इस पन्थ के लोगों ने अपना साहित्य गुप्त भाषा[१] में रखना आरम्भ कर दिया।

'वारकरी' अथवा 'विट्ठलपन्थ', यह स्पष्ट हो चुका है, पण्ढरपुर की ओर मुड़ गया था। 'विट्ठलपन्थ' की स्थापना विट्ठलपन्त ने की थी। श्रीज्ञानेश्वर जी इनके छोटे पुत्र थे और बड़े पुत्र का नाम निवृतिनाथ जी था। श्रीनिवृतिनाथ जी ने श्रीगैनीनाथ जी से 'श्रीकृष्ण' भक्ति का अशीर्वाद प्राप्त किया था। इनका एकमात्र तथा दृढ़ विश्वास था कि वे जो यशोदा की गोदी में खेलते थे, गोपियों के संग नंद-निकेतन में जो नृत्य करते थे वे ही पण्ढरपुर में 'पण्ढरीनाथ' अथवा 'श्रीविट्ठल' हैं। उनके छोटे भाई श्री ज्ञानेश्वर जी इन्ही 'विट्ठल' के परम भक्त थे।

उज्जैन, प्रयाग, काशी, गया, अयोध्या, गोकुल, मथुरा, वृन्दाबन, द्वारिका, गिरिनार आदि तीर्थ स्थानों का परिभ्रमण करके श्री ज्ञानेश्वर पण्ढरपुर में भक्ति की धारा को प्रवाहित करते रहे। पण्ढरपुर में ही नामदेव से इनकी भेंट हुई थी। यात्रा में विसोखा खेचर, गोरा कुम्हार, चोखा मेला, और नरिहरि सुनार आदि अनेक संत इनके सङ्ग हो लिये थे। इन्होंने 'गीता' का 'ज्ञानेश्वरी भाष्य' किया था। यह भाष्य १२६० ई० में पूर्ण हुआ था। किन्तु केवल २१ वर्ष की आयु में ही आप जीवित-समाधि ले गये थे। 'भावार्थ दीपिका', अर्थात 'ज्ञानेश्वरी', 'अमृतानुभव', हरिपाठ के 'अभङ्ग' और 'चाँगदेव-पासठी'—यही चार ग्रंथ इनके अपूर्व हैं। १२६६ ई० में यह विट्ठल जी के धाम को पधारे थे। यह ग्रंथ भी प्राचीन मराठी भाषा में है।

किन्तु १५४८ ई० में एक तीसरी और महान घटना घटी। इस वर्ष 'श्रीएकनाथ' जी का जन्म हुआ था। इस काल में महाराष्ट्र में यवनों का पूर्ण दबदबा था। अतः मराठी साहित्य के लिये कोई प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हो सका। श्रीएकनाथ जी ने गीता के ग्यारहवें (भगवान के विश्वरूप का जिसमें दर्शन है) अध्याय का भाष्य 'एकनाथी-भागवत' नाम से किया है। 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'भावार्थरामायण', 'चिरंजीवपद', 'स्वामत्वबोध', 'आनन्द लहरी' इत्यादि' इनके ग्रंथ है। इनका प्रयाण गोदावरी के तट पर १५९९ ई० में हुआ था। मुक्तेश्वर ने 'ऐहिक' काव्य' की रचना की। महाभारत के शान्तीपर्व की तथा भागवत की रचना की है। मुक्तेश्वर का जन्म १६१८ ई० में हुआ था और मृत्यु १६५३ ई० में। इनके अतिरिक्त 'रमाबल्लभदास शिव कल्याण' और अनेक कवि हुये पर साहित्य की कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई।

किन्तु तुकाराम ने मराठी साहित्य को जीवन दान दिया था। इनका जन्म पूना के निकट 'देहू' स्थान पर १६०८ ई० में हुआ था। पर १३ वर्ष की आयु में ही वे अनाथ हो

---

१ Cipher Alphabet.

गये थे। माता-पिता का देहान्त और ज्येष्ट भ्राता का सन्यास लेना---यह सब कुछ हो चुका था। पर इतिहासकार इन्हे मराठी साहित्य का 'सुकरात' कहता है। तुकाराम के अभङ्गों से शिवाजी जैसे वीर, प्रतापी एवं कर्मनिष्ट संसार का त्याग करने पर उद्धत हो गये थे पर इन्होंने कर्म का सत्यमार्ग (कर्त्तव्य) दर्शा कर उन्हें 'सचेत कराया' और वे जीवन में पूर्ण वेग से कर्त्तव्य मार्ग पर आरूढ़ हो गये। इनके अभङ्ग मानव के प्राण हो गये। युग में जीवनशक्ति का आल्हाद भर दिया।

इनके पश्चात् शिवाजी के गुरू समर्थ स्वामी 'रामदास' आते हैं जिसकी १३ वर्ष की तपस्या, १२ वर्ष के भ्रमण और १० वर्ष के एकांत जीवन के फलस्वरुप 'दासबोध' की रचना हुई थी। प्राचीन मराठी भाषा की यह एक महान कृति है। इनकी रचना में आशा का महान संदेश है। उन्होंने मानव को कर्मसौन्दर्य की ओर मोड़ा और वह महान संदेश केवल इतना है कि मानव को कर्म सौन्दर्य में जीवन सौन्दर्य देखना है। ऐसी विचार धारा ने शिवा जी जैसे वीर एवं प्रतापी पुरुष का निर्माण किया था जिसकी कीर्त्ति के स्वरों में स्वर मिला कर विश्व के एक-एक वीर के रक्त की एक एक बूँद ने इसी विश्व में 'मानव' की उज्ज्वल कीर्त्ति गाई है।

किन्तु यह उस भूमि का इतिहास है जिस भू-भाग में आज से बहुत समय पूर्व 'दण्डकारण्य' था, जहाँ 'चिर-प्रवाहिनी गोदावरी' अपनी धवल धाराओं में युगों से बहती हुई चली आ रही है, जहाँ गोदावरी के बाये तट पर 'पंचवटी' तब भी थी, आज भी है, जहाँ 'पंचवटी[२]' पर पत्तों की 'कुटी[२]' बना कर अयोध्या के बनवासी राम ठहरे थे और जो पंचवटी राम और रावण के महासमर की एक कारण[३] बन गई थी और जहाँ गोदावरी के दाहिने तट पर जो सतयुग में 'पद्मनगर', त्रेता में 'त्रिकंटक', द्वापर में 'जनस्थान' कहलता था वही आज 'नासिक' कहलाता है। यह नासिक 'हिन्दू-धर्म', 'संस्कृति' तथा मराठों की 'राजनीति' का क्षेत्र था। और यह उन दिनों की बात है जब मुगल साम्राज्य—यवन साम्राज्य का टिमटिमाता हुआ दीपक बिदा हो रहा था, जब औरंगजेब द्वारा गिरवाये हुये हिन्दुओं के सैकड़ों मन्दिर भारतीय शिल्पकला को असीम का आशी-

---

१ 'श्रीराम' के प्रति महामुनि 'अगस्त' के शब्द हैं :—

'है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ।
पावन पंचवटी तेहि नाऊँ॥
....
दँडकवन पुनीत प्रभु करहु।'

--तुलसी (आरण्यकाण्ड)

२ 'गोदावरी समीप प्रभु रहे पर्नगृह छाय।'

—तुलसी (आरण्यकाण्ड)

३ देखिये:—तुलसीकृत रामायण का 'आरण्यकाण्ड'।

नोट:—गोदावरी नासिक के समीप 'त्रिम्बकेश्वर' नामक स्थान से निकली है।—ले०

र्वाद देकर धूलि में मिल चुके थे तब १७५६ ई० में 'श्री सुन्दर नारायण मन्दिर[1]' और १७९०ई० में नासिक के प्रवेश द्वार पर 'भद्रकाली' का मन्दिर बनवाया गया था। ईसवी १७६१ से 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' का शासन भारत में आरम्भ हो जाता है और वह दीपक बुझ जाता है। किन्तु, 'नासिक' में 'मानव संस्कृति का यह मिलन हुआ है।

किन्तु जाते हुये मुगल साम्राज्य—यवन साम्राज्य और आते हुये ब्रिटिश साम्राज्य के बीच खड़े होकर जिस मराठा शक्ति ने, यवन 'धर्मनीति' और ब्रिटिश 'कूटनीति' के बीच खड़े होकर जिस मराठा शक्ति ने, 'धर्म' और 'अर्थ' के बीच खड़े होकर, जिस मराठा शक्ति ने, 'जल' और 'थल' के बीच खड़े होकर जिस मराठा शक्ति ने एक बार पुनः मानव की उज्ज्वल कीर्त्ति का गौरवभाव 'इतिहास' में अंकित कर दिया था—भारत के इतिहास में, अरब, तुर्किस्तान, बलख, बुखारा, ईरान के इतिहास में, पुर्तगाल, हालैन्ड, इङ्गलैण्ड और फ्रांस के इतिहास में,—उस मराठा शक्ति में वह 'शक्ति' और 'प्रेरणा' 'कुरुक्षेत्र' से आई थी—वह 'प्रेरणा' 'नारी' की थी और वह शक्ति 'पुरुष' के 'कर्मयोग' की।

भारत भूमि के उस छोटे से टुकड़े ने—महाराष्ट्र देश ने, 'शिवा जी', 'पेशवा', 'गायकवाड', 'सींधिया' और 'अहिल्या' ने—उसमें बहे हुये मानव रक्त की एक एक बूँद ने—उनमें मानव संस्कृति के एक एक भाव ने —भारत के दक्षिण में औरङ्गजेब की कब्र ने—ब्रिटिश पार-ले-मेन्ट में दी हुई 'स्पीचों'[2] ने—भारत से भेजे हुये 'डिस्पैचिज'[3] ने—इङ्गलैंड से भारत को आये हुये चार्टर्स'[4] ने 'अकारण आक्रमण', 'निर्दयता, 'निरंकुशता', 'स्व', 'स्वत्व', 'त्राहि', 'स्वार्थ', 'हाहाकार', 'लूटमार', 'रक्तपात', 'घात', 'अपघात', 'प्रतिघात', 'अविश्वास', 'छल', 'कपट', 'दम्भ', 'अभिमान' और 'फूट' और परस्पर की 'कलह' को बार बार स्पष्ट कर दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने स्वभाव से बंधा हुआ है :—

'प्रकृति यान्ति भूतानि'

—गीता ३।३३

छली छल से चूकेगा नहीं, कपटी कपट से डरेगा नहीं, निर्दयी निर्दयता निश्चय करेगा, अविश्वासी को विश्वास आना कठिन है, घाती घात करे बिना मानेगा नहीं, अभिमानी गर्व छोड़ेगा नहीं, किन्तु········ ···· ······?

किन्तु, 'हठ' से न कोई दुर्गुण स्वभाव से चला जायेगा, न कोई सु-गुण स्वभाव में आ जायेगा : –

'निग्रहः किं करिष्यति'

—गीता ३।३३

'स्वभाव' को 'सम' से निखार लिया गया है। पर 'सम' में भी 'आग' होती है जैसे चन्दन में :—

'अतिशय रगड़ करे जो कोई। अनिल प्रगट चन्दन ते होई।।'

—तुलसी

---

१ इस मन्दिर को श्री गङ्गाधर यशवन्त चन्दचूड़ ने १० लाख रुपये लगा कर बनवाया था। देखिये :—'धर्मयुग', ९ जनवरी १९५५ में 'नासिक' शीर्षक लेख, पृ० २०

२ Speeches. ३ Despatches. ४ Charters.

यही 'अग्नि' 'रोष' बन गई है और आगे चलकर 'कराल काल' कहलाई है। इसीलिये 'मानव' इस अग्नि को भड़कने नहीं देता है। इस 'अग्नि' से क्षण, क्षण वह सचेत रहता है।

किन्तु इस संसार में आकर हाथ-पैर छोड़ने से काम न चला है, न चलेगा, पर अकारण आक्रमणों की विजय स्थायी नहीं होती है, निरंकुशता और निर्दयता से विश्व का संतुलन काँप उठता है, 'स्व', 'स्वत्व', 'स्वार्थ', 'त्राहिं', 'हाहाकार' 'लूटमार' और 'रक्तपात' पर यह विशाल विश्व न टिका है, न टिकेगा, 'घाती', 'अपघाती', 'प्रतिघाती' और 'अविश्वासी' को स्वर्ग-नरक में न ठौर मिला है, न मिलेगा, इनमें से किसी को भी 'मानवता' के प्रति दया न आई है, न आवेगी, 'दानवता' ने भी इनका साथ न दिया है, न देगो, अभिमानी का गर्व चूर होकर ही रहा है, रहेगा, क्रोधी 'लक्ष्मी' को नहीं वर पाया है, न वर पायेगा, धूर्त धूर्ताई में जब फँसा है तो कोई मार्ग ढूँढ़े नहीं पाया है और 'फूट' और 'कलह' से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और साम्राज्य की जड़ें उखड़ गई हैं—उखड़ जायेंगी, बुद्धि विपरीत हो गई है—हो जावेगी, विनाश काल निकट आ गया है – 'विश्व' विमुख हो गया है—हो जावेगा।

मानव का 'शील' जब जब उसकी आँखों से जाता रहा है, उसका सौन्दर्य मलिन हो गया है, अपने पुरुषत्व को वह खो बैठा है, अपनी 'आत्मा' को छल बैठा है, उसका 'समाज', 'देश', 'राष्ट्र' और 'साम्राज्य' गौरवहीन हो गया है और उसका 'चरित्र' शक्तिहीन, उसके भाव विरस हो गये हैं और उसके 'विचार' कलुषित, और······ ········!

और विनष्ट हो गई है उसकी 'संस्कृति' और विलीन हो गई हैं·········उसके 'व्यक्तित्व' की रेखायें।

निश्चय ··वह मानवता के आँसुओं को नहीं पोंछ सका है, मैं नहीं कह सकता वह दानवता के रक्त से नहा कर तृप्ति-दान कर पाया है अथवा नहीं।

पर 'हठ' से नहीं, 'तप' से मानव के संकल्प जागे हैं—जागेंगे, सद्भावनाओं से 'सम्प्रीति' जागी है—जागेगी, 'सम' से विग्रह और विकल्प 'संकल्प' बन गये हैं— बन जायेंगे···और वैभव से नहीं, विभूति से विध्वंस 'मङ्गल' बन गया है—बन जावेगा।

पुरुष ने अपनी विश्व-भावनाओं से, इसी विश्व में, 'सत्य' यों रच दिया है।

और नारी ने पुरुष को 'मधुर भावनायें' देकर, अपने 'अंचल' से, इसी विश्व में, 'श्री', 'सरस्वती', 'सुख-समृद्धि', 'प्रेम', 'आनन्द' और 'मङ्गल' बिखेर दिया है।

'शिवं'*, 'सत्यं' और 'सुन्दरम्' को उन दोनों ने मिलकर यों उतार लिया है जीवन में अथवा यों ढाल लिया है जीवन को 'सत्यं', 'शिवं', और 'सुन्दरम्' में।

नोट :—'भारतीय भाषाओं में—मानव की मधुर भावना—नारी का 'अंचल' शीर्षक अध्याय में १६६० से १८३३ ई० के 'विस्मृति-युग' की रेखाओं के साथ-साथ 'सम्प्रीति-युग' की छोटी-छोटी रेखाओं की ओर भी पाठक का ध्यान आकर्षित कर दिया गया है। ई० १८३३ से २०वीं शताब्दी के 'स्मृति-युग' के 'साहित्य' की रेखाओं के लिये 'हिन्दी-साहित्य का स्वाधीन चिन्तन' के अन्य भाग (सम्पूर्ण भाग) देखिये।

*देखियेः—पृ० ५५, तथा टि० ४। ('क्रम' कुछ भी हो 'भाव' में अन्तर नहीं आता)।—लेखक

इतिहास में:—

'अर्थ' का उदय और पराभव
(१००० ई०.........१९५६ ई०)

"Much it grieved my heart to think
What man had made of man!"
—Wordsworth[1]—*(Prelude)*

'मनुष्य ने मनुष्य को क्या बना डाला है—यह सोचकर मेरा हृदय दुखी हो जाता है।'

किसी स्थल पर यह स्पष्ट हो चुका है कि चम्पा के फूलों पर भंवरा नहीं जाता। किन्तु प्रातःकाल चमेली महर-महर होती है। आधी रात बेला फूलता है।

घास का एक एक तिनुका, वृक्ष की एक एक डाली, वर्षा की एक एक बूँद, पवन का एक एक झकोरा, क्यारियों की एक एक कली, फूलों की एक एक मुसकान, नीम की कड़वाहट, आम का मिठास, वनस्पतियाँ और औषधियाँ...खेतों की हरियाली, जौ और गेहूँ की एक एक बाली, मरुभूमि के शाद्वल स्थान, ऊसर की धूलि, धूलि और मिट्टी में धंसे हुये रत्नों के भंडार—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, कोयला, मिट्टी का तेल, पेट्रोल,......चिउंटी की चाल, पर्वतों की स्थिरता और सागर की एक एक तरंग—शंख और मोती, जलचर, नभचर और पशु...पशुओं की खालें, रक्त और हड्डियाँ...और चीन के लिये भेजी हुई अफीम—यह सब मानव के वरद प्रतीक बनकर आये हैं—अपने जीवन से मृत्युपर्यन्त मानव 'सेवा'[2] में रत रहे हैं— मानव 'सुख' के लिये।

पर मनुष्य ने मनुष्य को दो दो दानों को भटका दिया, नंगा कर डाला। नीच बना दिया। बेंच डाला[3], खरीद डाला। मनुष्यों से आखेट[4] खेल डाला। किसी की गरीबी से फायदा उठा डाला, किसी की इज्ज़त लूट ली। कलंक मढ़ दिये, आरोप लगा दिये। धोका दे डाला। अफीम खिलाकर मार डालने में कुछ छोड़ा नहीं। करन्सी (टकसाल) फेल कर दी, करादी। आँखों में धूल डालने के लिये पुस्तकें रच दी गईं। किसी माँ के दिल की 'हाय' बाहर निकल भी न पाई कि बेटा दूर देश को भेज दिया गया—फौज में—

---

१ *William Wordsworth (1770—1850)*

२ देखिये:—George Herbert (1593—1633) की 'Man' शीर्षक कविता।

३ Slave Trade. पुर्तगालवाले दासों का व्यापार करते थे।—ले०

४ स्विटज़रलैन्ड में भिकमंगों से पिंड छुड़ाने के लिये मनुष्यों का शिकार किया जाता था।—ले०

लड़ाई पर—मुल्क की ख़िदमत के लिये—एक बेहतरीन ज़िन्दगी के लिये । और होते-होवाते कोई समाज का ठेकेदार बन बैठा, कोई पंच,कोई चौधरी। राष्ट्र का कोई नेता बन बैठा और कोई साम्राज्य का मुखिया। महायुद्धों में एक दूसरे के प्राण ले लिये—किसी को कफ़न न मिला, किसी को दो लकड़ियाँ न पूजीं और किसी को क़ब्र न मिली।

पर, मनुष्य ने मनुष्य को ऐसा बना डाला या उसके कर्मों ने, उसके भाग्य ने, उसके भगवान ने, उसकी आदतों ने, मजबूरियों ने, उसके वातावरण ने, परिस्थितियों ने अथवा उसके 'स्व', 'स्वार्थ' अथवा 'स्वत्व' ने', 'देश' ने, 'राष्ट्र' ने—यह तो वह जाने जिसने बनाया हो या वह जाने जो बना हो। किन्तु, बन-बन कर जो बिगड़े हैं, अथवा बिगड़-बिगड़ कर जो बने हैं उनसे कोई पूँछे तो सही कि इस दुनियाँ की दौलत में अब और कितनी 'हाय' शेष है ? इस 'हाय' में किसी की सम्पत्ति—कैपीटल है, किसी की चुसी हुई हड्डियों का खून। इस 'हाय' में किसी की मशीनें हैं, कोई स्वयं मशीन बन गया है।

कार्ल मार्क्स 'जर्मनी' में पैदा हुआ था, 'इंगलैन्ड' के ब्रिटिश म्युजियम में बैठ कर 'डास कैपीटल' (Das Kapital) लिखी थी और 'रूस' में महानता प्राप्त की। वह कहा करता था, 'मैं कैपेटेलिस्टस (पैसेवालों) का कैन्सर (फोड़ा) होना चाहता हूँ'। इस प्रकार मनुष्य तो मनुष्य के लिये फोड़ा तक बन चुका है।

किन्तु यह फ़ोड़ा एक दिन में नहीं बन गया था।

कार्ल मार्क्स से.............................लगभग ८०० वर्ष पूर्व ?

लगभग ६५०० वर्ष पूर्व आर्यों का धन 'भूमि' थी। लगभग १००० वर्ष पूर्व—योरुप में सामन्तों (लार्ड्स) का भी धन 'भूमि' थी । 'भूमि' अपने अधिकार के लिये लड़ती रही, 'मनुष्य' लड़ता रहा अपनी सत्ता के लिये, 'धर्म-विशेष' अपनी सत्ता के लिये और 'अर्थ' अपनी सत्ता के लिये। किन्तु योरुप में विशेष कर १३, १४, १५, १६, १७, १८, १६ वीं शताब्दी में ईश्वर की कृपा से:—

By The Grace of God

'अर्थ' की विजय हुई।

अर्थ-शास्त्रवेत्ताओं ने 'अर्थ' की परिभाषा अपने ढङ्ग पर की है। जो धन भूमि में गाड़ कर रख दिया जाता है—'धन' वह भी होता है पर अर्थशास्त्री इसे 'धन' नहीं मानते। अर्थशास्त्रवेत्ताओं की दृष्टि में 'अर्थ' वह है—'पैसा' वह है जो पैसे को कमा लावे—लाभ सहित। रोटी पर व्यय किया हुआ पैसा अर्थशास्त्रवेत्ताओं की दृष्टि में अर्थ नहीं। पैसे के लिये पसीना बहाया जाता है पर अर्थशास्त्री कहते हैं पैसे से पसीना खरीदा जाता है। पसीने से मेरा आशय 'श्रमशक्ति' से है। पैसा कमाने का एक ही गुण है—किसी का पसीना खरीद कर अच्छे भाव बाजार में बेच दो, पैसा ही पैसा हो जायेगा। पैसेवालों को ही उधार मिलता है। बाजार में साख (Credit) भी पैसे वालों की ही होती है।

---

१ Karl Marks (1818—1882)

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि रोम साम्राज्य के ४७६ ई० में ध्वसत होने के पश्चात् अनेक बर्बर जातियों ने पश्चिमी योरुप पर अपना आधिपत्य तो जमा लिया था पर आश्चर्य यह है कि योरुप ने रोम शासन, कानून और धर्म की परम्परा को नहीं छोड़ा। अन्तर केवल इतना आ गया था कि रोम के 'मॅजेस्ट्रेटों' का स्थान चर्च के 'पुजारियों' (Priests) ने ले लिया था, 'प्रोदशिक राज्यपालों' का (Provincial Governors) का स्थान 'विशप' (Bishop) लोगों ने और रोम के 'सीजर' (Ceasar) का स्थान 'पोप' (Pope) ने लिया था। नगर वही रोम रहा, भाषा वही लैटिन रही, शासन-पद्धति वही डायाक्लीटन[1] तथा कान्सटैन्टायन[2] की ही रही। उन सबको ईसाई-धर्म ने एक सूत्र में बाँध डाला था। दशवीं शताब्दी[3] में चर्च ही सब कुछ हो गया। वही सर्वशक्तिमान और सर्वेसर्वा[4] था। चर्च व्यापार भी करता था पर किसी बड़े लाभ पर नहीं। चर्च के राजकोष में धन अपार[5] था पर अर्थशास्त्रवेत्ताओं की दृष्टि में वह 'धन' 'निरर्थक' था।

अरब में नहीं, 'योरुप' में 'अर्थ' (Capital) का जन्म हुआ था और उसका इतिहास वहीं से आरम्भ होता है जहाँ से यदि सम्पूर्णतः नहीं, तो अंशतः 'धर्म' का—'धर्म-विशेष' का इतिहास समाप्त होता है। इस युग में 'अर्थ' के 'जन्म' की कहानी कुस्तुन्तुनियापोल (Constantinople), वेनिस (Venice) और ऐन्टवर्प (Antwerp)[6] ने कही है। इतिहास बताता है कि उस युग का व्यापार यहूदी, यवन, तथा बाईजैन्टाइन साम्राज्य के व्यापारियों के हाथ में था।

रोम के पतन के पश्चात् रोम की राज्य एवं मानसत्ता कुस्तुन्तुनियापोल में जा बसी थी, 'जर्मनी' में नहीं। और व्यापार की दृष्टि से यह कोई नई बात नहीं थी—पश्चिमी

---

१ Diocletian (286—305)

२ Constantine (306—337)

३ "By the year A. D. 1000 Medieval Christiandom had come fully into being." *J. C. Hearnshaw.*

४ "The Roman Church in the Middle Ages was a governor, a landed proprietor, a rent collector, an imposer of taxes, a material producer, an employer of labor on an enormous scale, a merchantman, a tradesman, a banker, and mortgage-broker, a custodian of morals, a maker of sumptuary laws, a schoolmaster, a compeller of conscience...... ......all in one."

Cambridge Medieval History पृ० ६८२
Macmillan, Vol. VII.

५ "The Church had its coffers full of gold and silver. It had a great fortune......but it was idle capital." *Leo Huberman* पृ० १२

६ "It is significant that most of Western European trade was chiefly by Byzantines, Muslims, Syrians and Jews." बार्न्स, पृ० ३३६

दुनिया का व्यापार सदैव ही पूर्वी दुनिया से हुआ है। 'भूमध्यसागर' पूर्वी दुनिया के व्यापार के लिये उस युग में एकमात्र जलमार्ग था। थलमार्ग का भी व्यापार था, किन्तु जलमार्ग की अपेक्षा कम। वेनिस (Venice) इटैली का नगर था और ऐन्टवर्प (Antwerp) का महत्व उस समय दृष्टि में आया जब व्यापार 'भूमध्यसागर' (Mediterranean Sea) को छोड़कर 'अन्धमहासागर' (Atlantic Ocean) पर चला गया। यह कैसे हुआ ?—इसका उत्तर है वेनिस का 'लोभ', 'स्वार्थ' और 'अभिमान'।

भारत और पूर्वी द्वीपों का समस्त व्यापार—वेनिस का मर्चेन्ट—वैसे ही यहूदी व्यापारी जैसा शेक्सपियर के नाटक 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का एक पात्र था—करते थे। वे लोभ, स्वार्थ और अभिमानवश अन्य देशों के व्यापारियों को वेनिस में व्यापार नहीं करने देते थे। प्रतिक्रिया में पुर्तगाल देश ने भारत की ओर आने का एक दूसरा जलमार्ग खोज निकाला। ई० १४९८ में वास्कोडेगामा (Vasco-da-Gama) ने 'अन्धमहासागर' (Atlantic Ocean) की ओर से भारत का मार्ग खोज निकाला। और इस प्रकार भूमध्यसागर के मार्ग का महत्व जाता रहा था। वास्कोडेगामा द्वारा भारत की इस प्रथम जलयात्रा में ६०००[१] प्रतिशत का लाभ हुआ था। व्यापार-सत्ता वेनिस को छोड़ कर 'ऐन्टवर्प' पर जा बसी। और ऐन्टवर्प के व्यापार-हाल (बड़ा कमरा) में लिखा था :—

"*For the Use of Merchants of Any Nationality And Language.*"

'प्रत्येक जाति अथवा भाषा के व्यापारियों के प्रयोग के लिये।'

वेनिस का 'स्वार्थ' ऐन्टवर्प का 'परमार्थ' हो गया। ऐसे ही किसी स्वार्थ अथवा अभिमान को देखकर 'कबीर' ने कहा था :—

'या दुनियाँ में आय के, छाड़ि दे तू ऐंठ।
लेना हो तू सो लेइले, उठी जात है पेंठ॥'

—कबीर।

वेनिस की पेंठ[२] उठ गई।

किन्तु इस व्यापार के लिये पैसा कहाँ से आया ? इसका उत्तर है—कृषक के 'रक्त' और 'पसीने' से, 'लार्ड' की पाकिट से नहीं।

योरुप के लार्ड साहब को खाने के लिये रोटी मिलनी चाहिये—'गेहूँ' की, और पीने को शराब—कम से कम 'बीअर' (Bear)—'जौ' की। 'खाने'[३] और 'पीने'—दोनों के लिये उस युग में फसलें उगाई जाती थीं। तीन खेत की खेती होती थी। हर वर्ष दो खेत

१ "On Vasco-da-Gama's first voyage to India the profits had been 6000 per cent." *Man's Wordly Goods*

By Leo Huberman. पृ० ७३

२ "... ... ... the route to the East via the Cape of Good Hope made the merchants independent of Turkish goodwill and broke the Venetain monopoly."

वही पृ० ७३

३ "Food crop ... Wheat and drink crop ... barely."

वही पृ० ३

काम करते थे, एक छुट्टी (laid off) पर रहता था। जिसमें एक साल गेहूँ बो दिया गया दूसरी साल उसमें गेहूँ नहीं, जौ अथवा अन्य कोई फसल बोई जायेगी। कृषक की भूमि के टुकड़े कर दिये गये थे। कृषक का एक खेत कहीं, तो दूसरा कहीं। सम्भवतः इसी को अंग्रेजी में 'strip farming' कहते हैं। लार्ड साहब की भूमि फीफ[१] (Fief) कहलाती थी। कृषक को अपने लार्ड की भूमि को पहले जोतना, बोना और काटना पड़ता[२] था। और कम से कम २ दिन बेगार भी। उस युग के लार्ड और कृषक में कोई समानता[३] नहीं थी पर फिर भी कार्य्य का सम्पादन एक संविद (Contract) द्वारा[४] होता था। इस संविद का आधार था—'रक्षा' (Protection), क्योंकि उस युग में न पुलिस का कोई प्रबन्ध था और न राजा की सत्ता ही। पर यह लार्ड कौन था—वही रोम का 'धनी', और कृषक? —वही रोम का 'निर्धन'। यह निर्धन अब स्लेव slave 'दास' नहीं, 'सर्फ' 'serf' 'कृषक' कहलाते थे, यद्यपि 'serf' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'सर्वस' 'servus' से थी जिसका अर्थ 'दास' होता है। किन्तु यह 'सर्फ' 'serf' दास नहीं था। पर वह जीवित था—केवल 'लार्ड' के लिये। यह लार्ड भी उतना ही बड़ा होता था जितना बड़ा उसका लार्ड। एक के ऊपर एक लार्ड[५] था और सब का लार्ड था—'चर्च'[६]। 'चर्च' सर्फ (serf) को भूका भी मार सकता था। चर्च के पास धन अधिक[७] था पर व्यय कहाँ करे? और वह लार्ड काम क्या करें? इसका उत्तर दिया था मुसलमानों ने—उन्होंने जो तुर्क थे—तातर।

योरुप के 'क्रूज़ेडस' (ईसाइयों के धर्म-युद्ध) लड़े गये 'धर्म' के नाम पर 'अर्थ'[८] के

---

१ "Fief was land as held in feudal tenure by a lord.'

बार्न्स पृ० २८६

२ "The lord's 'demesne' had to be be ploughed first, sowed first and reaped first."

Leo Huberman. पृ० ४

३ "There was never any question of equality between *lord* and *serf*."

पृ० ६

४ "The lord had to 'invest the vassal with his fief' ... and so long as he performed his feudal duties and obligations, he could never be legally ousted.'

बार्न्स पृ० २८८

५ "The lord of the manor, like the serf, did not own the land but was himself a tenant of another lord higher up in the scale.'

Leo Huberman. पृ० ७

६ "And we will do still more: we will add fifty armed galleys' for the love of God, on the condition that as long as our alliance shall last, of every conquest of land or money that we make, by sea or land, we shall have one-half and you the other......."

'The messangers ... said, 'Sire, we are ready to make this agreement.' The Crusaders wanted, not Jerusalem, but the trading towns along the coast."

वही, पृ० १६

लिये। योरुप के लार्ड की लाडीं चल रहीं थी—गरीब किसान के ऊपर। चर्च कहता था, 'हम उन लार्डस को निकालते[१] हैं जो 'सर्फ' को अपने बन्धन में नहीं रख सकते।' कृषक की चर्च से पटी नहीं। वह[२] चर्च से लड़ बैठा। कुछ भगवान ने भी उसकी सहायता कर दी। ई० १३४८ में महामारी (प्लेग) योरुप में फैल गई। इसे 'काली मृत्यु' (Black Death) कहा है। फ्लोरेन्स (Florence) में १००००० आदमी प्लेग का ग्रास बन गया। लन्दन में २०० प्रतिदिन और फ्रांस में ८०० प्रतिदिन के हिसाब से प्लेग के मुख में जाते रहे। इंगलैन्ड, जर्मनी तथा अन्य देशों की समस्त जनता का १।३ से १।२ भाग प्लेग ले गई। चर्च रोक नहीं सका। मनुष्य की बुद्धि विफल थी।

चर्च कहता था, 'यदि आत्मा जाती रही, तो माया से क्या लाभ'? किन्तु धर्म-विशेष के इन उपदेशों को 'अर्थ' कब सुनने[३] लगा?

'स्वार्थ' और 'तृष्णा' में अन्तर थोड़ा ही-सा है :—

'मैं भी भूका न रहूँ, साधु भी भूका न जाय।[४]'

—कबीर

यह 'स्वार्थ' हो सकता है, किन्तु 'तृष्णा' नहीं। योरुप के चर्च के सन्तों ने 'तृष्णा' की व्याख्या इस प्रकार की हैं :—

"He who hath enough to satisfy his wants and neverthless ceaselessly labours to acquire riches...all such are incited by a damanable avarice, sensuality and pride."[3]

अर्थात्, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु जिसके पास यथेष्ट धन है और फिर भी धन प्राति के लिये निरन्तर परिश्रम करता रहता है...ऐसे सब व्यक्ति तिरस्कार-

---

१ "(We excummunicate) those who, holding sway over serf or bondmen, bondwomen or women of (servile) condition pertaining to the monasteries of our Order, grant to such persons letters and privileges of ... freedom.'

The Statutes of the Cluniac. (*Religious Order.*)

२ "The peasants did not stop with merely making loud complaints. Occassionally they marched on Church property, threw stones at the widows, burnt down the doors, and beaten up the monks.'

Man's Wordly Goods.   *Leo Huberman* पृ० ३८

३ तु० 'प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम', कठोपनिषद्, द्वितीय वल्ली, मन्त्र ६ अर्थात्, 'धन-मद प्रमत्त मूढ़ के पास परलोक प्राप्ति का उपदेश काम नहीं करता।'

४ 'साईं इतना दीजिये जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूका न रहूँ, साधू भी भूका न जाय॥'

—कबीर

५ A Writer of 13th century. A. D. (cited by Leo-Huberman)

योग्य धन की उत्कट लालसा से, इन्द्रिय विषयों में आसक्ति से तथा गर्व की भावनाओं से प्रेरित हैं।

इस प्रकार 'अर्थ', 'स्वार्थ', 'तृष्णा', 'मृगतृष्णा' और 'गर्व' मनुष्य को सदैव ही सताते रहे हैं, किसी को कम, किसी को बहुत।

किन्तु, चर्च जब यह कहने लगा,' 'तू मेरे शब्दों में विश्वास ला, मैं निश्चय-पूर्वक कहता हूँ' अथवा यों कहिये, 'मुझसे ग़लती[१] नहीं होती', तो लूथर (Luther) कहता था, 'नहीं, गल्ती सबसे[२] होती हैं।' 'मैं तो स्वयं समझूंगा। अपने समझने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये।' बात तो लूथर ठीक कहता था। फल यह हुआ कि चर्च के हो गये दो टुकड़े—एक कैथोलिक (Catholic), दूसरा प्रोटेस्टेन्ट (Protestant) और फिर हो गये अनेक[३]। और फिर हुआ 'चर्च' की शक्ति ह्रास और उस गरीब किसान की शक्ति का निर्माण :—

''The shortage of labour had put the agricultural workers into strong position and given them a sense of powers.'

---

१ ''The Catholic Church alone, of all the Christian communities, claims to exercise the prerogative of infalliability.''

The Truth About Catholics.

Book printed at the I, S. S. D. Press, 95B Chitranjan Avenue, Calcutta.

२ ''All protestant Churches repudiate the claim of infalliability. They deny that such a gift is possessed by any teachers of religion. And their hearers are never required to believe them (opinions), but are to draw their own conclusions from the Bible.' वही पृ० १६

३
1. Catholic Church. (JESUS CHRIST)	Year 33 A.D.	Jerusalem
2. Anabaptists.	1521.	Germany.
3. Lutheran. (MARTIN LUTHER)	1524.	Germany.
4. Episcopalian.	1534.	England.
5. Presbyterian (Old School)	1560.	Scotland.
6. Congrationalists.	1583.	England.
7. Baptists.	1639.	Rhode Island.
8. Quakers.	1647.	England.
9. Quakers.	1681.	America.
10. Methodist Episcopal.	1739.	England.
11. Free-Will Baptist	1780.	New Hamp.
12. Campbellites.	1813.	Virginia.
13. Methodist Society.	1820.	New York.
14. Methodist Protestants.	1830.	Baltimore.
15. Seventh-Day Baptists.	1833.	United States.
16. True Wesleyan Methodist.	1843.	New York.

अर्थात्, श्रमजीवियों के अभाव के कारण कृषक एक सुदृढ़ स्थिति में हो गये। इस अभाव ने उन्हें उनकी शक्ति का विवेक करा दिया।

साथ ही साथ व्यापार में लेने-देने वाले दूर दूर थे, कोई 'लन्दन' में, तो कोई 'भारत' में। देने वाला समुद्र के इस पार, तो लेने वाला समुद्र के उस पार। फल यह हुआ कि एक बीच का व्यक्ति खड़ा हो गया। इस व्यक्ति को मध्यस्थ, दलाल, प्रतिनिधि—चाहें जो कहिये। समाज में एक नया वर्ग आ गया जिसे 'Middle Class' 'मध्य-वर्ग' कहते हैं। गांव छोड़ कर लोग नगरों में जा बसे। नगर बस गये, क्योंकि :—

——"town air makes a man free."[1]

अर्थात्, नगर की वायु मनुष्य को स्वतन्त्र बनाती है।

और १५ वीं शताब्दी के अन्त होते-होते योरुप में राष्ट्रीयता[2] की एक लहर दौड़ गई:—

'राष्ट्र निर्मित हुये। राष्ट्रीय विभाजन स्पष्ट हो गये। राष्ट्रीय साहित्य रचा गया। उद्योग के लिये राष्ट्रीय नियम बने। राष्ट्रीय विधान का निर्माण हुआ। राष्ट्र भाषाएं उत्पन्न हो गईं। लोग अपने को 'मैडरिड', 'केन्ट' तथा 'बर्गन्डी' के नागरिक न समझ कर 'स्पेन', 'इङ्गलैन्ड' अथवा 'फ्रांस' का समझने लगे। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा कि वे किसी नगर अथवा सामन्त के नहीं वरन उनकी भक्ति राजा के प्रति है जो सम्पूर्ण 'राष्ट्र' का अधिकारी है।'

अंग्रेजी भाषा के साहित्य के इतिहासलेखक का कथन है :—

"किन्तु चासर[3] (Chaucer) जिसके द्वारा अंग्रेजी काव्य आरम्भ होता है 'मध्य-युग' को समाप्त करता है और फिर चासर के समकक्ष कवि को उत्पन्न करने में इंगलैन्ड को दो शताब्दियाँ लगीं।" पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी की संकीर्णता को देखकर इंगलैन्ड के महान विद्वान बेकन[4] (Bacon) ने तुरन्त इन शब्दों में टोंक दिया:—

'Men should accustom themselves by the light of particulars to enlarge their minds to the amplitude of the world and not reduce the world to the narrowness of their minds.'

---

१ जर्मन भाषा की एक कहावत।

२ देखिये पृ० १२६ तथा उस पर का*

३ 'But Chaucer, who begins English Poetry, ends the Middle Age...England took two centries to produce a poet to rank with Chaucer.'

Chaucer (1340--1400 A. D.) . . . 'The Father of English Poetry.'

'Geoffrey Chaucer sees what is and paints it as he sees it. He effaces himself in order to look at it better."

A History of English Literature.
By Louis Cazamian

४ Sir Francis Bacon (1561—1626)

अर्थात्, मनुष्यों को इस विशिष्ट ज्ञान का अभ्यास कर लेना चाहिये कि वे विश्व की उदारता के समान अपने मन को उदार बनायें, यह नहीं कि वे विश्व को अपने मन की संकीर्णता में घटा डालें।[1]

किन्तु, मनुष्य कहता था:—

'You scratch my back and I will scratch yours'.

अर्थात्, तुम मेरी पीठ खुरचों, मैं तुम्हारी खुरचूंगा। और क्यों न कहता ? वह युग (१६ तथा १७ वीं शताब्दी) तो बड़े-बड़े व्यापारियों और पैसेवालों का युग था। स्पेन के राजा चार्ल्स पंचम को ८५०००० फ्लोरिन्स की आवश्यकता हुई तो ५४३००० तो अकेले श्री 'जैकब फग्गर' ने ही दे दिये। और इसी युग में बड़ी-बड़ी कम्पनियां बन गई—'रूस[2] की कम्पनी,' 'टर्की की कम्पनी,[3]' 'लेवांट,[4]' ईस्ट इन्डिया,[5]' 'प्लिमथ' तथा 'वर्जीनिया[6]' कम्पनियां बन गईं। अफरीका[7] की कम्पनी तथा फ्रान्स[8] की ईस्ट इन्डिया कम्पनी बन गई। हडसन्स बे कम्पनी[9] बन गई। कृषक का मूल्य घट गया। ई० १६०३ में पेरिस का चौथाई भाग भिकमंगा हो गया। इङ्गलैन्ड, हालैन्ड, और स्विटजरलैन्ड में भिकमगी इतनी बढ़ गई कि वहां के अमीरों को फकीरों से अपना पीछा छुड़ाना दुर्लभ हो गया—पीछा छुड़ाने के लिये शिकारियों की पार्टियां बनानी पड़ीं। फ्रान्स में मनुष्य का मूल्य घोड़े से भी कम हो चुका था।

सोलहवीं शताब्दी में एक ओर निर्धनता नंगी नाच रही थी—भिकमगी से योरुप भरा हुआ था और दूसरी ओर व्यापारों में, ६५,२३४,४७०० और ६००० प्रतिशत लाभ हो रहा था। इङ्गलैन्ड, फ्रान्स और हालैन्ड व्यापार की वृद्धि में लग गये थे। पुर्तगालवालों ने मनुष्यों को खरीदना तथा बेंचना आरम्भ कर दिया था। यह व्यापार 'दास व्यापार'—

---

१ बेकन (Bacon) (१५६१–१६२६) ने सदैव निर्भय होकर 'सत्य' की व्याख्या की। उसकी प्रमुख रचनायें—'Instauratio' magna', 'Essays'. 'The Utopian of Science' तथा 'Novum Organum' हैं'।—ले०

२ १५५४ ई० में Muscoy or Russia Company.

३ १५८१ ई० में Turkey Company.

४ १५६३ ई० में Levant Company.

५ १६०० ई० में East India Company.

६ १६०६ ई० में London and Plymouth Virginia Companies.

७ १६६२ ई० में Royal African Company.

८ १६६२ ई० में French East India Company.

९ १६७० ई० में Hudson's Bay Company.

१० "One-fourth of the population of Paris in the 1630's were beggars...In England the conditions were equally bad, Holland teemed with beggars, and in Switzerland...there were no other means of getting rid of (beggars)...the wealthy even organized hunting parties against these wretched heimatlosen"(homeless ones.)*Leo Huberman* पृ० ८०

'स्लेव ट्रेड' कहलाता था। स्पेनवालों ने एक दूसरा ही सस्ता मार्ग खोज निकाला। मैक्सिको' तथा 'पेरु' के 'सोने' और 'चांदी' को वे छिपा कर तेल के पीपों में भर कर ले आते थे। सोलहवीं शताब्दी में स्पेन 'चांदी' के कारण संसार का एक धनाढय तथा शक्तिशाली देश हो गया। सोना और चाँदी योरुप में फैल गया। चीजों की कीमतें बढ़ गई। मनुष्य रो-रो कर पता लगाता था कि यह हो क्या गया? यह मंहगाई कहाँ से आ गई? यह मँहगाई इंगलैन्ड में भी गई थी। पर......?

पर यह मँहगाई कहाँ से आ गई—इसके वास्तिविक कारण को छिपा कर १५४९ ई० में 'इस इंगलैन्ड के राष्ट्र को समृद्धिशाली एवं धन-धान्य से परिपूर्ण राष्ट्र में परिवर्तित करने की नीतियाँ[२]' नामक पुस्तक रच दी गई और १५८१ ई० में 'इस इङ्गलैन्ड के राज्य के सामान्य हित पर विवाद'[३] शीर्षक दूसरी रचना रच दी गई। लोगों को पढ़ने को थमा दी गई। पुस्तकों में मंहगाई की असलीयत का पता नहीं चलता था, पर तसल्ली के लिये ख्याल अच्छा था।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी के एक अध्यक्ष महोदय 'श्री टामस मुन' ने कम्पनी के पक्ष में 'विदेशी व्यापार द्वारा इंगलैन्ड का राज्यकोष'[४] नामक रचना में समझा दिया कि व्यापार में लगाया हुआ रुपया लौट-फेर कर पुनः इंगलैन्ड ही आवेगा।

और १६१६ ई० में एक ब्रेन ट्रस्ट (Brain Trust) 'बुद्धि का न्यास' भी स्थापित हो गया क्योंकि व्यापार के लिये बुद्धि भी चाहिये थी।

योरुप में इस ब्रेन ट्रस्ट के स्थापित होने के ठीक ११८ वर्ष पूर्व २३ मई १४९८ ई० को वास्को-डे-गामा का जहाज भारत के मालावार तट पर कालीकट के निकट आ लगा था। उस समय कालीकट का राजा एक हिन्दू था। उसका नाम सामुरी था। राजा ने वास्को-डे-गामा का स्वागत किया और सम्मान प्रदान किया। उसने पुर्तगाल वासियों को व्यापार करने की आज्ञा दे दी। ई० १५०० में अर्थात् दो ही वर्ष पश्चात् वहां कालीकट में व्यापार के लिये पुर्तगालवालों की कोठी खड़ी हो गई। पर भारत का सामुरी उस समय यह नहीं जानता था कि १२ वर्ष के अन्दर ही एक दिन यही पुर्तगालवाले उसके राजमहल में आग लगा देगें और उसके नगर को लूट लेगें। पुर्तगालवालों

---

१ "While the Merchants of England, Holland and France were pilling up huge fortunes in commerce, the Spainiards had found a simpler way to increase the sums of money in their treasury......And in Mexico and Peru there were gold and silver mines of great value......theirs for the stealing. In Spainish galleons the holds were loaded, not with goods to be sold at a profit, but with gold and silver, especially silver.

Cited by Leo Huberman   पृ० ८०

२ *'Policies to Reduce This Realm of England unto a Prosperous Wealth and Estate.'*

३ "*A Discourse of the Common Weal of This Realm of England.*"
Lamond Elizabeth (Editor)

ने १५१० ई० में उसके राजमहल में आग लगा दी और नगर लूट लिया। फिर कौन जानता था कि एक-सौ सवा-सौ वर्ष के अन्दर पुर्तगालवाले भारतीय धन से इतने धनी हो जायेंगे कि योरुप की अन्य जातियां जैसे डच, अंग्रेज, फ्रान्सीसी इत्यादि इनसे ईर्षा करेगीं ? देखते-देखते पुर्तगालवाले भारत में 'मंगलौर', 'गोआ', 'डामन', 'डयु' 'नेगापट्टम' इत्यादि के मालिक बन बैठे। भारत में पुर्तगालवाले एक हाथ में 'तलवार' और दूसरे में 'क्रास' (Cross) लेकर आये थे। भारत के सोने से जब दोनों हाथ भर गये तो उन्होंने तलवार और क्रास दोनों को फेंक[1] दिया। और यह मैं स्पष्ट कर चुका हूँ कि वास्को-डे-गामा की भारत की प्रथम जलयात्रा में ६००० प्रतिशत का लाभ हुआ था।

इन पुर्तगालवालों से ठीक १०० वर्ष पश्चात् १५९८ ई० में डच—हालैंडवाले अफरीका के नीचे से जावा होकर भारत आये थे। भारत ने इनका भी स्वागत किया। पुलीकट, मद्रास, आगरा, सूरत, अहमदाबाद और चिनसुरा में इनकी भी कोठियाँ खड़ी हो गई। चिनसुरा की कोठी १६७५ ई० में खड़ी हुई थी। पर यह डच जाति पूर्वी द्वीपों—जावा, सुमात्रा, मलाया, अम्बोयना इत्यादि के मसालों से पैसेवाली हो गई थी। इसके अतिरिक्त उन दिनों जापान का पूर्ण व्यापार इसी जाति के हाथ में था।

इन डच लोगों के भारत में चिनसुरा की कोठी खड़ी करने के ९७ वर्ष पूर्व अर्थात् १५७८ ई० में इंगलैंड के नाविक सर फ्रैन्सिस ड्रैक ने भारत से लिसबन जानेवाले एक पूर्तगाली जहाज को लूट लिया था। धन के अतिरिक्त उस लूट में ड्रैक महोदय को एक 'मानचित्र' भी मिला था जिसमें भारत के जल-मार्ग का पता प्रथम बार अंग्रेजों को चला और फिर १६०० ई० में 'ईस्ट इन्डिया कम्पनी' का निर्माण हुआ और ८ वर्ष के पश्चात् १६०८ ई० में अंग्रेजों का प्रथम 'झगड़ालू'[2] जहाज भारत में सूरत के बन्दरगाह में आ लगा। हाकिन्स महोदय इस जहाज के अधिपति थे। फरवरी ६, १६१३ ई० को जहाँगीर के एक 'शाही फरमान' द्वारा इनकी भी कोठी 'सूरत' में खड़ी हो गई।

भारत में अंग्रेजों की सूरत की कोठी से ठीक ३ वर्ष पश्चात् १६१८ ई० में योरुप का ३० वर्षीय युद्ध छिड़ गया जो १६४८ ई० समाप्त हुआ। जर्मनी जर्जर हो गई। सम्पूर्ण जनता का २।३ भाग समाप्त हो गया। एक-एक गांव का ५/६ भाग ध्वस्त हो गया।

इस युद्ध के समाप्त होने के ठीक ३ वर्ष बाद १६५१ ई० में डच[3] लोगों ने पुर्तगालवालों से 'मलाया' लेना चाहा। मलाया के राज्यपाल (Governor) से रिशवत पर सौदा तय हुआ। डच लोग मलाया में घुस पड़े। राज्यपाल महोदय को तलवार के घाट

---

१ Alfonza-de-Souza. Governor of Portuguese India in 1545.

२ 'Hector.' (हेक्टर = झगड़ालू)

३ तु० "Sir T. S. Raffles, one-time Lieutenant Governor of the Island of Java described the history of the colonial administration of Holland as one of the most extraordinary relations of treachery, bribery, massacre and meanness."

उतार दिया गया—ताकि रिशवत के २१८७५ पौन्ड बच जायें। रिशवत (उत्कोच) का लालच भी क्या चीज है ?

और ई० १६६२ में फ्रान्स की ईस्ट इन्डिया कम्पनी भी बन गई थी। ई० १६७५ में इन्होंने भी 'पाँडिचरी' में अपनी कोठी खड़ी कर ली।

किन्तु भारत में तो पुर्तगालवालों, डच, अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों की कोठियाँ हीं खड़ी हुईं। भारत के व्यक्ति को 'दास' बना कर 'बाजार' में बेंचा नहीं गया। पर भारत का यह अहोभाग्य नहीं था, इन विदेशी जातियों के वश का यह नहीं था।

अफ्रीका का नीगरो (Negroes) तो काफी ऊँचे भाव अमरीका और ग्याना में बेंचा गया। हाकिन्स महोदय ने १५६२-६३ ई० में ३०० नीगरो को बेंच कर इतना धन कमाया था कि उसके अपने तीनों जहाजों में वह धन (खालें, जिन्जर, शक्कर, मोती) समाया नहीं था। इङ्गलैन्ड की महारानी इलिजेबेथ तो अपने को हाकिन्स महोदय का भावी साझेदार बनने के सुन्हले स्वप्न देखने लगीं थी। लिवरपूल (Liverpool) और मान्चेस्टर (Manchester) तो इतने विशाल व्यापार केन्द्र इन्हीं नीगरों की हडडियों से बन गये थे। यह नीगरों भी 'धन' थे—पक्का, खरा पैसा।

और इससे भी अधिक खरा पैसा वह था जो ६ वर्ष की आयु के बच्चे से दिन में १४ घन्टे फैक्ट्री में काम कराके पैदा किया जाता था। किसानों की धरती को छीन कर उन्हें फैक्ट्रियों में सस्ते दर पर काम करने के लिये विवश कर दिया गया था।

यह[1] फैक्ट्रीयाँ इङ्गलैन्ड की औद्योगिक क्रान्ति से आरम्भ होती हैं। औद्योगिक क्रान्ति रुई, ऊन, कोयला और लोहे से आरम्भ होती है। ११ मार्च १७७६ ई० में 'अर्मिंघम गज़ेट' ने प्रकाशित किया:—

"पिछले[2] शुक्रवार को (श्री) वाट के सिद्धान्त पर निर्मित एक भाप का इञ्जिन

---

१ ई० १७८८ में इङ्गलैन्ड के 'हाउस आफ कामन्स' (House of Commons) के सम्मुख लिवरपूल के व्यापारियों ने 'दास व्यापार' को समूल अस्तित्व-विहीन करने के विरूद्ध जो आवेदन-पत्र दिया था उसके अन्तिम शब्द यह थे :—

"Your Petitioners, therefore, contemplate with real concern the attempts now making...to obtain a total abolition of the African slave trade, which for a long series of years has constituted and still continues to form a very extensive branch of the commerce of Liverpool...Your Petitioners humbly pray to be heard...against the abolition of this source of wealth." *Petition cited in Lecture by Prof. H. Merivale at Oxford in 1840.*

नोट :—पर उस समय इङ्गलैन्ड के सामने यह प्रश्न नहीं था कि पहले रोटी-कपड़ा पैदा करें या मशीनों को जैसा औद्योगिक क्रांति के पश्चात् देश देश के सम्मुख यह प्रश्न आज है।—ले०

२ "On Friday last a Steam Engine constructed upon Mr. Watt's new principles was set to work at Bloomfield Colliery......?"

Birmingham Gazette. 11 March 1776.

ब्लूमफील्ड की कोलिरी पर चलाया गया। वैज्ञानिक उसे देखने को उमड़ पड़े।' इस घटना से ६ वर्ष पश्चात् कार्टराइट[2] के शक्ति के करघे बनाये गये थे।

ग्रेट ब्रिटेन ने १८२६ से १८४० ई० में अपने यहाँ रेलें बैठाल लीं। फिर इन्होंने पश्चिमी योरुप, अरजनटायन, भारत, चीन और अफरीका की रेलें बना दीं। अपना ही पैसा लगाया और अपनी ही शिल्पकला। पर तब यह रेलें अपने ही लिये बनाई गई थीं। भारत में ४०००० मील लम्बी रेलें ६००००००० पौन्ड (लगभग ८४००००००० रुपये) की लागत से बैठालीं गई थीं।

फैक्ट्रीयों का काम बड़े जोरों से चला। ३० कोयले की खानें, २२ तांबें की खानें, २८ ढलाई के कारखाने, १७ शराब की भट्टियाँ और ३४ काटन मिल्स और लोहे इत्यादि के इतने कारखाने तो इतने बड़े थे कि जिनमें वाट साहब का इंजिन माल ढोने और ले जाने का काम करता था। धन ही धन हो गया। इङ्गलैन्ड का १२०००००००० पौन्ड समुद्रपार देशों में लगा दिया गया और १८६०—७६ ई० में 'लन्दन मार्केट' ने ६५००००००० पौन्ड एक नई लागत के रूप में और लगा दिया था।

एक ओर रुपया लगता गया दूसरी ओर धन मे धन—अर्थ से अर्थ के पैदा करने के लिये नाना प्रकार के नियम, नियंत्रण और नीतियाँ बनती गई। यहाँ यह नहीं भुलाना चाहिये कि वह रेलें और यह व्यापार 'एकाधिकार' (Monopoly) के आधार पर बने थे। लोगों ने शेअर्स(Shares) और स्टाक (Stock) इत्यादि खरीदे थे। ई० १७५५ में इङ्गलैन्ड का 'कम्पनी एक्ट' बना दिया गया था—ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनीज ऐक्ट—लिमिटेड लायबिलिटी कम्पनीं का कानून। फिर यह 'एकाधिकार' लोगों को खटकने लगा। फ्रांस की आँखें भी चकाचौंध हो गई। फ्रीट्रेड (Free Trade)--'स्वतंत्र व्यापार' की मांग हुई। नाना प्रकार के नियंत्रणों से लोग घबरा उठे। फ्रान्स के एक सज्जन श्री डे गार्ने de Gournay ने '*laissez-faire*' 'लेजिज़ फेरी' अर्थात् 'हम अकेले' (Let us alone) का सिद्धान्त सामने रक्खा। स्वतंत्र व्यापार की मांग बढ़ गई। पर वास्तव में ऐसा हुआ क्यों ? क्योंकि 'फ्रान्स' के पास न कोयला था, न लोहा, न रूई थी और न ऊन। हाँ खेती थी। किसानों को अपने खेतों में जो मन चाहें पैदा करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। खेती के ही आधार पर उद्योग तथा व्यापार की वृद्धि होती है। फ्रान्सीसियों ने किसानी और खेती के गुण गाना आरम्भ कर दिया—उस किसान का गुणगान जिसको दबा-दबाकर रखने में ही सामन्तवादी युग अपनी महानता समझता था।

'स्वतन्त्र व्यापार' की भावना को लेकर इङ्गलैन्ड में एडम स्मिथ की 'Wealth of Nations' 'वेल्थ आफ नेशन्स' नामक रचना उसी वर्ष जिसमें वाट साहब का इंजिन आया था अर्थात् १७७६ ई० में आई। 'अर्थ' का अर्थ ही बदल गया। पैसा गाड़ कर रखने के लिये नहीं होता है—व्यय करने के लिये होता है। धन का मूल्य धन के उपभोग में है। इसी कारण लक्ष्मी एक गृह में नहीं ठहरती है।

---

१ James Watt. (1736—1819)

२ Edmund Cartwright (1743—1823) के Power-Looms (शक्ति के करघे)

३ Adam Smith (1723—1790)

ई० १७७६ से ठीक १२।१३ वर्ष बाद फ्रांस की क्रान्ति आई। पर यह ध्यान रहे कि इस समय फ्रांस की सम्पूर्ण भूमि का १।३ भाग किसानों की निजी सम्पति थी, किन्तु कृषक असन्तुष्ट था। और असन्तुष्ट से भी असन्तुष्ट वहाँ का मध्य वर्ग (Bourgeoisie) था। इनके पास भूमि नहीं थी, पर धन था। फ्रान्स की क्रान्ति के अनेकानेक कारणों में विशेष महत्वपूर्ण कारण केवल इतना था कि मध्य वर्ग अपनी विजय चाहता था—सामन्तवादी युग का विनाश चाहता था। किन्तु यह विजय सम्भव कैसे थी ? फ्रांस की क्रान्ति के आदर्श—'भ्रातृत्व', 'समानता', 'स्वतन्त्रता'—यह तो दिखाने के लिये सुन्दर-सी त्रिमूर्ति थी पर इनके पीछे मन्डियों (बाजारों) का मोह छिपा हुआ था। इससे १०० वर्ष पूर्व जब इङ्गलैंड में 'ग्लोरिअस रेव्युल्युशन' (Glorious Revolution 1689) आया था तो वहाँ भी मन्डियों की स्वतन्त्रता के लिये ही छटपटाहट थी। यदि भारत रुई पैदा करे और इस नियंत्रण से नियमित हो कि भारत की रुई केवल इङ्गलैन्ड ही जायेगी या जा सकेगी तो यह मन्डियों की स्वतन्त्रता नहीं होगी। ऐसे ही नियंत्रण असह थे।

मन्डियाँ स्थापित हुईं तो उत्पादक और बिक्रेता, बिक्रेता तथा उपभोक्ता के मध्य आढ़तिया का आना अनिवार्य हो गया। आढ़तिया बन गये—कुछ कच्चे, कुछ पक्के[१]। क्लर्क, वकील, जज, स्कूल मास्टर, डाक्टर—यह सब मध्य वर्ग के आधार-स्तम्भ हो गये।

और एडम स्मिथ की परम्परा में रिकार्डो[२], मालथस[३], जेम्स मिल, मैककुलोच, जान स्टूअर्ट मिल[४] इत्यादि अर्थ-शास्त्रवेत्ताओं ने अपने अपने अनुभव द्वारा मानव के 'स्वार्थ' और 'स्वत्व' की बागडोर संभाल ली।

मालथस महोदय ने एक बड़ी विचित्र बात अपने अनुभव से बताई। मनुष्य केवल इसलिये मरता[५] है कि उसके खाने के लिये पृथ्वी के पास रोटी नहीं रह गई थी।

---

१ "A person who receives goods from another as a commission agent and sells them for him is a commission agent upto the point of sale and thereafter he becomes a debtor pure and simple. This principle has been applied in India in the case of pakka adatia".

Bhagwan Dass Vs. Kanji 30 Bombay 205.

२ David Ricardo. (1772—1823)

नोटः—रिकार्डो की रचना :—"*Principles of Political Economy and Taxation.*" यह रचना १८१७ ई० की है।—ले०

३ Thomas Malthus (1766—1834)

नोटः—मालथस की रचनाः—"*An Essay on the Principle of Population*".

४ John Stuart Mill (1806—1873)

नोटः—'मिल' की मुख्य रचनाः—"*Principles of Political Economy.*"

५ "Death (in the form of epidemics, pestilence, and plague... and famine) steps in and takes away the toll of the increasing population so that it comes level with the food supply."

Malthus Theory.

पर बात बड़ी अनोखी थी। भारत के व्यक्ति ने यह कभी नहीं सोचा। और क्यों नहीं सोचा? क्योंकि वह तो 'मङ्गल' में विश्वास करता है। उसकी दृष्टि में वसुधा[१] की विश्व-मंगल कामना से ही इसी पृथ्वी पर इन्द्र की वर्षा है, कुबेर का धन है। फिर वसुधा के पास कमी किस बात की? यह 'मंगल' की भावना 'कल्पना' अथवा 'भावुकता' नहीं है—कठोर सत्य[२] है।

धन की वृद्धि अथवा बढ़ाव में उस धन के बिलसनेवाला यदि कोई नहीं होता है तो भी यह अभाव खलता है। इसीलिये धन बढ़ जाता है तो व्यक्ति भी बढ़ जाता है। पर कठिनता तब होती है जब 'स्व और स्वार्थ' बढ़ जाता है। ई० १७५० से १८५० तक एक ही शताब्दी में इङ्गलैन्ड और वेल्स की जन-संख्या लगभग तिगुनी हो गई। ई० १७५० में ६०½ लाख से १८५० ई० में १७०¾ लाख हो गई[३]। ई० १८१५ से १९१४ ई० तक ब्रिटिश साम्राज्य बढ़कर इतना विशाल तथा इतना विस्तृत हो गया कि सूर्य उसमें डूबने का नाम ही नही लेता था।

'कनाडा[४]', 'केपटाउन[५]', 'ग्याना[६]', 'लङ्का[७]', 'केप आफ गुड होप[८]', 'त्रिनीदाद[९]', 'मारेशश[१०]', 'जावा[११]', 'भारत[१२]' (भारत के भिन्न भिन्न प्रदेश)

---

१ देखिये पृ० ११५

२ देखिये पृ० ११३

३ Growth of Population of England and Wales in the Century 1750-1850.

Year	1750.	1770.	1790.	1810.	1830	1850
Millions	$6\frac{1}{2}$	$7\frac{1}{2}$	$8\frac{3}{4}$	10	$13\frac{3}{4}$	$17\frac{3}{4}$

The Foundation and Growth of the British Empire.
By J. A. Williamson. पृ० २४५

४ १७६३ ई० में (वोल्फ (Wolfe) द्वारा—योरुप के सप्तवर्षीय युद्ध में)

५ १७९५ ई० में

६ १७९६ ई० में (हालैन्ड वालों से)

७ १७९६ ई० में (हालैन्ड वालों से)

८ १७९६ ई० में (हालैन्ड वालों से)

९ १७९७ ई० में (स्पेन वालों से)

१० १८१० ई० में (फ्रान्सीसियों से)

११ १८१५ ई० में (पुनः प्राप्त किया)

१२ १८१५ ई० में

सूरत	१६१५ ई० में
मद्रास	१६३९ ई० में
बम्बई	१६६२ ई० में
कलकत्ता	१६९० ई० मे
बंगाल	१७५७ ई० में
बिहार	१७६४ ई० में

'मलाया[१]', 'पश्चिमी आस्ट्रेलिया[२]', 'दक्षिणी आस्ट्रेलिया[३]', 'न्यूजीलैन्ड[४]', 'चीन[५]' (पर आक्रमण), 'नैटल[६]', 'क्वीन्सलैन्ड[७]', 'फीजी[८]', 'ट्रान्सवाल[९]', 'इजिप्ट[१०]' (मिस्र), 'सूडान[११]'—यह सब ब्रिटिश साम्राज्य के अंग हो गये पर वास्तव में 'अर्थ' की दृष्टि से यह 'मन्डियाँ थीं। अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में यह 'उपनिवेश' भी थे।

ई० १८५६ में 'जापान का बाजार' भी बलपूर्वक अमरीकावालों ने अर्थवादियों के लिये खुलवा लिया।

इङ्गलैन्ड का यह अहोभाग्य था कि उसके पास 'कनाडा' जैसी नाज की मन्डी थी, 'ग्याना' और 'लंका' जैसा सर्राफा था, 'जावा' और 'जैमेशिका' का गन्ना और शक्कर उसके पास थी, 'भारत' की रुई, 'आस्ट्रेलिया' और 'न्यूजीलैन्ड' की ऊन और 'पूर्वी द्वीपों' के मसाले, 'मलाया'

दक्षिणी भारत	१७६६ ई० में
उत्तर प्रदेश मध्य भारत या मध्य-प्रदेश पश्चिमी भारत	१८१६ ई० में
आसाम	१८२६ ई० में
सिन्ध	१८४३ ई० में
पञ्जाब	१८४६ ई० में

१ १८१६ ई० में (सर स्टेमफोर्ड रेफले ने 'सिंगापुर' बसाया था)

२ १८२६ ई० में

३. १८३६ ई० में

४ १८४० ई० में

५ १८४२ ई० में चीन पर आक्रमण कर दिया और १८६८ ई० में बहुत से बन्दरगाह ले लिये। यह ओपिअम वार' Opium War' कहलाती है। किन्तु १८४२ ई० में हांगकांग अंग्रेजों के पास पहुँच गया। फिर शंघाई भी बलपूर्वक व्यापार के लिये खुलवा लिया गया।--ले०

६ १८४३ ई० में

७ १८५६ ई० में

८ १८७४ ई० में

६ १८७७ ई० में

१० उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इङ्गलैन्ड और भारत के बीच डाक और मुसाफिरों के लिये 'थल मार्ग' चाहिये था। इजिप्ट में उस समय टर्की साम्राज्य था। इजिप्ट को रुपये की आवश्यकता हुई। बस, पैसेवालों ने पैसा दे दिया। इजिप्ट का इस्माइल (१८६३—१८७६ ई०) सूद न दे सका। इङ्गलैंड को मिस्र में होकर निकलने का 'मार्ग' मिल गया। देश भी मिल गया।—ले०

११ १८६६-६८ ई० में (लार्ड किचनर Sir Herbert Kitchener द्वारा)

की रबड़, अपने घर का ताँबा, कोयला और लोहा। और अब बचा जलाने वाला तेल और मोटर का पेट्रोल। सो उसके लिये मलाया, डच ईस्ट इन्डीज, मेक्सिको, फारस, बरमा, इराक, रुमानिया—यह सब भी उससे कहीं बाहर थोड़े ही थे। योरुप में इन सब का फल यह हुआ कि कोयलावाला जीता और नाजवाला हारा। इङ्गलैन्ड कोयलावाला था, जर्मनी और फ्रान्स नाजवाले। रूस* को उस समय कोई पूँछता नहीं था। अमरीका की कुछ विशेष चलती नहीं थी। इन सबके कारण तो अनेक थे पर समय बलवान था।

इस प्रकार सम्पूर्ण इङ्गलैन्ड, योरुप और अमरीका ने अपने-अपने अस्तित्व, देश, राष्ट्र, साम्राज्य और व्यक्ति के लिये सोना, चांदी, रेडियम,[१] इस्पात,[२] लोहा, कोयला, मिट्टी का तेल, पेट्रोल,[३] रेलें, तार,[४] बिजली,[५] मोटर,[६] पानी के जहाज,[७] हवाई जहाज,[८] और न मालूम क्या क्या साधन 'सुरक्षा' और 'सुशासन' हेतु खड़े कर लिये। चीन को अफीम[९] खिला कर सुदूर पूर्व में कुछ बन्दरगाह भी ले लिये।

और सिनेमा,[१०] रेडियो[११] तथा टेलीविज़न[१२] से मन भी बहलता रहा—आकाश पर वायुयान भी उड़ते रहे और फ्रान्स में बैठकर इङ्गलेन्ड का राजतिलक[१३] भी दीखता रहा।

---

* रूस का उदय १९१७ ई० से होता है।—ले०

१ मैडम क्युरी (Madame Curie) ने १९०३ ई० में 'रेडियम' को खोज निकाला।

२ ई० १८७१ में जर्मनी के एक व्यक्ति ने एक बड़े पैमाने पर 'इस्पात' का उत्पादन खोज निकाला।

३ स्काटलैन्ड के एक व्यक्ति ने १८५७ ई० में फारस के पेट्रोल को ढूँढ़ निकाला।

४ स्काटलैन्ड के एक व्यक्ति अलेक्जेन्डर ग्राहमबेल द्वारा १८७६ ई० में टेलीफोन और १८३२ ई० में तार का उदय हुआ—'मोर्स' (Morse) द्वारा।

५ देखिये :—फैराडे (१८३१) पृ० ९५ टि० ४

६ फ्रान्स के एक व्यक्ति कगनाट (Cognot) ने १७७० ई० में 'स्टीम वैगन' (Steam Wagon) निकाला। ई० १८८६में कम्बस्टन इन्जिन (Combuston Engine) बनाया गया।

७ ई० १८१९ में अमरीका द्वारा बनाये हुवे पानी के जहाज ने अटलांटिक (अन्ध महासागर) को पार किया था।

८ फ्रान्सीसी मान्टगोलफीयर (Montgolfier) ने १७८३ ई० में कागज के गुब्बारे में उड़ कर दिखाया था। ई० १९०३ में वाशिंगटन के लेंगले (Langley of Washington) ने स्टीम इन्जिन से हवाई जहाज उड़ाया था।

९ 'Europeans introduced opium trade in China.'

१० रोल फिल्म (Roll Film) १८८७ ई० में और केमरा १८३९ ई० में।

११ इटैली के जी० मारकोनी ने १८९६ ई० में रेडियो निकाला।

१२ ई० १९२५ में स्काटलैन्ड के एक व्यक्ति जे० यल० बाइर्ड (J. L. Baird) ने टेलीविजन निकाला।

१३ इङ्गलैन्ड के जार्ज सिक्स्थ का राजतिलक उसके भ्राता एडवर्ड अष्टम ने पेरिस में बैठ कर टेलीविज़न (Television) पर देखा था।—ले०

इस प्रकार 'अर्थ' का--पैसे का उदय······'व्यापार', 'छल-बल', 'लूट-खसोट',[२] 'चोरी', 'घूस',[३] 'शोषण',[४] 'रक्तपात',[५] 'मनुष्यों को बेचना',[६] 'श्रम-जीवकों को कारागार[७] दिखा कर—भेज कर', चौदह घन्टे नौ नौ वर्ष के बच्चों से काम लेकर, गढ्ढों तथा खोहों में उन्हें बसाकर,[८] भयंकर बीमारियों को आमन्त्रित करके, भूमिधारियों की भूमि छीनकर,[९] श्रम-जीवकों का वेतन काट कर, उन पर झूठे आरोप लगा कर, जुर्माना[१०] करके, बाजारों के भाव को उतार-चढ़ा कर, कुछ मूल-मन्त्र[११] पढ़ा कर, फसलों को नाश करके[१२] तथा करन्सी (टकसाल) की अधोगति करके[१३] पैसा पैदा किया गया था। सबसे खरा पैसा—नकद पैसा वह था जो किसी का खून और पसीना खरीद कर जरा ऊँचे भाव बेच कर पैदा किया गया था।

उपरोक्त शब्दों में मैंने 'छल-बल' शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों की सार्थकता श्री डब्लू० हाविट के शब्दों पर है जो उन्होंने 'भारत में अंग्रेजों' के विषय में १८३८ में कहे थे :—

"Our empire is not an empire of opinion, it is not even an empire of law, it has been acquired, it is still governed by direct influence of

---

१ Force and fraud.

२ Piracy, Plunder.

३ Bribery.

४ Exploitation.

५ Murder.

६ Inhuman Traffic.

७ ई० १७७६ में इङ्गलैन्ड तथा फ्रान्स में ट्रेड-यूनियन के श्रम-जीविकों को वेतन की मांग में एक होने के कारण जेल में भेज दिया जाता था।—ले०

८ "A whole street following the course of a ditch...not one house of this street escaped the cholera." *Nassati Senior. (1837)*

९ Propertyless.

१० मान्चेस्टर में यह नियम था: —

(क) 'Any spinner found with his window open.' Fine—s. 1

(ख) 'Any spinner found dirty at his work.' Fine—s. 1

(ग) 'Any spinner heard whistling.' Fine—s. 1

११ वे मूल-मन्त्र यह थे :—

१ 'No man ever was glorious, who was not laborious.'

२ 'Hope of Gain lessens Pain.'

१२ देखिये पृष्ट १२५, टि० १

१३ जनवरी ३१, १९३४ को दिन के ३ बज कर १० मिनट पर प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट ने अपनी टकसाल की अधोगति करके २७९००००००० डालर पैदा कर दिये थे—२५.८ से १५.२४ भर सोना एक डालर के सिक्के में रह गया था।—ले०

force. No portion of the country has been voluntarily ceded....we were first permitted to land on the sea coast to sell our wares...till by degrees, *sometimes by force and sometimes by fraud*......we have put down the ancient sovereigns of the land, we have stripped the nobles of all their powers, and by continual drains of the industry and resources of the people we take from them all their surplus and disposable wealth."[1]

अर्थात्, हमारा साम्राज्य मतों का नहीं है—न यह साम्राज्य विधानों का ही है, यह तो उपार्जित साम्राज्य है—इसका शासन तो आज भी बल के प्रभाव से होता है। देश का कोई भी भाग स्वतः ही त्याग करके इसमें नहीं मिल गया है। प्रथम हमने सागर के तट की भूमि पर उतरने की आज्ञा प्राप्त की—अपनी वस्तुओं को बेचने के लिये···फिर धीरे-धीरे कभी छल से, कभी बल से हमने उस भूमि के प्राचीन राजागणों को समाप्त कर दिया···वहाँ के सामन्तों की सम्पूर्ण शक्तियों को छीन लिया, वहाँ की जनता के उद्योग तथा द्रव्य-साधनों को निरन्तर निकास द्वारा ले जाते रहे और वहां के सम्पूर्ण बचे हुये धन को ले डालते रहे।

किन्तु, उपरोक्त शब्दों में—पैसा पैदा करने के अनेक साधनों में 'इमानदारी', 'दयानतदारी' और 'मेहनत की कमाई' का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भव है यह मेरा अर्थवादियों के प्रति पक्षपात हो। किन्तु इस विषय पर कार्लमार्क्स के शब्द सुनियेः—

'If money......comes into the world with a congenital bloodstain in one cheek, capital comes dripping from head to foot, from every pore with blood and dirt.'

अर्थात्, पैसा दुनियाँ में एक गाल पर दुखद रोग से पड़े हुये खून के धब्बों को लेकर आता है, तो 'अर्थ' सिर से पैर तक, रोम रोम से टपकते हुये रक्त और धूलि को लेकर आता है।

पर, सम्भव है पैसे के अभाव से तपे हुये व्यक्ति (कार्ल मार्क्स) का एक कथन हो पर निश्चय ही कथन ऐसा है कि अर्थवादी इसकी सत्यता को स्वीकार करने को तैयार नहीं।

यह कोई माने या न माने पर आज भी पुरुष का पशुत्व भड़कता है तो वह दसवीं शताब्दी का प्रतीत होता है। सभ्यता के नाते पुरुष के पशुत्व में अन्तर केवल अंश (Degree) में आ गया है, रूप (Kind) में नहीं, साधनों में आ गया है, लक्ष्य में नहीं।

पर रोम रोम से टपकते हुये 'रक्त' तथा 'धूलि' की भावना उन्नीसवीं शताब्दी की है।

---

१ *'Colonization and Christianity.' London (1838)*

नोटः—इस पुस्तक में 'Oriental Herald' के एक लेखक को उद्धृत करते हुये श्री होविट ने ये शब्द कहे थे।—लेखक

यह पैसा किसका सात ताव खाकर नहीं आता है ? सभी तो कहते हैं यह पैसा हमने सिर से एड़ी तक पसीना बहाकर कमाया है। 'मेरी तो पसीने और खून की कमाई है।' 'पौरुष से लक्ष्मी मिलती है—पुरुष सिंह हो जाता है—भाग्य की रेखायें मिट जाती है।' लोग पैसे के लिये खून और पसीना एक कर देते हैं। पर पसीना और खून एक करने वाले केवल सूखी रोटी भाग्य में लिखा कर लाते हैं—इससे अधिक विधाता के पास उनके लिये कुछ नहीं था।

पैसा खून और पसीने को एक करने से नहीं आता है। पैसा 'सूझ' से पैदा किया जाता है।

अर्थवादी के पैसे में एक वह 'सूझ' होती है जो खून और पसीना एक करने वालों के पैसे में नहीं होती। अर्थवादी पसीने की एक एक बूंद का हिसाब रखता है—एक एक बूंद में कितना मैल होता है—वह यह जानता है, एक एक बूंद का बाजार में क्या भाव लगेगा, कितनी दलालो देनी होगी, कितनी छूट निकल जायेगी, भाड़ा कितना लगेगा, कितना रिशवत में जायेगा, कितना लगेगा टैक्स, कितना धर्म-खाते में जायेगा और लै-देकर बचेगा तो कितना—वह यह सब जानता है। इससे परे वह बाजार के रुख को जानता है, आदमी को पहिचानता है, वक्त को परखे रहता है और सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि वह यह जानता है कि कौन व्यक्ति उसके कब, कहां और किस काम आ सकता है ! और इससे भी बड़ी विशेषता यह है कि वह 'पैसा' से 'मानवता' खरीद लेता है। न्याय खरीद सकता है। इज्जत खरीद सकता है। और अन्त में वह यह भी जानता है कि इन खरीदी हुई 'चीजों' को पैसे के बल पर ठोकर कैसे मारी जाती है ?

यह 'सूझ' हर एक के पल्ले नहीं पड़ती। और न किसी अर्थशास्त्र की पुस्तक में लिखी होती है। न कोई प्रोफेसर बताता है।

चाय के एक प्याले पर सिगरेट के एक 'कश' में और 'टेलीफोन' की एक 'हलो' के साथ यह 'सूझ' आती है और मोटर के पीछे उड़ती हुई धूलि में समा जाती है। फिर वही मोटर चुङ्गियों पर रिशवत देकर चोर बाजार में-से निकल जाता है। किन्तु यह खबर सातवें रोज आती है कि 'कोरिया' में युद्ध छिड़[1] गया। यह सूझ समय से बहुत पहले आती है और समय पर काम कर जाती है।

और हाँ, इङ्गलैन्ड की मिट्टी में कोयला और लोहा यदि नहीं होता तो न औद्योगिक क्रान्ति आती, न उपनिवेश बसते, न रेलें चलतीं, न हवाई जहाज उड़ते। पर क्या होता, क्या नहीं होता—यह तो नहीं कहा जा सकता। पर हाँ, पैसा नहीं होता। पर इसका अर्थ यह भी नहीं होगा कि तब दानवता नहीं होती।

---

१ कोरिया के युद्ध की घोषणा १९४५ ई० में हुई थी।—ले०

'Ten Days that Shook the World.'

John Reed.[1]

नवम्बर ७, १६१७ को पेट्रोग्रेड में होने वाले सोवियत् कांग्रेस के एक सम्मेलन में लेनिन[2] ने यह शब्द कहे थे :—

—'अब हम समाजवाद की ओर अग्रसर होंगे।'

यह लेनिन महोदय कार्लमार्क्स के पुजारी थे। कार्लमार्क्स ने 'अर्थ' का रहस्योद्घाटन कर दिया था—'अर्थ' रक्त से टपकता हुआ आता है। अर्थवादियों का फोड़ा तो वह था ही।

किन्तु इस 'समाजवाद' का 'अर्थ' क्या था ?

इस 'समाजवाद' का अर्थ था–'व्यक्ति' से 'समुदाय'[3] की ओर—राष्ट्र का कोई भी व्यक्ति किसी भी सम्पत्ति को अपनी निजी सम्पत्ति न कह सके, सम्पत्ति सम्पूर्ण समुदाय की मानी गई—जन-समूह की—राष्ट्र की। राष्ट्र की एक एक वस्तु पर प्रत्येक व्यक्ति को अभिमान हो, राष्ट्र के गौरव में एक एक व्यक्ति का अभिवादन हो, एक एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा से राष्ट्र सम्मानित हो। राष्ट्र और व्यक्ति का अन्तर्भाव मिट गया। राष्ट्र व्यक्ति हो गया, व्यक्ति राष्ट्र। सीमायें टूट गईं। न कोई ऊँच रहा, न नीच, न कोई निर्धन रहा, न धनी। व्यक्तित्व की रेखायें विलीन हो गईं।

किन्तु, तब रूस की १६½ करोड़ जनता के स्वर्ग का यह प्रश्न था।

उस समय सोवियत रूस के लिये कोई विधान[4] नहीं रचा गया था। केवल ६ व्यक्तियों[5] को राष्ट्र का संचालन सौंप दिया गया था।

राष्ट्र के सम्मुख एक नहीं, अनेक भयंकर प्रश्न खड़े हो गये थे। इङ्गलैन्ड, फ्रान्स, जर्मनी और अमरीका के समान उस समय रूस के पास न धन था, न मान, न उत्पादन के साधन, और न शक्ति। व्यक्ति वहां का अधिकतर अशिक्षित था। कोयला उनके पास नहीं, लोहा उनके पास नहीं। रूस तो योरुप की नाज की खत्ती (Granary) कहलाती है। गेहूँ, तेल और लकड़ी—यही वहां थे। उपरोक्त अर्थवादी देशों के समान न वहां मशीने थीं, न पुर्जे, न मिल्स थे और न फैक्ट्रीयाँ। सब से बड़ी बात यह थी कि रूस उस समय उपरोक्त अर्थवादी देशों को फूटी आंख भी न सुहाता था। सुहाने की बात कौन कहे, उस समय अर्थवादी देश रूस को छल और बल दोनों से ही समूल नष्ट करने की

---

१ सोवियत् रूस की क्रान्ति पर रची हुई एक पुस्तक के शीर्षक के शब्द हैं। यह रचना १६१६ ई० में जान रीड ने रची है। लेनिन ने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखा है। इसमें रूस की क्रान्ति का लेखक का आंखो देखा वर्णन है।—ले०

नोट : यह क्रान्ति ७ नवम्बर १६१७ को हुई थी।—ले०

२ Nikolay Lenin (1870—1924)

'We shall now proceed to construct Socialist Order.'

३ 'Dictatorship of Proletariat'

४ Constituition.

५ 'Politbureau' अर्थात् राजनैतिक कार्यालय 'Political Bureau'

नोट :—इस कार्यालय में ६ सदस्य थे और ८ वैकल्पिक व्यक्ति।

घात में थे। रूस से उन्हें इतना भय नहीं लगता था जितना रूस के 'समाजवाद' से। यदि निजी सम्पत्ति किसी की न रही, न हुई, तो फिर मोह ही किस बात का? कौन मरेगा और जियेगा किसके लिये? मूल और लाभ का ढांचा ही बिगड़ जायेगा। वस्तु का मूल्य ही क्या रह जायेगा? यह प्रश्न सब ऐसे थे जो अर्थवादी को रात और दिन चैन नहीं लेने देते थे। अर्थवादी सोंच सोंच कर सूख कर काँटा हो रहा था। 'रूस के पास मशीनें नहीं और यदि मशीनें हम लोगों से खरीद भी ले तो भी क्या होगा? पुर्जे कहां से आयेगें। रूस के दोनों सागर छः छः महीने जमे रह जाते हैं, उपनिवेश उसके पास हैं नहीं। फिर रूस को मार देना कौन बड़ी बात है?'—यही अथवा ऐसी ही विचार-धारा से अर्थवादियों के दिलों में कुछ ठंडक आ जाती थी।

किन्तु 'अर्थ के उदय और पराभव' शीर्षक इतने बड़े अध्याय में ऐसा प्रतीत होता है कि मानों लेखक ने 'अर्थवादियों' के विरुद्ध ही लिखने का बीड़ा उठा लिया है और एक शब्द भी उनके पक्ष में कहने को तैय्यार नहीं—मानो अर्थवादियों ने जो कुछ भी पिछली लगभग ८०० वर्षों में किया था वह सब लेखक की दृष्टि में व्यक्ति और समाज, देश, राष्ट्र और विश्व के लिये बुरा ही बुरा किया था—मानो लेखक यह समझता है कि १६, १७, १८ वीं शताब्दी के अफ्रीका के नीगरों को पुष्प मालाओं से सुशोभित करके, उन पर चँवर डुलाते हुये उनसे अर्थवादी तब यदि करबद्ध यह प्रार्थना करते कि वे-अमरीका की सोने और चांदी की खानों में काम करने के लिये उतरें, तो सम्भव है, लेखक अर्थवादियों को रक्त चूसनेवाला न समझकर उन्हें व्यक्ति, समाज, देश, और राष्ट्र का हितकारक समझता। पर ऐसा नहीं है। अर्थवादियों की सोने की कोठियाँ भी कोई यों हीं नहीं खड़ी हो गई हैं।

उन्हें भी नौ, नौ, आँसू बहाने पड़े हैं। पसीना तो नहीं, खून तो उन्हें भी जलाना पड़ा है। 'अर्थ' की दुलत्ती सहने के लिये देखते देखते कोठियों से हाथ धोना पड़ा है। इज्ज़त धूलि में मिल गई है। कफन खरीदने को भी पैसा न रह गया है।

हां, पैसा पैदा करने के जितने भी साधनों का उल्लेख अब तक किया जा चुका है उनको यदि क्षण भर को भुला भी दिया जाये तो पैसा पैदा करने का उत्तम और सरल मार्ग एक और भी है। इसमें न माल की आवश्यकता होती है, न मशीनों की, न किसी श्रमजीवी की 'हाय हाय', न कोई विशेष लागत का काम—लाभ घनेरा। और यदि हानि भी हो जाये तो बाद में अपना मकान बेंच कर भुगतान किया जा सकता है। यह साधन 'सट्टा' है।

यह ई०१९१४ के प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की बात है। ई० १९२४ से १९२९ तक अमरीका के न्युयार्क का सट्टा बाजार (Stock Market) बड़ी जोरों से चला। जिसे देखो वही सट्टे की ओर दौड़ा हुआ चला जा रहा था। विश्व के कोने कोने का (रूस को छोड़ कर) सोना ढुल कर न्युयार्क पहुँच गया। अमरीका के सट्टे के बाजार गर्म हो गये। उत्तरी और दक्षिणी अमरीका और आस्ट्रेलिया में भी यह 'सट्टा' फैला। वहां से यह जर्मनी और मध्य योरुप में पहुँचा। अमरीका के लोगों ने योरुप में लगाया हुआ अपना पैसा खींच लिया। आस्ट्रीया का ऐन्सटाल्ट बैङ्क (Anstalt Bank)

और जर्मनी का डैनेट बैंक (Danat Bank) फेल हो गये । ब्रिटिश, डच और स्विज बैङ्कों ने जर्मनी को एक ऊँचे ब्याज की दर पर पैसा दिया, पर क्या होता है ? ई० १६२४ में जर्मनी के व्यापार बजट में २.६, १६२८ ई० में ४.३ और १६३० ई० में ०.७ मिलियार्ड्स मार्क्स (मिलियार्ड = १० अरब) की कमी रही। और अन्त में जर्मनी को जब वह अपनी आर्थिक दशा न सुधार सका तो 'हूवर मुरेटोरियम' (Hoover Moratorium) अर्थात् 'मृत्यु-घर' में जाना पड़ा । पर ई० १६३२ में इन्हें 'मृत्यु घर' में भी स्थान न रहा क्योंकि युद्ध के ऋण भुगतान के लिये कोई साहूकार कब तक प्रतीक्षा करें ?

चाहें कोई 'मृत्यु-घर' में जाये, चाहें कोई आसन-पाटी लेकर बैठ रहे पर साहूकार क्यों मानने लगा ? ई० १६२० में जर्मनी को ४०००००००००० डालर का ऋण चुकाना था। ई० १६२४ से १६२८ तक में जर्मनी ने लगभग ७५०००००० पौन्ड का अमरीका से एक और ऋण ले लिया । अन्त में फल यह हुआ कि लगभग १६३४—३५ ई० में कोरे[२] कागज की लिखा-पढ़ी द्वारा एक सुलह-नामे की त्यारी होने लगी।

ई० १६२६ में 'सट्टे' का बाजार ठन्डा हो गया—"The Wall Street collapsed.' । सस्ती दौड़ पड़ी । वस्तुओं के मूल्य एक दम गिर गये । बेकारी बढ़ गई ।

जर्मनी से कहीं अधिक इस 'सट्टे' और 'सस्ती' से ग्रेट ब्रिटेन भुगत गया। ग्रेट ब्रिटेन ऋणी हो गया । ई० १६३१ में बैंक आफ फ्रान्स से तथा फेडरेल रिर्जव बैंक आफ न्युयार्क से ५ करोड़ पौन्ड का ऋण लिया। पर क्या होता है इतने ऋण से ? ८ करोड़ पौन्ड का दूसरा ऋण लिया पर फिर भी गाड़ी न चली तो बैङ्क आफ इङ्गलैन्ड ने साफ-साफ ब्रिटिश लेबर गवर्नमेन्ट को बता दिया कि अब तो दो ही रास्ते हैं—या तो सोने के सिक्के का मूल्य (Off the Gold Standard) खो दो या ऋण ले लो । पर कोई ऋण भी कहाँ तक दे ? अन्त में इङ्गलैन्ड को अपने सिक्के का मूल्य खोना पड़ा। फिर क्या था ? स्कैन्डेनेविया, स्वेडिन, नार्वे तथा डेनमार्क सभी को अपने अपने सिक्कों का मूल्य खोना पड़ा—क्योंकि यह सभी देश अपने माल की खपत के लिये इङ्गलैंड का मुँह देखते थे।

इस 'सट्टे और सस्ती' के प्रभाव से बचा रूस भी नहीं । रूस बड़ी बुरी तरह से फंसा था ।

रूस-क्रान्ति के पश्चात रूस के सामने भी कुछ वैसा ही प्रश्न था जैसा स्वतन्त्रता के पश्चात् आज भारत के सम्मुख है । रूस पहले 'रोटी' और 'कपड़ा' पैदा करे या देश में बड़ी-बड़ी मशीनें लगाले —प्रश्न यह था।'रोटी' और 'कपड़ा' से आशय मेरा ऐसी आवश्यक वस्तुओं से है जिन्हें अर्थशास्त्र अपनी भाषा में 'कन्ज्युमर्स गुड्स' (Consumers'

---

१ Debts at the opening of 1920:— Dollars

Germany.	40,000, 000, 000
Great Britain	37, 69, 6000,000
France.	34,842,000,0,000
United States.	26, 194, 977, 000
Austria-Hungary.	25, 731, 619, 000
Italy.	10, 353, 275, 000
Belgium.	2, 502, 824, 000

Germany's final Bills for payment were:—
Dollars 72, 000,000,000,

२ 'Paper Settlement at Lausainne Conference.

Goods) अर्थात् 'उपभोग की वस्तुयें' कहता है और 'मशीनों' से मेरा आशय 'प्रोड्यु-सर्स गुडस' (Producers' Goods) अर्थात् 'उत्पादन के साधनों' से है।

रूस ने अपने 'समाजवाद' का निर्माण योजनाओं के आधार पर किया था। यह योजनायें 'गोसप्लान' (Gosplan) कहलातीं हैं। ई० १६२६ में रूस की प्रथम 'पंच-वर्षीय योजना' (Five Year Plan) चल रही थी। रूस ने योजना यह बनाई कि 'रोटी' और 'कपड़े' के प्रश्न को हल करने के पूर्व उसे 'मशीनों' का प्रबन्ध करना होगा। बात भी ठीक थी क्योंकि रूस को छोड़ कर संसार के सभी मशीनवाले देश माल मशीनों से तैय्यार करेगें और उसके पास 'मशीनें' होगीं नहीं तो यह 'केला और बेर' का साथ कैसे निभेगा ?

'वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग'[1]

——रहीम

मशीनोंवाले देशों को, १६२६ की 'सस्ती' के आने के पूर्व, रूस मशीनों के लिये कुछ ऊँचे आर्डर दिये बैठा था। इधर आगई सस्ती। ई० १६२८—१६३० में गेहूँ रूस ने भी उतना ही पैदा किया था जितना अमरीका ने। रूस ने २३३ मिलियन कुइन्टल्स[2] और अमरीका ने २३४ मिलियन कुइन्टल्स पैदा किया था। ग्रेट-ब्रिटेन ने १३, जर्मनी ने ३७, फ्रान्स ने ७६, इटैली ने ६३, कनाडा ने ११५ मिलियन कुइन्टल्स गेहूँ पैदा किया था। फल यह हुआ रूस का रुपये का माल आठ आने में गया। तेल का मूल्य तो और भी गिर गया था—'*to an unheard of low price.*'

रूस ने भी सोंचा लाओ अमरीका के फोर्ड मोटरकारों का-सा एक विशाल कारखाना अपने यहां भी खड़ा कर लिया जाये। इस कारखाने के लिये गोर्की में जगह ले लीं गईं। बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी कर लीं गईं। सैकड़ों हजारों आदमियों की भरती हो गई। तलब बटने लगी। पर पता चला 'पुर्जे' कहां से आवेगें ? फल यह हुआ वह योजना पानी में मिल गई। इसको भी एक 'सूझ' ही कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'Lack of Coordinating' अर्थात् संयोजन-शक्ति अथवा योग्यता का अभाव कहते हैं। रूस ने फिर धीरे-धीरे इस योग्यता को भी प्राप्त कर लिया। रूस अपनी योजनाओं के आधारों पर जीता रहा। बिदेशी ब्यापार पर राष्ट्र का पूर्ण आधिपत्य हो गया। पर रूस को किसी ने ऋण नहीं दिया। और दिया तो ऊँची दर पर।

जो कुछ भी हो, मेरा यह विषय नहीं है कि रूस ने अपने समाजवाद की स्थापना में कब, कब, किन, किन आपत्तियों का सामना किया, कैसे-कैसे कष्ट झेले और फिर किस प्रकार सफलता प्राप्त की। मेरा आशय रूस के समाजवाद के यथार्थ को स्पष्ट करने का है।

रूस के विधान की धारा ११८ में कुछ ऐसे अटपटे शब्द आये हैं जिनसे केवल इतना बोध होता है कि रूस राष्ट्र में कोई भी ब्यक्ति—स्त्री, बालक, पुरुष ठलुआ न बैठा रहे। राष्ट्र सबों को काम देने की प्रतिज्ञा किये हुये है। किन्तु विश्व इतिहास में मानव का यह अनुभव केवल लगभग ४० वर्ष का है। पर सम्पूर्ण विश्व बड़ी उत्सुकता से इसकी

---

१ 'कहु रहीम कैसे निभै बेर केरु को संग।'

२ Millions Of Quintals. कुइन्टल = १०० या ११२ पौंड अर्थात्, लगभग सवा मन।

ओर देख रहा है। मार्क्स, लेनिन, स्तालिन,[१] टाल्सटाय[२] और गोर्की[३] जैसे अनुभवी जन-शुभचिन्तकों ने रूस राष्ट्र के एक एक व्यक्ति को व्यस्त रखने के लिये 'कार्य' का संयोजन कर दिया है—कोई मशीनों में लिप्त हो कर रह गया है—कोई मशीन स्वयं बन गया है—तो इसका अर्थ यह नहीं हो गया कि वहां पूर्णतः जन-मन प्रतिष्ठा स्थापित हो गई हो।

\+ + + +

सन् १६३६ से ३ वर्ष पश्चात्:—

प्रथम विश्व-युद्ध[४] के पूर्व योरुप ने युद्ध बहुत[५] देखे। विश्व का द्वितीय युद्ध[६] १६३६ ई० से १६४५ ई० तक देखा। इन युद्धों में मानव ने मानव के प्रति षड्यन्त्र रच कर देख लिया, अपनी शक्ति का ह्रास देखा, शक्ति के साधनों का परिहास देखा, एक दूसरे को धोका देकर देख लिया, अवसर पर किस प्रकार विश्वासपात्रों ने साथ छोड़ दिया है—यह भी देखा। जिस धन[७] पर मानव को इतना गर्व था, जिस बाहुबल[८] का इतना अभिमान था, जिस बुद्धि का इतना भरोसा था, जिस विज्ञान[९] से

---

१ Joseph Stalin. (Died 1953)

२ Leo Tolstoy (1828—1910)

३ Maxim Gorky (1868—1936)

४ प्रथम विश्व युद्ध १६१४—१६१८ ई० में।

५

1.	Thirty Years' War	(1618—1648)
2.	First Dutch War	(1652—1654)
3,	Second Dutch War	(1665—1667)
4.	War of Grand Alliance	(1689--1697)
5.	War of the Spanish Succession	(1702—1713)
6.	Jenkins' Ear War	(1739—1748)
7.	War of Austrain Succession	(1740--1748)
8.	War in India and North America	(1749—1755)
9.	Seven Years' War	(1756—1763)
10.	War of American Independence	(1775—1782)
11.	Maritime War	(1778--1783)
12.	Revolutionary War	(1793—1802)
13.	Napoleonic War	(1803—1815)
14.	War with U. S. A.	(1812—1815)
15.	Zulu War	(1879—1887)
16.	First Boer War	(1880—1881)
17.	South African War	(1899—1902)

६ द्वितीय विश्व युद्ध (१६३६—१६४५)

७ Capital

८ Armament. Re-armament

९ 5cientific Researches and Inventions.

आकाश[१] और पाताल[२] एक हो रहा था—एक कर लिया था, जिस भूमि को लोग माता[३] और पिता[४] की भूमि कहते थे—देशाभिमान, गौरव और स्वामित्व जहाँ एकत्रित होकर जिस झंडे का अभिनन्दन करते थे, जिस झंडे के नीचे राष्ट्र-अभिमान विजय का आशीर्वाद देता था—जिस झंडे को सलामी देते हुये फौजों के दस्ते क़दम मिलाते हुये सामने से निकल जाते थे—इन सबको देखा। और यह भी देखा कि गेस्टैपो,[५] स्काटलैन्डयार्ड[६], स्पाईज, मिलीट्री पुलिस, और फिफ्थ कालम—यह सब फेल हो गये। पेट्रोल, कोयला[७], बिजली, गैस तथा तेल—यह सब एक एक करके और रेलें, मोटरें, टैंक, सड़कें, नहरें, पुल, पनडुब्बी, यू-बोटस, टारपीडो, मैरीन्स, पानी के जहाज, हवाई लड़ाकू जहाज—यह सब भी एक एक करके मानव का साथ छोड़ते रहे। पेट्रोल के लिये रुमानिया को आक्रान्त कर डाला, ईरान और इराक को परस्पर बांट[८] डाला।

जैकोस्लेवेकिया, नार्वे, पोलैंड, डेनमार्क, फिन्लैन्ड को इंगलैन्ड ने धोका[९] दे दिया, चेम्बरलेन को हिटलर ने धोखा दें दिया, इङ्गलैंड चेम्बरलेन के शब्दों[१०]

---

१ Aeroplanes.

२ Ships, U-Boats, War-ships. Submarines.

३ अंग्रेज अपनी भूमि को 'Mother land' 'माता की भूमि' कहते थे।

४ जर्मनीवाले अपनी भूमि को 'Father land' पिता की भूमि कहते थे।

५ Gestapo (जर्मनी की खुफिया पुलिस)

६ Scotlandyard (इङ्गलैंड की खुफिया पुलिस)

७ इङ्गलैंडवासियों का ऐसा विश्वास एवं कथन था कि १६१३ ई० में एक साल में २८७० लाख टन कोयला का उत्पादन हुआ और इसी हिसाब से प्रति वर्ष कोयला का उत्पादन यदि होता रहे तो ८०० वर्षों तक इङ्गलैन्ड में कोयला अवाधरूप से निकलता रहेगा।

'*Plan For Britain.*' Publshed by Vora and Co. Publishers Limited. Bombay. पृ० ८४

८ ईरान और इराक के तेल और पेट्रोल को अमरीका तथा इंगलैंड ने परस्पर बांट लिया—३८ प्रतिशत ब्रिटिश के पास और ५२ प्रतिशत अमरीका के पास।

९ "We had promised to rescue and protect them. We never sent an aeroplane to Poland, we were too late in Norway. Could anyone doubt that our prestige had been impaired ? We had promised Czechoslovakia, Poland, Finland. Our prominory notes were now rubbish in the markets." *Lloyd George* on 8th May 1939.

१० 'It is peace in our time, my good friends. And now I recommend you to go home and sleep.' *Chamberlain.* (1937)

चेम्बरलेन के उपरोक्त शब्दों पर विश्वास करके इङ्गलैन्ड सुख की नींद सो गया पर उठा तो देखा कि १० मई १६३६ ई० को जर्मनी ने हालैंड, बेलजियम और लक्जेम्बर्ग पर आक्रमण कर दिया। इङ्गलैंड और फ्रान्स की नींद उखड़ गई। वे ३ सितम्बर १६३६ ई० में विवश हो युद्ध में उतरे।—ले०

से धोखा खा गया, चेम्बरलेन को इङ्गलैंड ने धोका दे दिया—चर्चिल प्राइम मिनीस्टर (मुख्य मन्त्री) हो गये। अमरीका के प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट थे ही। ई० १९४१ में जर्मनी के हिटलर को उसकी बुद्धि ने धोका दे दिया—वह रूस पर आक्रमण कर बैठा, विफल हो गया। चर्चिल से भारी भूल हो गई। रूस को भूमध्यसागर भी चाहिये था। भूमध्यसागर अंग्रेजों का प्राण रहा है।[1]

प्रेसीडेन्ट रूज़वेल्ट यद्यपि विश्व युद्ध से दूर रहना चाहते थे और इसलिये १९३९ ई० में जब फ्रांस ने 'यह हमारे जीवन का प्रश्न है'—यह कह कर जर्मनी के विरुद्ध अमरीका से सहायता मांगी तो रुजवेल्ट महोदय ने फ्रांस की आपत्ति पर बड़ी सहानभूति प्रगट करते हुये एक पत्र में लिखा :—

> "मैं जानता हूँ कि आप मेरे इन वचनों (सहानभूति के शब्दों) से यह आशय न लगा लेगें कि मानों मैंने आपको सैनिक सहायता का वचन दे दिया हो। यह तो केवल कांग्रेस ही कर सकती हैं।"

तथापि रूजवेल्ट के सम्मुख प्रश्न यह था कि यदि जर्मनी ने इङ्गलैंड को ध्वस्त कर डाला तो निश्चय ही जर्मनी उस ओर से छुट्टी पाकर अमरीका की ओर अपना मुख मोड़ेगा और अमरीका को उसका सामना करना ही पड़ेगा। पोलिश, जेक, स्लोवेकियन, डेनिश, स्वेडिश, ग्रीक, डच, फ्रेन्च, बेलजियम तथा लक्जेम्बर्ग के लोग[2] जो अमरीका की भूमि पर रह रहे थे वे भी तो अपनी अमरीका की मातृभूमि को प्यार करते थे। फल यह हुआ १९४१ ई० में अमरीका को भी युद्ध में उतरना पड़ा। अपना अपना स्वार्थ सब कुछ करा लेता है।

अवसरवादियों ने भी बहती गङ्गा में हाथ धोने में कब चूक की है? ई० १९४१ में जापान ने देखा कि रूस तो जर्मनी के सामने अब झुकने ही वाला है तो वह ही पीछे क्यों रह जाये? अपनी पुरानी आकांक्षा को—चीन पर अपना प्रभुत्व जमाने की आकांक्षा को रूप क्यों न दे डाले? जापान अपनी शक्ति का संचय १९१९ ई० से करता रहा था। ई० १९३१ में 'मान्चूरिया' और १९३७ ई० में 'शंघाई'—चीन के दो विशाल एवं प्रमुख नगर ले ही चुका था।

जापान, जर्मनी और इटली का संघ एक हो गया किन्तु जापान जर्मनी के लिये लड़ने नहीं गया। उधर ग्रेट ब्रिटेन, नेदरलैन्ड और अमरीका एक हो गये। ७ दिसम्बर १९४१ को जापान ने हव्वाइन द्वीपसमूह में 'पर्ल हारबर' में स्थित अमरीका की जलसेना पर आक्रमण कर दिया और फिलीपाइन, हांगकांग, मलाया, सिंगापुर, बरमा तथा पूर्वी द्वीप ले लिये। जापान आस्ट्रेलिया को भी चाहता था। पर किसी के चाहने से

---

१ जर्मनी का हिटलर कहता था कि इङ्गलैंड को जर्मनी से मिलकर 'रूस' को नष्ट कर देना चाहिये ताकि रूस के 'समाजवाद' से अर्थवादी विश्व मुक्त हो जाये पर चर्चिल ने हिटलर के विरूद्ध ही लड़ना उचित समझा। चर्चिल भूल करके गये यह समझने में कि रूस को भूमध्यसागर भी चाहिये था।—ले०

२ ई० १८२० से १९०९ तक यह सब ३२०००००० व्यक्ति योरुप से आकर अमरीका में बस गये थे।—ले०

क्या होता है !' ई० १६४२ के अन्त होते होते जापान अपने तीनों लक्ष्यों में विफल हो गया। वे तीन लक्ष्य थे—चीन पर आक्रमण, आस्ट्रेलिया पर आक्रमण और अमरीका की जल-शक्ति का विनाश।

'बरमा' और 'सिंगापुर' में जापान की विजय से भारत भयभीत हो उठा। कलकत्ता में भगदड़ हो गई। मछलीपट्टम्, बैजवाडा, त्रिनकोमाली में बम्ब गिराया गया। पर भारत के पास न तोप थी, न बन्दूक, न मोटर, न हवाई जहाज, और न कोई 'फ्लीट'। यहाँ 'भारत' से मेरा आशय भारत की 'जनता' से है—भारत के विधाता अंग्रेजो से नहीं। अतः महात्मा गांधी ने भारत के प्राचीन सांस्कृतिक अस्त्र—'अहिंसा' का मूल-मन्त्र भारत की जनता को दिया और स्वयं तथा अपने सहयोगियों—डा० राजेन्द्र प्रसाद,[1] पंडित जवाहरलाल नेहरू[2], राजगोपालाचार्य[3], पटेल[4], पन्त[5], और भारतीय कांग्रेस में से बीन बीन कर एक एक व्यक्ति को लेकर जेल चले गये और चलते चलते 'विश्व' को अपना नैतिक बल तथा सहानुभूति (Moral Sympathy) दे गये। जेल तो अंग्रेजों ने भेजा था पर 'करो' या 'मरो' (Do or Die) के नारे जेल से भी आते थे। भारतीय काँग्रेस के नेतागण ६ अगस्त १६४२ को पकड़े गये थे।

भारत में एक ओर चावल का एक एक किनका, रोटी का एक टुकड़ा व्यक्ति व्यक्ति को भारी हो गया और दूसरी ओर लड़ाई की कमाई से रात को सोये तो सुबह को लोग लखपती हो गये—मोटरें आगईं—कोठियां खड़ी हो गईं। पीछे से जनरल वेविल[6] (General Wavell) की लेखनी के एक झटके से हजार हजार के नोटों※ की गड्डियों को छिपाना मुश्किल हो गया। लड़ाई की कमाई निकल कर बाहर आ गईं।

मुसोलिनी[7], हिटलर[8], फ्रैंकों[9], मोलोटोव[10], स्तालिन[11], चर्चिल[12], मार्शल पीटेन,[13]

---

१ डा० राजेन्द्र प्रसाद—भारत के प्रथम राष्ट्रपति

२ पं० जवाहर लाल नेहरू—भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री

३ श्री सी० राजगोपालाचार्य—भारत के प्रथम गर्वनर जनरल

४ श्री बल्लभभाई पटेल—भारत के 'लौह पुरुष'—भारत के प्रथम 'गृह-मन्त्री'।

५ श्री गोविन्द बल्लभ पन्त—उत्तर प्रदेश के प्रथम मुख्य मन्त्री।

६ Viscount Wavell वायसराय व भारत के गर्वनर जनरल (१६४३—१६४७)

द्वितीय विश्व युद्ध के भाग्य विधाता :—

७ इटली का निरंकुश शासक	Benito Mussolini. (Born 1883)
८ जर्मनी का निरंकुश शासक	Adolf Hilter. (Born 1889)
९ स्पेन का निरंकुश शासक	General Franco.
१० रूस को विदेशी मन्त्री	Molotov.
११ रूस को निरंकुश शासक	Joseph Stalin.
१२ इङ्गलैंड के प्रधान मन्त्री	Winston Churchill. (1940)
१३ फ्रान्स के प्रधान मन्त्री	Marshal Petain.

※The High Denomination Bank Notes (Demonitisation) Ordinance 1946.

रुजवेल्ट[1] और जनरल यूमेजू[2] और न मालूम कितने युद्ध के भाग्य बिधाता युद्ध की कुटिल नीतियों में रत देखने लगे कि उनके पानी के जहाज डूब रहे हैं, हवाई जहाज अग्नि वर्षा कर रहे हैं और फिर स्वयं भी ध्वसत होते चले जा रहे हैं, उनकी एम्बूलेन्स कारें घायलों को अस्पताल पहुँचाते पहुँचाते स्वयं भी टुकड़े टुकड़े हो रही हैं, उनकी रेलें, तार, डाकघर मरे हुओं की चिट्ठी-चपाती उनके घरवालों को भेजने में असफल होते चले जा रहे हैं, उनके कोयला, लोहा, तेल, लकड़ी, रेडियम, इस्पात के कारखाने उड़ाये जा रहे हैं, पानी की पाइप लाइन काटी जा रही है, कनाडा 'अनाज' नहीं पहुँचा पा रहा है, आस्ट्रेलिया ऊन नहीं भेज पा रही है। इन्डिया किसी भाव काटन (रुई) देने को तैयार नहीं। लङ्काशायर[3], मानचेस्टर, लीड्स, बरमिंघम, शेफफील्ड जीने वालों के लिये 'कपड़े' और मरने वालों का कफन नहीं पैदा कर पा रहे हैं।

किन्तु 'करीर' वृक्ष पर बसन्त ऋतु में भी हरियाली यदि न आवे, यमुना-तट पर का 'जवासा' ग्रीष्म की तपन में भी यदि न सूखे तो क्या दोष बसन्त को और क्या दोष ग्रीष्म ऋतु को ?

और क्या दोष-विश्व के मानव को जो लड़-भिड़ कर फिर एक होने की सोचता है ? एक होगा।

क्या दोष रत्नगर्भा[4] को, सागरों और पर्वतों को ?

---

१ अमरीका के प्रेसीडेंट Franklin D. Roosevelt. (1933—1945)

२ जापान का सेनापति

३ नोट :—इङ्गलैंड के इन्ही विशाल नगरों से सर्व प्रथम औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution.) आरम्भ हुई थी।

४ अमरीका को —सोना, इस्पात, तांबा, चांदी, कोयला, लोहा, पेट्रोल
रूस को —गेहूँ, तेल, रोंवावाला चमड़ा, लकड़ी
भारत को —रुई, तम्बाकू, गेहूँ
इङ्गलैन्ड को — लोहा, कोयला
फारस और खुरासन को —कांसा
रुमानिया, अरब, सीरिया
ईरान, इराक और बरमा —पेट्रोल, मिट्टी का तेल
बेलजियम —तांबा
ब्रेजिल —काफी (Coffee)
कनाडा —गेहूँ, प्लेटीनम, कागज
जावा, सुमात्रा, बोर्नियो —टीन, सोना, चाँदी, तेल, मैगनेशिया, मसाले
मलाया —रबड़, टीन
पेरु —चांदी
दक्षिणी अफ्रीका —सोना और हीरा
डेनमार्क —मक्खन
चीन —चाय

विश्व का सम्पूर्ण वैभव, ऐश्वर्य, सम्पत्ति और बिभूति विश्व के एक एक मानव के लिये है, किसी एक-विशेष के लिये नहीं।

पर प्रश्न 'कितनी' का है ? एक एक के भाग में—'कितनी' का ?

इस 'बटवारे' पर न 'अर्थवादी' सहमत थे, न 'समाजवादी' सहमत होगा। एक मत कोई नहीं।

१६ वीं शताब्दी के अब्राहम लिंकन[१] (१८६१—१८६५ई०) की किसी ने यह बात न मानी:—

'No nation is good enough to govern another nation.'

अर्थात् कोई भी राष्ट्र किसी भी राष्ट्र का शासन करने के योग्य नहीं है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व रूस[२] की किसी ने यह बात न मानी:—

"हम आक्रमणकारियों से आक्रमण के विषय पर विवाद नहीं करना चाहते।"

और युद्ध के पश्चात् दुनियाँ ने 'हिटलर'[३] की यह बात न मानी:—

"सतत युद्धों में मानव महान होता गया है, सतत शान्ति में वह विनाश को प्राप्त हो गया है।"

और शेक्सपिअर[४] के यह शब्द कोई आसानी से मानने को तैयार नहीं :—

"जो कुछ तूने कर लिया है उस पर अब दुखी मत हो। गुलाब में कांटे हैं और स्वच्छ जल-प्रपातों में कीचड़। मेघ तथा ग्रहण चन्द्रमा और सूर्य दोनों को ही कलंक लगा

---

१ अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) अमरीका का राष्ट्रपति था। यह उसके राष्ट्रपति का काल है।—ले०

२ 'In March, 1938, Mr. Litvinov, the Russian Foreign Minister proposed that the Government of Britain, France, America and Soviet Russia should confer on the necessity of getting together for common action to prevent further aggression particularly in central Europe. Germany, Italy and Japan were not invited to particapate in this consultation, since, said Mr. Litvinov, 'we do not wish to discuss aggression with aggressior.'

३ 'In eternal warfare mankind has become great—in eterna peace mankind would be ruined.'

Mein Kampf. By Adolf Hitler

४ "No more be grieved at that which thou hast done.
Roses have thorns and silver fountains mud,
Clouds and eclipses stain both moon and sun.
And loathsome canker lives in sweetest bud.
All men make faults, and even I in this,
Authorising thy trespass with compare,
Myself corrupting, salving thy amiss.
Excusing thy sins more than they are."

William Shakespeare. (Sonnet)

देते हैं। सुन्दर कली में शरीरचर्म को गला देने वाला घृणित कीटाणु रहता है। भूलें सभी मनुष्यों से होती हैं। भूलें करने के लिये, तुलना रूप में, मैं स्वयं तुझे अधिकृत कर देता हूँ। मैं ही तुझे भ्रष्ट कर देता हूँ। तेरी भूल को मैं ही सुधार देता हूँ। जितने भी तेरे पाप हैं उनसे कहीं अधिक तेरे पापों को क्षमा प्रदान कर देता हूँ।

और गीता के इन शब्दों में कोई क्यों विश्वास लावे ?

'हे अर्जुन ! मुझ अधिष्टाता के सकाश से प्रकृति सराचर सहित सर्वजगत को रचती है और इस हेतु ही यह संसार चक्र घूम रहा है।'

——गीता ६।१०

जिसे शेक्सपिअर ने आई (I) 'अर्थात्' 'मैं' कहा है उसी को गीता में 'मुझ से' कहा है। इस 'आई' और 'मुझ' में क्या अन्तर है—मैं नहीं कह सकता और वह 'आई' अथवा यह 'मुझ' है कौन ? यह विद्वजन अपने अपने हृदय से पूछ लें, मुझे कहने की आवश्यकता नहीं।

गीता के इन शब्दों को कोई माने या न माने, शेक्सपिअर के उन शब्दों में किसी को विश्वास आवे या नहीं पर है ऐसा ही...होगा ऐसा ही...

निश्चय.......................................निश्चय।

निश्चय ही भू-गर्भ में वे रत्न रखने कोई मनुष्य नहीं गया है।

निश्चय ही भू-मध्यसागर को उठा कर कोई राष्ट्र अपने यहां नहीं रख लेगा।

निश्चय ही हिन्दमहासागर (और उसके अन्तर्गत महोदधि, अरब सागर अर्थात् भारत का रत्नाकर) भारत, अरब, ईरान, बरमा, मलाया, सुमात्रा और अपने प्रवेश द्वार सिंगापुर—इन देशों के दक्षिणी तट, अफ्रीका के पूर्वी तट और आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट को प्रक्षालित करता रहा है, कर रहा है, करेगा, किन्तु इन देशों का स्वामित्व इस पर नहीं है। स्वामित्व है ग्रेट-ब्रिटेन का। लन्दन से मेलबोर्न (Melbourne) तक का जल-मार्ग ग्रेट-ब्रिटेन अपना प्राण समझता है। मिस्र द्वारा भू-मध्य सागर की स्वेज[1] नहर का राष्ट्रीयकरण[2] होने पर ब्रिटेन[3] का कथन है:—

'We must not permit the right of free passage through the Canal to depend upon the transient impulse of a singh military dictator."

अर्थात्, स्वेज नहर-में-से होकर निकलने वाले स्वतन्त्र मार्ग के अधिकार को हमें केवल एक निरंकुश[4] की क्षणिक भावुकता के आश्रय पर छोड़ देना नहीं चाहिये।

पर स्वेज के राष्ट्रीयकरण के पीछे मिस्र का आत्म सम्मान,[5] आत्मगौरव, स्वदेश-सुरक्षा तथा १० करोड़ प्रतिवर्ष का लाभ ही नहीं छिपा है, मिस्र के प्रति अर्थवादी देशों द्वारा किया हुआ शताब्दियों का 'अन्याय' तथा 'हनन' ही नहीं छिपा है, वरन अर्थ-

१ स्वेज नहर सबसे प्रथम १८६६ ई० में खुली थी।

२ मिस्र द्वारा इसका राष्ट्रीयकरण २६ जुलाई १९५६ को हुआ था।

३ Mr. Selwyn Lloyd, British Foreign Minister on 16, August 1956

४ मिस्र के प्रधान मन्त्री कर्नल नासिर।

५ Sovereignity and Dignity of Egypt.

वादी देशों को—'अमरीका', ग्रेट-ब्रिटेन', 'फ्रान्स'—की सागरों के प्रति 'ममता'[२] छिपी है, समाजवादी देश रूस की 'भू-मध्यसागर' पर स्वामित्व की प्रबल 'आकांक्षा' भरी हुई है—यहां 'स्वामित्व' का अर्थ परिमित अथवा पूर्ण स्वामित्व—१७, १८, १९ वीं शताब्दी के-से स्वामित्व का नहीं हैं—और उसके पीछे मध्यपूर्व देशों—साउदी अरब, यमन, इराक, सीरिया, सूडान, टर्की, लीबिया, लेबनान, और जारडन इत्यादि देशों का 'अर्थ' के प्रति विद्रोह छिपा है, रूस जैसे समाज के विरुद्ध जन-भावनाओं का हनन भरा हुआ है, भारत, नैपाल, तिब्बत, बरमा, श्याम, चीन, जापान, पूर्वी द्वीप, आस्ट्रेलिया और अफरीका के मानव का गौरव छिपा है,...पराजित जर्मनी का 'आदर' छिपा है और अन्त में सागरों की लहरों पर खड़ी हुई 'लंका' जैसी सोने की नगरी की तटस्थता [१] छिपी है।

और पाकिस्तान.............................?

'पाकिस्तान' मध्यपूर्व से 'धर्म' और 'संस्कृति' की एकता स्वीकार करता हुआ भी, उस भू-खन्ड (मध्य पूर्व—मिस्र, सौउदी अरब, यमन, इराक, सीरिया, सूडान, लीबिया, लेबनान और जारडन) में शान्ति के लिये प्रयत्नशील होता हुआ भी अर्थवादी देशों —अमरीका, ग्रेटब्रिटेन और फ्रान्स—के अस्तित्व-विहीन अर्थ-गौरव के स्वर-संराधन में संलग्न[२] है। और फल यह हुआ कि मिस्र ने पाकिस्तान की सैनिक सेवा[३] अस्वीकार कर दी।

---

१ COLOMBO. Sept. 19—"The Ceylon Prime Minister, Mr Solomon Bandaranaike was quoted—here today as saying that Ceylon would adhere stead-fastly to her policy of neutrality in the Suez Canal dispute."

'She would not range herself on one or the other side in the dispute but would place her services at the disposal of all nations seeking an honourable and peaceful settlement of the problem.'

'Meanwhile, authoritative sources told P. T. I. that in pursuance of Ceylon's policy of non-alignment, Mr. Bandaranaike had sought, through diplomatic channels a reaffirmation from Britain of her assurance that bases in Ceylon would not be used for any war operations.'

The 'Leader,' 20th September, 1956.

२ पाकिस्तान के विदेशी मन्त्री श्री फीरोज खाँ नून के शब्द हैं:—

Mr. Noon said: "Being located in the Middle East region and bound to it by indissoluble ties of faith and culture my country and people are vitally concerned with the maintenance of peace in the region."

The Leader, 20th September 1956.

३ KARACHI, November 15—"The Egyptian Government has refused to accept an offer of Pakistani troops to participate in the United Nations force in Egypt."

The Leader, 16 November 1956

पर प्रश्न स्वेज के 'राष्ट्रीय' अथवा 'अन्तर्राष्ट्रीयकरण' अथवा विश्व के केवल १८ राष्ट्रों[1] के स्वेज उपभोग का नहीं है—'समाजवाद' और 'अर्थवाद' का है।

किन्तु......................................?

किन्तु विजय 'मानव' की होगी—'समाज' और 'अर्थ' की नहीं, 'देश', 'राष्ट्र' अथवा 'साम्राज्यवाद' की नहीं...और वह 'मानव' किसी भू-खन्ड अथवा जाति विशेष का नहीं होगा—'विश्व' की एकता का होगा।

'मानव-विजय' विश्व का 'मङ्गल-काव्य' रचेगी।

यह मेरी कल्पना नहीं है, सागरों का वरदान है, भूमा का इतिहास है, विश्व-आयोजन[2] की कल्याण कामना है...मानव का संकल्प और..............और नारी की प्रेरणा है।

और इस प्रकार समाप्त होता है वह इतिहास जो 'सत्य' और 'सम्भवतः' के आधार पर आज से बहुत समय पूर्व लिखा गया था—जिसे विश्व की एक-एक घटना क्षण-क्षण लिख रही है, जिसे मानव का एक-एक पग पल-पल लिख रहा है, जिसे नारी की एक-एक 'सुहाग' कामना युग-युग से लिखती रही है...लिखती रहेगी।

इसी विश्व के इतिहास का साम्य लेकर घोष, ध्वनि और नाद साहित्य की रचना हुई है, माता का हृदय-साहित्य, पिता का स्नेह-साहित्य, बालक निर्द्वन्दता के अभिनव चरण,[3] नारी का प्रणय-साहित्य, पुरुष का कर्त्तव्य-साहित्य', विश्व का मंगल-साहित्य इसी पर रचा गया है और इसी पर रचे गये जीवन के लोक-गीत[4]। इसी पर वैदिक, बौद्ध, जैन, संस्कृत, हिन्दी, लंहदी, सिन्धी, पंजाबी, कशमीरी, अरबी, फारसी, उर्दू, अवधी, मैथिली, उड़िया, बङ्गला, असमिया, गुजराती, मराठी, तमिल, कनाडी, तेलुगू, मलयालम, पश्तो, नैपाली, पर्बतिया, खानकुरी और नेबारी साहित्यों की रचना हुई—लंका, बरमा, मलाया, चीन और जापान का साहित्य रचा गया, यहूदी, ग्रीक, लैटिन, जर्मन, फ्रेन्च, इङ्गलिश, स्पेनिश, स्कैन्डीनेवियन, पुर्तगाली और रूसी साहित्य की रचना हुई है।

किन्तु साहित्य अनेक हैं, देश अनेक हैं, भाषायें पग-पग पर हैं पर 'भाव' एक हैं।

युग-युग और देश देश का 'मानव' एक है।

एक है उसका 'विश्व'।

एक है उसकी 'संस्कृति'।

---

१ विश्व के १८ में से १२ राष्ट्र 'Canal Users' Association' के पक्ष में थे:—

Australia, Italy, Norway, The Netherlands, Denmark, Pakistan, France, Germany, Japan, Britain, New Zealand and the United States.—वे १२ यह थे।—ले०

२ लोकसंग्रह।

३ Verses

४ Folk Songs.

और तुलसी के शब्दों में वह इतिहास यों समाप्त होता है:—

'मैं तोहि अब जान्यों संसार'

—तुलसी (विनयपद १८६)

तुलसी के 'अब' शब्द में केवल एक ही मूल मन्त्र भरा है—संसार 'विध्वंस[1]' और 'मङ्गल[1]' दोनों से रचा गया है...घटना[1], घटना[1] के क्रम[1] में साम्य...संयोजन...और सौभाग्य है।

'कोयले[2] से 'हीरा' बना है।

किन्तु..................?

किन्तु······मंगलमय[3] है विश्व।

---

१ '*All events in this best of possible worlds are admirably connected. If a single link in the great chain were omitted, the harmony of the entire universe would be destroyed.*'

—*Voltaire.*

२ तु० Diamond. ....the purest form of Carbon.

३ '····· ' कल्याण हो'—ऐसा कहकर उत्तम उत्तम स्त्रोतों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं।' —गीता ११।२१

विश्व में :—

मानव की विजय घोषणा

(४५०० ई०पू०.........१९५६ई०)

"......... ....*live and grow as Man*'.

यह उन दिनों की बात है, सखे ! जब तुम घुटरुओं चला करते थे, जब तुम 'पत्र[1]' और 'पुष्प' के लिये दौड़े हुये चले आते थे, जब तुम केवल पांच[2] वर्ष के थे—यशोदा का दूध जब तुम पिया करते थे, गोपियां तो उसी समय से तुम्हें छेड़ा करतीं थीं, जब तुम मैया यशोदा को अपनी सफाई देते हुये दही का दोना पीठ के पीछे छिपा लेते थे, जब तुम ब्रज की गलियों में ऊधम मचाते फिरते थे, किसी की बहियाँ मरोड़ देना, किसी की मटुकी फोड़ देना, रार करके राह रोक कर खड़े हो जाना, मुँह पर ही किसी को झूठा बना देना, किसी की नकबेसरि से उलझ जाना और किसी को छेड़ देना—यह सब तुम्हारे बायें हांथ का खेल था। शैशव की चपलता[3] में, किशोर्य की मादकता में तुमने क्या नहीं किया ? कौन सी रङ्गरेली छोड़ दी ? यमुना तट पर गेंद नहीं खेली ? खोई हुई गेंद को किसी की अंगिया[4] में ढूढ़ने नहीं गये ? और झूट में क्या, सच में क्या तुम्हारे सखा तो तुम्हारे साथ थे। जब प्रीति की खुम्हारि लग गई थी तो अलसाते[5] फिरते थे। और तुम्हें यदि किसी ने ठीक किया है तो वह 'सूर' था जिसने तुम्हारी एक एक बात खोल खोल कर रक्खी है।

मथुरा, बृन्दावन, नन्दगाँव, गोकुल, बरसाना छोड़ कर, फिर, तुम कुरुक्षेत्र में 'योगेश्वर' बन गये थे—अर्जुन के 'सारथी' और गीता के 'वक्ता'। वहां तुमने अपने सखा अर्जुन को एक ओर बाण पर बाण चलाने पर विवश कर दिया था और दूसरी ओर 'कर्म', ज्ञान' और 'भक्ति' की व्याख्या में मानव के 'सम' को दर्शा दिया था। अर्जुन बाण भी चलाये, तुम्हारी गीता भी सुने—कैसी अद्भुत विवशता थी !

---

१ गीता ९।२६

२ 'मेरौ तो सांवरो पांच ही बरस को, अजहू यह रोय पय-पान माँगे।
तुम हो मस्त अति ढीठ री ग्वालिनी, फिरत अठलाति गोपाल आगै ॥'
—सूर

३ तु० 'चन्द्रसखि ! भज बालकृष्ण छवि'

४ 'ग्वालिन तै मेरी गेंद चुराई।
....अँगिया मांझ दुराई ॥'
—सूर

५ 'जानति हौं जैसे गुननि भरे हो।
काहे को दुराव करत मनमोहन, सोइ पै कहौ तुम जहाँ ढरे हो ॥
निसि जागल, निज भवन न भावत, आलसवंत सब अंग धरे हो ॥'
—सूर

विश्व की सम्पूर्ण विभूति को अपने में समेट कर एक एक विभूति[१] का दिग्दर्शन करा दिया था—विश्व का विराट[२] रूप दर्शा दिया था।

तुम्हारी फिलास्फी (दर्शन) पर अर्जुन जब जब उलझता था तब तब तुम उसका ध्यान ऐसी बात की ओर आकर्षित कर देते थे कि ज्यों त्यों वह युद्ध में लगा ही रहे। यहां तक तो तुमने कह डाला कि 'यदि तू ! युद्ध नहीं करेगा तो तेरा स्वभाव तुझे जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा[३]।' युद्ध तो तुम्हें अर्जुन को-सी चिड़िया दीखती थी। कितने व्यक्तिगत आश्वासन देकर अर्जुन को तुम अपनी ओर कर पाये थे—'सब को मरा[४] हुआ अर्जुन को दिखा दिया', 'तू[५] ! मेरी शरण में आ जा', 'तू केवल निमित्तमात्र[६] बन जा' ! और अर्जुन से तुमने कितने गर्व के साथ यह प्रश्न[७] किया था, 'अर्जुन ! तूने ध्यान पूर्वक गीता सुनी ?' पर मैं पूछता हूँ अर्जुन यदि 'हाँ[८]' के स्थान पर 'न' कह देता तब तुम्हारा क्या हाल हुआ होता ?

तुम्हारी यह फिलास्फी—'अर्जुन ! 'तू' और 'मैं' एक हूँ[९]' – यह फिलास्फी रसातल को चली गई होती और आज 'सम' की संस्कृति का नाम डूब गया होता ! लोकसंग्रह की नियोजन शक्ति विनष्ट हो गई होती। और मेरा तो विश्वास है अर्जुन यदि 'न' कह देता तो तुम स्वयं ही रथ छोड़ कर भाग जाते, तुम्हें संसार से विरक्ति हो जाती। और हे अर्जुन के सारथी ! मैं यह तो पूंछू—तनिक यह तो बताओ यह गीता का योग बिना नारी की मङ्गल साधना के पूरा कैसे हो गया ?

उस महायुद्ध में मथुरा, वृन्दावन, नन्दगाँव, गोकुल और बरसाने की उन भोली-भाली ब्रजाँगनाओं की नहीं, पाँचाल देश की पांचाली के केशों[१०] की याद तुम्हें रही होगी, गान्धार देश की गान्धारी का सतीत्व तुम्हें विवश करता रहा होगा ? पर तुमने तो कहा[११] था, 'मैं स्त्रियों में 'कीर्त्ति', 'श्री,' 'वाक्', 'स्मृति', 'मेधा', 'धृति' और 'क्षमा' हूँ।' स्त्रियों में यदि तुम्हारा 'क्षमा' का रूप है तो निश्चय ही इसका स्पष्ट अर्थ यह होगा कि द्रौपदी के केशों के

---

१ देखिये :—गीता का 'विभूति-योग' (अध्याय दस)
२ देखिये :—गीता का 'विश्वरूप-दर्शन-योग' (अध्याय ग्यारह)
३ गीता १८।५९
४ गीता ११।२६।२७
५ गीता १८।६६
६ गीता ११।३३
७ गीता १८।७२
८ गीता १८ ७३
९ गीता १०।३७
'पांडवों में धनञ्जय अर्थात् तू हूँ'
१० "अग्रे कुरुणामथ पांडवाना
दुश्शासनेनाहृत वस्त्र केशा"
अर्थात, कौरवों और पांडवों के सामने जब दुश्शासन उनका वस्त्र और 'केश, खींचने लगा.........?
११ गीता १०।३४

खींचे जाने के बदले की भावना में वह 'महाभारत' नहीं रचा गया,—द्रौपदी उस दुष्ट दुश्शासन को क्षमा न कर देती तो नारी-सत्ता कलंकित हो गई होती, और ठीक इसी प्रकार गान्धारी के सतीत्व में इस युद्ध की भावना नहीं थी। महाभारत तो युग के 'अन्याय' 'पक्षपात' के विरुद्ध रचा गया था और गीता कही गई थी—'मानव-धर्म के लिये—मानवता से गिर जाने वालों का बहिष्कार करने वाला धर्म नहीं, परिष्कार करने वाले धर्म के लिये। उस धर्म में एक ओर नारी की 'मङ्गल-साधना' थी, दूसरी ओर पुरुष की 'सत्य साधना'। इसीलिये युद्ध कुरुक्षेत्र जैसे धर्म-क्षेत्र[1] में हुआ था। तुम्हारे और अर्जुन के रथ की धुरी मानव-धर्म की थी और ध्वजा 'विजय' और मङ्गल' की। उन घोड़ों[2] की टापों में गांडीव के टंकोरों के 'सम' की प्रतिज्ञा थी और 'चक्र-सुदर्शन' में अभय का वरदान।

नारी की 'मङ्गल' और पुरुष की 'सत्य' साधना कृष्ण की 'गीता' बन गई और उन दोनों की 'श्री' अर्जुन की 'स्मृति[3]' और द्रौपदी की 'क्षमा' बन गई, गीता का 'वाक्' मानव-धर्म की साधना बन गई, 'धृति' श्रद्धा और 'मेधा' विजय बन गई और 'सम' के योग से वह 'विजय' मानव की 'कीर्त्ति' बन गई।

'अर्जुन' और 'कृष्ण' दोनों योगेश्वर थे—उन दोनों का योग 'एक' था। गीता में शब्द अनेक हैं, अर्थ अनेक हैं, तर्क अनेक हैं, गणनायें अनेक हैं, भाव अनेक हैं, विचार अनेक हैं पर उन सब का 'सम[4]' एक है। वह 'सम' 'हाँ' और 'न' का है। नारी 'हाँ[5]' है, पुरुष 'न' है।

वह 'रथ' समष्टि का था मानव-धर्म की धुरी पर घूमता था। घूम रहा है। और हे अर्जुन!

'इस हेतु से ही यह संसार चक्र घूम रहा है।'

—गीता ९।१०

यदि ब्रजाँगनाओं के आंसुओं में कृष्ण के आंसुओं को विश्व के लिये सुखा देने की शक्ति नहीं होती, तो कृष्ण कर्म का उज्ज्वल स्वरूप कभी न देख पाते, कर्म की व्याख्या की तो बात कौन कहे? यदि 'राधे' की पुकार पर 'कृष्ण' रुक गये होते, तो निश्चय ही कृष्ण 'ज्ञान' नहीं, ज्ञान का आडम्बर रच डालते और 'सूर' 'राधे' से यह न कह पाते:—

'राधे! अपनो मुख काहे न निहारि'

---

१ गीता १।१
२ गीता १।१४
३ गीता १८।७३ (नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा)
४ 'सम' का योग—'समदृष्टि'।
५ 'पुरुष विजय का भूका है...पुरुष लूटना चाहता है, नारी लुट जाना'
—महादेवी वर्मा

६ देखिये :—गीता का कर्म-योग (अध्याय ३, ४, ५)

इसी को अंगरेजी में 'Know Thyself' कहा गया है अर्थात् अपने को जानो। यही 'अहंब्रह्म', 'सोहंऽस्मि' इत्यादि बन कर आई है। इसी को अर्जुन ने 'स्मृतिर्लब्धा[1]' कहा है—यही गीता के महायज्ञ की स्वस्ति-ध्वनि है। और यही है मानव की 'कीर्त्ति', यही परमधाम और यही श्री-चरण हैं और यहीं है वह लोक—जहां न प्रेम वियोगः—

'चकई री! चल चरन-सरोवर, जहां न प्रेम वियोग'

—सूर

किन्तु यह महायोगियों का योग है—ब्रज-बालाओं के वश का रोग नहीं था।

यदि ब्रज-मण्डल के रजकण 'राधे' और 'कृष्ण' के नाम पर भू-मण्डल के एक एक कण में, व्यक्ति व्यक्ति में, चर-अचर में, प्राणीमात्र में—एक-एक श्वास में प्रेम से परस्पर सिमट सिमट कर एक-दूसरे के निकट न बैठे होते—एक एक कण के सिमट सिमट कर बैठने से चट्टाने बन गईं हैं—शिलायें हटाये नहीं हटीं हैं—श्रेणियों और पर्वतों से निर्भर बहे हैं—धारायें आगे चल कर 'गङ्गा' और 'यमुना' कहलाई हैं—महोदधि[2] से मिल गई हैं—यदि ब्रज की वीथियों में, करील की कुन्जों में किसी श्याम-सलोने को देख कर कोई अपनी सुधि-बुधि न भुला देती—कोई रीती मटुकी न लिये फिरती—'माई! कोई लैहहिं री गोपालहिं[3]—', यदि यमुना तट पर लहरों को देख कर यौवन की हिलोरें न उठी होतीं, यदि हृदय-गगरी न छलक गई होती, यदि लहरिया की लहर-लहर में किसी की बाली उमरिया तरस कर न रह गई होती और निस्तब्ध गगन की नीरवता में औचक ही किसी की बरजोरी में किसी के माथे की बिंदिया न सरक गई होती, तो किसी की ओर किसी के डर-डर कर पैर न उठे होते, किसी को मन में छिपाये कोई हांपता-कांपता भागा हुआ न चला जाता, कोई एक-एक घड़ी में अनन्त स्वर्ग रच कर भय और भावी आशंकाओं से उद्विग्न न हो उठता, तो कोई किसी की पगध्वनियों में सिमिट कर न रह जाता और मिलन-माधुरी की अनन्त कल्पनायें तो किसी के जीवन में सत्य न हो पातीं—तो यमुना हिलोर न ले पाती, तो हिलोर-हिलोर को आगे न बढ़ा पाती, तो भक्ति की धारायें त्रैलोक्य को पुनीत न कर पातीं—विश्व में न कोई 'प्रेम' के गीत गाता, न 'वियोग' के। और वह यशोदा का लाल 'त्रिलोकीनाथ' न कहला पाता। 'नाथ' कह कर पुरुष अपने को देवलोक में ले जाता है पर धक्के खाकर पुनः इसी लोक में लौट आता है, पर नारी जब 'नाथ' कहती है तो त्रिलोक की विभूति को ठुकरा कर, केवल अपने लोक में रहती है। 'त्रिलोक' तो नारी के 'मङ्गल' और पुरुष के 'सत्य' रूप में सीमित है—इसी विश्व में। इसीलिये ब्रज की वे गँवाँरिने यशोदा के लाल को 'त्रिलोकीनाथ' नहीं, 'गोकुलनाथ' कहती थीं:—

"अलि! हम गोकुलनाथ आराध्यो"

—सूर

---

१ गीता १८।७३

२ बंगाल की खाड़ी।

३ सूर

किन्तु वे 'गोकुलनाथ' के प्रति मन, कर्म, बचन से सत्य थीं:—

"मन कर्म बचन धर पतिव्रत साध्यो"

—सूर

ब्रज में 'गोकुलनाथ' एक नहीं, अनेक थे। सभी तो यशोदा के लाल थे। उन गँवारिनों ने अपने-अपने पतिओं का पूजन किया था—'नाथ' कह कर।

और हे राम! आज तुम अयोध्या के जिस कनक भवन में सुशोभित हो उससे और अवध की गलियों से तो पूँछना, सरयु की निर्मल धाराओं में तो देखना, शृङ्गवेर-[1] पुर में गिरे हुये उन दो-चार कनक बिन्दुओं[2] से पता लगा लेना, दूर तक फैली हुई प्रयाग के गंगातट की रेणुका[3] से सुन लेना, चित्रकूट की स्फुटिक[4] शिलायें तुम्हें बता देंगी—भरत के आँसुओं की धारायें जो तुम्हें चित्रकूट से अयोध्या न लौटा सकीं थीं उन्हीं धाराओं से दक्षिण की कठिन[5] भूमि तुम्हें कोमल हो गई थी—वनों, शैल-शिलाओं और पर्वतों में ऋषि-हृदय की स्थापना भरत के आंसुओं ने की है। जानते हो क्यों? भरत के आँसुओं में माण्डवी के जीवन की तपस्या थी। सुकीर्त्ति के बल पर प्रथम बार उत्तरा-पथ से—कोशल से तुम्हारे साथ आर्य्य-संस्कृति की विजय-पताका दक्षिणा-पथ—दक्षिण को गई थी—'त्रिकूट[6]' नामक पर्वत पर जब निश्चरों की लंका बसी हुई थी। और जानते हो क्यों

---

१ 'शृंगवेर भरत दीख जब।
भे सनेह् वश अंग शिथिल सब॥'

२ "कनक बिन्दु दुइ चारक देखे।
राखे सीस सीयसम लेखे॥"

३ 'भरत कहेउ सुरसरि तव रेन
सकल सुखद सेवक सुरधेन॥'

—तुलसी (अयोध्याकाण्ड)

४ 'बैठे फटिक शिला परमादर'

—तुलसी (आरण्यकाण्ड)

(नोट: चित्रकूट ही की यह शिला थी।)

५ "कठिन भूमि वन पन्थ पहारा"

- तुलसी

६ "मत्तभरदनोत्कीर्णं व्यक्तविक्रम लक्षणम्।
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकारसः॥"

—कालिदास (रघुवंश, सर्ग ४/५६)

अर्थात्, वहाँ रघु के मतवाले हाथिओं ने अपने दांतों की चोटों से त्रिकूट पर्वत पर जो रेखायें बना दी थीं उनसे यह पर्वत ऐसा लगने लगा मानो वह रघु की विजय का स्मरण दिलाने वाला जयस्तम्भ खड़ा हो जिस पर रघु की विजय कथा लिखी गई हो।

'कालिदास ग्रन्थावली'—अनुवादक श्री सीताराम चतुर्वेदी।

नोट:—'कल्पना' (जून, १६५५ ई०) में प्रकाशित (पृ० २०) 'प्राचीन भारतीय भूगोल' शीर्षक लेख में श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'रघुवंश' की उपरोक्त पंक्तिओं को

गई थी ?—उस कठिन भूमि पर उर्मिला जैसी साध्वी नारी का 'सुहाग' तुम्हारे साथ चल रहा था। और हे राम! धोखा न खा जाना तुम्हारी अयोध्या की प्रजा तुम्हें चौदह वर्ष तक जो भुलाये रही थी—श्रुतिकीर्त्ति[1] के बल पर शत्रुघ्न ने उसे मन में मनोरथ की भाँति रख कर तुम्हारा प्रजा-धर्म निभा दिया था और यदि प्रजा की आँखों में एक भी आंसू आजाता तो भरत की तपस्या खंडित हो जाती और

प्रमाण में उद्धत करते हुये (पृ० ३३) लिखा, 'नासिक के पश्चिमोत्तर का प्रदेश 'त्रिकूट' कहलाता था। 'कालिदास' ने रघुवंश में यहीं के 'त्रिकूट' पर्वत का उल्लेख किया है।'

पं० सीताराम चतुर्वेदी ने अपनी 'कालिदास की ग्रन्थावली' के परिशेष में 'अभिधान कोष' शीर्षक के अन्तर्गत पृ० १२८ पर 'त्रिकूट' ३ बताये हैं—एक लंका में, दूसरा क्षीरसागर में और तीसरा गुजरात के गिरिनार पर्वत में जिसे पार करके महाराज रघु सिन्धु की ओर गये थे।

दक्षिण की पर्वत मालाओं में ७ पर्वत मिलकर 'कुल-पर्वत' कहलाते हैं। वे सात पर्वत थे—'महेन्द्रगिरि' (उडीसा में), 'मलयगिरि' (मालाबार—पश्चिमी घाट का दक्षिणी भाग), 'सह्य' (सह्ययाद्रि) (पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग), 'सूक्तिमत' (इस पर्वत का पता नहीं चलता), 'ऋष्यमूक' (गोंडवाना के पर्वत), 'विन्ध्यपर्वत' (विंध्याचल), 'परिपत्र' (विन्ध्य पर्वत की एक श्रेणी)।

तुलसीकृत रामायण से स्पष्ट नहीं होता है कि राम नासिक के पश्चमोत्तर प्रदेश वाले 'त्रिकूट' पर्वत गये या नहीं। चित्रकूट से मुनि अगस्त के बताने पर राम 'पंचवटी' पहुचे थे। गोदावरी पर आश्रम बनाया था। इसी आश्रम से सीता जी का हरण हुआ था। वहाँ से चलकर ऋष्यमूक पर्वत (गोंडवाना के पर्वत) पर आये और निकट ही 'प्रवर्षणगिरि' पर रहने लगे। सागर तट पर वानरों को 'सँपाती' से पता चला कि 'त्रिकूट' पर्वत पर लंका बसी हुई है :—

"गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका।
तहँ रह रावन सहज असंका॥"

—तुलसी (किष्किन्धाकाण्ड)

बालकाण्ड में तुलसी ने स्पष्ट बताया है कि:—

'गिरि त्रिकूट एक सिन्धु मँझारी।'

यह 'त्रिकूट' पर्वत और उस पर बसी हुई 'लंका' मन्दोदरी के पिता 'मयदानव' ने मन्दोदरी के विवाह पर रावण को दे दिये थे।

'तुलसी' ने 'पुरी', 'रामेश्वरम्', 'बद्रिकाआश्रम', 'द्वारिका', 'कैलाश', 'मानसरोवर', 'चित्रकूट', 'प्रयाग', 'वृन्दावन', 'अयोध्या' और 'बनारस'—इन सभी का भ्रमण किया था।—ले०

१ श्रुतिकीर्त्ति = श्रुति = वेद, 'वेदों की कीर्त्ति'। (शत्रुघ्न की पत्नी)

तुम्हारी वह प्रतिज्ञा टूट जाती जो वन में 'अस्थिसमूह[1]' को देख कर तुमने ऋषि और मुनियों के सम्मुख की थी:—

'निसिचर हीन करों महि, भुज उठाय प्रन कीन्ह'

—आरण्यकाण्ड

और वह भी टूट जाती जो तुमने 'सीता' के सम्मुख की थी:—

"सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला।"

× × × ×

'तुम पावक महुँ करहु निवासा।
जो लगि करहुँ निशाचर नासा॥'

—तुलसी

राम! तुम्हारे पीछे अयोध्या में यदि कोई 'रिवोल्युशन' (क्रान्ती) हो जाता, तो तुम्हारा पिता के वचनों को पालन करने वाला धर्म तुम्हारे प्रजा-धर्म के सम्मुख विफल हो जाता। और यदि तुम यह कहो कि भरत को राज मिल[2] जाने पर तुम प्रजा से सब प्रकार मुक्त होकर वनवासी हो गये—नगरी में प्रवेश करोगे ही नहीं, तो यह भी निश्चय जानो कि चित्रकूट से लौटने पर भरत को राज तो दे दिया[2] गया, पर अयोध्या 'रजधानी[3]' तुम्हारी ही कहलाई, भरत की नहीं। और यह तो बताओ तुम उस प्रजा को भूल कैसे जाते जिस प्रजा ने तुम्हारे पीछे रो रो कर घर तो नहीं भर डाला, पर 'भूषण', 'भोग' और 'सुख'—सब कुछ छोड़ कर एक अवधि की आशा में जीती रही थी:—

"तजि तजि भूषन, भोग, सुख, जियत अवधि की आस"

—अयोध्याकाण्ड

वाह रे तुलसी! क्या कर्म-सौन्दर्य है? तुम्हारे एक-एक शब्द से जीवन-सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है। तुलसी के शब्दों में अयोध्या की प्रजा की आंखों में वन गये हुये राम के लिये आँसू एक भी नहीं पर मन में त्याग है—अपूर्व—'सुख' का भी, 'भोग' का भी। फिर अयोध्या में रिवोल्युशन होता तो कैसे?

और राम! तुम यह न समझ लेना कि रामेश्वर से लंका का वह 'सेतु-बन्धु'[4] तुम्हारे नल-नील ने बांधा हो—तुम्हारे नाम से बंध गया हो—नहीं, ऐसा नहीं है। यह

---

१ "अस्थिसमूह देख रघुराया।
पूछा मुनिन लगी अति दाया॥"
—तुलसी (आरण्यकाण्ड)

२ "सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू"
—तुलसी (अयोध्याकाण्ड)

३ "नगर नारि नर गुरु-सिख मानी।
बसे सुखेन राम रजधानी॥"
—तुलसी (अयोध्याकाण्ड)

४ इसे आज 'Adam Bridge' कहा जाता है।—लेखक

सच है कि तुम्हारे नाम से संसार सागर सूख[१] जाता है पर यह 'सेतु-बन्धु' जनकपुर की विदेहनन्दिनी के कारण बना था, इसीलिये केवल तुम्हारे ही नाम से नहीं, तुम्हारे और उनके—दोनों के नाम से संसार सागर सूखा है—सूखेगा।

और वह पुल ! वही पुल क्या ?—चाहें वह 'रावी'[२], 'चुनाब' और 'सतलज' का पुल हो, चाहें वह देहली[३], आगरा और इलाहाबाद[४] की यमुना का पुल हो, चाहें मुरादाबाद और बरेली की रामगंगा का पुल हो, चाहें वह बदायूँ और कासगञ्ज के बीच 'कछला' की गङ्गा का पुल हो, चाहें वह मथुरा की यमुना का पुल हो, चाहें कानपुर, इलाहाबाद[५] और बनारस[६] की गंगा का पुल हो, चाहें बनारस के निकट कर्मनासा की पुलिया हो, चाहें 'सोन'[७] का लम्बा वाला पुल हो, चाहें हावड़ा-ब्रिज हो और चाहें ऋषिकेष के लक्ष्मण-झूले हों...और चाहें नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी अथवा महानदी का पुल हो, चाहें अमरीका का प्रशान्त सागर के तट पर स्थित सैन फ्रैन्सिस्कों की खाड़ी का ८¼ मील लम्बा सैन-फ्रैन्सिस्कों-ओकलैन्ड-बे-ब्रिज[८] (San Francisco-Oakland Bay Bridge) हो और चाहें उसके निकट विश्व का सबसे विस्तृत झूलेवाला पुल—गोल्डन गेट ब्रिज (Golden Gate Bridge) हो—पर आधार-शिला[८] सब पुलों की पानी में बैठाने के पहले पानी में तैराई ही गई थी। आधार-शिला के बिना तैराये पानी में निश्चित स्थान पर वह बैठ नहीं सकती है। इसीलिये हे राम ! तुम्हारे 'नल'-नील के पत्थर पहले तैरते थे :—

"नाथ नील नल कपि दोउ भाई।
लरिकाई ऋषि आसिस पाई॥
तिनके परस किये गिरि भारे।
तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥"

—तुलसी (सुन्दरकाण्ड)

---

१ 'नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं'

—तुलसी (बालकाण्ड)

२ पठान कोट से जम्बू (कश्मीर)

३ जमुना ब्रिज (१८६६) २६४० फीट लम्बा

४ नैनी ब्रिज (१८६५ ई०) ३२३५ फीट लम्बा

५ करजन ब्रिज (१९०५ ई०) ३२०० फीट लम्बा

६ डफरिन ब्रिज (१८८७ ई०) ३५१८ फीट लम्बा = मालवीय ब्रिज (१८८७ ई०) (यह अब ४२१० फीट लंबा बना है)।

७ सोन का पुल १००५२ फीट लम्बा है। (भारत के सभी पुलों से बड़ा)

८ "The engineers' greatest problem was securing the foundations of the piers, particularly those in deep water. A great caisson, measuring 197 feet by 92 feet in size, was built. It resembled a gigantic egg crate. The 'egg compartments" were forty five circular cylinders, each 15 feet in diameter arranged in five rows. Into these cells compressed air was pumped to give buoyancy to the structure. The space around the cells and between the walls was filled with concrete

और

'अति उतंग तरु सैलगन लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नील कहं, विरचहिं सेतु बनाइ॥'

—तुलसी (लंकाकाण्ड)

और ठीक जिस प्रकार तुम्हारा वह पुल 'लकड़ी' (तरु) और 'पत्थर' (शैलगन) से बना था उसी प्रकार आज भी संसार के पुल 'लकड़ी', 'पत्थर' (कांक्रीट) और 'लोहे' से बनते हैं। 'वस्तु' अथवा 'स्थापत्य विद्या' (Engineering) के आधार तत्त्वों में—'तब के' और 'आज के' आधार तत्त्वों में कोई अन्तर नहीं आया है।

---

reinforced with a network of reinforcing rods, To the bottom of the caisson was attached a steel cutting edge 17 feet in depth...

As it sank over the desired site as it was gradually heightened. Just before the cutting edge reached the bottom the unwieldy floating mass represented a weight of 80000 tons, kept *afloat* by compressed air within its cells and held in place by heavy anchor chains. When it finally came to rest it was necessary to send a diver down. Owing to the great depth, 249 feet, only a man of exceptionally strong physique could be employed.

The task fell to William Reed, a master diver of 26 years' experence...........'

'......We had to go down more than 200 feet to reach a solid foundation for this particular pier......it was the blackest spot on earth.'

'The pier, or anchorage, towers 504 feet in total height from the bed-rock, 260 feet of which is above water and 244 feet below.

In the above bridge 152000 tons of structural steel, 30000 tons of reinforcing steel, 1000000 cubic yards of concret, 1300000 barrels of cement, 30000000 board feet of timber, and 200000 gallons of water......were called for.

Work began in summer of 1932 and the bridge was opened for motor traffic in November 1936."

The Modern Marvels Encyclopedia.
'Marvels In Science and Engineering.'
By John R. Crossland. पृ० १०५, १०६, १०७

नोट:—इस 'आधार शिला' को अंग्रेजी में 'पायर'(Pier) या 'कैसन'(Caisson) इत्यादि शब्दों में व्यक्त किया गया है। यह 'पायर' पत्थर-ही-पत्थर (चाहें तो आज कांक्रीट कह लीजिये) से भरा हुआ ठसाठस और ठोस होता है। 'सैन फ्रैन्सिसको (San Francisco) का 'पायर' ४५ फीट की ऊँचाई तक कांक्रीट से ठसाठस ठुसा हुआ था— यह'पायर' ५०४ फीट ऊँचाई का था—२६० फीट पानी के नीचे,२४४ फीट पानी के ऊपर।

किन्तु राम ! मैं पूछता हूँ यदि वह पुल न बंधा होता—तब ? तब तुम 'लङ्का' न पहुँच पाते और न तुम्हारी सेना सुबेल पर्वत[1] पर उतर पाती—'त्रिकूट' पर्वत की तो बात कौन कहे ? और······तो आज के पुल न बँध पाये होते।

पर, राम ! तुम तो संसार-सागर के लिये 'समष्टि' का पुल बाँध गये हो क्योंकि विश्व में बैठी हुई तुम्हारी 'प्रिया' (माता जानकी) की मंगल-कामनायें तुम्हारे साथ रही हैं।

और हां, मेरा तो दृढ़ विश्वास है, रावण और लङ्का की बात तो मैं कहता नहीं, पर निश्चय ही यदि केवल मन्दोदरी तुम्हारे विरुद्ध होती, तो तुम्हारे 'नल' और 'नील' की इञ्जीनियरिंग फेल[2] हो गई होती। पतिव्रता नारी के शाप के सम्मुख तुम्हारी एक न चल पाती। पतिव्रत-धर्म केवल तुम्हारे भारत और कोशल में ही नहीं था, वह उस निश्चरपुरी लङ्का में भी था। मन्दोदरी 'वेद' भी जानती थी :—

'बेद कहहि अस नीति दशानन।
चौथे पनहि जाइ नृप कानन॥'

मन्दोदरी—(लङ्काकाण्ड)

और 'विकाररहित ब्रह्म को भी तुम्हारे द्वारा 'पति' की मृत्यु पर मन्दोदरी ने तुम्हारा 'यश' तो गाया :—

'तुमहूँ दियो निज धाम राम'············[2]'

मन्दोदरी—(लङ्काकाण्ड)

इसका वजन ८०००० टन था। यह खम्बा पानी में तैराया गया था ताकि वह निश्चित स्थान पर सुदृढ़ता से बैठ सके। खम्बे में हवा के दबाव से—कंम्प्रेसेड ऐअर (Compressed Air) से वह 'पायर' सागर में बैठाने के पहले तैराया गया था।—ले०

१ 'उतरे कपिदल सहित सुबेला'

× × ×

'उहाँ सुबेल सैल रघुबीरा।
उतरे सैन सहित अति भीरा॥'

—तुलसी (लङ्काकाण्ड)

नोट :—सागर पार 'सुबेल पर्वत' से 'त्रिकूट' पर्वत जिसपर लङ्का बसी हुई थी दीखता था :—

'लंका सिखर रुचिर आगारा।
तहँ दसकन्धर केर अखारा॥'

—तुलसी (लङ्काकाण्ड)

यह शब्द विभीषण के हैं। सुबेल पर्वत पर बैठे हुये राम ने दक्षिण की ओर देखा। सुबेल पर्वत पर से 'दक्षिण' की ओर से 'राम' को ऐसा प्रतीत हुआ मानों मेघ उठ रहे हैं, बिजली चमकती है—पत्थरों की वर्षा हो रही है। राम ने विभीषण से यह बताया। तब विभीषण ने बताया कि नहीं, ऐसा नहीं है। लङ्का के शिखर का सुन्दर मंदिर है। वहाँ रावण का अखाड़ा है। वहीं आनंद-प्रमोद हो रहा है। वही आवाज है।—ले०

२ 'तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम'

—तुलसी

पर तुम्हें 'नमस्कार' नहीं किया। नमस्कार किया 'विकाररहित ब्रह्म' को :—

'............नमामि ब्रह्म निरामयम'

— लङ्काकाण्ड

'विकाररहित ब्रह्म को प्रणाम करती हूँ'

—मन्दोदरी

मन्दोदरी यदि तुम्हें नमस्कार करती, तो 'तुलसी' यों कहते :—

'............**नमामि राम निरामयम'**

———

पर 'तुलसी' के शब्द हैं :—

'............**नमामि ब्रह्म निरामयम'**

—तुलसी

निश्चय हो यदि वह तुम्हें प्रणाम कर लेती, तो उसका पतिव्रत धर्म डिग गया होता।

तुम्हारे बाणों से रावण के मारे जाने का अर्थ और तुम्हारे 'निज धाम' का अर्थ केवल इतना है कि वह रावण 'विकाररहित' हो गया था; और यही अर्थ है तुम्हारी आर्य्य-संस्कृति का—आर्य्य-संस्कृति विकल्पी को विकल्परहित बना देती है—हिंसात्मक, कुटिल, कुमार्गी, परद्रोहरत, छली, और घाती को—विषम से भरे हुये को 'विकाररहित' बना देती है।

मन्दोदरी ने इसीलिये 'विकाररहित 'ब्रह्म' को नमस्कार किया था—अपने 'पति' को।

'नारी'—चाहें वह निश्चरपुरी की हो, चाहें मानव अथवा देवलोक की हो, पर परद्रोहरत पति को प्रोत्साहन नहीं दे पाई है। और यदि दिया है, तो उसकी चूड़ियाँ तो नहीं फूटी हैं, मांग तो नहीं बिगड़ी है पर निश्चय ही उसके 'सुहाग' में से 'सुख' निकल गया है।

और, तुम्हारी संस्कृति पर दुनियां को इतना अभिमान है, तो राम! यह तो बताओ कि अयोध्या में उस मन्थरा को क्या हो गया था जिसने तुम्हारे लिये माता कैकेई के दूधों की 'धारों' को सुखो दिया था?

मन्थरा की बुद्धि पर पत्थर नहीं पड़ गये थे—वे पत्थर जो लङ्का की ओर सागर में तैरकर फिर पानी में बैठ गये थे। एक दासी की क्या मजाल जो राजा दशरथ के कुटुम्ब में विषाद उत्पन्न कर दे पर :—

"रघुकुल रीति सदा चल आई।
प्राण जाँय पर वचन न जाई॥"

—तुलसी

यह तो रघुकुल की रीति थी—उन 'रघु' के कुल की जिनकी वंश-परम्परा 'मनु' और 'शतरूपा' से आरम्भ हुई थी—भारतीय इतिहास के आदि पुरुष से, आदि नारी से—उन 'मनु' और 'शतरूपा' से जिनके पुत्र 'उत्तानपाद' और पौत्र 'ध्रुव' हुये थे—

जिनकी पुत्री 'देवहूति' के गर्भ से कपिल[1] मुनि का जन्म हुआ था—उनका जन्म जिनसे भारतीय दर्शन (Philosophy)—सांख्यदर्शन आया था—साँख्यदर्शन 'वेदों,' 'ब्राह्मण', 'आरण्यक' और 'उपनिषदों को परम्परा[2] में आया है—उन रघु के कुल की जिनके पिता दिलीप भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के एक सच्चे गोचारक और गोपालक—गाओं और बैलों के सहारे दूध, दही, माखन और गोधन को, जवा, गेंहू और चावलों को मिठास देने वाले थे—गोधन में मिठास का अर्थ गोधन जैसी खाद्य में उपज-शक्ति का हैं—'कामधेनु', 'सुरभि' और 'नन्दिनी के पीछे प्राण दे देने वाले थे और वे रघु जिनकी दिग्वजय कालिदास के 'रघुवंश' में वर्णित 'ताम्रपर्णी'[3] (दक्षिण में पाण्डय राजन के प्रदेश) से वंक्षु नदी (ओक्सस नदी) तक और कामरूप (आसाम) से 'पारसीक' (फारस) देश तक फैल गई थी—जिस दिग्वजय न 'अफगानिस्तान'[4] और 'वक्षु' के प्रदेशों पर भारतीय और ईरान और ग्रीक की आर्य्य-संस्कृति की भेंट-मिलन देखी थी—वे 'रघु', वे 'दिलीप', वे 'ध्रुव', वे 'उत्तानपाद', वे 'मनु', और वे सब, राम ! तुम्हारे पूर्वज थे और इसीलिये तुम 'रघुकुलतिलक' कहलाये हो—उस रघुकुल की रीति यदि 'बचन' पालन की न होती—तो निश्चय ही आसाम से फारस तक और प्राचीन लङ्का से वंक्षु-नदी—कश्मीर के उत्तर उत्तर कुरु तक का मानव इतना सीधा न होता जितने तुम कि लङ्का जीती भी और

---

१ 'देवहूति पुनि तासु कुमारी'
× × × ×
'जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला'
—तुलसी (बालकाण्ड)

२ सांख्य दर्शन के लिये देखिये :—पृ० ४५ टि० ५
'दर्शन' की परंपरा के लिये देखिये :—पृ० ४४ टि० ५,

३ पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने अपनी कालिदास ग्रन्थावली' के परिशेष में अविधान कोष शीर्षक (पृ० १२७) के अन्तर्गत 'ताम्रपर्णी' के विषय में लिखा :—

"ताम्रपर्णी—एक नदी का नाम। यह मद्रासप्रान्त के तिन्नवेलि जिले में है। इसे उस भाषा में 'पसने' कहते हैं। यह पश्चिमी घाट पर्वत से निकल कर बंगाल की खाड़ी में जा गिरती है। जल बहने की सुविधा से इसमें ८ पुल हैं—अशोक के समय पाण्डयगण राज्य ताम्रपर्णी तक था।"

†नोट :—श्री सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार अशोक के समय पाण्डय गणराज्य 'ताम्रपर्णी नदी तक था। 'रघुवंश' के ५०, ५१, ५२, ५४, ५५, ५८, ५६ वें श्लोक से महाराज 'रघु' की विजय-क्रम को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज रघु 'लंका' नहीं गये। यदि गये होते तो बीच में पड़ने वाले सागर का वर्णन कालिदास निश्चय करते। मिस्टर डावसन ने हिन्दू क्लैसीकल डिक्शनरी (Hindu Classical Dictionary) पृ० ३१७ पर 'ताम्रपर्णी' को लंका' बताया है। मेरी दृष्टि में कालिदास के आधार पर महाराज 'रघु' की विजय में लंका भी निश्चित है। पर विद्वजन अपना अपना मत निर्धारित करलें।—लें०

४ देखिये पृ० ११८

राज में न मिलाई[1]। विभीषण से कोई टैक्स (कर) भी नहीं लिया। किन्तु राम! तुम से भी अधिक सीधे तुम्हारे 'तुलसी' थे। 'तुलसी' ने 'तुम्हें' और 'तुम्हारे 'विभीषण' को तुम्हारी ही रजधानी अयोध्या में एक ही काँटे पर तोला है। यदि तुम 'अयोध्या' के राजा थे, तो विभीषण 'लंका' का। विभीषण तुम्हें अयोध्या तक पहुँचाने आये थे। तुम्हारे राजतिलक में भी थे—छः महीने[2] तुम्हारे यहाँ टिके थे। विभीषण स्वयं लङ्का नहीं जाना चाहते थे—यह यथेष्ट प्रमाण है विभीषण के लिये तुम्हारे आदर और राज सम्मान का। चलते समय जब लक्ष्मण ने तुम्हारे सखा[3] विभीषण को कपड़े इत्यादि पहना दिये तो 'तुलसी' की लेखनी से तुम्हारे विभीषण के लिये 'लङ्कापति' और तुम्हारे लिये 'रघुपति' शब्द निकले :—

'प्रभू प्रेरित लछिमन पहराये।
लंकापति रघुपति मन भाये।।

—(उत्तरकाण्ड)

तुलसी ने विभीषण को 'लङ्कापति' कह कर, तुम्हें 'अवधपति' नहीं कहा। क्यों? लङ्का के राजा का—विभीषण का जिनका राजतिलक लक्ष्मण ने लङ्का में किया था—उस लङ्का के राजा का राज सम्मान कोशल की ओर से तभी पूर्ण और राज्योचित हो सकता था जब केवल तुम नहीं, तुम्हारी राज्य-परम्परा उस 'लङ्कापति' को राज सम्मान दे। इसीलिये 'तुलसी ने कहा था:—

'...........रघुपति मन भाये'

—(उत्तरकाण्ड)

आर्य्य-संस्कृति की यह परम्परा रही है कि 'कुलपति' ने ही 'कुल' को श्रेष्ठ बना कर रक्खा है, पूर्वजों का मस्तक ऊँचा किया है, 'कुलबधू' ने कुल को पवित्र किया है। विभीषण को देख कर—लङ्कापति को देख कर तुम प्रसन्न हो गये थे इसीलिये लङ्का के

---

१ विभीषण की शरणागत पर राम ने विभीषण को लङ्का का राज्य दे दिया था। उस समय तक लङ्का जीती भी नहीं थी। ऐसा भी सन्देह किया जा सकता है कि राम ने विभीषण को राज किसी लालच वश दे दिया हो। यदि ऐसा होता तो लङ्का जीतने पर राम को और भी लालच आ जाता और वे लङ्का को कोशल में मिला लेते। किन्तु बीसवीं शताब्दी की राजनैतिक दृष्टि राम की इस 'उदारता' को राम की भूल (Political Blunder) समझेगी—ऐसा मेरा विश्वास होता है, पर यह भाव केवल मेरे तक ही सीमित है।—ले०

२ 'ब्रह्मानन्द मगन कपि, सब कहँ प्रभु पद प्रीति।
जात न जानहिं दिवस निसि गये मास षट बीत।।'

—(उत्तरकाण्ड)

३ 'अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहिं दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम।।'

—(उत्तरकाण्ड)

४ यहां पर 'विभीषण' और 'लङ्कापति' दोनों शब्दों का प्रयोग मैंने किया है। विभीषण 'राम' के सखा थे और लङ्का के 'राजा'। ऊपर मैंने विभीषण के प्रति राम का सखा-भाव नहीं, राजा के प्रति एक राजा का गौरव-भाव अंकित किया है। इसीलिये राम के 'सखा भाव' का संकेत केवल 'विभीषण' शब्द का प्रयोग करके कर दिया है।—ले०

राजा के प्रति तुम्हारे राज्योचित आदर-भाव को देख कर तुम्हारे पूर्वज गर्वित हो उठे थे। इसीलिये 'तुलसी' ने तुन्हें यहां 'रघुपति'—रघु के कुल का—'कुलपति' रूप में देखा था।

ऐसे रघुकुल की रीति यदि वचनों के पालन की नहीं होती तो आज गाओं के थनों में दूध की धारायें नहीं होतीं, बैलों के खुरों में हल के जोतने की शक्ति नहीं होती और भूमि अन्न न उपजा पाती, सूर्य्य उदय नहीं होता, किरणों से ऐटम बाम्ब न बने होते—क्योंकि फिर तो सभी झूट बोल सकते थे। किरणों का प्रभाव ही तब, कब सत्य होता? और बड़े आदमियों की बात तो मैं कहता नहीं, पर निश्चय ही साधारण आदमी की बात में वजन नहीं होता। साधारण व्यक्ति तो केवल अपने 'वचनों' पर संसार का कार्य्य—व्यवहारकार्य्य चलाता है,— रजिस्ट्रियों, रसीदों और सनदों पर नहीं।

दशरथ के वे वचन—तुम्हे चौदह वर्ष का वनवास और भरत को अयोध्या का राज—मैं नहीं कह सकता किसने किसको दिये थे—पर पुरुष नारी से यदि मन, कर्म, वचन की सत्यता की आशा करता है तो नारी के सम्मुख पुरुष को भी मन, कर्म, वचन की सत्यता लेकर खड़ा होना पड़ेगा और यदि इस प्रकार की सत्यता पुरुष में नहीं आ सकती है तो पुरुष अपनी ही नारी के प्रति सन्देह करने का अधिकार न रख सका है, न रख सकेगा। मेरा तो विश्वास है कि तुम जैसे पुत्र को वनवास देकर, तुम्हारे लिये अपने दूध की धारों को खोकर, दुनियाँ का अपयश लेकर माता कैकेई ने 'रघुकुल' के वचनों की यदि परीक्षा न ली होती तो आज पुरुष नारी के सभी बन्धनों से मुक्त हुआ घूमा करता और यह तुम्हारी लेने-देने की दुनियां एक मिनट न चलती। फिर तुम्हारे वश का न होता कि दूसरा विश्व रच लें। दम्पति-धर्म का नाम डूब गया होता। अच्छा ही हुआ कि उस समय तुमने १४ वर्ष का वनवास काट लिया था—अनेक पुत्र तो बच गये, अनेक बधुऐं तो अपना अपना घर बनाकर बैठ गईं, कुटुम्बों और वंशों की मर्यादा तो बच गई। इसीलिये तुम 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' कहलाते हो।

और ओ संशयवृत्ति! तू क्या कहती है? भला कहीं करील में भी अमर फल आये हैं? भरत जैसे लाल को जन्म देने वाली जननी मन्थरा के बहकाये में नहीं आ सकती थी।

राम! तुम्हारे भक्त, पता नहीं, मुझे क्या क्या कहेगें? पर निश्चय ही तुम्हारे लिये माता कैकेई की दूध की धारें भरत के आंसुओं की धारायें बन कर आईं थीं। भरत के लिये सुमित्रा के दुलार और माता कौशल्या के स्नेह के संगम पर वे धारायें मिल गईं थीं।

तुम्हारे लिये भरत का एक आंसू टपकता था तो माता कौशल्या के दूध की धारें तुम्हे भुला कर भरत के लिये स्वतः बह चलतीं थीं, माता सुमित्रा की हिलकी भर आती थी, बोल नहीं फूटता था, आंखो में आंसू पीकर रह जाती थीं—और जिस अंचल से भरत के आंसू पोंछे थे वह अंचल माता कौशल्या का था, सुमित्रा का था अथवा माता कैकेई का—मैं नहीं कह सकता, पर निश्चय ही उसी अंचल से ढ़क कर आज भी माता अपने लाल को दूध पिलाती है—पिलावेगी। और, फिर, वे तीनों निर्मल धारायें अयोध्या में तुम्हारे राजतिलक के अवसर पर 'तुम्हें' और अपनी 'कुलबधू' को ही नहीं— विश्व के

एक-एक दम्पति को 'मातृ-स्नेह', 'विजय' और 'मंगल' का आशीर्वाद देकर वे पुनः अपने बालकों[१] में लग गईं—और आज एक एक माता का हृदय जानता है बालकों की ममता क्या होती है—एक एक बच्चा जानता है मां का प्यार क्या होता है ?

और जगत-जननी की सुहाग-साधना तो जग-विख्यात है ।

राम ! तुम्हारी उज्ज्वल कीर्त्ति तो तुम्हारे भक्तों ने गाई है, सन्तों और महात्माओं ने, किन्तु विश्व का एक एक रजकण, विश्व का एक एक व्यक्ति, व्यक्ति का एक एक पग, एक एक श्वास, एक एक कृति—भली और बुरी—उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते, आपत्ति में, विपत्ति में, सुख में, दुःख में, जय में, पराजय में, हानि में, लाभ में और जिन्दगी की एक एक मुस्कान में, एक एक आंसू में, एक एक हाहाकार में, एक एक चीत्कार में, एक एक कराहट में और एक एक तड़प में तुम्हें अपनी अपनी 'श्री', 'स्वस्ति', और 'सरस्वती' में, 'संकल्प', 'समष्टि', 'सुमति' और 'सम्प्रीति' में, 'चेतना', 'स्मृति' और 'विस्मृति' में, 'विग्रह' और 'विकल्प' में ··'आनन्द', 'मंगल' और 'उछाह' में···अपनी अपनी 'झोपड़ी', 'कुटिया' और 'राजभवन' में, 'गृह', 'कुटुम्ब', 'परिवार', 'समाज', 'देश', 'राष्ट्र' और 'साम्राज्य' में···और जेठ की दोपहरी में···खेतों की मेढ़ों पर··· सावन और भादों की घनघोर घटाओं में और शिशर के पाले में, फागुन के एक एक फगुआ में, फगनौहटी बयार के एक एक झोंके में, कुसुमों के ऋतु-वैभव में और होली के अवसर पर रस की बोरी हुई रंग की नन्हीं-नन्ही फुहारों में···रंग की सारी में, बागे और पटुके में ··चोबा, चन्दन, अबीर, कुमकुमा, रोरी, चावल और तिलक में···चौहटे पर··· चौहटे पर की परस्पर की मिलन में···मन मन में···मधुबन की कलियों में···मधुपों, की गुञ्जारों में, ब्रज की कुञ्जों में, अवध की गलियों में···उषा की प्रथम किरणों में, पक्षियों के कलरव में, मध्याह्न के प्रचण्ड में, सन्ध्या की गोधूलि में, बछड़ों के रंभाने, में, गाओं की हुन्कारों में, जीव-जन्तु, जल-चर, थल-चर और पशुओं के थक-कर बैठने में, मन्दगति से हिलोर लेतीं हुई 'गङ्गा' और 'यमुना' की धारों में, पर्वतों पर उतरती हुई दिशाओं में और सागर की प्रशांत लहरों में, थक कर आलोक-यान से उतरते हुये सूर्य में, बादलों से घिर घिरकर चलते हुये चन्द्रमा में, दूर दूर तक फैली हुई चांदनी में, घर घर में जलते हुये दीप में, रोटी, पानी सांझ और सकारे के गृहस्थी के धन्धों मे, सकारे के गये हुये साजन की प्रीति में, द्वारे पर की पग-ध्वनियों में, मचलते हुये बच्चों की रार में, मुन्ने के प्यार में, संझा को घर लौटे हुये साजन में, आदर में, अनुहारि में, थिरकते हुये परिवार में, परोसी हुई थाली में···जलझारी में···झूलों, पलनों, सेज और सिजड़ियों में···परस्पर की मिलन-माधुरी में···'स्पर्श' और 'पुलक' मे और घूँघट के प्यारों में, हे राम ! विश्व का एक एक रजकण, विश्व का एक एक व्यक्ति तुम्हें देख रहा है,—देखता रहेगा । और मैं तो मानव के पग पग की चरण-धूलि में तुम्हारे विराट विश्व को सीमित हुआ देखता हूँ—पर 'तुम' असीम हो ।

---

१ "अनुजन संजुत भोजन करहीं ।
देखि सकल जननी सुख भरहीं ॥"

—तुलसी (उत्तरकाण्ड)

'किरण' के एक एक कण में रवि-शशि का साम्य लेकर तुम 'असीम' हो—किन्तु कच्चे धागे में बँधे हुये तुम चले आते हो जब प्रेम की पीर सताती है।

इसी प्रेम की पीर के लिये दीप-शिखा की ओट तुम नित्य-प्रति आते हो, नित्य-प्रति जाते हो।

किन्तु, मिलन-वेला में :—

—तुम्हीं नारी की मांग के सिन्दूर† हो,
तुम्हीं पुरुष के प्यार हो।

पर, राम ! यह न भुला देना···जनक-दुलारी की सुहाग-साधना से यह विश्व टिका हुआ है—तुम्हारी समष्टि की संस्कृति बनी हुई है। इसीलिये आज भी नारी 'गृह', 'महलों' और 'राजभवन' में रह रही है और पुरुष का प्यार तो आज गलियों में मारा मारा फिरता है।

और :—

'शिव द्रोही मम दास कहावे।
सो नर मोहि सपनेहु नहि भावे ॥'
—तुलसी

किन्तु राम ! 'शिव' से द्रोह करने वाला व्यक्ति—अपने ही 'विश्वास' को धोका देने वाला व्यक्ति जी ही नहीं पाता, तुम्हारे माने या न माने का प्रश्न ही नहीं उठता है। 'तुलसी' ने 'शिव' का अर्थ 'विश्वास' किया है और 'उमा' का अर्थ 'श्रद्धा' :—

'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'
—(बालकाण्ड)

'शिव' की दो शक्तियां हैं—'विध्वंस' और 'मङ्गल'। 'विश्वास' की दो शक्तियां हैं—'सन्देह' और 'सत्य'।

'विध्वंस' और 'मङ्गल' के सामंजस्य को, 'सन्देह' और 'सत्य' के सामंजस्य को, 'श्रद्धा' और 'विश्वास' के सामंजस्य को, 'अकार[१]', ओंकार[२] और 'ब्रह्म[३]' के सामंजस्य को, 'जल[४]', 'वायु', 'अग्नि', 'आकाश' और 'पृथ्वी' के सामंजस्य को, 'सूर्य' और 'चन्द्र' के सामंजस्य को, दिशाओं के सामंजस्य को, 'पूर्व', 'पश्चिम', 'उत्तर' और 'दक्षिण' के सामंजस्य को, श्वास, निमिष[५], पल, विपल, घड़ी, दिवस, वर्ष, युग, सन्धि,

१ 'शब्दों में (मैं) अक्षर हूँ'—गीता १०।२५

२ 'संपूर्ण वेदों में ओंकार हूँ'—गीता ७।८

३ 'आनीदवातं स्वधया तदेकं'
—ऋग्वेद—नासदीयसूक्त

अर्थात्, वह अकेला एक ही अपनी शक्ति से वायु के बिना श्वासोच्छ्वास लेता अर्थात् स्फूर्तिमान हो रहा है। (देखिये:—पृ० ६१ टि० २)

४ गीता ७।८।९

५ 'गणना करने वालों का समय हूँ'।—गीता १०।३०

† यवन-नारीं सुहाग-बेंदी नहीं लगाती है, न उनके यहां इसे ही माना जाता है।

मन्वन्तर और कल्प के सामंजस्य को, 'प्रकृति' और 'पुरुष[१]' के सामंजस्य को, भूमि[२]—हरित, मरु, ऊसर, वृक्षरहित, और हिममंडित भूमि, खोहों और कन्दराओं[३] के सामंजस्य को, बनों, पर्वतों[४], निर्झरों, नदियों और सागरों[५] के सामंजस्य को, वनस्पतिओं[६] और औषधियों के सामंजस्य को, भूगर्भ के रत्नों[७] और सागर के शङ्ख, मोती और मणियों के सामंजस्य को, जीव-जन्तु[८], पशु-पक्षियों[९], जल-चर, थल-चर, नभ-चर, चर-अचर, नर[१०] और नारी के सामंजस्य को, बीज,[११] कृषि, और गोधन के सामंजस्य को, गृह, गाँवों और नगरों के सामंजस्य को, कला, कौशल, उद्योग और व्यापार के सामंजस्य को, प्रकृति से भय और भावनाओ के सामंजस्य को, देवी-देवताओं,—आदित्य, इन्द्र, वरुण, मित्र, विष्णु, मरुत, रुद्र, और वायु···उषा, श्री, सरस्वती, सावित्री, सीता, सुनासीरा और धात्री के सामंजस्य को, नाद, ध्वनि, स्वर, छन्द, आरोह, अवरोह, भाषा, समास, सन्धि

---

१ आत्मा

२ Earth.

३ Caves. देखिये :—पृ० १

४ "The knowledge we possess of life before the beginning of human memory and tradition is derived very largely from the markings and fossils of living things in the stratified rocks...It is by the sedulous examination of the Record of Rocks that the past history of the earth's life has been pieced together."

A Short History of the World.

By H. G. Wells. पृ० १५

५ "The Age of Fishes. The Age of the Coal Swamps."

नोट : 'Life was still only in the sea.'

वही, पृ० २१

६ Vegetation World.

७ Mineral World.

८ The Age of Reptiles. The First Birds.

९ Animal World.

१० The True Man. The True Woman.

११ The Beginnings of Civilization.

1. Seed.
2. Agriculture.
3. Home.
4. Village.
5. Cities.
6 Art.
7 Industry.
8 Commerce.

और विग्रह के सामंजस्य को, वेदी, वेदिका, यज्ञ, हवि और मंत्रों[१] के सामंजस्य को, वेदों, ब्राह्मणों,[२] आरण्यक, और उपनिषदों के सामंजस्य को, ऋषि और मुनियों के सामंजस्य को, वाल्मीकि[३] और व्यास के सामंजस्य को, रामायण,[३] और महाभारत[४] के सामंजस्य को, धर्म, नीति, न्याय, योग, कर्म, ज्ञान, और भक्ति के सामंजस्य को, विद्या और विनय के सामंजस्य को, चरित्र, शील और गुण के सामंजस्य को, सूत्र[५]—'गृह', 'धर्म', 'श्रुति' और 'कल्प-सूत्र' और 'वेदांग[६]'—शिक्षा, कल्प, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष के सामंजस्य को, मनु, कपिल,[७] पतञ्जलि, गौतम, कणाद, और जैमिनि के सामंजस्य को, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा और वेदान्त-दर्शन के सामंजस्य को, स्मृतियों[८], इतिहास और पुराणों[९] के सामंजस्य को, आर्यवर्त्त,[१०] ब्रह्मावर्त्त,[११] ब्रह्मऋषिदेश,[१२] जम्बूद्वीपे भरतखन्डे[१३] और मध्यदेश[१४] के सामंजस्य को, 'सूर्य'[१५], और 'चन्द्र' वंश[१६] की वंशावली के सामंजस्य को—मनु, 'शतरूपा, इक्ष्वाकू

---

१ देखिये :—पृ० ९९ टि० ७ 'छन्द' के लिये देखिये पृष्ट ८ टि० ४ का*

२ देखिये :—पृष्ट ४५ टि० ५ तथा पृष्ट ४५।४६।४७ की टिप्पणियां

३ देखिये :—पृष्ट ४६ टि० ६

४ देखिये :—पृष्ट ४६ टि० ७

५ देखिये :—पृष्ट ४७ टि० ८

६ देखिये :—पृष्ट ४७ टि० ९

७ देखिये :—पृष्ट ४४।४५

८ देखिये :—पृष्ट ४० टि० ३

९ देखिये :—पृष्ट १०२ टि० २

१० देखिये :—पृष्ट १३ टि० ४ के नीचे का*

११ 'सरस्वती' और 'दृषद्वती' के बीच का देश ।

१२ 'शूरसेन' (मथुरा), मत्स्य (जैयपुर) कुरु-पांचाल (कुरुक्षेत्र और कम्पिल) का देश ।

१३ पुराणों के युग में भारत 'जम्बूद्वीप भरतखंडे' कहलाता था। श्री वासुदेव-शरण अग्रवाल ने अपने लेख 'प्राचीन भारतीय भूगोल' ('कल्पना' जून १९५५ पृष्ट २०... ३५) में दर्शाया है 'प्राचीन संकल्प में पहला पाठ "जम्बूद्वीपे भरतखन्डे' था, जिसका भौगोलिक अर्थ था 'जम्बूद्वीप के एक भाग भारत में। यही मूल पौराणिक भूगोल था। इस भूगोल में 'हरिवर्ष', 'इलावृतवर्ष,' 'केतुमालवर्ष' और 'भारतवर्ष' इन चारों को मिला कर 'जम्बूद्वीप' कहते थे।" पर विद्वानों का ऐसा भी मत है कि इन चार के अतिरिक्त ५ खन्ड और थे— किंमपुरुष', 'हिरण्माया', 'उत्तरकुरु', 'भद्रस्वा' और 'रामयक' ।ले०

१४ देखिये :—पृष्ट १६२।१६३

१५ सूर्यवंश की वन्शावली महाराज 'इक्ष्वाकू' से आरम्भ होती है ।—ले०

१६ चन्द्रवंश की वंशावली (इस वंश में यादव, पांडव और काशी के नरेश आते हैं) 'अयु' से आरम्भ होती है। पर इस वंश के आदि ऋषि 'अत्रि' थे। —ले०

'अयु' और 'निमि[1]' (इक्ष्वाकू के पुत्र) के सामंजस्य को, दिलीप, रघु, अज, दशरथ और रघुकुलतिलक राम—'राम' और 'विदेहनन्दिनी' के सामंजस्य को, अयु, चित्रार्थ, शूरसेन, वसुदेव, नन्दजु, कृष्ण और बलराम के सामंजस्य को, नन्दगांव, गोकुल, बरसाने, मथुरा, वृन्दाबन और ब्रज के 'ब्रजराज' और 'ब्रजदुलारी राधे' के सामंजस्य को, देवकी और मैया यशोदा के दुलार सामंजस्य को, सुमित्रा, कैकेयी और माता कौशल्या के स्नेह-सामंजस्य को, श्रुतिकीर्ति, मांडवी और उर्मिला जैसी कुल-वधुओं के सामंजस्य को, शत्रुघ्न, भरत, लक्ष्मण और राम जैसे सहोदरों के सामंजस्य को, कोशल, काशी और विदेह के सामंजस्य को, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सामंजस्य को, 'ब्रह्मा' और 'सरस्वती' के सामंजस्य को, 'विष्णु' और 'श्री' के सामंजस्य को, 'शिव' और 'शैलजा' के सामंजस्य को, संकल्प और विकल्प के सामंजस्य को, विकल्प और विग्रह के सामंजस्य को, चेतना, सम्प्रीति और सुमति के सामंजस्य को, सुमति और कुमति के सामंजस्य को, मन, चित्त, वृत्ति—सुवृत्ति, कुवृत्ति और दुर्वृत्ति के सामंजस्य को, राग, विराग, अनुराग और बैराग के सामंजस्य को, क्रोध, शोध, प्रतिशोध और क्षमा के सामंजस्य को, द्रोह, दोष, द्वेष, विद्वेष, और परद्रोह के सामंजस्य को, अहंम के सामंजस्य और अहङ्कारशून्य-शक्ति के सामंजस्य को, प्रेम और विरह के सामंजस्य को, 'सम' और 'विषम' के सामंजस्य को, सत्य और कल्पनाओं के सामंजस्य को, गीता, तालमुड, अवस्ता, बायबिल, शैङ्ग टी और कुरान के सामंजस्य को, स्वामी महाबीर, बुद्ध, कन्फ्युशस, जरथुस्त्र, प्रभू ईसा और जनाब मोहम्मद साहब के सामंजस्य को, मठों, मन्दिरों, विहारों, मसजिदों और गिरजाघरों के सामंजस्य को, भक्तों, सन्तों, महात्माओं और विद्वानों के सामंजस्य को, त्याग और बलिदान के सामंजस्य को, 'दान' और 'तृप्ति' के सामंजस्य को, चिन्तन और उद्‌गारों के सामंजस्य को, भाषाओं, व्यक्तियों और संस्कृतिओं के सामंजस्य को, इतिहास, दर्शन साहित्य, कला और विज्ञान के सामंजस्य को, शब्दों, अर्थों और भावों के सामंजस्य को, आँसुओं और मुस्कानों के सामंजस्य को, विधि, विधान और भाग्य के सांमजस्य को, कृत और कर्त्ता के सांमजस्य को, भोग और भोक्ता के सांमजस्य को, न्याय और अन्याय के सामंजस्य को, पक्षपात को—युद्ध और शान्ती के सामंजस्य को, जय-पराजय, हानि-लाभ और सुख-दुःख के सांमजस्य को, गृह, समाज, देश, राष्ट्र और साम्राज्य से सांमजस्य को, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के सांमजस्य को, वैभव और विभूति के सांमजस्य को, और 'सत्य', 'शिव' और 'सुन्दरम' के सांमजस्य को जीवन में रूप देकर, यदि 'जीवन' और 'मृत्यु' का आह्वान न किया गया होता—यदि 'विस्मृति' और 'स्मृति' में जीवन को न ठहरा लिया गया होता—यदि 'समष्टि' की नीव गहरी न गाड़ी गई होती, यदि मानव की अहंकारशून्य-शक्ति को विश्व का—विश्व के 'मंगल' का भरोसा न करा दिया गया होता, यदि 'सुमुखी' की सुकोमल वाणी से 'पुरुष' का अंहम खिंच कर न आ गया होता, यदि पुरुष के प्यार में नारी लिपट कर न रह गई होती··············· ·······तो,

—तो आकर्षण-विधान मिट गया होता,

१ मिथिला वंश 'निमि' से आरम्भ होता है। —ले०

—तो 'ब्रज' की कुन्जों में, 'अवध' की गलियों में, 'काशी' के मन्दिरों में, 'प्रयाग' की गंगा और यमुना के क्षेत्रों में, 'हिमवंत[१]' की शैल-शिलाओं में, 'हिमाचंल प्रदेश में, 'कैलाश क्षेत्र में', 'नैपाल', 'किरन्त[२]' और 'भोट[३] देश' में, कश्मीर के उत्तर 'उत्तरकुरु[४]' में, 'शाकद्वीप', 'कम्बोज[५]', 'वाल्हीक[६]', 'मृगाद्द[७]', 'कपिशा[८]', 'दरद[९]', 'गान्धार[१०]' 'तक्षशिला', 'दाव[११]', 'वाहीक[१२]', 'अभिसार[१३]', 'कैकेय[१४]', 'मद्र[१५]', 'कुलूत[१६]' 'कुरुक्षेत्र' 'आर्य्यावर्त्त[१७]', 'ब्रह्मावर्त्त[१८]', ('ब्रह्मऋषि देश)[१९]', 'शूरसेन[२०]', 'मत्स्य[२१]', पांचाल,[२२] 'कोशल[२३]', 'काशी में—कम्पिल, कनौज, अयोध्या और काशी में,—अन्तर्वेद[२४] में 'मध्यदेश[२५]' में, 'कौशाम्बी[२६]', 'सारनाथ', 'कपिलवस्तु', 'लुम्बिनी[२७]', 'श्रावस्ती[२८]'

---

१ हिमालय-प्रदेश
२ किरातों का देश
३ तिब्बत
४ कश्मीर से ओक्सस नदी तक (पामीर के उत्तर)
५ पामीर प्रदेश
६ बल्ख
७ मर्व (Merv)
८ काफ़िरस्तान
९ दरदस्तान
१० कन्धार (नोट: इस 'प्रदेश' पर विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं ।—ले०)
११ जम्मू (कश्मीर)
१२ पंजाब (सिन्धु से सतलज का प्रदेश)
१३ पंजाब (झेलम से चन्द्रा का प्रदेश)
१४ पंजाब (झेलम से चुनाव का प्रदेश)
१५ पंजाब (झेलम से रावी का प्रदेश)
१६ कुल्लू
१७ देखिये:—पृ० १३ टि० ४ का ❀
१८ देखिये:—पृ० १६२ । १६३
१९ देखिये:—पृ० १६२।१६३ (देखिये पृ० ३०० टि० १२)
२० मथुरा
२१ जयपुर
२२ फर्रुखाबाद से बदायुँ का प्रदेश
२३ अयोध्या
२४ देखिये:—पृ १३३ टि० १
२५ देखिये:—पृ० १६२ । १६३
२६ इलाहाबाद के निकट
२७ बुद्ध जी की जन्मभूमि ।
२८ सहेत-महेत—बलरामपुर (अवध) से १२ मील दूरी पर ।

'वैशाली[1]', 'कुशीनगर[2]', 'मगध[3]', 'विदेह[4]' और 'पाटिलपुत्र[5]' में, 'उत्कल[6]' और 'विराजा-क्षेत्र गया' में, 'वीर-भूमि', 'गौड़देश[7]', सुन्दरबन,[8] कामरूप[9]' और ब्रह्मा की स्वर्णभूमि में[10], 'कलिंग[11]' और 'आन्ध्रदेश' में, 'रामगिरि[12]', 'रायपुर', 'पण्ढ़रपुर', 'विनशन[13]', 'विदिशा[14]', 'सांची', 'अवन्ति' (मालवा-उज्जयिनी) और 'चेदिदेश' में', 'अनूप[15]', 'आनर्त[16]', 'लता', 'लाट', 'कच्छ' 'मरुकच्छ', 'भृगु-कच्छ', 'प्रभाष' 'सोमनाथ' और 'द्वारावती[17]' में, 'ऋषिक[18]', 'देवगिरि'[19] 'विदर्भ[20]', 'अशमक[21]' और मूलक[22] में— 'तैंलगाना[23]', मयूर-भंज[24]' और नीलिगिरि का पहाड़ियों में,—रामगिरि[25], 'नासिक[26]'

---

१ पटना से २७ मील दूरी पर
२ बुद्ध जी का परिनिर्वाण स्थल
३ दक्षिणी बिहार
४ उत्तरी बिहार (तिरहुत-जनकपुर)
५ पटना
६ उड़ीसा
७ बंगाल
८ बंगाल का सुन्दरबन
९ आसाम
१० बरमा
११ उड़ीसा का दूसरा नाम
१२ नागपुर के निकट की पहाड़ियां। (देखिये नं० २५)
१३ बीकानेर
१४ भेलसा से १२ मील दूरी पर
१५ नर्मदा का तटवर्ती प्रदेश (गुजरात) (यही चेदिदेश कहलाता था)
१६ गुजरात (अनूप, आनर्त, लता, लाट, कच्छ······द्वारावती यह—सब)
१७ द्वारिका
१८ खानदेश
१९ दौलताबाद
२० बरार
२१ औरंगाबाद
२२ अहमदनगर
२३ गोलकुण्डा
२४ देखिये पृ० १९६ टि० ३ का*
२५ नागपुर के निकट की पहाड़ियां ('रामगिरि' को मध्यबिन्दु मान लेने के कारण दो बार लिखा है।)—ले०
२६ देखिये :—पृ० २४७

नोटः 'भारत' के मानचित्र का 'देश-क्रम' संकेत-मात्र है।—ले०

'पंचवटी[१], 'दण्डकारण्य', 'किष्किन्धा[२]', 'पंपा',[३] और पंपापुरी में, 'त्रिम्बकेश्वर[४]' ऋष्यमूक..., प्रवर्षणगिरि[५], सुन्दरवन[६] 'कुन्तल[७]', 'कालादिग्राम',[८] 'श्रीपेरम्बधूरम[९], 'निम्बापूर[१०]','बेलिलग्राम[११]; 'कांची'[१२],चोल, केरल देश, मलयबार[१३],मलयपर्वत और त्रिकूट पर्वत पर, 'सिन्धु' और 'सरस्वती' के तटों पर, 'गङ्गा' और 'यमुना' की धारों पर, 'इरावती[१४]' और ब्रह्मपुत्र के निकट, 'नर्मदा', 'ताप्ती', 'गोदावरी,' 'कृष्णा', 'कावेरी' और 'तुङ्गभद्रा' की लहरों पर—'रामनद[१५]', रामेश्वर, 'सिंहलद्वीप[१६],' इन्द्रद्वीप[१७],' 'नग्नद्वीप[१८], मलय[१९], 'यवद्वीप[२०]' 'स्वर्णद्वीप[२१]' 'बलिद्वीप[२२]' और कुमारी अंतरीप[२३] में—और जम्बूद्वीपे भरतखंडे के तीन ओर की जल धाराओं में—'महोदधि'[२४], 'रत्नाकार[२५]' और दक्षिण सागर में—और उत्तर की 'सुषमा-नगरी' कश्मीर में, मध्यदेश की अलकापुरी—'उज्जयिनी' में और दक्षिण की उस 'रम्भापुरी[२६]'

१ देखिये पृ० २४७
२ मैसूर के अंतर्गत
३ 'पंपा' नदी ऋष्यमूक पर्वत से निकल पर तुङ्गभद्रा में मिलती थी।
४ 'त्रिम्बकेश्वर' से गोदावरी निकली है।
५ ऋष्यमूक पर्वत से हट कर निकट ही प्रवर्षणगिरि पर 'राम' रहे थे :—

'तब सुग्रीव भवन फिर आये।
राम प्रवर्षणगिरि पर छाये॥'

—तुलसी (किष्किन्धाकाण्ड)

६ प्रवर्षणगिरि के निकट ही दक्षिण का 'सुन्दरवन'।
७ 'कृष्णा' का तटवर्त्ती प्रदेश
८ श्री शंकराचार्य की जन्मभूमि
९ श्री रामानुजाचार्य्य की जन्मभूमि
१० श्री निम्बार्काचार्य्य की जन्मभूमि (देखिये :—पृ० २३३)
११ श्री माधवाचार्य्य की जन्मभूमि (मद्रास प्रान्त)
१२ कांजीवरम (मद्रास के नीचे)
१३ मालाबार
१४ इरावती (इरावदी)
१५ मदूरा और रामेश्वर के बीच
१६ लङ्का
१७ अन्डमन
१८ निकोबार
१९ मलाया
२० जावा
२१ सुमात्रा
२२ बालीद्वीप
२३ कन्या कुमारी
२४ बंगाल की खाड़ी
२५ अरब सागर
२६ बालेहुल्लूर

में—मणिमुक्ताओं से सुशोभित उस 'कनाटनगरी में'—सोम सुंदेश्वर के श्री-चरणों में, देवी मीनाक्षी की गोद में...और 'नानक' के 'राय भोये दी तलवंडी[१]' (पंजाब) में, 'सूर' की 'सीही[२]' में, जायसी के 'जायस[३]' में, 'तुलसी' के 'राजापुर[४] और चित्रकूट' में, कबीर की 'काशी[५]' में, विद्यापति के 'मिथिला'[६] में, चैतन्य के 'नवद्वीप[७] में, वल्लभाचार्य के 'चम्पारण्य[८] (रायपुर) में, विट्ठल की 'चरणाद्री[९]' में, मीरा' की 'चोकड़ी ग्राम'[१०] में, नरसी के 'जूनागढ़[११]' में, केशव की टेहरी[१२]' में, सेनापति के 'अनूपशहर[१३]' में, सुन्दरदास के 'ग्वालियर'[१४] में, मलूकदास के 'कड़ा मानिकपुर'[१५] में, 'विट्ठलपन्त' के 'पण्ढरपुर' में और सन्त तुकाराम के 'देहूग्राम'[१६] में—ग्राम, ग्राम में, नगर, नगर में, घर, घर में—तो मानव ने नारी का शृङ्गार न किया होता, तो मानव के अतुल वैभव में नारी 'विभूति' बन कर न आई होती, तो युग युग की पुरुषकृत अभिसन्धियों को तोड़कर—नारीसत्ता पर युग युग से पुरुष द्वारा लगाये हुये झूठे और मनमाने आरोपों और प्रतिबन्धों को काटकर, अपने प्रति युग युग से पुरुष द्वारा किये हुये अन्यायों और अत्याचारों को अपने चरित्र-बल से तपा तपा कर दिखाने की और नारी-गौरव[१७] के प्रति पुरुष की आँखों पर बंधी हुई पट्टी को खोल खोल कर फेंक देने की शक्ति—तो नारी में नहीं होती, तो 'नारी' और 'पुरुष' के परस्पर के तृप्तिदान में इन्द्र की 'अमरावती', विष्णु का 'क्षीर-सागर' और शिव का 'कैलाश' परस्पर की मधुर भावनाओं में उतर कर न आ गया होता :-

१ गुरु नानक की जन्मभूमि (पंजाबी में 'दी' = हिन्दी में 'की')
२ सूर की जन्मभूमि (ब्रज में) (उत्तर-प्रदेश)
३ जायसी की जन्मभूमि (जिला राय बरेली—उत्तर प्रदेश में)
४ तुलसी की जन्मभूमि (उत्तर-प्रदेश)
५ कबीर की जन्मभूमि (उत्तर-प्रदेश)
६ विद्यापति की जन्मभूमि (बिहार)
७ प्रभू चैतन्य की जन्मभूमि (बङ्गाल)
८ वल्लभाचार्य की जन्मभूमि (मध्य प्रदेश)
९ वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठल जी की जन्मभूमि (चुनार—उत्तर प्रदेश में)
१० मीरा की जन्मभूमि (मध्य देश)
११ नरसी की जन्मभूमि (सौराष्ट्र)
१२ केशव की जन्मभूमि (बुन्देल खण्ड—मध्य प्रदेश)
१३ सेनापति की जन्मभूमि (जिला बुलन्दशहर—उत्तर प्रदेश में)
१४ सुन्दरदास की जन्मभूमि (मध्य प्रदेश)
१५ मलूकदास की जन्मभूमि (उत्तर प्रदेश)
१६ तुकाराम की जन्मभूमि (महाराष्ट्र)
१७ "Shakespeare has no heroes, ... he has only heroines;

"The catastrophe of every play is caused always by the folly or fault of man, the redemption, if there be any, is by the wisdom and virtue of a woman." —Ruskin

'शची की अमरावती तुम बिन शोभा नहीं पाती !'

'किन्तु नाथ ! शची की अमरावती किसी ने देखी नहीं, पर इस अंचल की शोभा तुम से है ।'

और उन दोनों ने मिलकर,

'विश्व-प्रेम' के, 'जग-मंगल' के

गीत—तो,न गाये होते;

—तो* 'मिस्र', 'मेसोपोटामिया' और 'चीन' की संस्कृति 'सम'❀ का संकेत लेकर न आई होती—एक शब्द में—तो 'सम' ❀'विश्व' की—'मानव' की संस्कृति बन कर न आया होता;

—तो 'फारस' की शराबे-मुहब्बत पर साक़ी की निगाह एक दूसरे पर न उठी होती, तो 'हुस्न[1]' और 'शबाब' पर किसी की दिलजोई न हो पाती, तो फारस में 'मन-कर्म-वचन'[2] की सत्यता को आधार मान कर जीवन में चरित्र-बल का संगठन न कर लिया गया होता;

—तो 'ग्रीक' दर्शन में 'सम' की भावना 'शिव', 'सत्य',' और 'सुन्दरम्'[3] को लेकर न आई होती ;

—तो 'रोम' का 'विधान' 'सम'[4] का आधार लेकर न खड़ा होता;

—तो 'अरब' की मरुभूमि में भक्ति के स्त्रोत न फूटे होते, तो खान्दानी[5] खून की मुहब्बत न फड़क उठी होती, तो चिरागे-मुहब्बत न जला होता, तो सात[6] समुन्द्रों पर सामी संस्कृति का दीपक देदीप्यमान न हो पाता, तो जनाब मोहम्मद साहब के नाम पर ही यवन और तुर्कों का मेल न हो पाता, तो जनाब के कदमों से अरब के रेगिस्तान में कदम कदम पर 'रहमत' का दरिया न बहा होता, तो आज दुनियां का एक एक मुसलमान बाहमी हर फर्क को मिटा कर अल्लाह की दरगाह में कन्धे से कन्धे मिला कर न खड़ा हो पाता; तो जनाब के हर नक्शे-कदम को दुनियां का हर इन्सान चूमने को न दौड़ पड़ता;

—तो 'इटली' में 'लैटिन' और 'ग्रीक' भाषाओं का 'सम्मिलन' न हुआ होता, तो इन्हीं भाषाओं के आधार को पकड़ कर 'अंग्रेजो' भाषा विश्व भर में न फैल जाती, तो धीरे धीरे योरुप के देशों में जन-विधानों (Constitutions of Man) की नीव न पड़ी होती, तो स्पेन में अरबी-रूपान्तरों[7] से पुनः योरुप का 'दर्शन', 'साहित्य' और 'इतिहास' न रचा गया होता, तो महाप्रभू ईसा के मूलमन्त्र (समदृष्टि) से योरुप अभि-

१ सौन्दर्य (फारसी में 'शबाब' अलौकिक सौन्दर्य के अर्थ में प्रयोग होता था)

२ देखिये : पृ० ५६ टि० ३

३ देखिये पृ० ५५ टि० ४ देखिये :—पृ० ७२ टि० १ तथा उसका नोट ।

४ Justice, Equality

५ देखिये :—पृ० १४३ टि० १ ❀तु० गीता ५।१६

६ देखिये :—पृ० १४५ टि० १/२ (सातवां अरब सागर)

७ देखिये :—पृ० १५० टि० १/२

*नोट:—'तो' शब्द से आरम्भ होने वाले प्रत्येक वाक्य का क्रिया-विशेषण वाक्य (Adverbial Clause) पृ० ३०१ पर दिये हुये 'यदि समष्टि' की नीव गहरी न गाड़ी गई होती' से है और पृ० ३२३ तक यही रहेगा ।—ले०

सिक्त (Baptise) न हो पाता', तो महाप्रभू के 'नाम[१]' पर 'योरुप' और 'अमरीका' में 'सहोदरा-भाव' न उत्पन्न हो पाता, तो महाप्रभू के श्री-चरणों से 'प्रेम', 'विनय' और 'भ्रातृत्व[२]'की त्र-धारायें[३]सागरों और पर्वतों को लाँघ कर विश्व के कोने कोनेमें छिपे हुये एक एक जन को मानव मानव का अभयदान न दे पातीं, अन्धविश्वास,[४] अन्याय,[५] पक्षपात[६] और कुनीति से दूषित वायुमण्डल को पवित्र न कर पातीं, नील नदी,[७] दजला-फरात,[८] अफरीका की नाईजर,[९] कान्गो[१०], अमरीका की मिसीसिपी,[११] अमेजान[१२], कनाडा की 'मैकेन्जी[१३]', इङ्गलैंड की 'टेम्स[१४]', योरुप की 'वोल्गा[१५]', एशिया की 'आमूर'[१६], ओक्सस, ओबे, हांगहो, यांग्टसी[१७], मेकांग[१८], पाकिस्तान की सिन्धु, बर्मा की ब्रह्मपुत्र और भारत की गंगा और यमुनों की धारों को महाप्रभु की त्र-धारायें निर्मल न कर पातीं; तो विश्व के सरोवर[१९]

---

१ देखिये :—पृ० १४८ टि० २/३ (सबसे पहले समाज क्रिश्चियन था)
२ Brotherhood of Man.
३ त्र-धारायें = धारायें-त्रय
४ Superstitions.
५ Injustice.
६ Partiality.
७ मिस्र की नील नदी (अफ्रीका)
८ मेसोपोटामिया की दजला-फरात (Tigris-Eupherates)

९	Niger	Africa
१०	Congo	Africa
११	Missouri-Mississippi.	U. S. A.
१२	Amazon	South America
१३	Mackenzie	Canada
१४	Thames	England
१५	Volga	Europe
१६	Amur	Asia
१७	Oxis, Obe	Central Asia
१८	Yangtse, Hoang Ho, Mekong	China
१९	विश्व के सरोवर :—	
क	Superior Lake, Erie, Huron	U. S.—Canada
ख	Greak Bear Lake, Great Slave Lake	Canada
ग	Winnipeg,	Canada
घ	Baikal	South Siberia
ङ	Nayasa, Chad	Africa
च	Victoria Nyanza	East Africa
छ	Aral, Caspian (U. S. S. R-Iran)	Asiatic Russia
ज	Michigan	U. S. A.

सूख गये होते, तो गोबी[१], सहारा[२], कालाहारी[३], लीबियान[४], थार[५], अरब, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका की मरुभूमि में आदमी प्यास से मर गया होता; तो इटली, नार्वे, स्विटजरलैन्ड, ब्रिटिश ग्याना, कोलम्बिया, अमरीका', कैलीफोर्निया, फ्रान्स, जर्मनी और भारत में मैसूर[६] के निर्भर न बहे होते, तो आज विश्व के सात सागरों में जाल[७] न पड़ गये होते; तो पर्वतों[८] पर चढ़-उतर कर मानव ने नग्न प्रकृति को न देखा होता, तो हिममण्डित-भू-खन्डों (उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव) पर प्राणी जीता न रह पाता; तो समतल भूमि पर शीतल-मन्द-सुगन्ध-वायु से कोई अठखेली न खेल पाता, और प्रभू ईसा की ज्ञान-ज्योति से—शौर्य, साहस, बुद्धि विद्या और विज्ञान से संसार जगमगा न उठा होता—सभ्यता से सौन्दर्य प्रदीप्त न हो उठता—मानव को नदियों, सागरों, पर्वतों और वायुमंडल में समतल भूमि न दीखती—जलयान और वायुयान पर बैठा हुआ मनुष्य चुपचाप उन सबको न लाँघ जाता और नाद से भी तीव्रगति[९] से वह वायुमंडल में न चल पाता ;

—तो 'इङ्गलैन्ड' में ११६४ ई० में 'क्लेरेन्डन विधानों'[१०] का निर्माण न हुआ होता, तो सभ्यगणों[११] द्वारा अभियोग के निर्णय की परम्परा न स्थापित हुई होती, तो १२१५ ई० में 'मैगना चार्टा[१२]' का सिद्धान्त मनुष्य के सामने न आता—'स्टेट्यूट आफ वेस्ट मिन्स्टर'

---

१ मंगोलिया में, २ उत्तरी अफ्रीका, ३ बचुआनालैन्ड, ४ सहारा के पूर्व

५ राजपूताना में

६ Gerosopa Waterfall (मैसूर में)

७ तार के जाल—Cables

८ इटली और फ्रान्स के माउन्ट ब्लैंक (Mount Blanc) पर सबसे पहले १७८६ ई० में मानव चढ़ा और उतरा था।—ले०

९ "Faster than the sound." (Super Constallation Jet Plans.)

१० "The Constitutions of Clarendon (1164) declared that the bishops and abbots should be elected before the king's officer with the king's consent, that the king's court should decide on the tribunal to try cases between layman and clerics, and that clerics after conviction in the ecclesiastical court should be handed over to lay courts."

११ "Trial By Jury" (1164) (Henry II of England)

१२ "Magna Carta." (1215) (John)

"*The Great Charter of the Liberties of England.*"

"Magna Carta laid down once and for all the fundamental principle of our Constitution that the king must not break the law......that justice should be free and fair to all.. ..... that proper payment should be made for property required for public use, and that punishments should not be cruel and excessive."

अर्थात्, राजा विधान का उलंघन न करे।—ले०

न बने[1] होते, 'पार-ले-मेन्ट[2]' की स्थापना न हुई होती, तो योरुप में १०० वर्षीय युद्ध[3] न हुआ होता, तो नाना[4] प्रकार के प्रतिबन्ध-विधानों से धार्मिक स्वतन्त्रता की विषमता को बेड़ियाँ न पहिनाई गई होतीं और अमरीका को लोग भाग भाग कर न गये होते,—तो इंगलैन्ड में जल-सेना[5] का उदय और निर्माण न होता, तो महारानी इलिज़बेथ के विवाह[6] का प्रश्न पार-ले-मेन्ट में न खड़ा होता, तो महारानी इलिज़बेथ ने 'एकाधिकार[7]' के अनुचित उपयोग पर खेद न प्रगट किया होता, तो जेम्स प्रथम द्वारा राजसत्ता के स्वामित्व पर

१ Statute of Westminster (1215) Edward I

"Statute Westminster is chiefly memorable from its famous clause De Donis Conditionlibus which set up the law of entail, making it illegal to divert estates or part of them .... from certain specified heirs."

२ Model Parliament. (1295) Edward I

"In this Parliament······along with the barrons sat knight of the shire and representative burgesses from the towns."

३	Hundred Years War (आरम्भ)	(1337)	Edward III
	Statute of Kilkenn.	(1367)	Edward III
	Good Parliament.	(1376)	Edward III
४	Reformation Parliament	(1529)	Henry VIII
	Act of Supremacy	(1534)	Henry VIII
	Pilgrimage of Grace.	(1536)	Henry VIII
	Act of Uniformity	(1552)	Edward VI
	Act of Uniformity	(1559)	

"Act of Uniformity of Common Prayer and Divine Service in the Church and for the Administration of Sacraments."

Statutes of the Realm. IV Part 1 पृ० ३५१

५ Act for the Maintenance of the Navy (1566)

Statutes of Large VI पृ० १७६-१८५

६ Parliament and the Queen's Marriage (1566)

Commons Journals Part I पृ० ७६-७७

७ Monopolies 1601

'She (Queen Elizabeth) understood that diverse patents that had been granted were grievious to her subjects and the substitutes of the patentees had used great oppression. But she said, 'she never assented to grant anything which was *malen in se*."

Townsend Journals पृ० २३०—२४६

पार-ले-मेन्ट ने झगडा[१] न किया होता, तो 'नो टैक्जेशन विथाउट रिप्रेजेन्टेशन'—'No Taxation Without Representation'—की आवाज पार-ले-मेन्ट में न उठी होती, तो पार-ले-मेन्ट की विजय न हुई होती, तो १६२८ ई० में 'पिटीशन आफ राइट'[२] द्वारा राजा के सम्मुख यह मांग न रक्खी गई होती कि पार-ले-मेन्ट द्वारा निर्मति विधान के बिना किसी भी स्वतन्त्र पुरुष को पकड़ न लिया जाय, कारागार में डाल न दिया जाये, किसी की सम्पत्ति छीन न ली जाये, किसी को देश निकाला न दिया जाये, अथवा किसी अन्य रूप से उसे विनष्ट न कर दिया जाये······जो हो वह इङ्गलैंड के विधान द्वारा हो... किसी से कोई टैक्स बिना पारलेमेंन्ट द्वारा रचित विधान के न लिया जाय, और राज्य के कर्मचारी विधानों के अनुसार राज्य की सेवा करें, तो क्राम्बेल[३] बायबिल पर हाथ रख कर सार्वजनिक अधिकारों को श्रेय देने की प्रतिज्ञा न कर देता, तो 'इन्स्ट्रूमेंट आफ गवर्नमेंट'

---

१ Struggle between Crown and Parliament (1603—1649)
James I. His Divine Rights.
Crown above the Courts.
"encroach not upon the prerogatives of the Crown."

२ The Petition of Right (1628) (Charles. I.)
Assented by King on 7th June 1628.

"*And Whereas* by the Statutes called, "The Great Charter of the Liberties of England" it is declared and enacted, that no freeman may be taken or imprisoned or be disseised of his freeholds or liberties or of his free customs. or be outlawed or exiled, or in any manner destroyed but by law of the land."

....

"They do therefore humbly pray Your Most Excellent Majesty, that no man hereafter be compelled to make or yield any gift, loan, benevolence, tax, or such like charge, without common consent by Act of Parliament............................that in the things aforesaid all your officers, and Ministers shall serve you according to the laws and Statutes of this Realm."

See:- *Statutes of the Realm V.* (1819 Ed.) पृ० २३

३ Cromwell Supports Popular Rights. (July, 1653)
Rump Parliament. (April, 20. 1653)
Little Parliament. (June 6, 1653)
Instrument of Government, (December 12, 1653)

"*The Instrument of Government*, whereby was ordained that the protector should call a Parliament once in every three years ....that he should not dissolve Parliament once met till they had sat for five months .... Whilst this was reading, Cromwell had his hand upon the Bible and it being read, he took his oath, "that he would not

द्वारा यह आज्ञा न दी गई होती कि न्याय सभी के लिये समान होगा—कानून के शिकन्जे से बचेगा कोई नहीं, तो १६८६ ई० में 'बिल आफ राइट'[१] द्वारा इङ्गलैंड के विधान की विजय न हुई होती······तो उपनिवेशों के निर्माण द्वारा इङ्गलैन्ड को धन-धान्य से परिपूर्ण एवं समृद्धिशाली[२] बनाने के लिये एक एक व्यक्ति के संकल्प न जागे होते, तो १७५७ ई० में भारत में क्लायव ने 'ब्रिटिश राज्य की नीव'[३] न डाल पाई होती, भारत से प्रति-वर्ष २।३ करोड़ रुपये से अधिक आय[४] होने के कारण इङ्गलैंड के राष्ट्र का ध्यान भारत

---

violate anything that was contained in that *Instrument of Government*; but would observe and cause the same to be observed; and in all things according to the laws, statutes and customs seeking peace, and causing justice and law to be equally administered."

१ 'Bill of Rights(1689).., *vindicated the Constitution of England.*' Clarendon, *History of the Rebellion VI*: पृ० ६५०

नोट :—इङ्गलैन्ड के पास कोई लिखित विधान नहीं है ।—ले०

२ Walpole and Colonies, (See:- *Parliamentary History*) (1721)

"In this situation of affairs we should extremely be wanting to ourselves, if we neglect to improve the favourable opportunity, which this general tranquility gives us, of extending our commerce upon which the riches and grandeur of this nation chiefly depend. It is obvious that nothing would more conduce to the obtaining so public a good, than to make the exportation of our manufactures and the importation of the commodities used in the manufacturing of them, as practicable and easy as may be; by this means the balance of trade may be preserved in our favour, our navigation increased, and greater numbers of our poor employed."

"..... It would not only greatly contribute to the riches, influence and power of this nation, but, by employing our own colonies in his useful and advantageous service, divert them from setting up, and carrying on manufactures which directly interfere with those of the Great Britain."

Kings' Speech on Opening the Session of Parliament on October 16, 1721. *Cobbett's Parliamentary History. VII.* पृ० ६१२-६१३

३ Battle of Plassey (1757) Robert Clive

"The Battle of Plassey fought by Lord Clive whose victory decided the fate of Bengal and in a sense of all India."

४ *Clive's Letter dated 7th January, 1759, to Directors of the East India Company upon British Policy in India:—*

"........Now I leave you to judge whether an income yearly of upwards of two millions sterling, with possession of three provinces abounding in most valuble production of nature and of art, be an object

की ओर न आकर्षित किया गया होता, तो १७७३ ई० में 'रेग्यूलेटिंक ऐक्ट'[१] द्वारा ईस्ट इन्डिया कम्पनी का राज्य—इंगलैंड-राज्य शासन के आधीन न कर दिया गया होता, तो १८३३ ई० में एक चार्टर[२] द्वारा बङ्गाल का गवर्नर-जनरल भारत का गवर्नर जनरल न बन जाता और भारत में १८५७ ई० को 'क्रान्ती[३]' न हुई होती, भारत के अहंम ने ठोकर न खाई होती, तो १७५९ ई० में जनरल वोल्फ ने अपने प्राण देकर क्युबिक के

---

deserving the nation's attention and whether it be worth the nation's while to take the proper measures to secure such an acquisition."

१ Parliament passed the Regulating Act : – (1773)

"The enactment of this Act may be regarded as the starting point of the modern constitutional History of India."

२ "By the Charter Act of 1833 the Governor-General of Bengal became the Governor-General of India, his Government was known for the first time as the Government of India." *Simon Report.*

३ Indian Mutiny (1857).

"........The growing excitement amongst the Sepoys was marked by the numerous incendiary fires at Barrackpore. Twenty-five similar fires occurred at distant Umbala. "At Meerut the men of the 3rd Cavalry refused the cartridges, and on May 3rd (1858) the 7th Oudh Infantry mutinied at Lucknow ....Sentences on 85 of the Cavalry mutineers were promulgated at a special parode on May 9th. The 'next day, Sunday, while evening service was being held, the Cavalry and two Infantry regiments broke open the Jail, released their comrades, brunt the officers houses, murdered every European on whom they could lay hands and hurried off to Delhi, where they werequickly joined by other regiments and by all disorderly elements........They proclaimed the restoration of the Moghul Empire and placed the aged titular Emperor Bahadur Shah on his throne."......

'All European whom the rebels could find, men, women and children, were ruthlessly massacred.' .....the disorders spread rapidly over the Agra Province, which soon became a sea of anarchy.. Murder, burning and pillage raged unchecked in every district". Cawnpore (Kanpur) witnessed "one of the most atrtcious crimes on record."

"The recpature of Delhi on September 14th, 1858, was the turning point of the Mutiny........from that the ultimate success of the British Government was no longer in doubt, and the waverers who had held back while the issue was doubtful hastened to render aid to the Government."

"Much hard fighting had to be done and much sufferring endured before peace and order were finally restored late in 1859."

Oxford History of India

युद्ध में 'कनाडा[१]' न ले पाया होता, १७६३ ई० में पेरिस की सन्धि[२] द्वारा सप्तवर्षीय युद्ध में इङ्गलैन्ड की विजय पताका न लहराई होती, तो १७६३ से १८१५ ई० तक इङ्गलैंड और फ्रान्स (नैपोलियन युद्ध) के क्रान्तिकारी[३] युद्धों में इङ्गलैन्ड की विजय न हुई होती और १८१५ से १९२३ ई० तक इङ्गलैन्ड का ऐसा विशाल साम्राज्य न स्थापित हुआ होता कि जहां सूर्य डूबने का नाम ही न लेता था और फिर 'इङ्गलैंड साम्राज्य' से 'ब्रिटिश राष्ट्रों की समान सम्पत्ति[४]' (Commonwealth) न बन जाता;

—तो 'अमरीका' में ४ जूलाई १७७६ ई० में 'स्वतन्त्रता की घोषणा[५]' न हुई होती, और १७८७ ई० में अमरीका ने अपना 'विधान' न रच लिया होता;

—तो 'फ्रान्स' में १७८९ ई० से १७९५ ई० की 'फ्रान्स की क्रान्ति'[६] न हुई होती और क्रान्ति का सन्देश—'समानता', 'स्वतन्त्रता' और 'भ्रातृत्व'—विश्व में न फैल जाता ;

—तो १८५६ ई० में भारत में 'लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक[७]' ने जन्म न लिया होता और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के जीवनदाता न कहलाये होते और न उनका कीर्ति-स्तम्भ बर्मा के 'माण्डले' नगर में १९५६ में खड़ा किया गया होता;

—तो भारत में १८५७ ई० में गदर न हुआ होता;

—तो १८६९ ई० में महात्मा गांधी ने पोरबन्दर (काठियावाड़ के निकट) में जन्म न लिया होता और भारत को १९४७ में स्वतन्त्र कराके मानव विजय न की होती;

—तो 'भारत' में १८८५ ई० में भारतीय कांग्रेस की स्थापना[८] श्री ए० ओ० ह्यूम (Allan Octavian Hume) द्वारा न हुई होती;

—तो १८९७ ई० में० इङ्गलैंड में महारानी विक्टोरिया की 'हीरक जयन्ती' न मनाई गई होती;

—तो १९१२ ई० से 'चीन' एशिया का गणतन्त्रराज[९] बना हुआ न चला आता;

१ The Battle of Quebec (September 12, 1759)

२ Treaty of Paris (1763) Seven Years' War (1756-1763)

३ Revolutionary and Napoleonic Wars (1793—1815)

४ British Empire to Commonwealth of Nations. (1815-----1923)

५ Declaration of American Independence. (July 4th, 1776)

६ French Revolution. (Equality, Liberty, Fraternity).

७ 'Father of the Indian Unrest'—*D. V. Tahmankar*
देखिये:—'लोकमान्य तिलक'—श्री डी० वी० तहमान्कर

नोट :—'तिलक' जी का निधन १ अगस्त १९२० ई० में हुआ था।—ले०

नोट—'श्री तिलक' जी ने बर्मा के माण्डले नगर के कारागृह में 'श्री मद्भगवद्गीता-रहस्य' की रचना की थी।—ले०

८ Indian National Congress. (1885) (Bombay).

९ Republic of China. (Since 1912)

—तो १९१४ ई० में विश्व का प्रथम युद्ध न छिड़ा होता;

—तो 'रूस' १९१७ ई० में १० दिन की हलचल में 'समाजवाद'[१] की ओर न मुड़ जाता;

—तो 'जिनेवा' में १९२० ई० में 'लीग आफ नेशन्स'[२] स्थापित होकर १९४६ ई० में समाप्त न हो जाता;

— तो १९२० ई० में भारत में एक नया विधान[३] न आया होता, जलियानवाला बाग का काण्ड न हुआ होता, ई० १९२१ में भारतीय कांग्रेस द्वारा प्रथम[४] 'सत्याग्रह' न आरम्भ हुआ होता और १९२२ ई० में महात्मा गांधी[५] न पकड़े जाते, ई० १९२३ में भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे[६] न होते—साम्प्रदायिकता की अग्नि न भड़कती, लूट-मार, आग, कत्ल, दिन-दहाड़े की कहानी न बन जाते—अप्रैल से जूलाई (१९२६) तक कलकत्ता[७] में नित्यप्रति 'शैतान' घूम-घूम कर फेरी न देता—पनबा, रावलपिन्डी और

---

१ Russian Revolution (1917.. Socialism.)

२ League of Nations. (Formed at Geneva.) (1920)

३ Montagu-Chelmsford Reforms 1919.

४ "By the biginning of 1921 disorder had broken out in many provinces. In Malabar, in the growing belief that the Government could no longer enforce its powers, the Moplahs arose in rebellion and having destroyed the machinery of Government in their area.........In Bombay on the day Prince of Wales landed in India a conflict occurred between the loyal and the non-cooperating elements; in the ensuing riot 53 persons were killed and 403 wounded.. ...21 police constables were killed with revolting cruelty at Chauri Chaura in the United Provinces (Now Uttar Preadesh)."

५ 'In March 1922 Gandhi was arrested.'

६ 'Communal Riots between Hindus and Muslims (1923).'

"By the middle of 1923 communal riots marked by murder, arson, and looting were of almost monthly occurrence."

'In April, 1924 fierce outbursts occurred in many greater cities.'

'In 1925......communal feelings became intense.'

७ 'In April 1926 there occurred first series of dangerous riots in Calcutta...From April to July Calcutta seemed to be under the mastry of some evil spirit which so grippled the minds of men that, in their insanity, they held themselves absolved from the most sacred. restraints of human conduct. Since then we have seen the sinister influenceat work in Panba, Rawalpindi andLahore and many other places.

Speech of Lord Irwin at the Opening of Simla Session of the Indian Legislature on 29th August, 1927.

लाहौर अग्नि-कान्ड के स्थल न बन गये होते, १९२९ ई० में बम्बई 'भूत-नगरी'[१] न बन जाती, फरवरी के एक रविवार को १० बजे दिन में पुलिस स्टेशन के सामने ही ट्रामकार में छुरी न चली होती, १९३० ई० में महात्मा गांधी ने भारत के वायसराय को सूचित न कर दिया होता कि या तो उनकी मांग—'स्वतन्त्रता की मांग—पूरी हो या वे सत्याग्रह आरम्भ करेंगे', मांग[२] तो पूरी नहीं हुई, सत्याग्रह आरम्भ हो गया—साबरमती का सन्त (गांधी जी) गुजरात से अहिंसा लेकर नमक बनाने के लिये चल पड़ा—'कांग्रेसी नेता पर नेता पकड़ लिये गये, कांग्रेस अपने अध्यक्षों को चुनती रही—पंडित मोती लाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल कांग्रेस का साहस संचालन करते रहे;

—तो शोलापूर[३] और पेशावर[४] बलिदानों की भूमि न बन गए होते, बारदोली में (२४ अक्तूबर १९३०) सत्याग्राहियों के हाथ पैर बाँधकर उलटा न टाँग[५] दिया गया होता और ६ फरवरी १९३१ को स्वतन्त्रता की ध्वनि इन शब्दों में न गूंजी होती :—

पूर्ण स्वराज्य हमारा ध्येय है, हम उसे लेकर ही छोड़ेंगे।'

---

१ "In February of that year (i. e. 1929) Bombay for a brief period was a city of carnage, and daily cold-blooded murders were perpetrated in broad daylight."

२ "With the stroke of midnight on December 31st, 1929 things in India began to happen ··and have been happening ever since. the All India Congress ··formally decalared the Independence of India and raised to the breezes of the Southern Asia the Indian National Flag. Gandhi, the sainted leader of the people pledged himself for the first time to "Swaraj" interpreted flatly in terms of national independence, and agreed to lead in person the 'non-violent' revolt in India against the British Raj."

Rev. John Holmes

३ Terrorism in *Sholapur* and *Peshawar*

'···100 Shops looted by some British soldiers···'

Bulletin (19 May 1930)

४ "Peshawar is revealing its gory tale of Government atrocities. The innocent men and women were shot dead and trampled with amoured cars···crulty goes on. ·· ··Martial Law is proclaimed to suppress the national feelings of the bold Borderland tribes.

Bulletin (10 June and 25 th August 1930)

५ "The newly appointed officer, who is in charge of police operation in Bardoli has evolved peculiarly demoniacal methods of inflicting cruelty. It is stated that he has issued written orders that any farmer who does not pay his tax is to be arrested, his hands and feet are then to be tied and he is to be hung head downwards from a tree and severely beaten.'

Bulletin (24 October, 1930)

—तो १६३१ ई० में 'स्टेटयुट आफ वेस्ट मिन्स्टर[१]' ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत परस्पर की मित्रता का भाव लेकर न आया होता;

—तो १६३३ ई० में 'पुर्तगाल' ने अपना विधान[२] न रचा होता;

—तो १६३५ ई० में 'भारत' में 'न्यू गवर्मेन्ट आफ इन्डिया[३]ऐक्ट' न आया होता;

—तो १६३६ ई० में 'रूस'[४] ने अपना 'विधान' न रचा होता;

—तो १६३७ ई० में 'भारत' में 'प्रान्तीय स्वतन्त्र शासन'[५] न आरम्भ हुआ होता;

—तो १६३८ ई० में सुभाषचन्द्र बोस ने 'फारवर्ड ब्लाक[६]' भारत में न स्थापित किया होता—राष्ट्रीय सेना का निर्माण करके भारत का मस्तक न ऊँचा किया होता;

—तो १६३६ से १६४५ ई० में 'सीरिया[७] अपना 'विधान' न रच पाती, द्वितीय विश्व युद्ध (१६३६—१६४५) न ठना होता;

—तो १६५१ ई० में 'अटलान्टिक चार्टर[८]'—'ब्रिटेन' और 'अमरीका' की एक सुन्दर विश्व की भावना लेकर न आया होता,

—तो साईमन[९] रिपोर्ट ने यह न लिखा होता :—

"The most formidable of the evils from which India is suffering have their roots in social and economic customs of long standing which can only be remedied by the action of the Indian people themselves."

अर्थात्, सब से भयंकर रोग जिससे भारत ग्रस्त होता हुआ चला आ रहा है—उसकी जड़े भारत की युगों युगों प्राचीन सामाजिक तथा आर्थिक रीतियों में है जिसका उपचार भारत का व्यक्ति स्वयं ही कर सकता है—फल यह हुआ कि इस रोग का उपचार भारत के ही व्यक्ति ने कर भी लिया;

---

१ Statute of Westminster. (1931)

"British Commonwealth of Nations are autonomous communities within the British Empire, equal in status, in no way subordinate to one another in their domestic or external affairs though united by a common allegiance to the Crown and freely associated as Members of the British Commonwealth of Nations."

२ Constitution of Portugal 1933.

३ Government of India Act. 1935.

४ Constitution of Russia. 1936.

५ Provincial Autonomy. 1937.

६ Forward Bloc. 1938.

७ Constitution of Syria. 1939.

८ "Declaration for the steps to be taken to safeguard their countries (Britain and America) against the war danger and to define policies on which they based their hopes of a better future for the world." *Declaration on 6th August 1941*

९ Indian Statutory Commission appointed on 27 Sep. 1927

—तो १६४२ ई० में भारत में 'करो' या 'मरो'[१] अथवा 'भारत छोड़ो' के नारे न लगे होते;

१ 'Do' or Die., 'Quit India Resolution.' (1942)

August Resolution:—'On the eve of the meeting of the A.I.C.C. in Bombay, the Working Committee of the Congress met and drafted the following resolution for submission to the A.-I. C. C. :—

"The All-India Congress Committee has given the most careful consideration to the reference made to it by the Working Committee in their resolution dated July 14, 1942, and to subsequent events, including the development of the war situation, the utterances of responsible spokesmen of the British Government, and the comments and criticisms made in India and abroad. The Committee approves of and endorses that resolution.'

"The peril of today. therefore, necessitates the independence of India and the ending of British domination. No future promises or guarantees can effect the present situation or meet that peril. They cannot produce the needed psychological effect on the mind of the masses. Only the grow of freedom now can release that energy and enthusiasm of millions of people which will immediately transform the nature of the war."

"The freedom of India must be the symbol of and prelude to the freedom of all other Asiatic nations under foreign domination. Burma, Malaya, Indo-China, the Dutch Indies, Iran and Iraq must also attain their complete freedom. It must be clearly understood that such of these countries as are under Japanese control now must not subsequently be placed under the rule or control of any other colonial power."

"On the declaration of the result of the resolution, Mr. Gandhi spoke for nearly 70 minutes in Hindi and for 20 minutes in English:—

Gandhi Ji concluded: "Every man is free to go to the fullest length under *Ahimsa* (non-violence), by complete deadlock. strikes and other non-violent means. Satyagrahis should go out to die and not to live. It is only when individuals go out to seek and face death that the nation will survive. *Karenge ya Marenge* (We shall do or die)"

Within a few hours of the adoption of the "Quit India" Resolution by the A. I. C. C. and the termination of its proceedings, Mr. Gandhi and the other Congress leaders were rounded up under the Defence of India Rules and kept under detention, completely isolated from the outside world. Strict measures were taken to prevent the movement from spreading or taking root. In a resolution of the Governor-General-in-Council published on the morrow

—तो १६४४ ई० में 'वर्ल्ड बैङ्क'[१] न स्थापित हुआ होता;

---

of the A.-I.C.C. meeting Government expressed regret at the Congress Resolution and affirmed their determination to meet the challenge contained in it. The resolution ran:—

"The A.-I. C. C. have ratified the Resolution passed by the Working Committee of the Indian National Congress on August 8. That Resolusion demands the immediate withdrawal of British Power from India, sanctions the starting of a mass strunggle on non-violent lines on the widest possibie scale."

"On the morning of August 9, Mr. Gandhi and other Congress leaders were arrested in Bombay and simultaneously throughout the country a round-up of important Congressmen took place. The total number of arrests on that day amounted to a few hundreds. In the words of an official publication, "the first reactions to the arrests was surprisingly mild. On August 9 there were disturbances in Bombay, Ahmedabad and Poona, but the rest of the country remained quiet. On August 10 disturbances occurred also in Delhi and a few towns in the United Provinces; but still no serious repercussions were reported from elsewhere. It was from August 11 that the situation began to deteriorate rapidly. From then onwards, apart from the *hartals*, protests, meetings and similar demonstrations that were to be expected, concerted outbreaks of mob violence, arson, murder and subotage took place; and in almost all cases these were directed either against communications of all kinds (including Railways, Post and Telegraphs) or against the Police. Moreover, these outbreaks started almost simultaneously in widely separated areas in the provinces of Madras, Bombay and Bihar and also in the Central and United Provinces. The damage done was so extensive as to make it incredible that it could have been prepared on the spur of the movement without special implements and preparation; and in many instances the manner in which it was done displayed a great deal of technical knowledge. Block instruments and control rooms in railway stations were singled out for destruction; and the same technical skill appeared over and again both in the selection of objects for attack--on the Railways, in Post and Telegraph Offices and lines, and on electric power lines and installations—and also in the manner in which the damage was carried out."

१ "World Bank, officially known as International Bank established in 1944 by U. N. O.......the objective is to assist in the reconstruction and devlopment of territories of members by facilitating the investment of capital for productive purposes."

—तो १६४४ ई० में 'फिलैडेलफिया चार्टर'[१] द्वारा 'परम' की भावनायें सिद्धान्त रूप में न मानी गई होतीं—'निर्धनता कहीं भी हो पर प्रत्येक स्थान के लिये भयप्रद है—एक-एक व्यक्ति को भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का अधिकार प्राप्त है;'

—तो २२ मार्च १६४५ ई० में 'अरब लीग'[२] की स्थापना न हुई होती;

—तो जून १६४५ ई० में 'यूनाटेड नेशन्स चार्टर'[३] पर विश्व के ५१ राष्ट्रों ने उसे स्वीकार करके सैन-फ्रैनस्सिको की सभा में हस्ताक्षर न किये होते, और 'वर्ल्ड कोर्ट'[४] न स्थापित हुआ होता;

—तो १६४६ ई० में 'जारडन' ने 'पैलिस्टायन संघ' से अपनी स्वतन्त्रता[५] न घोषित कर डाली होती;

—तो १६४६ ई० में 'फिलीपाइन्स' अपना 'विधान[६]' न रच लेता;

—तो १६४७ ई० में 'इटली'[७] ने अपना 'विधान न रच डाला होता, तो अप्रैल १६४७ ई० में 'स्पेन'[८] में फ्रैन्को ने अपने राज्य की घोषणा न की होती, ३ मई १६४७ को 'जापान' ने अपना विधान[९] न बनाया होता, तो जून ५, १६४७ ई० को हारवर्ड विश्वविद्यालय में अमरीका के राजसचिव जार्ज मारशल[१०] ने अपने व्याख्यान में योरुप के कुछ चुने हुये देशों के लिये (अमरीकन फाइनेनशियल एड) 'अर्थ-सहायता' की घोषणा

---

१ 'Philadelphia Charter adopted at Philadelphia Conference in 1944......objective being......"poverty anywhere constitutes a danger in prosperity everywhere and that accordingly war against want requires continuous and concerted international effort......The Conference affirms that all human beings, irrespective of race, creed and sex have the right to pursue both their material well-being and spiritual development."

२ 'Arab League......to achieve Independence.' (March 1945)

(League consists of Egypt, Iraq, Saudi-Arabia, Syria, Lebenon. and Yemen.) Signed at Cairo.

३ UNITED NATIONS CHARTER. (June, 1945)

'...by means of *frank discussion* and co-operation to maintain *peace* and *posperity* between the nations.'

४ World Court for Justice (Security Council) (1945)

५ 'Jordan achieved Independence from Palestine Mandate.1946

६ Constitution of Philippines (गणतन्त्रवाद) (1946)

७ Constitution of Italy. (1947)

८ Constitution of Spain. (1947)

९ Constitution of Japan. (1947)

१० Marshall Plan. (George Marshall) (1947)

न की होती, अगस्त १५, १९४७ को 'भारत[१]' और 'पाकिस्तान[२]'—एक से दो होकर—स्वतन्त्र न हो पाते, अक्टूबर ५, १९४७ ई० को कम्युनिस्टों का 'सूचना-केन्द्र' न स्थापित हुआ होता,—'रूस', पोलैन्ड', 'रूमानिया', 'हंगरी', 'बलगेरिया', 'यूगोस्लेविया', 'जैकोस्लेवेकिया', 'फ्रान्स','इटली' के कम्युनिस्टों ने 'अमरीका','इङ्गलैन्ड और 'फ्रान्स' के विरुद्ध अपना सामूहिक कर्मक्षेत्र न स्थापित कर लिया होता; नवम्बर १९४७ ई० में 'हवाना[३] चार्टर' पर हस्ताक्षर न हुये होते—इस 'चार्टर' से विश्व के व्यापार को ऐसे ढङ्ग पर चलाने की योजनायें बनाई गईं थीं कि जो विश्व-शान्ति को योग दे—तो सारलैन्ड[४] (फ्रान्स का उत्तरी-पूर्वी सीमान्त प्रदेश) ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित न कर डाली होती, और देहली में एशिया के देशों के परस्पर सम्पर्क एवं सद्व्यवहार की सद्-भावनायें लेकर 'एशियाटिक रिलेशन्स कान्फ्रेन्स'[५] न हुई होती;

—तो ३० जनवरी १९४८ ई० को महात्मा गांधी के निधन पर केवल भारत ने ही नहीं, विश्व ने शोक न मनाया होता और आज भी महात्मा गांधी को कोई रोता है तो उनके लिये कोई आंसू नहीं बहाता है, उनके नाम पर रामध्वनि—'रघुपति राघव राजाराम' केवल ३० जनवरी को ही होती है—हंसनेवाला हंसता है, रोनेवाला रोता है—उनके इन शब्दों के लिये—इस प्रतिज्ञा के लिये :—

"I shall wipe off every tear from every eye."

—*Gandhi.*

अर्थात्, 'एक एक आँख से मैं एक एक आंसू पोछूँगा'

—तो १० दिसम्बर १९४८ ई० को 'यूनाटेड नेशन्स' की जनरल ऐसम्बली द्वारा 'मानव अधिकारों' *Declaration of Human Rights* की घोषणा न की गई होती :—

"Every one has the right to freedom of opinion and expression. The will of the people[६] shall be the basis of the authority of Government......Every one has the right to work.. ....to protection against unempolyment."

अर्थात्, प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों एवं उनके स्पष्टीकरण का अधिकार है...जनमत[६] शासन की आधारशिला होगी...प्रत्येक व्यक्ति[६] को कर्म (कार्य) करने का अधिकार है...प्रत्येक व्यक्ति अपनी अनाथयुक्ति से रक्षा का अधिकारी है...

—तो 'गीता'का कर्म-योग[६] यूनाटेड नेशन्स के उपरोक्त शब्दों में 'सम'[६] बनकर न उतर आता;

INDIA PARTITIONED. (1947)

१ India BECOMES INDEPENDENT. (15th August, 1947)

२ pakistan Created. (15th August, 1947)

नोट—जिस समय यह पुस्तक रची जा रही थी उस समय तक पाकिस्तान की विधान सभा अपने देश का 'विधान' रच नहीं पाई थी।—ले०

३ Havana Charter. (1947) ६ तु० गीता ५।२।१९

४ Saarland. (Declared Independent in 1947)

५ Asiatic Relations Conference *held* at Delhi (1947)

—तो २० जनवरी १९४९ ई० को अमरीका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने विश्व 'शान्ती' और 'स्वतन्त्रता[1]' को अमरीका की नीति का अङ्ग न बना लिया होता';

—तो २८ जनवरी १९४९ को 'बेलजियम', 'फ्रान्स', 'लग्जेम्बर्ग', 'नेदरलैन्डस', 'यूनाटेड किंगडम','डेनामार्क', 'आयरलैन्ड','इटली', 'स्वडिन', और 'नार्वे' के 'विदेशी मंत्रियों' ने 'कौंसिल आफ योरुप[2]' स्थापित करके योरुप के 'जनमत' से सम्पर्क न स्थापित किया होता,

—तो अप्रैल १९४९ ई० में 'नार्थ अटैलान्टिक ट्रीटी[3], (सन्धि) में 'अमरीका', 'इङ्गलैंड', 'कनाडा', 'इटली', 'फ्रान्स', 'बेलजियम,' 'डेनमार्क', 'पुर्तगाल', 'नेदरलैन्डस,' 'लक्जेम्बर्ग', 'नार्वे' और 'आइसलैन्ड' ने मिलकर परस्पर आक्रमण न करने की न ठानी होती;

—तो अप्रैल १९४९ ई० से 'कामनवेल्थ कान्फ्रेंस' (लन्दन) में यह 'घोषणा' न हुई होती :—

"...Accordingly the United Kingdom, Canada, Australia, New-Zealand, South Africa. India, Pakistan, and Ceylon hereby declare that they remain united as free and equal members of the Common-wealth of the Nations, freely cooperating in the pursuit of *peace, liberty* and *progress.*"

अर्थात, यूनाटेड किंगडम (इङ्गलैन्ड,) कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैन्ड, दक्षिणी अफरीका, भारत, पाकिस्तान, तथा लंका यह घोषित करते हैं कि वे 'शान्ती', 'स्वतन्त्रता' तथा 'उन्नति' की ओर अग्रसर होने में राष्ट्रों की समान-सम्पत्ति के 'स्वतन्त्र' तथा समान सदस्य रहेंगे.........?

—तो १९४९ ई० को 'चीन' में 'पीपुल्स रिपब्लिक आफ चायना[4]' चीन का गणतन्त्र न स्थापित हुआ होता;

—तो १९४९ ई० में भारत में विधान 'विधान'[5] न बन गया होता;

—तो २७ दिसम्बर १९४९ ई० को इन्डोनेशिया[6] 'स्वतन्त्र' न हो गई होती;

—तो १९५० ई० में इन्डोनेशिया का 'विधान' न रचा गया होता;

—तो १९५० ई० में 'अरब सुरक्षा संविद[7]' स्थापित करके अरब, मिश्र, इराक,

---

१ Truman Point-Four Programme.

"...a four point U. S. Policy for helping to maintain world peace and freedom."

२ Council of Europe. (1949)

३ North Atlantic Treaty. (1949)

४ Peoples Republic of China. (1949)

५ Constitution of India *became* Law. (1949)

नोट:—भारत के विधान-रचना का श्रेय डा०डी०आर० अम्बेदकर को है।—लै०

६ Constitution of Indonesia. (1950)

७ Arab Security Pact. (1950)

सीरिया, जारडन, और लेबनान ने 'अरब लीग' को स्वीकार करके यह प्रतिज्ञा न की होती कि उन पर होने वाले (भावी) आक्रमण के समय वे परस्पर मिलकर रहेंगे और अपना विश्वास 'यूनाटेड नेशन्स' से न तोड़ेंगे ;

—तो १६५० ई० में भारत-निर्माण की योजना[1] न बनी होती........भारत सुख-समृद्धि की ओर अग्रसर न होता ;

—तो २० सितम्बर १६५४ ई० को 'चीन' का 'विधान'[2] न बना होता;

—तो १६५५ ई० में 'बान्डुंग कान्फ्रेन्स[3]' में भारत के प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू के 'सह-अस्तित्व' (Co-Existence) के सिद्धान्त द्वारा 'एशिया' और 'अफ्रीका' और एक शब्द में 'विश्व' की 'जन-मन प्रतिष्ठा' का आयोजन न हुआ होता; ....

—तो और..?

—तो पराजित 'जर्मनी' के दो टुकड़े[4] करके उसे आदर देने की कोई न सोचता, लड़भिड़ कर एक होने की कोई न सोचता ;

—तो आज 'अफगानिस्तान', 'पाकिस्तान', 'भारत', ('कश्मीर'-भारत के अन्तर्गत) 'नैपाल', 'तिब्बत', 'बर्मा', 'थाईलैन्ड' (श्याम), 'लंका', 'चीन', 'जापान', 'फिलीपाइन', 'आस्ट्रेलिया', 'न्युजीलैन्ड', 'पूर्वी द्वीप समूह', 'इंगलैन्ड', ('वेल्स', 'स्काटलैन्ड', आयरलैन्ड), 'इटली', 'स्पेन', 'पुर्तगाल', 'फ्रांस', 'नेदरलैन्डस', 'स्विटजरलैन्ड', 'नार्वे' 'टर्की', 'सीरिया', 'जारडन', 'अरब', 'यमन', 'लीबिया', 'लेबनान', 'कनाडा', 'अमरीका', 'अफ्रीका', 'इथोपिया' और 'रूस' अपने अपने 'स्वतन्त्रता' या 'राष्ट्र दिवस' अथवा राजा, राजाओं, राणी, महाराणी के जन्मोत्सव न मानते होते—कहीं कहीं—'अलजीरिया' और 'फ्रान्स' में, 'अफ्रीका' में आज भी धन-वैभव और काले-गोरे का प्रश्न भूतों की आहुति दे रहा है!

क़िन्तु, कोयले से हीरा तो बन गया है । पर तुलसी ने लिखा :—

> 'तुलसी देखि सुबेख भूलैं मूढ़, न चतुर नर ।
> सुन्दर केकी पेख, बचन सुधा सम अशन अहि ॥'
>
> —तुलसी (बालकाण्ड)

---

१ First Five Year Plan of India. (1950)

२ Constitution of China. (1954)

३ Bandoung Conference:— (1955)

A Conference of leading Asian and African powers was held at Bandoung in Indonesia in 1955. It supported the principles of Co-existence as defined by Pandit Jawaharlal Nehru and passed resolution against Colonism......to promote the good will and coeperation among nations of Asia and Africa and to tackle problems of special interest to those countries."

४ नोट :- जर्मनी का एक भाग 'रूस' के पास, दूसरा अमरीका, इंगलैन्ड और फ्रान्स के पास ।

अर्थात, अच्छा भेष देख कर केवल मूर्ख ही भूलते हैं, चतुर नहीं भूलते—भ्रम में नहीं आ जाते हैं। मोर देखने में भी सुन्दर और बोलने में भी अच्छा लगता है पर भोजन सर्प का करता है; इस प्रकार 'कागा' 'हंस' नहीं हो सका है—न हो सकेगा—मनुष्य अपना स्वभाव न भुला पायेगा; इसीलिये 'स्वभाव' को समष्टि से निखारने की आवश्यकता सदैव ही रही है, रहेगी;

—तो इस प्रकार मानव का इतिहास जनमत[२] से आरम्भ होकर 'जनमत' पर ही न समाप्त होता और—

और वह 'विश्व-आयोजन' जनमन-प्रतिष्ठा लिये हुये इसी प्रकार न चला आया होता......यों ही चला है, यों ही चलेगा... ....?

जीवन अरूढ़ है—तट 'मंगल' की ओर...?

—तो आज भारत में 'राम' के नाम पर 'विजया' और 'कृष्णा' के नाम पर 'गीता' घर घर में न होती और न होती घर घर में दी—पा—व—ली ?

विश्व के घर घर में दीप जगे हैं—जगेंगे—'दीप-दीप के नेह'

'व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये'

—ऋ० ५. ६६. ६.

अर्थात्, सुविस्तीर्ण और बहुमत से रक्षित स्वराज्य की भलाई[१] के लिये हम यत्न करते रहेंगे;

—तो आज भारत विश्व का 'मानव-मन्दिर' न बन गया होता—महाराजधिराज—'नैपाल', राष्ट्रपति—'यूगोस्लेविया', प्रधान-मन्त्री—'पाकिस्तान', प्रधान-मन्त्री—'चीन' श्री बुलगेनियन तथा श्री खुरश्चेव......'रूस', शाह—'अरब', शहन्शाह—'अबीसीनिया', (इथोपिया), लार्ड ऐटली—प्रधान मन्त्री—इंगलैन्ड, प्रधान मन्त्री—'लंका' और 'बरमा', दलाई और पञ्चन लामा—'तिब्बत', और महाराज—'सिक्कम' के अभिनन्दन से भारत-भूमि धन्य न हो उठती और वे देश मानव-गौरव से प्रतिष्ठित न हो पाते; अमरीका, चीन, रूस, इङ्गलैन्ड, योरुप, और अरब भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्र-अभिनन्दन में—परस्पर की भेंट-मिलन में विश्व भूमि की मंगल-कामनाओं से अभिसिक्त—तो न हो पाते।

विद्वानों के मत में 'धर्म' और 'राजनीति' को मिला देने से—इन दोनों की एकता के आधार पर 'राज्य' का संचालन करना अथवा 'धर्म' का निभाना दुर्लभ हो

१ वेदों में अभिषेक हो जाने की घोषणा 'आवित्' कहलाती है। राजा प्रतिज्ञा करता था 'यदि मैं प्रजा का द्रोह करूँ, तो अपने जीवन, अपने पुण्य-फल, अपनी सन्तान आदि सबसे वंचित किया जाऊँ। किन्तु इंगलैन्ड में—"राजा विधान का उलंघन न करेगा' —यह भावना ब्रिटिश जाति के विधान एवं स्वतन्त्रत-सत्ता की आधारशिला बन कर १२१५ ई० में मैगना चार्टा (Magna Carta) द्वारा आई थी—फिर इसी की विजय के लिये 'राजा' और 'पार-ले-मेन्ट' में युद्ध आरम्भ हुआ—अन्त में 'पार-ले-मेन्ट' की विजय हुई—'मानव विजय'। विश्व के सभी देशों में इस 'महामन्त्र' की सिद्धि के लिये बलिदानों की आहुतियाँ दी गई हैं—इसी मन्त्र की सिद्धि 'जनमत' है।—ले०

जाता है पर मैं नहीं कह सकता वह कौन सा 'धर्म' है—अथवा हो सकता है जो लाभ के स्थान पर हानि दे—पर निश्चय ही 'मानव-धर्म' को राजनीति में यदि मिला दिया जाये तो एक ऐसा सुन्दर समन्वय होगा जिसमें 'मानव' का सौन्दर्य खेलेगा—खेलता है।

मैं यह भी नहीं कह सकता हूँ कि लार्ड, शाह, राजा, महाराजधिराज और शहन्शाह—यह सब परस्पर की भेंट-मिलन में क्या लेते हैं, क्या देते हैं ? पर निश्चय ही यह पीड़ित मानवता के आँसुओं को पोंछते फिरते हैं। और गांधी जी कहा करते थे:—

"I shall *wipe* off every tear from every eye."

अर्थात्, प्रत्येक नेत्र के प्रत्येक अश्रुकण को मैं पोछूँगा।

और 'प्रसाद' जी की चिर-कामना थी:—

'विजयनी मानवता हो जाय।'

—प्रसाद (कामायनी—श्रद्धासर्ग)

इस प्रकार देश कोई भी हो, पुरुष कोई भी हो, उसकी आकांक्षायें, भावनायें और कामनायें कुछ भी रहीं हों,किन्तु चैन उसने केवल विश्व भावनाओं में ही पाया है—'मानव कल्याण' में, मानव की'समानता'तथा 'एकता' में—उसके 'समन्वय' में, उसके'पूर्णत्व' में। 'सुमति','सम्प्रीति' और 'समष्टि'—इन तीनों भाव-मूलक शब्दों में मानव की 'अन्तर्आत्मा' का सौन्दर्य झलकता है। 'समष्टि' में 'स्व', 'स्वत्व' और 'पक्षपात' को पर्याप्त स्थान नही है......केवल वे अस्तित्व-विहीन न हो जायें इतना ही है।

विश्व की आदि भावनायें 'स्व' और 'समष्टि' हैं किन्तु आधार-भावना केवल 'समष्टि' है। इसी 'समष्टि' को चाहें 'अद्वैत' कहिये, अथवा 'परम' पर सत्य भावना यही है। इसी भावना से विधाता ने वेदों की रचना की थी; 'व्यास' ने इसी को रूप दिया था, और 'शंकर' ने इसी के रूप का आदर किया था। मानव जीवन में सुख के लिये चेतना की शंखध्वनि इसी भावना के द्वारे पर हुई है—युग युग में, देश देश में, और होगी—युग युग में, देश देश में ?

किन्तु राम! तुम्हारे 'क्षीर सागर' का कुछ पता नहीं चलता ? पर तुम्हारे 'तुलसी' ने तो लिखा था :—

'भूमि सप्त सागर मेखला।
एकभूप रघुपति कोसला॥'

—उत्तरकाण्ड

'मेखला(करधनी)की भांति सात समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी के एक ही राजा कोशल-राज रघुपति हैं।'

यह सही है कि समुद्र तो आज भी 'सात'* ही हैं। पर इन सागरों से घिरी हुई पृथ्वी आज केवल ५ महाद्वीपों—'योरुप', 'एशिया', 'अफ्रीका', 'अमरीका' और 'रूस'—पांच महाद्वीपों की है, 'सप्तद्वीपों' की नहीं। पता नहीं, तुम्हारे 'सप्तसागर' और वे

---

*क Pacific Ocean प्रशान्त सागर
ख Atlantic Ocean अन्ध महासागर

'सप्तद्वीप' कौन कौन से थे और कहां थे ? और कहां था तुम्हारा वह क्षीर-सागर और क्षीर-सागर का 'त्रिकूट' ?

'सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोका[१]' :—सात द्वीप, तीन लोक—यह कथन पतञ्जलि का उनके 'महाभाष्य' में है।

तीन लोक हैं—'भू' (पृथ्वी) 'भूवः' (अन्तरिक्ष) और 'स्वः' (द्यु लोक)

'त्रयो वा इमे लोका'

—शतपथ ब्राह्मण १. २. ४. २०

'पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौ ;'

शतपथ ११. ५. ८. १

किन्तु, अनेक विद्वानों ने ७ लोक इस प्रकार बताये हैं—'भू', 'भूव', 'स्व', 'महरलोक', 'जन-लोक', 'तप्र-लोक', 'सत्यलोक' अथवा 'पृथ्वी', 'आकाश', 'स्वर्ग', 'मध्य', 'जन्मभूमि', 'आनन्दलोक' और 'सत्यलोक'। 'सांख्य' और 'वेदान्त' ने ८ लोक बताये हैं—'ब्रह्मलोक', 'पितृलोक', 'सोमलोक', 'इन्द्रलोक', 'गाधर्व लोक', 'राक्षस-लोक', और 'पैशाच-लोक'। और इन सब के परे ऋषियों ने एक ऐसा लोक भी बताया है जिसे—'लोकालोक'(लोक + अलोक—ऐसा लोक जहाँ न 'लोक', न 'अलोक'—सम्भवतः वह भूमि जहाँ न 'प्रेम', न 'बियोग') कहते हैं।

जो कुछ भी हो, पर 'तुलसी' ने तुम्हें उस भूमि का राजा—एकमात्र राजा बताया है जिस पृथ्वी के चारों ओर सागर थे (हैं)—जो पृथ्वी करधनी के समान सागरों की मेखला से अलंकृत थी (है)। सम्भव है 'तुलसी' ने तुम्हें आदर देने के लिये इतना ऊँचा उठा दिया हो कि आप अपने पूज्य परपितामह (महाराज रघु) से भी कहीं अधिक—कहीं विशाल राज के शासक हों। पर आपके पूज्य परपितामह के पिता महाराज दिलीप तो कहा[२] करते थे, 'यह सात द्वीपों की दुनियाँ बिना पुत्र के मुझे अच्छी नहीं लगती है।' निश्चय ही—'सप्तद्वीपों' की विजय महाराज दिलीप की भी थी।

तुम्हारे 'तुलसी' तो 'निगमागम' ('निगम' + 'आगम' = वेद + पुराण इत्यादि) की परम्परा लेकर चले थे—मैं नहीं कह सकता कि 'तुलसी' ने स्वयं सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण करके लिखा था या 'कल्पना' पर। निश्चय ही 'परम्परा' के आधार पर लिखा था। हो सकता है कि 'तुलसी' ने 'स्वयं' आपके 'विश्व' का चक्कर लगा लिया हो।

ग	Indian Ocean	हिन्द महासागर (दक्षिणी सागर)
घ	Artic Ocean	उत्तरी सागर
ङ	Mediterranean	भूमध्य सागर
च	Berring	बेरिंग सागर
छ	Okhotsk	ओखाटस्क सागर

नोटः—'एशिया' महाद्वीप के अन्तर्गत 'जापान' भी आ जायेगा। आस्ट्रेलिया एक छोटा-सा द्वीप है।

१ महाभाष्यप्रद्वीपोंदयोतव्याख्या, अ० १. पा० १ आह्नि १, पृ० ६४

२ रघुवंश(सं० १ श० ६४) (सद्वीपा = द्वीपों सहित)

और यदि स्वयं विश्व का चक्कर नहीं लगाया तो तुलसी के जन्म लेने के एक वर्ष पूर्व या लगभग उसी समय मैगलन[1] तो विश्व के चारों ओर चक्कर लगा ही रहा था। 'तुलसी' का विश्वास तो ऐसा था कि कोई व्यक्ति केवल आपके 'नाम' की प्रदक्षिणा करले तो संसार का चक्कर पूरा-पूरा और ठीक-ठीक लगा जायेगा :—

"महिमा जासु जान गणराऊँ।
प्रथम पूजियत राम प्रभाऊँ॥"

—तुलसी (बालकाण्ड—मङ्गलाचरण)

आपके 'नाम' (र+अ+म=राम) में तीनों देवताओं—'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'शिव' का—'उत्पत्ति', 'पालन' और 'प्रलय' का समयोग है।

यदि यह सब कुछ 'सत्य' है तो 'तुलसी' की 'परम्परा का आधार' भी 'सत्य' होना ही चाहिये ? सम्भव है इसीलिये 'तुलसी' ने रामायण के आरम्भ में ही कह दिया था: —

"सियाराममय सब जग जानी'।
करहु प्रनाम जोरि युग पानी॥"

—तुलसी (बालकाण्ड-मङ्गलाचरण)

'सम्पूर्ण जगत को सीताराममय जान कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ।'

मेरा तो विश्वास है तुलसी 'राम' शब्द की व्याख्या में (माता) 'जानकी' जी को—जगतजननी जानकी को भूल गये थे इसीलिये 'राम' शब्द की व्याख्या—तीनों देवताओं से, तीनों लोकों से, बिना जानकी के 'राम' शब्द की व्याख्या पूर्ण नहीं हो सकी थी, इसीलिये उन्होंने आरम्भ में ही 'सिय' शब्द को 'राम' के प्रथम (सियाराम) रख कर तब 'जगत' (विश्व) को प्रणाम किया—'सीता' और 'राम' को विश्व में रमा डाला, 'विश्व' को 'सीता' और 'राम' में ढाल दिया। किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम्हारे 'तुलसी' से ऐसी भूल हो। निश्चय ही भूल 'तुलसी' से नहीं, मुझसे हुई है जो मैंने 'तुलसी' की भूल का 'आडम्बर' रच डाला। आपके 'नाम'—'राम' में महारानी जी उसी प्रकार बैठी हुई हैं जिस प्रकार 'शब्द' में एक एक अक्षर—'र+अ+म='राम'=र+म+अ='रमा'।

'राम रमापति कर धनु लेहु'

—(अयोध्याकाण्ड)

यदि यह व्याख्या सत्य है तो निश्चय ही 'राम रमापति' में आपके 'सातों द्वीप', 'तीनों लोक', 'सातो सागर', 'लोकालोक'—सभी कुछ भरा हुआ है—'नारी' और 'पुरुष' की परस्पर मिलन में—पतिपत्नी के परस्पर मिलन में सातो सागर अनन्त लहरों में लहराते हैं, स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आता है, सातो द्वीप ज्योतिर्मय हो उठते हैं—इस मिलन के अतिरिक्त अथवा इसके आगे न कोई 'लोक' रह जाता है, न 'अलोक'। यह है आकर्षण-विधान आपका।

---

१ देखिये :—पृ० १९९

किन्तु, राम ! आपकी यह दुनियां इतनी सीधी नहीं है जो 'भावनाओं को 'सत्य मान ले, जो 'कल्पनाओं' को 'सत्य' मान ले ?

हां, तो राम। उपर की पंक्ति में 'तुलसी' ने 'रमापति' शब्द का प्रयोग किया था। यदि 'सीतापति' कह देते तो,......तो वहां जनकपुर में स्यमंवर मंडप में ही जनक जी और 'परशुराम' से युद्ध ठन जाता क्योंकि उस समय तक जानकी जी का विवाह तो हुआ नहीं था, न आप 'सीतापति' बन गये थे। आपकी 'पहिचान' परशुराम यदि कर भी लेते तो 'सीता' की पहिचान—'जनकदुलारी' की पहिचान कैसे होती ? इसीलिये 'रमापति' शब्द का प्रयोग किया गया था। 'भृगु' जी तो उन 'रमा' को ढूढ़ते थे जिनको क्षीर-सागर में आपके चरण दबाते हुए देखा था।

हां, तो राम ! कहाँ है तुम्हारा वह क्षीरसागर ? कौन से हैं वे 'सप्तद्वीप' ?—वे 'सप्त सागर' और वह 'आलोकालोक' ? और कहां है क्षीरसागर वाला वह 'त्रिकूट' पर्वत और आप उस विशाल भूमि के राजा कैसे हो गये ?

क्षीर-सागर में तुम्हारी शय्या 'सर्पो' की है। इसीलिये तुमसे लोग और भी डरते हैं ? सम्भव है तुम्हारे भक्तों ने 'क्षीर' (दूध) की कल्पना इसीलिये कर ली हो कि तुम्हारे सर्पों को दूध पिलाना है।

क्षीरसागर का अर्थ तो दूधवाला सागर है—'पानीवाली' नहीं। आज के सातों सागरों में 'दूध' नहीं, खारी पानी मिलता है। सागरों पर यात्रा करने वाले बहुधा सामुद्रिक पीड़ा Sea-sickness—से पीड़ित हो जाते हैं। 'श्वेत',[१] काले[२] लाल[३] और पीला[४] सागर तो हैं—पर दूधवाला सागर सुनने में नहीं आया। विश्व के सात रंग—'लाल', 'नारंगी', 'पीला', 'नीला', 'मखमली', 'काला', 'हरा' और यह सब मिलाकर 'सफेद'—कहीं इस प्रकार तो तुम्हारा वह 'क्षीर-सागर' नहीं बन गया था ? इन सभी रंगों के मिलने से सूर्य की सफेद[५] रोशनी बन जाती है। और यदि सब कुछ नहीं है तो सम्भव है आपका 'क्षीर-सागर' 'प्रशान्त महासागर' के बीचों-बीच में रहा हो—'हावाई[६] द्वीप' में—जहां खजूर के वृक्ष की ओट मनुष्य नृत्य[७] और संगीत की

---

१ White Sea २ Black Sea ३ Red Sea ४ Yellow Sea

५ 'Sunlight is white light.'

इन्हीं किरणों से Infra-Red, Ultra-Violet. X-Rays, Radium-Rays इत्यादि बन गई हैं। 'किरण' एक सेकेन्ड में १८६००० मील चलती हैं।—ले०

६ 'हवाई द्वीप' में अमरीकावालों का 'पर्ल हारबर' (Pearl Harbour) है और १९४२—१९४५ ई० के द्वितीय विश्व युद्ध में इसी 'पर्ल हारबर' पर जापान ने ७ दिसम्बर १९४१ ई० में आक्रमण करके अमरीका को युद्ध में उतार लिया था अन्यथा अमेरीका उतरने वाला नहीं था।

७ 'Music and dance is as important as meat and drink to the natives of Hawaii.'

ध्वनियों में अपने का तन्मय करे रहता है और जो स्थली 'प्रशान्त इन्द्रपुरी' 'Pacific Paradise' कहलाती है। किन्तु ऐसी इन्द्रपुरी किस काम की जहाँ 'लावा' ही 'लावा' निकले! पर हाल ही की खोज से पता चला है कि 'प्रशांत सागर[३]' में 'क्षीर-सागर' के-से 'त्रिकूट' पर्वत एक नहीं, अनेक हैं[१]।

तुम्हारे राज्य की सीमायें 'उदयाचल'—'जापान' (Land of Rising Sun) से 'अस्ताचल' (America) तक—जापान के याकोहोमा, सिंगापुर और सिंगापुर से सैन्फ्रैन्सिस्कों—प्रशांत सागर के तट पर अमरीका का सैन्फ्रैन्सिस्कों............... 'सिंगापुर' से सैन-फ्रैंसिस्कों के ७३५५ मील लम्बे जल मार्ग पर और अमरीका

"Everest is a land Mountain whereas Hawaii is a marine mountain. Everest towers over five and a half miles over sea surface; Hawaii rises as much over the sea surface as on its floor. It stands three miles in water and nearly two and two and three quater miles out of it.

...........Hawaii, strange mountain-island of palms, romance and wailing guitars, consists of 150 million million tons of black basaltic lava. Lava is the soil and sub-soil of the Island and it nourishes a luxuriant tropical vegetation that has led to Hawaii being described as a 'Pacific Paradise.'

The Modern Marvels Encyclopedia पृ० ४४१/२२५

नोट: प्रशान्त सागर के ठीक बीचों-बीच में हवाई द्वीप है। इसकी खोज कैप्टन कुक (Captain Cook) ने की थी। ले०—

१ प्रशांत सागर में :—

अनेक प्लेट्यू, पर्वत, तथा घाटियां :—

SYDNEY: "Discoveries of new ocean depths and new underwater mountains, valleys and plateaux are being reported by two civilian research scientists who sailed in the Royal Navy's submarine Telemachus on an International Geophysical Year survey.

The scientists are Mr. S. Gunson, a geophysicist with the Australian Bureau of Mineral Resources, and Mr. H. Traphagen, of the Lamonte Geological Observatory, New York. Captain G. D. Tancred, head of the Royal Australian Navy Hydrographic Section, was also with the expedition."

Telemachus covered 12,000 miles and made 138 dives in the Tasman Sea, in the Pacific off New Zealand and near the Kermandec Islands, Fiji and New Caledonia."

नोट :—प्रशांत महासागर विश्व के सभी सागरों से बड़ा और गहरा है—६३९८६००० वर्ग मील है।

के अन्ध महासागर के तट पर स्थित 'न्यूयार्क हारबर' जहां अमरीका को फ्रान्स द्वारा दिया हुआ 'स्वतन्त्रता-स्तम्भ[१]' खड़ा है—वहाँ से भूमध्यसागर के प्रवेश अथवा निकास द्वार 'जिब्राल्टर' और वहां से 'स्पेन', 'पुर्तगाल', 'जर्मनी', 'फिनलैन्ड', 'स्वेडिन' और

"During their dives, the scientists plumbed a new depth in the Tongan Trench, which is about six miles deep; found underwater extension of New Caledonia extending towards New Zealand and explored the restless, lightless world with mountains as high as Everest, great valleys, and plateaux one third as big as Australia."

But the navy found it 'as flat as a billiard table.'

He added that Barcoo also discovered a rangeof steep underwater mountains between 6,000 feet and 10,000 feet high, 200 miles off the coast between Wollongong, south of Sydney, and the 40th parallel which passes approximately along the centre of Bass Strait.

The limits of the range are not yet known, but scientists and navy personnel believe it to be more rugged and grander than the Blue Mountain behind Sydney with valleys criss-crossing in spectacular fashion.

Another mountain range has been discovered between 200 and 300 miles east of Wollongong, with many peaks rising 5,000 feet from the ocean bed. This is believed to run at least 300 miles north and south. The survey ended at the 40th parallel, where the range was still running south.

He said the survey ship H. M. A. S. Barcoo, which has done a great deal of work in charting the coastal shipping lanes, has recently discovered a 15000 feet plateau rising from the seabed 200 miles off Newcastle."

It has also reported:—

A mountain 11000 feet high-much higher than Australia's highest. Mount Kosciusko (7320 feet)—30 miles to the north of the plateau.'

Another plateau, 13000 feet high, between the mountain and Lord Howe Island, 436 miles north, east of Sydney.'

An underwater mountain range 200 miles south-south-west of Gabo.

Captain Tancred said that many scientists believed that the floor of Bass Strait separating the Island State of Tasmania from the mainland was serried by deep gorges and river beds."

The Leader, 20th October 1956

१ Statute of Liberty presented to America by France.

नार्वे[१]—जहाँ अर्धरात्रि में सूर्य चमकता है—वहां तक और उससे परे उत्तर में 'ग्रीन-[२] लैन्ड'—भूमंडल के विशाल द्वीप (८२७३०० वर्ग मील) तक, दक्षिण में 'फाकलैन्ड',[३] 'केप[४] आफ गुड होप, 'मेलबोर्न[५]', 'तस्मानियां[६]' और 'न्युजीलैन्ड[७]' और पता नहीं कितने 'द्वीप-द्वीपान्तरों', 'देश-देशान्तरों', 'राज्य', 'साम्राज्य', 'प्रजातन्त्र', 'गणतन्त्र', 'सागर', 'महासागर' और 'उत्तरी' और 'दक्षिणी' ध्रुव[८] और इन्हीं विशाल द्वीप-द्वीपान्तरों, देश-देशान्तरों के अन्तर्गत तुम्हारी वह आदि-अनादि नगरी 'रोम[९]', वह पवित्रभूमि 'बेथलेहेम[१०]', 'पैलिस्टायन[११]', 'जेरूसलम[१२]' जहां आप 'प्रभू ईसा' रूप प्रवर्त्तित् हुये थे, तुम्हारी वह पावनपुरी—'मक्का' जहां आप 'जनाब मुहम्मद साहब' के रूप प्रवर्तित हुये थे और आपका वह पुनीत देश—'लाहसा[१३]' जो आज तिब्बत की राजधानी है, आपकी वह 'अयोध्या[१४]' जो आज से लगभग ६ या ७ सौ वर्ष पूर्व 'शयाम' की राजधानी थी, आपका वह 'ईरान[१५]' जहाँ 'जरथूस्त्र' रूप प्रगट हुये थे, वह चीन का 'लू'[१६] प्रदेश, वह 'कोल्लंग्गी[१७]' जहाँ 'महावीर प्रभु' बन कर 'सत्य' और 'अहिंसा' का अभयदान देते रहे थे, वे स्थान और वह लुम्बिनी[१८] जहाँ 'बुद्ध' रूप प्रवर्त्तित होकर 'सारनाथ', 'बोधगया' और न मालूम कहाँ कहाँ—'भारत', 'तिब्बत', 'लंका', 'श्याम', 'बर्मा', 'चीन' 'जापान' और 'योरुप' में मानव को 'सत्य', 'अहिंसा' और 'शान्ती' देते रहे थे—और आज

१ 'Land of the *midnight* Sun'—'Norway'
२ 'Largest Island'—'Greenland'.
३ दक्षिणी 'अमरीका' का अन्तिम द्वीप (Falkland. Is.)
४ दक्षिणी अफ्रीका का अन्तिम नगर (Cape Town)
५ आस्ट्रेलिया के दक्षिण में स्थित- लन्दन से मेलबोर्न का जलमार्ग ।
६ आस्ट्रेलिया के दक्षिण में स्थित द्वीप २६२१५ वर्ग मील
७ दक्षिणी द्वीप ५८५०० वर्ग मील (South Island—New Zealand)
८ North and South Poles.
Philips New School Atlas of Universal History.
By Ramsay Muir and George Philip. 14Ed.
९ Eternal City—Rome.
१० Bethlehem, the Birthplace of Lord Jesus Christ.
११ 'Palestine'—Holy Land.
१२ Jerusalem—Land of Honey and Milk. (Land of Bells.)
नोट :—ईसाई धर्म के यह तीनों पवित्र स्थान हैं ।—ले०
१३ तिब्बत के लामाओं की पवित्र भूमि
१४ देखिये :—म्योर ऐटलस पृ० 52 a T. C.
१५ देखिये :—पृ० ५८ टि० ३ तथा पृ० ५९ टि० ३
१६ देखिये :—पृ० ५८ टि० ६
१७ देखिये :—पृ० ५८ टि० ४
१८ देखिये :—पृ० ८१ से १०२

के योरुप की वह शान्ती- नगरी[१] 'दी हेग'—'The Hague', वह रूप और 'व्रज' की 'अल्हड़ता'—'नन्दगाँव', 'गोकुल', 'बरसाने', 'मथुरा', 'वृन्दाबन' की 'ताता-थेई, थेई, थेई, ता' और कुरुक्षेत्र का 'योग'—और वह आपकी 'धामदा' :—

'जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिसि सरयु बह पावन॥'

—तुलसी (उत्तरकाण्ड)

—वह 'जन्म भूमि' जिसके विषय में आप कहा करते थे—"लोग मुझे बैकुण्ठ का बासी समझते हैं किन्तु 'अवध' (अयोध्या) के समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है,' पर आप यह भी कह डालते थे—'किन्तु यह भेद कोई कोई ही जानता है !"

"यद्यपि सब बैकुन्ठ बखाना।
वेद पुरान विदित जग जाना॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोउ।
यह प्रसंग जाने कोउ कोउ॥"

—तुलसी (उत्तरकाण्ड)

—हो सकता है कि आप इन सब 'भूखण्डों', 'द्वीपों', 'सागरों', 'पर्वतों'—'आकाश' 'पाताल' और 'मृत्युलोक' के स्वामी रहे हों पर 'साकेतपुरी' साक्षी है आप कहीं के 'सम्राट' नहीं थे। यदि 'सम्राट' होते, तो 'तुलसी' आपको—'एकभूप' नहीं कहते :—

'एक भूप रघुपति कोसला'

—तुलसी (उत्तरकाण्ड)

और मेरा तो विश्वास है यदि आप 'सम्राट' होते, तो 'तुलसी' इसके आगे की चौपाई इस प्रकार नहीं लिख पाते :—

'भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कुछ बहुत न तासू'

—तुलसी (उत्तरकाण्ड)

'तुलसी' ने आप को 'सम्राट' नहीं, 'एक भूप' कहा है। इतनी विशाल भूमि जिसके चारो ओर सात सागर हों—भूमि का क्षेत्रफल ५६७८६००० वर्ग मील और सागरों का (जल का) १४१०५०००० वर्ग मील और इनके अतिरिक्त न मालूम कितनी (१६६८३६००० वर्ग मील) भूमि और जिसको लोग व्यर्थ की कहते हैं—इस विशाल भूमि के, उन सागरों के केवल एक 'आप' राजा ! आपकी रजधानी—'अयोध्या' ! क्यों ! आपको गर्व नहीं हुआ !

आज लोगो से 'पञ्चायत' का शासन नहीं सम्भलता है, म्युनिस्पैलीटी का शासन नहीं संभलता है—पर जानतेहो क्यों नहीं संभलता है ? क्योंकि 'समदृष्टि' नहीं होती है !

आपने इतना बड़ा शासन संभाल लिया..................?

.........पर कैसे ?.........उत्तर है.........'समदृष्टि' से।

और राम ! मैं यह तो बिल्कुल ही मानने को तैयार नहीं कि 'तुलसी' ने वेदों में—

---

१ "The Hague. ....Capital of Netherlands ....The Seat of International Court of Justice...........Place for peace Conferences."

'निगमागम'—पुराणों में 'साम्राज्य'[1] शब्द ही न पढ़ा हो, या 'तुलसी' 'साम्राज्य' शब्द जानते ही न हों ?

इसीलिये मैं कहता हूँ – तुलसी की भावनाओं में आपके लिये 'सम्राट' अथवा आपके 'राज्य' के लिये 'साम्राज्य' शब्द का यदि कोई महत्व होता, तो तुलसी चूकने वाले नहीं थे। तुरन्त यों लिख डालते :—

'सम्राट एक रघुपति कोसला'

———

किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं लिखा ? जानते हो क्यों ?

उस विशाल भूमि का —सागरों और पर्वतों का—'तुलसी' आपको यदि 'सम्राट' कह डालते, तो निश्चय ही भूमि की एकता टूट गई होती, भूमि के टुकड़े टुकड़े हो जाते—छोटी-सी-छोटी भूमि पर एक एक साम्राज्य खड़ा हो जाता और फल यह होता कि ऐसी 'विषमता' फैलती कि न आपके बटोरे बटुरती और न तुलसी के। तुलसी की 'समदृष्टि' भेदमय हो गई होती। तुलसी की परम्परा—'समष्टि'—विनष्ट हो गई होती। मानव-संस्कृति मिट जाती। फिर तुलसी यह न लिख पाते :—

'यह प्रभुता कुछ बहुत न तासू'

—तुलसी (उत्तरकाण्ड)

और—'गीता' का तुम्हारा वह 'विश्वरूप', 'रामायण' का तुम्हारा वह 'विश्वरूप', 'बायबिल' का तुम्हारा वह 'विश्वरूप', 'अवस्ता' का तुम्हारा वह 'विश्वरूप', 'कुरान' का तुम्हारा वह 'विश्वरूप','शैंगटी' का तुम्हारा वह'विश्वरूप'—और इस विश्व का 'विश्वरूप' एक एक व्यक्ति को—तो आज स्पष्ट न हो पाता। एक एक व्यक्ति के हृदय में खिलता हुआ तुम्हारा 'विश्वरूप'—'चेतना','सम्प्रीति' और'मंगल' का तुम्हारा 'विश्वरूप'—आंसुओं में ढलता हुआ तुम्हारा 'विश्वरूप', मुस्कानों में खिलता हुआ तुम्हारा 'विश्वरूप'—आज एक एक व्यक्ति को—तो स्पष्ट न हो पाता।

और तुम्हारी 'अयोध्या' सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करने वाली न होती—अ + य + ो + ध् + य + अ = अयोध्या = अयो + ध्या = अ + य + ो = ध् + य + अ = ओंकार[2] + धात्री[3] = ओंकार को धारण करने वाली पृथ्वी = सम्पूर्ण भूमण्डल को धारण करने वाली अयोध्या इस विराट विश्व को धारण करने वाली न बन गई होती।

किन्तु, राम ! यह वह रहस्य नहीं है जो कोई कोई जानता है। शब्दों की व्याख्या तो सभी कर लेते हैं। अयोध्या सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाली हो या न हो पर वह रहस्य केवल इतना है कि 'स्वर्ग' से भी बढ़कर आप 'अयोध्या' को मानते

---

१ 'साम्राज्यं', 'भौज्य', 'स्वाराज्यं', 'वैराज्यं', 'पारमेष्ठ्यं','राज्यं', 'महाराज्यं', 'आधिपत्यमयं', 'समन्तपर्यायी' 'स्यात', 'सार्वभौमः', 'सार्वायुषः', 'आन्ताद् आपरार्द्धातः', पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराड् इति। ऐतरेय—ब्राह्मण; अध्याय ८

'साम्राज्य', 'भौज्य', 'स्वराज्य','वैराज्य','पारमेष्ठ्य', 'महाराज्य','आधिपत्यमय', 'समन्तपर्यायी',।'जन-राज्यं' या गणराज्य' देखिये :—'वैदिक साहित्य' पृ० ३३१

२ 'अ' ओंकार का बीज है। ३ 'ध' धात्री (पृथ्वी) का बीज है।

थे (हैं)—इसका आशय और अर्थ केवल इतना होगा कि यही 'विश्व' स्वर्ग से भी बढ़कर है। सम्भवतः इसीलिये 'तुलसी' ने कहा था :—

'को जाने को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को।
तुलसिंहि बहुत भलो लागत, जग जीवन राम गुलाम को ॥'

(विनयपद—१५६)

'तुलसी' को 'सुरपुर' (स्वर्ग), जमपुर (नरक) और 'परधाम' की चिन्ता नहीं थी। वे तो इसी 'जीवन' को, इसी 'जग' को अधिक सुन्दर मानते थे— आप के नाते—आपकी गुलामी उन्हें अधिक पसन्द थी।

इसी 'जीवन' के, इसी 'जग' के यदि किसी ने गीत नहीं गाये, तो चाहें कोई 'रहस्यवाद' लिखें, चाहें 'छायावाद' पर बाद में वाद-विवाद ही रह जायेगा—'जग' की रोचकता और 'जीवन' का सौन्दर्य ढूँढे न मिलेगा। यही वह रहस्य है जो कोई कोई जानता है।

'उमा कहहूँ मैं अनुभव अपना।
सत्य हरि भजन जगत सब सपना ॥'

—तुलसी

यह तो 'शङ्कर' के शब्द हैं—"विश्वास' का विश्वास बोल रहा है। यह 'जगत' 'स्वप्न' कैसे हो गया ? वही हरि तो संसार में व्याप्त है जिसका भजन सत्य है, तो संसार 'सपना' कैसे हो जायेगा, महाराज ?

महाराज ! आपके 'शंकर' जी यह क्या कह बैठे ? उन्होंने तो ऐसा कहा था :—

'हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होंहि मैं जाना।"

तुलसी (बालकाण्ड)

शंकर जी के (विश्वास के) इन शब्दों से तो स्पष्ट होता है कि हरि न केवल पयनिधि (क्षीर-सागर) और न केवल 'लवननिधि' (खारे सागर) में ही रहते हैं प्रत्युत सर्वत्र एक समान व्याप्त हैं। फिर, संसार स्वप्न कैसे होगा ?

पर, वाह रे तुलसी ! यदि संसार झूठा, तो वे 'हरि' भी झूठे !

तुलसी के शङ्कर ने तो 'संसार' की सत्यता की व्याख्या की है, असत्यता की नहीं ?

हो सके तो प्रेम के दो आंसू बहा कर कोई देखे कि संसार 'झूठा' है या 'सत्य'।

जीवन को तपाकर कोई देखे—यह जीवन 'झूठा है या 'सत्य'।

शङ्कर ने जगत की सत्यता की व्याख्या अपने अटपटे शब्दों में तो केवल इस लिये की थी कि एक एक व्यक्ति तुम्हे जान ले—ऐसा न हो कि कोई व्यक्ति तुम्हें जाने बिना रह जाये। किन्तु 'तुम्हें' तो वही जानता है जिसे जना[1] देते हो :—

'सो जाने जेहि देहु जनाई।'

—तुलसी

---

१ गीता १०/११ 'हे अर्जुन ! .. ...मैं स्वयं ही उनके अज्ञान जनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

और जान लेने पर वह 'तुम' ही हो जाता है :—

'जानत तुमहिं तुमहिं होय जाई ॥'

—तुलसी

जब मनुष्य अपने को नहीं जानता है तब तो वह अपने को 'सत्य' कहता है और यदि जान ले, तो पता नहीं कि वह अपने को 'झूठ' कहेगा या 'सत्य'।

इसीलिये 'कबीर' कहा करते थे :—

'दीठा हो तो कस कहूँ, कहुँ तो को पतिआंय'

—कबीर

'देखा हो, तो कहूँ कैसे ? और कहूँ भी, तो मानेगा कौन ?

पर राम ! तुम्हारी यह 'जना देने वाली बात' समझ में कुछ कम आती है। पहले तो तुम्हारा अस्तित्व माना जाये, तब कोई तुम्हारी बात माने। पर आपका अस्तित्व दुनियाँ आज इतनी आसानी से मानने को तैयार नहीं जितनी आसानी से 'तुलसी' ने मान लिया था। आज तुम्हारा अस्तित्व तो मनुष्य तब ही मानने को तैयार होता है जब अपनी धूर्ताई में चारों ओर से फंस जाता है। पर पता नहीं उस समय आप उसका साथ देने में हिचकिचाते हैं या नहीं। और यदि दया करके आप उसे विपत्ति से छुड़ा भी दें, तो छूटते ही उसकी समझ में यही आ जाता है कि वह तो अपने बल से ही—चालाकी से छूटा है। इसमें आपने क्या तीर मार दिया ?

और यदि मेरे-जैसे धूर्त से पूछो तो मैं यही कहूँगा कि आप ही फँसा देते हैं,आप ही छुड़ा देते हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई हाँथ पर हाँथ धर कर बैठ जाये। कर्म तो सभी करते हैं—अच्छे या बुरे—सभी को कर्म[1] करना पड़ेगा—वश, विवश, परवश।

और रही अपने अपने 'कर्म' पर भरोसे की बात सो उसके लिये आप मेरी सीधी-सी बात सुनलें। तुलसी ने लिखने को तो लिख दिया :—

'कर्म प्रधान विश्व रच राखा।
जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा ॥'

और यह भी लिखा :—

'कोउ न काहु कर सुख-दुख दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥'

(अयोध्याकाण्ड)

पर उनके व्यक्तिगत जीवन में इन दोनों में से कोई बात उतरी नहीं और उन्होंने साफ साफ यों कह दिया :—

'काल, कर्म, गति, अगति जीव की सब हरि हाँथ तुम्हारे'

—विनयपद—११३

लो ! 'काल,' 'कर्म', 'गति', 'अगति'—सब कुछ आपके ही हाथ रख दिया। ऐसे थे आपके तुलसी।

'अस कुछ समुझि परत रघुराया'

—विनयपद—१२४

---

१ 'कर्म' की व्याख्या के लिये देखिये :—स्वाधीन चिन्तन का खण्ड २।—ले०

किन्तु...................?

किन्तु.........सागर सूख[1] गये। पर्वत समतल हो गये। नदियाँ[2] धारायें बदल गईं।

भूमि और क्षेत्र—देवभूमि और देवक्षेत्र.........स्वर्णभूमि और श्री-क्षेत्र, गौरवशाली देश..................वैभवहीन हो गये।

दार्शनिक तत्त्व-रूखे हो गये। काव्य में काँटे चुभने लगे। साहित्य में-से 'हित' निकल गया।

'धर्म' दुर्बल हो गया, अर्थ' शक्तिहीन। 'काम' विमोहित हो गया और 'मोक्ष' अर्थ-हीन।

चरित्र भ्रष्ट हो गये।

संस्कृतियाँ खो गईं।

'श्री' और 'स्वस्ति' विमुख होने लगीं।

भारत की भौगोलिक सीमायें संकुचित हो गईं.........इतिहास की रेखायें बदल गईं—भारत का मानचित्र[3] बदल गया।

........किन्तु, विनाश की रेखाओं के पास ही, ऐसा कभी नहीं हुआ कि निर्माण की रेखायें न बनी हों, नहीं, ऐसा कभी नहीं हुआ कि 'मङ्गल' 'विध्वंस' के साथ साथ न चला हो,......या न चले।

'सुख', 'श्री', 'सरस्वती' और 'स्वस्ति' 'वैभव' में नहीं,' 'विभूति'[4] में हैं।

'विभूति' के बिना 'वैभव' नहीं टिक सका है।

---

१ राजपूताना एक युग में समुद्र था। आज उसके गर्भ में खारे जल की झीलें (सांभर) हैं। इसी प्रकार 'बल्ख' और 'फारस' के उत्तर में एक विशाल सागर था जिसे एशियाई भूमध्य सागर कहा जाता था। भूगोल-वेत्ताओं का मत है अब इसके अंश झीलों के रूप में रह गये हैं—ब्लैक-ह्रद् (Black Sea), कैस्पियन-ह्रद् (Caspian Sea), अराल ह्रद् (Aral Sea), तथा बल्काश-ह्रद् (Lake of Balkash)। एक युग था जब सागरों पर आर्यों का अखण्ड राज्य था। देखिये :—वैदिक साहित्य पृ० २८०

२ प्रथम शताब्दी में 'वंक्षु' (ओक्सस) कैस्पियन सागर में गिरती थी अब 'अरल सागर' में गिरती है।

३ 'In December, 1953, the Prime Minister whiie announcing the decision of the Government to appoint State Reorganization Commission observed that the Commission would examinethe problem from the point of view ofpromotion of 'welfare of the people of each constituent unit, as well as the nation.'

स्टेट आर्गेनाईजेशन रिपोर्ट के आधार पर १ नवम्बर १९५६ को बदल गया।

४ देखिये:—गीता का 'विभूति योग', अध्याय १०

'विभूति' संकल्प है, 'वैभव' विकल्प।

संकल्प का संविधान 'मानव' का वीर्य है और 'नारी' संकल्प की साधना-शक्ति है।

मानव संस्कृति 'शील' की है और नारी 'लज्जा' की।

मैं नहीं कह सकता कि लगभग ६ या साढ़े ६ हजार वर्ष के जीते-जागते इतिहास में मानव ने किस किस पर विजय की?—'जल' 'वायु' 'पृथ्वी' 'अग्नि', 'आकाश' पर, 'बीज' पर, 'कृषि' पर, 'गोधन' पर, 'भूगर्भ' के रत्नों पर, भूमंडल की 'हरित भूमि' पर, 'समतल भूमि' पर, 'मरु-भूमि पर, 'मरु-भूमि' के 'शाद्वल' स्थानों पर, 'वनभूमि' पर, 'वृक्षरहित भूमि' पर, 'टन्ड्रा' जैसी 'हिममंडित भूमि' पर, पथरीली और 'ऊसर भूमि' पर, 'शिलाओं', 'श्रेणियों', 'पर्वतों' और 'निर्झरों' पर, 'नदियों' और 'सागरों' पर—'प्रकृति' पर, 'तत्व', 'तत्त्व' पर, भयङ्कर 'तूफानों' पर, धवल 'हिलोरों' पर, कटती हुई 'धारों' पर, प्रबल 'वेगों' पर, सागरों में अलक्षित होती हुई 'भूमि' पर, घाटियों और तलहटियों पर, भूकम्प और विस्फोटों पर, जीव-जन्तु, जलचर, नभचर, पशु और पक्षियों पर, चर पर, अचर पर, देश, जाति, पुरुष, समाज, राष्ट्र और साम्राज्यों पर, 'काम' पर—'कामविजय', 'मन्मथविजय', 'मदनविजय'—नारी पर, धर्म, आचार, विचार, श्रद्धा, दया, न्याय और कर्तव्य पर, 'कर्म' पर, गुणों पर—सतो, रजो और तमो गुणों पर, मान, अपमान, यश-अपयश, अभिमान और गर्व पर, त्राहि, निरंकुशता, शोषण, रक्तपात, हिंसा और क्रोध पर, हानि-लाभ पर, आशा, तृष्णा और ममता पर, अर्थ पर, भाग्य, विधाता और विधान पर, स्वतन्त्रता और परतन्त्रता पर, द्वैता और एकता पर, परोक्ष और प्रत्यक्ष पर, साहित्य, दर्शन, इतिहास, कला और विज्ञान पर, बैर पर, प्रीति पर, मोक्ष, प्रतिमोक्ष, कर्म, ज्ञान, भक्ति और समाधि पर, संकल्प और विकल्प पर, सुख पर, दुख पर, स्मृति और विस्मृति पर, वैभव और विभूति पर, साधनाओं और सिद्धियों पर, सभ्यता और संस्कृति पर, 'विनाश' और 'निर्माण', पर 'विध्वंस' और 'मङ्गल' पर, भूत वर्तमान और भविष्य पर, विश्व पर.........विश्व के लोकसंग्रह पर और............?

किन्तु, पच पच कर हार गया विधाता भी, रो रो कर रह गया भाग्य भी और मुंह लपेट कर चली गई मृत्यु भी पर 'मानव' अजय रहा, 'नारी' अजय रही। मानव का अर्थ[1] यहाँ मानवजाति का हो सकता है, नारी का अर्थ[1] यहाँ नारीजाति का हो सकता है।

सन्तों ने 'सहज' से समाधि लगा ली, अपने स्वभाव को पहिचान लिया, परमेश्वर को जान लिया, ज्ञानियों ने अपने को ज्ञान से जाना, अपनी एक एक दुर्वृत्ति को पहिचाना, एक एक सत्वृत्ति को जाना, भक्त ने अपने आंसुओं में भगवान को उतार लिया, अपनी झलक देख ली, वीरों ने वीरता में अपने को देखा और गीता में कहा "मैं प्रभावशाली पुरुषों का 'प्रभाव हूँ', 'जीतने वालों का 'विजय'[2] हूँ, 'निश्चय करने वालों का 'निश्चय[3]' और 'सात्विक पुरुषों का सात्विक[4] भाव मैं हूँ'', किन्तु गीता में यह भी कहा है 'मैं छल[5] करने वालो

---

१ *'There is no death to Mankind.' — Reede*

२ गीता १०/३६

३ गीता १०/३६

४ गीता १०/३६

५ गीता १०/३६

में 'जुआ' हूँ और दमन करने वालों का 'दंड'[1] अर्थात् दमन करने की शक्ति हूँ।' और अन्त में 'विभूतियोग अध्याय' यों समाप्त हुआ :—

'जो-जो भी विभूतियुक्त, अर्थात एश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उस सब को तू मेरे तेज के अंश की अभिव्यक्ति जान।'[2]

"और हे अर्जुन! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है? मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योगशक्ति के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ।"[3]

गीता के योगेश्वर श्रीकृष्ण के उपरोक्त शब्दों में यह सब कुछ उनका 'अभिमान' हो सकता है, 'गर्व' हो सकता है, पर यह 'अभिमान' और 'गर्व'—यह 'अहंकार-शून्य' है।

विभूति में एक एक-से बड़े हो गये हैं, एक एक-से बड़े हैं, एक एक-से बड़े होंगे[4] पर यहाँ छोटे और बड़े की तुलना नहीं है—परम्परा के आधार पर 'सम' का योग है। सभी तो अपनी अपनी विभूति लेकर, अपनी अपनी 'कु' और 'सु' वृत्ति लेकर केवल एक ही लक्ष्य—विश्वआयोजन—लोक-संग्रह—की ओर निर्देशित हैं।

इस प्रकार निश्चय ही मानव की 'अहंकार-शून्य-शक्ति' ही मानव की 'विभूति' है।

मानव अपनी विजय के लिये मानव का 'महायज्ञ' करता हुआ चला आ रहा है.........त्राण, हिंसा, शोषण, रक्तपात और नृशंसता की आहुतियाँ देकर देख लीं—वह 'अहंकार' मिटा नहीं, आशा, तृष्णा, मोह और ममता की वेदियों पर से 'विकल्प' के अनेक मन्त्रों—छल-कपट, झूठ, जुआ-चोरी, दुर्व्यवहार, अविश्वास, अदाया, अन्याय, पक्षपात, लोभ, क्रोध, प्रतिशोध, अभिमान, स्व, स्वत्व, स्वार्थ इत्यादि—अनेक मन्त्रों का उच्चारण करके देख लिया,—वह 'अहम' गया नहीं, 'धर्म', 'अर्थ', 'काम' और 'मोक्ष' की पूर्ण आहुति दे दी, पर मानव के संकल्प जागे नहीं, कर्म, ज्ञान, और भक्ति का अलग अलग विसर्जन करके देख लिया पर स्वस्ति की ध्वनि हुई नहीं.........!

और..... ....!

और इन्हीं आंखों से विध्वंस के रचे हुये खण्डहरों को देखा, वैभव के चुने हुये महलों को देखा पर तृप्ति हुई नहीं।

'अहंकार', 'विकल्प' और 'अतृप्ति'—इनमें से किसी का भी अस्तित्व मिटा नहीं है—न मिटेगा। मानव के 'अहम' को जब जब ठोकर लगी है वह तिलमिला उठा है, 'विकल्प' मानव के चारो ओर—आगे, पीछे दायें, बायें, घूमे हैं, घूमते हैं ......मन में भी जाते हैं और 'तृप्ति' का अर्थ 'सन्तोष' अथवा 'भाग्य' को समर्पण कर देने का नहीं है और न निर्लिप्तता का है।

---

१ गीता १०/३८

२ गीता १०/४१

३ गीता १०/४२

४ तु० "*There are greater souls than Shakespeare and greater minds than Plato waiting to be born.*" —*Will Durant.*

'अहंकार', 'विकल्प' और 'अतृप्ति' ने विध्वंस को सशक्त कर दिया है......पर 'मङ्गल' को मुस्कराने के लिये।

यह विश्व तो 'क्षीर' और 'नीर' से बना है, 'काले' और 'सफेद' से, 'विध्वंस' और 'मंगल' से।

ठोकरों पर ठोकरें देता हुआ भाग्य मानव का कुछ बिगाड़ नहीं पाता है, चारों ओर से घेर कर आपत्तियाँ और विरुद्ध परिस्थितियाँ मानव को दबोच नहीं पाती हैं, चारो ओर से छाये हुये—मन में आते हुये, मन से जाते हुये विकल्पों को मानव सोच नहीं पाता है, बैर से बैर जीता नहीं जाता है, आशा उसे खिला खिला कर मार नहीं पाती, तृष्णा विचलित नहीं कर पाती, लोभ छू नहीं पाता, ईर्ष्या और डाह में वह जलता नहीं, ममता और मोह का बन्धन जकड़ नहीं पाता, 'गृह' उस पर रोता नहीं, 'समाज' हँस नहीं पाता, 'राष्ट्र' उस पर अभिमान करता है, 'देश' गौरवान्वित होता है, 'विश्व' का एक एक कण उसके दर्शनों को आतुर हो दौड़ता है, एक एक पल उसे स्पर्श कर के धन्य हो जाता है, उसकी एक एक श्वास में विश्व सिमिट कर निकट आ जाता है—चर-अचर में, प्राणीमात्र में परस्पर का सखा-भाव बिखर जाता है, भाव भाव को पहिचान लेता है, हृदय-हृदय को जान लेता है :—

—'प्रेम प्रेम ते होय'।

—सूर

विश्व भावनाओं ने मानव का सृजन किया है, विश्व-भूमि ने उसे गोदी में खिलाया है, उसकी भूक के लिये करील[1] के कांटों में अमर-फल आये हैं, प्यास के लिये मरुभूमि में स्वच्छ जल के स्त्रोत फूटे हैं और जीवन के लिये कल्पनायें सत्य बन गई हैं।

उसकी दृष्टि में 'भेद' नहीं, 'सम' है।

उसकी वाणी में थके हुये मन की हार नहीं है, मन के एक एक 'संकल्प' की विजय है।

'विजय' और 'मङ्गल' का अलोकयान उसका रुका नहीं।
चेतना की शंखध्वनि में और झन्कारों में,
......विश्व प्रेम की.........जगमङ्गल की,
सम्प्रीति ने मंगला आरती उतारी है
सखे!

तुम्हारी!

ओ मानव के 'सत्य', नारी के ओ 'मङ्गल' रूप!

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभिसिक्त वरदानों की मङ्गलवाणी विश्व का कल्याण कर रही है, करेगी, नारी का शृङ्गार और मानव का राजतिलक कर रही है, करेगी।

× × × × × × ×

---

१ देखिये :—पृ० २९६, पर 'भूक' के लिये तुलना कीजिये गीता ९।२२।—ले०

संस्कृति और इतिहास

स्तम्भ, सूत्र और संदर्भ ग्रन्थावली[1]

ऋग्वेद
सामवेद
यजुर्वेद
अथर्ववेद
तैत्तिरीयोपनिषद्
श्वेताश्वतरोपनिषद्
मुण्डकोपनिषद्
माण्डूक्योपनिषद्
कठोपनिषद्
केनोपनिषद्
प्रश्नोपनिषद्
छान्दोग्योपनिषद्
बृहदारण्यकोपनिषद्
ऐतरेयोपनिषद्
ऐतरेय ब्राह्मण
शतपथ ब्राह्मण
महाभाष्य
—श्रीमद्भगवत्पतजंलिमुनिरचित
वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र)
—श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीत
मनुस्मृति
याज्ञवल्क्य स्मृति
कात्यायन स्मृति
पराशर स्मृति
बोधायन स्मृति
नारद स्मृति
स्मृतिचन्द्रिका
योग वाशिष्ट
तन्त्रवृत्तिका—कुमारिल भट्ट
वराहमिहर संहिता
दासबोध—श्री समर्थ रामदास स्वामीकृत
गीता—टीकाकार—जयदयाल गोयन्दका
वीरमित्रोदय—परिभाषा
रामायण—वाल्मीककृत
रामायण—तुलसीकृत
महाभारत
कालिदास ग्रन्थावली—पं० सीताराम चतुर्वेदी
कालिदास और शेक्सपिअर—प० छन्नूलाल द्विवेदी
शकुन्तला नाटक—राजा लक्ष्मणसिंह कृत
भगवान महावीर का आदर्श जीवन—मुनि चौथमल कृत
अध्यात्म पदावली—प्रो० राजकुमार जैन साहित्याचार्य
पृथ्वीराज रासो—चन्दबरदाई कृत
वीसलदेव रासो—नरपति नाल्ह
आल्हखण्ड—जगनिक
सारस्वत सर्वस्य—श्री गंगाप्रसाद
आर्यों का आदिदेश—डा० सम्पूर्णानन्द
मासिरे आलमगीरी
फतबाई—आलमगीरी

१ यह 'ग्रन्थावली' किसी प्रकार भी पूर्ण नहीं है।—ले०

कुरान—जलालउद्दीन सुयूती
तारीख-ग्रदबे-उर्दू
शेर-ओ-सुखन—अयोध्याप्रसाद गोयलीय
भारत में अंग्रेजी राज—सुन्दरलाल
विचारधारा—डा० धीरेन्द्र वर्मा
मध्यदेश—डा० धीरेन्द्र वर्मा
कविता कौमुदी—पं० राम नरेश त्रिपाठी
चिन्तामणि—प० रामचन्द्र शुक्ल
वैदिक साहित्य—प० रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री
हिन्दी नवरत्न—मिश्रबन्धु विनोद
वीर सतसई—वियोगी हरि
हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० रमा शंकर शुक्ल 'रसाल'
आधुनिक साहित्य—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी
साहित्य विवेचन—पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीन दयाल गुप्त
बङ्गला साहित्य की कथा—पं० भोलानाथ शर्मा
हिन्दी की प्राचीन काव्यधारा—महापंडित राहुल सांकृत्यायन
सत्यार्थप्रकाश—स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत
कामायनी—जयशङ्कर प्रसाद
विश्व-कोष—नगेन्द्रनाथ बसु
विक्रमाँक (संवत २००० वि०)—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
गीता-तत्त्वांक—गीता प्रेस, गोरखपुर
शिवांक—गीता प्रेस, गोरखपुर
वेदाँक—गीता प्रेस, गोरखपुर
रामायणाँक—गीता प्रेस, गोरखपुर
योगांक—गीता प्रेस, गोरखपुर
सन्त अङ्क—गीता प्रेस, गोरखपुर
'भारतीय विधान'
'आर्थिक समीक्षा'
'नयी धारा'

'कल्पना'
'ज्ञानोदय'
'जैन युग'
'भारत'
'पत्रिका'
'नव जीवन'
'हिन्दोस्तान—साप्ताहिक'
'धर्मयुग'
'सरस्वती'
'आज'
'महिला'
'ज्योत्स्ना'
'जन्मभूमि'
'कर्मवीर' (कन्नड़ भाषा)
'केसरी (मराठी)
'सैनिक'
हिन्दी विधिशब्द सागर—श्री जगदीश नारायण चतुर्वेदी
रेखा और कण—लेखक
Aryan Polity.
Elements of Hindu Culture and Sanskrit Civilization
—*Dr. P. K, Acharya.*
A History of Civilization In Ancient India...
—*Romesh Chandra Dutta*
Glimpses of World History...*Jawahar Lal Nehru*
Discovery of India...*Jawahar Lal Nehru.*
Ancient India and Indian Civilization...*O—G—Stern*
Growth of Civilization...*W. J. Perry.*
The Centre of Ancient Civilization...*H. D. Daunt.*
The Dawn of Civilization. Egypt and Chaldia...*G. Maspero.*
The Civilization of Babylonia and Assyria...*Jastrow Morris.*
A Brief History of Civilization...*J. S. Hoyland.*
A Short History of Civilization...*Henry S. Lucas.*
A History of World Civilization...*James Edger Swain.*
A Survey of Western Civilization...*H. S. Barnes.*
The Outlines of History...*H. G. Wells.*
A Short History of the World...*H. G. Wells.*
Wilkinson's Manners and Customs....*Vol. I. 2nd Ed.*
—*J. Gardner Wilkinson*

The World's Religion...*J. N. D. Anderson.*
History of Egypt...*James Henry Breasted.*
Gilgamis Epic.
Religious Beliefs of the Ancient Chinees...*F. Wei.*
Studies in History and Jurisprudence...*Brice.*
A History of Europe...*Rt. Hon'ble H. A. L. Fisher*
History of Persia...*John Malcolm.*
History of Greece...*William Smith.*
Alexander the Great...*F. A. Wright.*
Carthage...*Alfred J. Church.*
Rome...*Arthur Gilman*
Roman Empire from 29 B. C. To 476 A. D....*H. Stuart Jones.*
Parliamentary History...*Cobbett.*
History of the Rebellion.......*Clarendon*
History of England
Statutes of the Realm.
Statutes of Large
Commons Journal.
Sesame and Lilies—*John Ruskin.*
An Outline Sketch of the Political History of Europe in the Nineteenth Century...*F. J. C. Hearnshaw.*
History of English Literature......*Louis Cazamian*
A Guide to the Various Classes of Documents in the Public Record Office....*S. R. Scargill Bird.*
Old Testament.
Bible and Its Background...*Archibald Robertson*
Truth About Catholics.
The History of the Decline and Fall of the Roman Empire —*Edward Gibbon.*
Light of Asia...*Edwin Arnold.*
Prehistoric India .. ...*Stuart Piggott*
Epochs of Indian History...(Ancient India) *R. C. Dutta.*
History of Pre-Musalman India, Vol II...*V. Rangacharya.*
The Story of Nations, 'CHINA'...*Prof. Robert K. Douglas.*
The Orginal of China...*J. Ross.*
History and Literature of Buddhism......*T. W. Rhys Davids.*
Divine Songs of ZARATHUSHTRA...*Irach J. S. Taraporwala.*
A Source Book for Medieval History.
The Cambridge Medieval History. Vol. VII and VIII
Short History of India.. *V. A. Smith.*
Oxford History of India......*V. A. Smith.*
Cambridge History of India......*Prof. E. J. Rapson.*
Early History of India...*N. N. Ghose.*

Ancient India...*R. C. Majumdar.*
Creative India...*R. K. Sarkar.*
Alberuni's India...*Dr. E. C. Sachau.*
Anylitical History of India...*Robert Sewell.*
A History of India...*Vaman Somnarayan Dalal.*
History of India...*Chaudhari.*
The History of India...*J. Talboys Wheeler.*
History of Sirohi Raj...*Sita Ram.*
Native States of India...*Col. G. B. Malleson,*
The Age of the Imperial Guptas
--*Prof. R. D. Banerji and A. S. Alteker.*
Story of Mankind...*Hendrik Van Loon.*
Legacy of Islam...*Arnold Guillaume.*
Moslem World of Today.. *J. R. Mott.*
Annals of the Early Caliphate ··*Sir William Muir.*
Mohamed Vol. i...*Irving.*
The Preaching of Islam...*T. W. Arnold.*
Man's Worldly Goods—*Leo Huberman*
A General Collection of the Best and Most Interesting Voyages
—*John Pinkerton, Vol. VIII.*
Empire in Asia. How We Came By It. Vol. II...*W. M. Torrens.*
Mughal Administration...*Jadunath Sarkar.*
Medieval India...*Stanley Lane-Poole.*
Short History of Muslim Rule In India...*Dr. Ishwari Prasad.*
History of Jahangir...*Dr. Beni Prasad.*
The Making of India...*A. Yusuf Ali.*
History of Orrisa,
Rise of the Maratha Power...*M. G. Ranade.*
Annals and Antiquities of Rajasthan......*Col. James Todd.*
Lok-Manaya Tilak—*D. V. Tahmankar*
Obstacles to Human Progress...*George Eves,*
History of Indian Literature···*M. Winternitz.*
History of Indian Literature···*Prof. Max Muller*
History of Sanskrit Classical Literature···*Krishnamachariar.*
History of Sanskrit Literature···*Macdonnel.*
Muslim Patronage to Sanskrit Literature
—*Jitendra Vimal Chaudhari.*
Influence of English Literature on Urdu Literature
—*Sayyid Abdul Latif.*
History of Urdu Literature...*T. Grahame Baily.*
A History of Panjabi Literature...*Sardar Mohan Singh.*
History of Bengali Language and Literature
—*Dinesh Chandra Sen.*

Gujrat and Its Literature...*K. M. Munshi*,
Somnath the Shrine Eternal
—*K. M. Munshi and N. Chandrasekhara Aiyer.*
A History of Modern Marahti Literature'''*Chimanji Bhats.*
History of Kanada Literature'''*R. Narsinghacharaya.*
Studies in Tamil Literature and History
—*V. R. Ramchandra Dikshitra.*
History of Tamils......*T. Srinivas Ayyangar.*
Ten Days that Shook the World—*John Reed.*
Das Kapital—*Karl Marx.*
Story of the World Literature—*John Massy.*
Principles of Sociology......*E. A. Ross.*
Principles of Psychology Vol II......*Herbert Spencer.*
Social Psychology......*Mc. Daugall.*
History of British Army Vol 3-5...*J. W. Fortescue*
All India Reporter. 1954. Madras.
Hindu Law in Resources....*Ganganath Jha*
Essential Supplies Act, 1947.
Criminal Procedure Code, 1898.
U. P. Zamindari Abolition Act, 1950
Intelligent Man's Guide Through World Chaos...*G. D. H. Cole.*
Hindu Classical Dictionary...*Dowson.*
Modern Marvels Encyclopedia....*John R. Crossland.*
Philip's New School Atlas of Universal History...
—*Ramsay Muir And George Philip.*
Historical and Modern Atlas of the British Empire...
J. G. Bartholomew
Simon Report. (Simon Commission Appointed in 1928)
Journal Of Asiatic Society of Bengal.
Journal Of Oriental Research,
Educational Review.
Pakistan Quarterly.
Congress Bulletins. (Sholapur Disaster)
Amrit Bazar Patrika.
The Leader.
The Readers Digest.
Statesman.
Bombay Chronical.
Calcutta and Bombay Market Reports.
Modern Review.
Indian Year Book 1947—1950.
Hindustan Year Book 1950—1956.

अनुक्रमणिका

ख

य

ह

मुद्रक—श्री आई० बी० सक्सेना, माधो प्रिंटिंग वर्क्स, बैरहना, इलाहाबाद ।

शुद्धि-पत्र

पृ०	टि०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	—	२	मारुत	मरुत
५	—	१०	गा	गौ
६	—	३	ग्रामीण	ग्रामणि
७	—	४	की	को
११	७	—	ब्रह्मान्दवल्ली	ब्रह्मानन्दवल्ली
४२	—	—	वे	के
४४	४	—	कौशल	कोशल
४४	५	—	ऐतरय	ऐतरेय
४४	—	१	सुश्रुतु	सुश्रुत
४७	१६	—	पर्व	पूर्व
६०	१	१	धारर	धारण
६४	—	१	करिन्थ	कारिन्थ
७२	—	२२	टठराज	नटराज
८०	—	११	दा	दो
८०	—	२	धमरत्न	धर्मरत्न
८५	—	१८	गुरू	गुरु
८६	—	२८	कलुषति	कलुषित
६१	—	८	परिवतनशील	परिवर्तनशील
६५	२	—	गीता ६/२१	गीता ६/४१
६६	—	७	परणितियाँ	परिणतियाँ
६६	—	६	श्रद्धासूक्त	श्रद्धासूक्त[५]
१०५	२	१	जयचन्द्र विद्यालङ्कार	जयचन्द विद्यालङ्कार
१०७	—	१२	सौदरानन्द	सौन्दरनन्द
११०	—	१६	का	को
११२	—	२०	वैक्टीया	बैक्ट्रीया
११४	—	२४	एक छत्रराज	एकछत्र राज
११७	—	२७	दिग्विजय	दिग्वजय
११७	—	२	जयचन्द्र विद्यालङ्कार	जयचन्द विद्यालङ्कार
११७	—	१२	सदाशिव अलक्तेर	सदाशिव अल्तेकर
११८।११६	—	६।७	दिग्विजय	दिग्वजय
११८	—	६	काम्बोज	कम्बोज

पृ०	टि०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	—	१२	शरब	शराब
१२०	—	३०	ध्वसित	ध्वस्त
१२४	७	—	लाय	लायस
१२५	—	३-१८	आशीर्वाद	आशीर्वाद
१२६	१	—	१/४	१/२
१२८	—	४	हुई	हुईं
१३०	—	३७	गौरवान्ति	गौरवान्वित
१३६	१	—	भारतवप	भारतवर्ष
१४२	—	१८	अर	अरब
१४२	२	—	(कुरान ३०/२१)	(कुरान ३०/१२)
१४६	२	६	कल्म	कलम
१५०	२	—	2	२
१५०	३	—	२	३
१५१	१	—	Islolam	Islam
१५२/१५३	—	शीर्षक	विपल्व	विप्लव
१५२	—	शीर्षक	१७०७ ई०	१७४६ ई०
१५३	—	१६	ई० १२१४ ई०	ई० १२१४
१६४	—	६	टोक	टोंक
१६४	—	१३	इसी इसी मध्यदेश	इसी मध्यदेश
१७१	—	१६	ग़नी	गज़नी
१७६		२२	र	पर
१७७	१४	—	चम्पारन (बिहार)	चम्पारण्य(मध्यप्रदेश)
१६०	—	२६	अन्तंगत	अन्तर्गत
१६८	—	२०	आजिम	आज़म
२०४	—	१३	महरानी	महारानी
२०८	—	२२	किस किन	किन किन
२१२	—	८	नसरता	नसरती
२१७	—	३०	चे	कूचें
२२४	—	१६	अनूप-अर्नत	अनूप-आनर्त
२३०	१	—	Scn	Sen
२३०	२	—	अनूदित	अनुदित
२३२	१०	—	काब्य	काव्य
२३४	—	२४	दीनदयाल गुप्त	दीनदयालु गुप्त
२४५	—	२६	माष्य	भाष्य

पृ०	टि०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४७	—	१३	प्रथम	तृतीय
२५१	—	५	प्रोदशिक	प्रादेशिक
२५५	—	१०	शक्ति ह्रास	शक्ति का ह्रास
२५८	४	—	Treauure	Treasure
२५९	—	२३	३ वर्ष	५ वर्ष
२७५	—	८	आपति	आपत्ति
२७६	१०/११	—	रूस को	रूस के
२७६	❀	—	Ordinanc	Ordinance
२८२	१	—	ehain	chain
२८७	१	—	शृंगवेर	शृंगवेरपुर
२८९/२९०	—	२४।१	सेतबन्धु	सेतुबन्ध
२९२	—	१४	भी	भी।
२९४	—	१०	वक्षु	वंक्षु
३००	—	११	इक्त्वाकू	इक्ष्वाकु
३००	—	१	इक्त्वाकू	इक्ष्वाकु
३०३	—	४	अवन्ति	अवन्ति
३०३	—	७	पुहाड़ियों	पहाड़ियों
३०४	—	२	सुन्दरेवन	सुन्दरवन
३०८	६	—	Plans	Planes
३१०	—	१०	सुविजनिक	सार्वजनिक
३१२	—	४	क्रान्ती	क्रान्ति
३१२	३	१६	Becamc	Became
३१२	३	१६	Recpature	Recapture
३१३	—	३	बिजय	विजय
३१३	—	८	होता	होती
३२२	५	—	की	को
३२३	—	१८	यूगोस्लेविया	इन्डोनेशिया
३२६	नोट	—	पृ० १९९	पृ० १९३
३४०	—	२१	दीनदयाल गुप्त	दीनदयालु गुप्त

पृ० ११२, १३१, १३२, १३३ पर पढ़िये :—

The Imperial Age of Guptas

के स्थान पर

The Age of the Imperial Guptas

पृ० २५६ व ३४२ पर पढ़िये

Louis Cazamian

के स्थान पर

Emile Legouis and Louis Cazamian

स्वरूप प्रस्ताव-- संदर्भ-संकेत पृ० 'श' पर पढ़िये :

(1) The Dawn of Civilization of Egypt and Chaldia

By Mesparo

के स्थान पर

The Dawn of Civilization,

Egypt and Chaldia

By Maspero

(2) P. K. Acharya, Elements of Hindu Culture and Civilization

के स्थान पर

P. K. Acharya. Elements of Hindu Culture and Sanskrit Civilization

पृ० ३४३ पर छटी पंक्ति में पढ़िये :—

A History of India—Chaudhari

के स्थान पर

A Political History of Ancient India

By H. C. Ray Chaudhari

—:o:—